भारतीय संगीत का इतिहास

उमेश जोशी

भारतीय संगीत का इतिहास

लेखक—

उमेश जोशी

प्रकाशक—

मानसरोवर प्रकाशन महल

फीरोजाबाद
(उत्तर-प्रदेश)

मई, १९५७]   [मूल्य १२ रु०, ५० नये पैसे

प्रकाशक—
रामगोपाल शर्मा
मानसरोवर प्रकाशन महल
फीरोजाबाद, (उत्तर-प्रदेश)

प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य १२ रुपये ५० नये पैसे

मुद्रक—
सूरजभान अग्रवाल बी० कॉम०
आदर्श प्रेस, फ्रीगंज, आगरा।

समर्पण

बस उसी अपने प्रिय अनुज साहित्य-मर्मज्ञ "श्याम" को सप्रेम

समर्पित, जिसने मेरी साहित्यिक यात्रा को सफल बनाने

के लिए सब कुछ उठा रक्खा एवं

जिसकी सजीव प्रेरणा का प्रतिफल

यह

"भारतीय संगीत का इतिहास" है।

—उमेश जोशी

पुस्तक-परिचय

उमंग जीवन का श्रृङ्गार है। संसार की उलझनों में फंसकर जब यह जीवन-शक्ति जर-जर होने लगती है तब उसका काया कल्प करके उसमें पुनः यौवन लाने की शक्ति, जिन कलाओं में है उन्हें ललित कलायें कहते हैं। ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोच्च है। कवि ने कहा है—

"त्रिभुवन मानस वशीकरण मधुमय आकर्षण
शून्य गगन की रस लहरी का मधुर विकम्पन।"

संसार के अनेक महात्माओं ने संगीत को "ईश्वरीय वाणी" माना है। नाद को 'नाद ब्रह्म' कहा है, क्योंकि नाद सर्व व्याप्त है। यह ब्रह्मांड ही नादमय है, नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा बनती है। भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है अतएव यह सृष्टि ही नाद के आधीन है। नाद ही संगीत के प्राण हैं।

यद्यपि यह निर्विवाद है कि 'संगीत' क्रिया प्रधान है तथापि संगीत ग्रन्थों का अध्ययन किये बिना, कलाकार विद्वान होने का दावा नहीं कर सकता। संगीत पर आधुनिक विद्वानों ने भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। परन्तु प्राचीन संगीत के ऐतिहासिक महत्व पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। विशेषतया हिन्दी भाषा में तो इस पर बहुत कम लिखा गया है। अनेक आधुनिक लेखक तो अपने गुरु तथा उनकी वंश परम्परा की प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिये ही लिखते हैं अथवा अपने श्रद्धेय कलाकारों की महानता को सिद्ध करने के लिये। संगीत के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास पर प्रकाश डालने का कष्ट नहीं करते।

श्री उमेश जोशी ने "भारतीय संगीत का इतिहास" लिखकर सराहनीय कार्य किया है, क्योंकि इस विषय पर प्रकाश डालने वाली पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है।

अपनी पुस्तक के **प्रथम प्रकरण** में जोशीजी ने "संगीत का जन्म" पर विश्व के अनेक विद्वानों के विभिन्न मतों का उल्लेख किया है जोकि मनोरंजनात्मक, हृदय-स्पर्शी तथा मार्मिक भी है।

दूसरे प्रकरण में संगीत और भाषा के जन्म का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया, जिसमें कि यह सिद्ध किया है कि भाषा से पूर्व, संगीत का जन्म हो चुका था।

तीसरे प्रकरण में "भारत की प्राकृतिकावस्था का संगीत पर क्या प्रभाव पड़ा" पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

चौथे प्रकरण में प्रागैतिहासक काल के संगीत पर प्रकाश डाला है। इस काल को पूर्व पाषाणकाल, उत्तर पाषाण काल, ताम्र काल तथा लौह काल इत्यादि चार भागों में विभक्त किया है।

पाँचवें प्रकरण में सिंधु नदी की घाटी तथा हड़प्पा (पंजाब) की सम्यता व संगीत पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है जोकि बड़ा महत्वपूर्ण है।

छठे प्रकरण में वैदिक युग के सांस्कृतिक विकास का गौरवपूर्ण ढंग से विस्तृत रूप का वर्णन करके यह प्रामाणित किया है कि वैदिक संस्कृति का विकास भारत में ही हुआ और यहीं से निकलकर भारतीय संगीत विश्व में फैला।

सातवें प्रकरण में पौराणिक काल के संगीत व सामाजिक परिस्थिति का प्रलुब्धकारी वर्णन किया गया है।

आठवाँ प्रकरण—रामायण काल में संगीत के विकास पर प्रकाश डालता है, इसमें यह दर्शाया है कि तब, संगीत का आत्मिक सौन्दर्य, समाज में पूर्णतया विकसित हो चुका था। संगीत-चरित्र की मर्यादा की रक्षा का साधन बन गया था।

नवें प्रकरण में महाभारत काल में संगीत के महत्व पर बड़े रोचक शब्दों में लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण को, संगीत के युग प्रवर्त्तक आचार्य प्रामाणित किया है।

दसवें प्रकरण में पाणिनि काल के संगीत की लोकप्रियता का वर्णन है।

ग्यारहवाँ प्रकरण—जनपदों के विषय में है। इसमें यह प्रामाणित किया है कि भारतीय संगीत, विदेशों में किस प्रकार पहुँचा। महाराजा वत्सराज उदयन के संगीत प्रेम का वर्णन गौरवमय है।

बारहवाँ व तेरहवाँ प्रकरण—जैन और बुद्ध काल पर है।

पन्द्रहवाँ प्रकरण—मौर्य काल के विषय में है।

नाग युग को लेखक ने नाट्य-कला तथा संगीत का स्वर्ण युग माना है। "भरत नाट्यशास्त्र" जैसा अद्वितीय ग्रन्थ, इसी काल में लिखा गया। नाट्य-कला अपनी चर्म सीमा तक पहुँच गई थी।

लेखक ने, गुप्त काल को, भारतीय संस्कृति का जागरण काल तथा संगीत का स्वर्ण युग प्रामाणित किया है। इसी काल में अरब देश के संगीतज्ञों ने, भारतीय वीणा का नाम "से तार" रखा जोकि धीरे-धीरे भारत में भी प्रचलित हो गया।

ईसवी सन् की छठी शताब्दी में मतंग ने "ब्रहत् देशीय संगीत" ग्रंथ की रचना की जोकि अनेक दृष्टिकोण से उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार लेखक ने, युग क्रमानुसार, राजपूत काल, खिलजी काल, तुगलक काल, लोदी काल व मुगल काल के संगीत का हृदयग्राही वर्णन किया है। तत्पश्चात् ब्रिटिश काल के संगीत का वर्णन है। लेखक ने 'सिंहावलोकन' में अनेक सुप्रसिद्ध कलाकारों के कला कौशल्य तथा विविध विचारों का उल्लेख करके, पाठकों के सन्मुख वर्तमान शताब्दी का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

संगीत विद्वानों का, किसी एक विषय पर लेखक से मतभेद होना स्वाभाविक ही है परन्तु लेखक के उद्देश्य पर विचार करने में उसके प्रयास को प्रशंसनीय ही कहा जायगा।

लेखक का यह प्रथम प्रयास है। आशा है कि, द्वितीय संस्करण इससे भी अधिक सफल होगा। विचारवानों के लिये इस संग्रह में, इतनी सामग्री है कि वे इससे लाभान्वित हो सकते हैं। संगीत विद्यार्थियों, संगीत प्रेमियों तथा सर्वसाधारण के लिये भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। हिन्दी साहित्य के प्रेमी भी इसमें से बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। संगीत संस्थाओं तथा प्रादेशिक सरकारों को, लेखक के प्रशंसनीय कार्य का क्रियात्मक रूप में स्वागत करना चाहिये।

नई दिल्ली
२८-४-१९५७

दिलीपचन्द्र वेदी
सदस्य, संगीत नाटक अकादमी,
नई दिल्ली।

प्रस्तावना

"भारतीय संगीत का इतिहास" नामक ग्रन्थ को मैंने इधर-उधर से देखा है और लेखक की परिश्रम शीलता तथा बिवेक और संग्रह शक्ति पर मुग्ध हो गया हूँ। यद्यपि संगीत के विषय में मेरा ज्ञान नगण्य है, तथापि पुस्तक की भाषा और भाव इत्यादि के विषय में तो कुछ कह ही सकता हूँ।

संगीत के विस्तृत इतिहास की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी और इस ग्रन्थ द्वारा निस्सन्देह उसकी पूर्ति हुई है। विश्वविद्यालयों में पाठ्य-ग्रन्थ के तौर पर ऐसी पुस्तकों का उपयोग हो जाय तो अत्युत्तम हो। केन्द्रीय तथा भिन्न भिन्न राज्यों की सरकारें भी पुरस्कार द्वारा अथवा पुस्तकालयों के लिये अधिक प्रतियाँ खरीद कर लेखक तथा प्रकाशक को प्रोत्साहन दे सकतीं हैं।

पुस्तक के गुण दोषों के विषय में तो अधिकारी विशेषज्ञ ही सम्मति देंगे पर एक साधारण पाठक और लेखक की हैसियत से मैं, इस बृहद ग्रन्थ के रचयिता का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और यह आशा रखता हूँ कि उन्हें अपने उद्देश्य में भरपूर सफलता मिलेगी।

नई दिल्ली
२४–५–५७

बनारसीदास चतुर्वेदी
सदस्य, राज्य सभा
नई दिल्ली।

दो शब्द

श्री उमेश जोशी कृत "भारतीय संगीत का इतिहास" बहुत खोजबीन और बड़े परिश्रम के साथ लिखा हुआ अतीव रोचक ग्रन्थ है। आदि या अनादिकाल से लेकर अब तक का यह इतिहास-संकलन कुतूहल जगाने और कुतूहल—शान्ति का मनमोहक क्रम है। संगीत और संगीत के स्वरों की उत्पत्ति कैसे हुई, इस प्रश्न पर देश-देश के मनीषियों ने अपने-अपने काव्यात्मक और अनुसन्धानपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। जोशीजी ने अपने इस ग्रन्थ में उन सबों को सँजोया है। प्राचीन काल के विख्यात संगीत-नायकों और आचार्यों से लेकर आज तक के प्रसिद्ध कलाकारों ने ग्रन्थ में यथोचित स्थान पाया है। हमारे संगीत में कहाँ-कहाँ और कब-कब कैसे और कौनसे रूपान्तर एवं परिवर्तन हुये इसका विवेचनात्मक वर्णन भी किया गया है।

संगीत पर मैंने हिन्दी में कोई ऐसी पुस्तक नहीं देखी। जोशीजी संगीत-प्रेमियों, विशेषतः हिन्दी वालों की हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

जोशीजी का "भारतीय संगीत का इतिहास" प्रत्येक संगीत-प्रेमी के हाथ में होना चाहिये। यह विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के लिये बहुत ही उपयुक्त है। भारत सरकार की संगीत नाटक अकादमी को चाहिये कि वह श्री उमेश जोशी को उचित सम्मान प्रदान करे।

झाँसी
२५–३–१९५७

वृन्दावनलाल वर्मा

लेखक की ओर से

"भारतीय संगीत का इतिहास" आपके सामने प्रस्तुत है। यह कैसा है, इसका निर्णय तो आप स्वयं ही कर सकेंगे। इस सम्बन्ध में मेरा कुछ कहना उपयुक्त न होगा। यहाँ मुझे विख्यात जर्मन कवि गेटे के यह सुन्दर शब्द स्मरण हो आते हैं—"लेखक के श्रम की सफल कसौटी उसके विज्ञ पाठक ही हैं। वे ही उसके श्रम का मूल्यांकन सही रूप में कर सकते हैं। लेखक तो प्रत्येक कृति के निर्माण में अपनी अपूर्व निष्ठा का प्रयोग करता है, इसलिए उसके लिए उसकी प्रत्येक कृति उसकी शानदार जिन्दगी होती है।" "भारतीय संगीत का इतिहास" लिखने की प्रेरणा मेरे अन्दर उस वक्त जाग्रत हुई, जबकि मैंने संगीत पर विदेशी कलाकारों के अनेक इतिहास पढ़े, और इस प्रेरणा को सजीव एवं साकार बनाने में मेरे प्रिय अनुज "श्याम" का विशेष योग रहा। उस वक्त मैंने संकल्प किया कि क्यों न भारतीय संगीत का वृहत इतिहास तैयार किया जाए, जिससे भारतीय संगीत का प्राचीन एवं अर्वाचीन समृद्धिशाली गौरव पुनः सजीव होकर जन-समाज के सामने प्रस्तुत हो सके, और हम अपने संगीत की पुनीत उज्ज्वलता की मनोरम झाँकी कर सके। उसी दृढ़ संकल्प का यह सुपरिणाम आपके सामने है। मेरे संकल्प को दृढ़ता की पृष्ठ पर उतारने में विख्यात कलाकार ओवल जील के इन प्रेरणात्मक शब्दों ने विशेष कार्य किया—"जिस राष्ट्र का संगीत अपनी आत्मिक चमक को खो बैठता है, अपने आन्तरिक ऐश्वर्य को लोप कर देता है, और अपने पावन रूप को विनष्ट कर बैठता है, वह राष्ट्र कभी भी शक्तिशाली नहीं हो सकता। किसी भी राष्ट्र के गौरव को सजीव बनाए रखने के लिए, सबसे प्रथम उसके संगीत के ऐतिहासिक रूप को प्राणवान रखना है, जिससे कि राष्ट्र अपनी खोई हुई चेतना को पुनः प्राप्त कर सके। जब तक संगीत के ऐतिहासिक गौरव को सजीव नहीं बनाया जायगा, तब तक आप अपने राष्ट्र को नवस्फूर्ति, नव चेतना एवं नव जीवन प्रदान नहीं कर पायगे।"

बस इसी प्रेरणात्मक विचार धारा से अभिभूत होकर मैं अपने संकल्प को क्रियात्मक पृष्ठभूमि पर उतारने में संलग्न हो गया, लेकिन मेरे पास "भारतीय संगीत का इतिहास" लिखने के लिए जिन समृद्धिपूर्ण साधनों की आवश्यकता होती है, वैसे उच्च साधन न थे, किन्तु मैंने साहस एवं लग्न का दामन न छोड़ा, और मेरे जीवन के इर्द-गिर्द जो भी सीमित साधन थे, उन्हीं को एकत्रित करके, उन्हींके

सहारे मैं अपने प्रशस्त लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा। शनैः शनैः साधनों का विस्तार होता गया। अनेक कठिनाइयाँ, अनेक विषम परिस्थितियाँ मेरे सुरम्य मार्ग को अवरुद्ध करने सामने आई, लेकिन मैं अपने पथ से डगमगाया नहीं और उन दुस्तर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता हुआ मैं लक्ष्य की मंजिल पर आ पहुँचा।

अब आपके सामने मेरे लक्ष्य की मंजिल "भारतीय संगीत का इतिहास" के रूप में है, इसको आप कसौटी पर कसिए कि मैं कहाँ तक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सका हूँ। इतिहास लिखने में मेरे सामने जो सबसे बड़ी कठिनाई थी, वह यह कि भारतीय संगीत की कोई विस्तृत गवेषणात्मक रूपरेखा नहीं थी, अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर समय की धुन्ध का इतना मोटा आवरण पड़ चुका था कि वे एक दृष्टि से पहिचाने भी न जा सकते थे। और अनेक तथ्य अपना मौलिक रूप ही खो बैठे थे, तथा अनेक तथ्य विदेशी संगीत के तथ्यों में आत्मसात हो चुके थे, इस प्रकार मेरे सामने भारतीय संगीत के मौलिक रूप को सजीव बनाने, उसके प्राचीन समृद्धिशाली गौरव को पुनर्जीवित करने में अनेक पेचीदगियाँ, अनेक टेढ़ी-मेढ़ी पगडन्डियाँ थीं। पर मुझे विश्वास था कि भारतीय संगीत ने किसी भी युग में अपनी उच्च गौरवमयी पराकाष्ठा को खोया नहीं है, बल्कि अवश्य ही उस पर हमारी अज्ञानता का आवरण पड़ा हुआ है, उसे हमें हटाना है, लेकिन उसके हटाने के लिए गहरा ज्ञान, अटूट साधना, अपूर्व निष्ठा और हृदय का दिव्य निर्माल्य चाहिए और चाहिए उच्चतम चरित्र। मेरे अन्दर इन गुणों का समावेश है, इस बात का दावा तो मैं नहीं कर सकता, किन्तु हाँ मेरे अन्दर संगीत और साहित्य के प्रति अधिक निष्ठा होने के कारण मैं संगीत के अगाध महासागर में कूद पड़ा, और उसके मन्थन करने का प्रयत्न किया, और न मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मैं संगीत-सागर का मन्थन पूर्ण रूप से कर सका हूँ। यह तो अनन्त है, भला इसकी सीमा को किसने स्पर्श कर पाया है ? और फिर यह कार्य तो किसी महान कलावन्त एवं दिग्गज कला विशेषज्ञ का ही है, पर मैंने भारतीय संगीत पर जो समय की धुन्ध का मोटा आवरण पड़ा हुआ था, उसको हटाने का प्रयास किया है, और इस प्रयास में मैं सफल हो सका हूँ अथवा नहीं, इसका निर्णय तो आप ही कर सकेंगे। संगीत के सुमेरु तक पहुँचने के लिए जो पथ अब तक ऊबड़ खाबड़ पड़ा हुआ था, उसके निर्माण का मैंने प्रयत्न किया है।

"भारतीय संगीत का इतिहास" विद्यार्थी-वर्ग, संगीत-अन्वेषकों एवं संगीत-प्रेमियों को संगीत की उच्चतम मंजिल की ओर बढ़ाने में किंचितमात्र भी सहायक बन सका तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा, और उसे यह सन्तोष होगा कि सरस्वती के अगाध वैभवशाली भन्डार में उसका यह अकिंचन योग भी स्वीकार हुआ।

"भारतीय संगीत का इतिहास" लिखने में जिन पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग लेना पड़ा है, उनका उल्लेख पुस्तक में यथास्थान कर दिया गया है और उनके लेखकों एवं प्रकाशकों का मैं बहुत आभारी हूँ। अगर भूल से किसी पुस्तक विशेष का नाम छूट गया हो तो उसके लिये मैं क्षमा चाहूँगा। मैं उनको हार्दिक बधाई देता हूँ, जिनकी सुन्दर कृतियों से "भारतीय संगीत का इतिहास" का प्रणयन हो सका, और इसलिए इस ग्रन्थ-पुष्प में जो कुछ आप सुगन्ध पायें, वह सब उन्हीं अनिर्वचनीय पुष्पों की है, जिनका कि इसमें उपयोग किया गया है। मेरा कार्य तो विधिवत कलात्मक रूप में उपयोग मात्र का है, और कुछ नहीं। अतएव भारतीय संगीत की सफलता का श्रेय वास्तव में उन्हीं दिग्गज विद्वानों एवं कला-मर्मज्ञों को है, जिनके कि विचार-सौन्दर्य से ग्रन्थ अलंकृत हुआ है।

जिन विद्वानों ने अपनी अलभ्य सम्मतियाँ भेजकर मुझे प्रोत्साहित किया है, उनका मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, और उन्हींके शुभ आशीर्वाद से मैं साहित्य और कला के विशाल क्षेत्र में अपने लक्ष्य को क्रियात्मक रूप दे पाया हूँ।

मैं अपने अभिन्न मित्र, साहित्य और कला के प्रेमी एवं सुहृदय श्री रामगोपाल शर्मा का भी विशेष रूप से आभारी हूँ कि जिनके अपूर्व उत्साह और अलभ्य सहयोग के बल पर "भारतीय संगीत का इतिहास" प्रकाशित हो सका। इस वृहद ग्रन्थ का हिन्दी जगत में प्रस्तुत करने का श्रेय श्री रामगोपालजी को ही है। वास्तव में उनके अन्दर सबसे बड़ी विशेषता जो मैंने देखी वह है उनकी सुन्दर एवं सुरभित मानवता। सिर्फ इसी एक अद्वितीय गुण के कारण उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा मंत्र-मुग्धक निखार आगया है जोकि बहुत कम लोगों में पाया जाता है। दरअसल उनकी पुष्पित मानवता के सामने मैं नतमस्तक हूँ।

पुस्तक शीघ्रता में छपी है, बहुत सम्भव है कहीं मुद्रण दोष रह गए हों, उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ, और आपसे सविनय निवेदन करूँगा कि पुस्तक में सुधार के लिये आप अपने सुझाव अवश्य लेखक के पास भेजने का कष्ट करें, ताकि द्वितीय संस्करण और भी अधिक सुन्दर बनाया जा सके।

और अन्त में मैं इस पुस्तक के मुद्रक बाबू सूरजभानजी को भी नहीं भूल सकता, जिन्होंने पुस्तक के सुन्दर मुद्रण करने में विशेष योग दिया, और साथ ही साथ अन्य सहूलियतें भी प्रदान कीं, जिनके द्वारा पुस्तक सुन्दर रूप में प्रकाश में आ सकी, और समय-समय पर पुस्तक प्रकाशन के सम्बन्ध में उनके अमूल्य सुझाव भी मुझे मिलते रहे। उनके अलभ्य सहयोग के लिए उनको हार्दिक बधाई।

—उमेश जोशी

"भारतीय संगीत का इतिहास" पर एक दृष्टि

"भारतीय संगीत का इतिहास" के लेखक हैं हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार श्रीउमेश जोशी। उनकी साधना अपूर्व है। उन्होंने इस वृहत ग्रन्थ को लिखकर कला और साहित्य की अद्वितीय सेवा की है, उनका यह सुन्दरतम प्रयास वास्तव में कला और संस्कृति के लिए प्रकाशस्तम्भ प्रमाणित होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। पुस्तक को एक दृष्टि देखने भर से ही ज्ञात हो जाता है कि लेखक ने भारतीय संगीत के इतिहास को लिखने में अकथनीय परिश्रम किया है, अटूट साधना की है। अब तक भारतीय संगीत पर कोई क्रमबद्ध एवं खोजपूर्ण इतिहास नहीं था, इस अभाव की पूर्ति बड़े सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से जोशीजी ने करदी है। ऐतिहासिक सामग्री जुटाने में, तथ्यों का संकलन करने में, तथा तथ्यों पर पड़े हुए गर्दा-गुबार के धुन्ध का आवरण हटाने में लेखक पूर्ण सफल हुआ है। यह सुन्दर कृति जहाँ विश्वविद्यालयों के लिए उपयोगी है, वहाँ साथ ही साथ संगीत पर अनुसन्धान करने वालों के लिए भी महत्वपूर्ण है, और सामान्य पाठकों के लिए भी समान रूप से उपयोगी है। प्रत्येक संगीत प्रेमी को इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये, यदि वह साहित्य और कला के सौन्दर्यात्मक क्षेत्र में अग्रसर होना चाहता है।

हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार एवं प्रादेशिक सरकारें भी पुस्तक की प्रतियाँ खरीद कर एवं पुस्तक को पाठ्यक्रम में रख कर हमारे प्रकाशन को सफल बनाने में क्रियात्मक योग देंगीं।

—प्रकाशक

संगीत का इतिहास क्यों पढ़ना चाहिए ?

"इतिहास हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाता है, जहाँ हमें अपनी खोई हुई जिन्दगी प्राप्त होती है, जहाँ हमें विकास की मंजिल की ओर अग्रसर होने के लिए नवीन आधार मिलते हैं ।"

—जोन हील

"मानव के तथ्यों के विस्तार-क्रम का स्पष्टीकरण करना और समझना ही इतिहास नहीं है, बल्कि उस विस्तार-क्रम की गहराइयों का सजीव चित्रण करना ही इतिहास है ।"

—रोबर्ट वील

"मानव की आत्मा की सजीव झाँकी यदि आपको करनी हो, तो आप संगीत के इतिहास को पढ़िये ।"

—कुमारी ऐलिया रोज

"इतिहास का प्रकाशन ही हमें मानव की सजीव गौरव गरिमा का स्फूर्तिपूर्ण सौरभ प्रदान करता है, इतिहास हमारी प्रसुप्त धमनियों में नवजीवन की धारा प्रवाहित करता है, और हमें जिन्दगी की देदीप्यमान मंजिल की ओर ले जाता है ।

—कुमारी वायला

"संगीत का इतिहास एक ऐसा इतिहास है, जिसमें मानव का सम्पूर्ण रूप प्रतिबिम्बत होता है ।"

—ईलियट

"संगीत और साहित्य दोनों के इतिहास एक दूसरे से इतने गुँथे हुए हैं कि उनका पृथकीकरण करना मानों कला की आत्मा को ही विनष्ट करना है ।

—ओलीस हीर

"अगर आप अपने को पूर्णरूपेण समझना चाहते हैं, अगर आप चाहते हैं कि आपके यहाँ आने का क्या उद्देश्य है, आपके जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए, तो फिर आप संगीत के इतिहास को आज ही पढ़िए, जिसमें कि आपको मानव-आत्मा के गौरवशाली एवं उज्ज्वल रूप के दिव्य दर्शन होंगे ।" —रिचर्ड विलसन

"जीवन में संगीत का क्या स्थान है, और क्या होना चाहिये ? इसके बारे में कुछ कहना मेरे लिये आवश्यक है, क्योंकि कम से कम हमारे देश में संगीत के महत्व को सभी जानते हैं और दूसरे इस विषय पर मैं अपने विचार कई बार पहले भी प्रगट कर चुका हूँ । मेरा यह निश्चित मत है कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से संगीत मनुष्य के लिये साधना का विषय है । भौतिक जीवन में संगीत

मनोरंजन का उतना ही बड़ा साधन है, जितना ही यह आध्यात्मिक जीवन में प्रेरणा का स्रोत है। आज ही नहीं सदियों से हमारे देश में संगीत और भगवत्-भक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसलिए मैं समझता हूँ संगीत में जो प्रभाव और शक्ति है उसका उपयोग मानव के कल्याण के लिए होना चाहिए। साधारण मनोरंजन से लेकर आध्यात्मिक उड़ान तक, सभी कुछ मानव-कल्याण की परिधि में आता है।

संगीत आदि कलाएँ संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। वास्तव में हमारी संस्कृति में एकीकरण की जो क्षमता है, वह इसे इन कलाओं से प्राप्त हुई है। इसीलिए संगीत और दूसरी कलाओं को प्रोत्साहन देना भारतीय संस्कृति को उन्नत करने के समान माना जाता है। —डा० राजेन्द्र प्रसाद

"संगीत का सच्चा इतिहास तभी समझा जा सकेगा, जबकि आप निर्माण के संगीत को समझेंगे। उस संगीत में आपको मानव की स्वाभाविक धारा का अङ्कन मिलेगा। तपती धूप में अर्धछाया की शरण में छैनी हथौड़ी से पत्थर को रूप देने वाले हों, चाहे किसी मिल में खड़े मशीन का बाजा बजा रहे हों और चाहे किसी नदी को बाँध कर राष्ट्र-निर्माण में हाथ बँटा रहे हों और चाहे खेतों में श्रम-स्वेद बहाते हुए किसान अपना जीवन संगीत प्रस्फुटित कर रहे हों और चाहे मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल फैलाए मछुओं में अपूर्व निर्माणकारी स्फूर्तिपूर्ण संगीत हो, इन सब विभिन्न जीवन-चित्रों में सजीव चेतना आपको उपलब्ध होगी, वही हमारे जीवन की सही तस्वीर है और इसी सही तस्वीर का गवेषणात्मक अंकन संगीत का इतिहास है और जो इस इतिहास को सही दृष्टि से पढ़ते हैं, वे अवश्य ही अपनी यथार्थ मंजिल को पहिचान लेते हैं। —एफन

"संगीत विश्व का नैतिक विधान है, यह विश्व को दिव्य सौन्दर्य प्रदान करता है। मानव मस्तिष्क में नवीन रंग भरता है और भावनाओं में रंगीन उड़ान की नयनाभिराम सुषमा एवं निराशा के प्रांगण में आनन्द का प्रपात प्रवाहित करता है तथा विश्व के प्रत्येक पदार्थ में जावन और उत्साह के अभिनव स्फुरणों को मुखरित करता है।" —मार्टन लूथर

"जिस मनुष्य में संगीत नाम की कोई वस्तु नहीं होती, जिस पर मीठे स्वरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह राजद्रोही, दगाबाज और लुटेरा होने योग्य है। ऐसा मनुष्य कभी विश्वास योग्य नहीं।" —शेक्सपीयर

विषय-सूची

संगीत का जन्म

धार्मिक दृष्टिकोण:

संगीत का जन्म कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में विश्व के विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कहा जाता है कि संगीत पहिले बृह्माजी के पास था, और अन्त में नारदजी द्वारा संगीत का प्रचार इस पृथ्वी पर हुआ। संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता बृह्माजी द्वारा हुई। बृह्मा जी ने यह कला शिवजी को दी और शिवके द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वतीजी को इसलिये "वीणा पुस्तक धारिणी" कह कर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वतीजी से संगीत कला का ज्ञान नारदजी को प्राप्त हुआ, नारदजी ने स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को संगीत शिक्षा दी। वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान प्रभृति ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भू लोक पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

एक ग्रन्थकार के मतानुसार, नारदजी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की, तब शंकरजी ने उन पर प्रसन्न होकर संगीत कला प्रदान की। पार्वतीजी की शयन मुद्रा को देखकर शिवजी ने अनेक अंग प्रत्यंगों के आधार पर "रुद्रवीणा" बनाई और अपने पांचों मुखों से पांच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छटा राग पार्वतीजी के श्री मुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पच्छिम, उत्तर, दक्षिण, तथा आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक, और श्री राग प्रगट हुए एवं पार्वतीजी द्वारा कौशिक राग की उत्पात्ति हुई

"शिव प्रदोप" स्त्रोत्र में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को स्वर्ण सिंहासन पर उपनीत कराकर प्रदोप के समय शूलपाणी शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गये और उनकी स्तुतिगान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु एवं बृह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मीजी ने गाना गाया तथा विष्णु भगवान मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिये गन्धर्व, यक्ष, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर देवता, अप्सरायें आदि सभी उपस्थित थे।

"संगीत दर्पण" के लेखक श्री दामोदर पंडित के मतानुसार संगीत का जन्म बृह्माजी से आरम्भ होता है। उन्होंने लिखा है—

"द्रुहिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।
महा देवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम"

अर्थात् बृह्माजी ने जिस संगीत को शोधकर निकाला भरत मुनि ने महादेवजी के सामने जिसका प्रयोग किया गया तथा जो मुक्तिदायक है वह मार्गीय संगीत कहलाता है।

इसी प्रकार विभिन्न धर्मों में नाना प्रकार की कथायें प्रचलित हैं। फारसी की एक कथा में बतलाया गया है कि प्राचीन काल में एक समय हजरत मूसा पैगम्बर नाव की सैर कर रहे थे, उसी समय उन्हें एक पत्थर दिखलाई दिया। अचानक वहाँ जेब्रायूल नामक एक फरिश्ता आया और उसने पैगम्बर से कहा कि इस पत्थर को तुम हमेशा अपने पास रखना। कुछ समय बाद एक दिन हजरत मूसा जंगल में सैर कर रहे थे। उसी समय उन्हें प्यास लगी, परन्तु पानी प्राप्त नहीं हुआ। प्यास बढ़ती ही गई और वे बहुत घबड़ाये। उन्होंने खुदा से बन्दगी की और फलस्वरूप कुछ ही देर बाद वर्षा शुरू होगई। पानी की धार उस पत्थर पर गिरने लगी तथा पत्थर के सात टुकड़े हो गये। इन सात टुकड़ों के द्वारा पानी की सात धारायें बहने लगीं। उन धाराओं से अलग-अलग सात ध्वनियां निकली और हजरत मूसा ने उन्हें याद कर लिया। ये ही सात ध्वनियां आगे चलकर सात स्वर समझे जाने लगे। कई लोगों का कथन है कि "कोहकाफ" में एक पक्षी है जिसे फारसी में "आतिशजन" कहते हैं। इस पक्षी की चोंच में सात छिद्र होते हैं, जिनमें से हवा के प्रभाव से सात प्रकार की आवाजें निकलती हैं और ये ही सात स्वर हैं।

योरप के इतिहासकार वाल्डीवोन ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "द ओरीजिन आफ म्यूजिक" में एक स्थान पर लिखा है—

"सर्व प्रथम ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण बिना संगीत के किया, इसका परिणाम यह हुआ कि पुरुष और नारी एक दूसरे की ओर आकर्षित न हुए। दोनों ही एक दूसरे को चाहते अवश्य थे, किन्तु दोनों एक दूसरे के सौन्दर्य और शक्ति की कैसे प्रशंसा करें, इस विधान से वे पूर्ण अनभिज्ञ थे। दोनों ही मूक थे। बिना स्वर प्रस्फुटन के कैसे कदम आगे बढ़ते। नारी ने पुरुष की अनिर्वचनीय शक्ति को देखा, और पुरुष ने नारी के अपार्थिव सौन्दर्य का अवलोकन किया। दोनों के हृदय प्रेम के पावन भावों

से परिपूर्ण थे, पर उन पावन भावों को एक दूसरे के सन्मुख कैसे प्रस्फुटित करें, इससे उनके अन्दर एक घुटन का वातावरण का अविर्भाव होगया था। वे उसी वातावरण में दिन व दिन सुलगती लकड़ी के समान विनाश को प्राप्त होने लगे। सृष्टि का विकास किंचितमात्र भी न हुआ। प्रकृति में कोई आकर्षण न रहा। सौन्दर्य और प्रेम बिना संगीत के महत्वहीन होगये। सृष्टिकर्ता ने जब सृष्टि की यह दयनीय स्थिति देखी तो वे चिन्तित हुए। उन्होंने सर्वप्रथम पृथ्वी पर "अलफोवा" फरिश्ता को भेजा। उसने यहाँ आकर सम्पूर्ण पृथ्वी को देखा, तो उसने यह महसूस किया कि यदि पुरुष और नारी को एक सुन्दर पुष्प में बन्द कर दिया जाय तो फिर सृष्टि का विकास होने लगेगा, क्योंकि फिर दोनों निकटस्थ पहुंचकर एक दूसरे से आकर्षित होजायेंगे, और दोनों के संयोग से एक नवीन रूप का जन्म होगा। फिर पुरुष एवं नारी के संयोग का यह क्रम क्रियाशील होने लगेगा। प्रेम और सौन्दर्य की पृष्ठभूमि पर सृष्टि की नींव आधारित हो जायगी। ये निश्चय कर "अलफोवा" ने पुरुष और नारी को फूल में बन्द कर दिया, और वह स्वयं अन्तर्धान हो गया। पर यह प्रयोग भी विफल रहा। फिर सृष्टिकर्ता ने सृष्टि निर्माण के अभाव को पकड़ने के लिये एक सौ बीस देवदूत क्रम से पृथ्वी पर भेजे, किन्तु वे सब के सब अपने लक्ष्य में नाकामयाब रहे। अब सृष्टिकर्ता को विशेष चिन्ता हुई और उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ देवदूत "अलकावोला" को पृथ्वी पर भेजा। इसने सृष्टि की वास्तविक कमी को पकड़ लिया। उसने देखा कि सृष्टिकर्ता से एक महान भूल होगई है, वह महान भूल यह है कि सृष्टि संगीत शून्य है, फिर विकास कैसे हो, मनुष्य कैसे बोले ? नारी का सौन्दर्य कैसे चमके ? पुरुष की शक्ति कैसे दीप्त हो ? मनुष्य के हृदय का प्रेम कैसे अभिव्यक्ति हो ? पुरुष और नारी एक दूसरे में कैसे आत्मसात् हों ? कैसे सौन्दर्य मुखरित हो ? बिना सौन्दर्य के मुखरित हुए प्रेम की उज्ज्वल धारायें मनुष्य के हृदय से कैसे प्रस्फुटित हों ? और बिना प्रेम की धारायें प्रस्फुटित हुए पुरुष और नारी कैसे एकरूप हों ? और बिना एकरूप हुए कैसे सृष्टि का विकास हो ? ये सब कुछ "अलकाबोला" ने विचारा। सौन्दर्य का मुखरित होना संगीत पर निर्भर करता है। अतएव "अलकावोला" ने पुरुष और नारी को संगीत से सुशोभित कर दिया। फिर क्या था, प्रथम स्वर पुरुष का प्रस्फुटित हुआ, और इसके उपरान्त नारी का। नारी का सौन्दर्य संगीतमय होगया, और पुरुष की शक्ति भी संगीतमय हो गई, दोनों के संयोग से एक नवीन सृष्टि का जन्म हुआ और वह नवीन सृष्टि यही है जो वर्तमान है। ये नवीन सृष्टि संगीतमय थी। और इस प्रकार "अलकाबोला" संगीत का जन्मदाता हुआ। संगीत के जन्म का यह दृष्टिकोण "साल्सावर्ग" का है, इसमें कितनी

ऐतिहासिकता है, इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। हमें तो इसमें धार्मिक भावना का पुट अधिक लगता है।

मलाया की दन्त कथा है, जिसमें बताया गया है कि "जब पुरुष और नारी प्रथम विश्व में आये तो संगीत के अभाव में, एक दूसरे से दूर रहे। देवदूत जीवा ने इन दोनों को मिलाने का पर्याप्त प्रयत्न किया, पर वह अपने प्रयत्न में सफल न हुआ। वह बड़ा परेशान हो रहा था कि आखिर क्या किया जाय कि जिससे सृष्टि विकास-पथ पर आगे बढ़े। यही सोचते-सोचते वह नदी किनारे एक वृक्ष की छाया में सो गया। उसको एक स्वप्न हुआ। स्वप्न में उसने सुना कि कोई उससे यह कह रहा है कि यदि तुझको सृष्टिक्रम क्रियाशील रखना है तो फिर जिस वृक्ष की छाया में सो रहा है, उसी वृक्ष की एक डाल लेकर पहिले नारी के जूड़े में गूंथना, और फिर जब अपने आप वह डाल नारी के जूड़े से नीचे गिर पड़े तो उसको उठाकर पुरुष के हाथों में दे देना, बस तुम्हारा ध्येय पूर्ण हो जायगा। फिर क्या था देवदूत "जीवा" ने ऐसा ही किया। जैसे ही नारी के जूड़े में वह हरी डाल गुथ गई, तो उसको सप्त स्वर सुनाई पड़े, वह उन सप्त स्वरों को सुनकर इतनी आनन्द विभोर हो गई कि वह स्वभाविक रूप में नाचने लगी, और नाचते-नाचते पुरुष की ओर बढ़ने लगी, किन्तु पुरुष पीछे की ओर खिसकने लगा परन्तु जब वही नारी वाली डाल उसके हाथ में दे दी गई तो उसको भी वही सप्त-स्वर सुनाई पड़े, और वह भी मस्त होकर नृत्य करने लगा और नृत्य करते-करते नारी की ओर बढ़ने लगा। दोनों का मधुर मिलन संगीत के वातावरण में हुआ और उसी संगीत के गर्भ से मनुष्य को सभ्यता प्राप्त हुई। लेकिन प्रारम्भ में वह संगीत अपनी नग्नावस्था में था, उसको अलंकृत एवं परिष्कृत तो बाद में किया गया। बस यही संगीत का प्रथम चरण है। जिस डाल से पुरुष और नारी को संगीत सुनाई दिया, वह "किकोल" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार देवदूत "जीवा" संगीत के जन्मदाता समझे जाते हैं। उनकी बड़ी मानता होती है। "जीवा" पुरुष थे अथवा नारी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ वे एक देवदूत थे, बस इससे और अधिक कुछ ज्ञात नहीं।" लेकिन ये एक किवदन्ती है, कोई एतिहासिक तथ्य नहीं, क्योंकि एतिहासिक कसौटी पर ये सत्य खरा नहीं उतरता, पर चूँकि एतिहासिक तथ्यों के अभाव में हमें इसी किवदन्ती को ही संगीत के जन्म का आश्रय लेना पड़ता है। इसलिये हमने इस किवदन्ती को संगीत के इतिहास में शामिल कर लिया है।

संगीत की जन्मदात्री बुलबुल—

अरब के सुप्रसिद्ध इतिहासकार ओलासीनिज्म ने अपनी पुस्तक "विश्व का संगीत" में लिखा है:—

"मानव ने संगीत को सर्वप्रथम बुलबुल से पाया। जब वह प्रथम सृष्टि में आया तो वह एक पेड़ पर आराम कर रहा था। तभी उसने एक चिड़िया से कुछ मीठे स्वर सुने, वे स्वर उसको बहुत प्रिय लगे। फिर वह रोजाना चिड़िया के उन स्वरों को सुनने लगा, क्योंकि इससे उसके दिल को राहत मिलती थी, इससे उसको अपने भीतर ऐसे आनन्द का आभास होता, कि जिससे वह कुछ क्षणों के लिये आत्म-विभोरित हो जाता। चिड़िया भी रोजाना उसी वृक्ष पर आती थी, क्योंकि उसका वहीं पर बसेरा था। सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य पेड़ों पर ही पक्षियों की तरह रहता था, पेड़ों पर ही खाना खाता, पेड़ों पर ही वह सोता। पक्षीगण उसके प्रिय साथी थे। उनकी नानाप्रकार की बोलियों से वह अपना मनोरंजन कर लिया करता था। उस मीठे स्वर बोलने वाली चिड़िया को मानव ने, प्यार की दृष्टि से देखा। धीरे-धीरे मानव ने भी उस चिड़िया के मधुर स्वरों की नकल कर ली। और फिर वह चिड़िया के अभाव में भी वे ही स्वर निकालकर अपना मनोरंजन कर लिया करता था। बाद में इसी चिड़िया का नाम "बुलबुल" पड़ा। चूँकि यह चिड़िया सुन्दर गाती थी इसलिये इसका नाम "बुलबुल" रख दिया गया। इसीलिये जो सुन्दर गाता है, उसको भी बुलबुल की सुन्दर उपाधि से सुशोभित किया जाता है। प्रथम पुरुष ने बुल-बुल से स्वर लिया अथवा नारी ने, ये विवादाग्रस्त प्रश्न है, किन्तु फिर भी अधिक विद्वान इसी मत की पुष्टि करते हैं कि प्रथम नारी ने ही बुलबुल से मधुर स्वर सीखे, और उनका प्रयोग पुरुष को रिझाने, उसको अपनी ओर आकर्षित करने में किये और बुलबुल को विश्व में संगीत प्रचार के लिये ईश्वर ने भेजा। वह संगीत की देवदूत है। इसके स्वरों में जितनी मिठास है, जितना लोच है, जितना सुरीलापन है उतना और किसी चिड़िया में नहीं होता, यह अद्वितीय तोहफा उसे ईश्वर की ओर से प्राप्त है, विश्व के लोगों को संगीत से परिपूर्ण करने के लिये। यदि आज भी आप बुलबुल का गाना सुनें तो उसका गाना मानव के गाने से कहीं अधिक श्रेष्ठ होगा"।

पक्षीगणों ने हमें संगीत प्रदान किया:—

विख्यात विद्वान मि० जी० एच० रानाडे अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तानी म्यूजिक" के प्रथम परिच्छेद में लिखते हैं :—

"Divine Truth, artistically represented to perception and feeling, forms the centre of the whole world of Art" Truth however, as is often said, is half-concealed

and half-revealed and hence closer acquaintance and association are needed to appreciate it in all its beauty. The artist, in man, feels it, is inspired by it, and feels happy and elevated in conveying to others his experience of the golden touch of Art. When this process resolves itself into a well-ordered and accomplished fact, Art makes over its conquests to Science and sets forth to explore unknown regions in the Land of the Beautiful.

The development of Indian Music is not an exception to the above rule. The cries of birds and beasts-such as the Cooing of the cuckoo or the neighing of the horse-were among the principal musical occurrences to catch the fancy of the early artist. From such small and simple beginnings, music in India had grown into a well-developed art,as far back as history can reach.

संगीत की उत्पत्ति पक्षियों से हुई—

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दामोदर पंडित ने यह स्वीकार भी किया है कि संगीत की उत्पत्ति पक्षियों की विभिन्न स्वरों द्वारा हुई। उन्होंने संगीत के सात स्वरों का आविर्भाव इस प्रकार बतलाया है—

"मोर से षड्ज, चातक से रिषभ, बकरा से गान्धार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढ़क से धैवत् और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई।"

संगीत के जन्म में प्रकृति का योग:—

अफ्रीकी विद्वान इफारी का कथन है—

"पुरुष और नारी का एक सुन्दर सरोवर में प्रथम मिलन हुआ। दोनों ही एक दूसरे के निकट तैरते हुए आगे बढ़ने लगे, तो दोनों ने सुना कि उनके हाथ पैर पानी में चलाने से जल के वक्ष से कई प्रकार के मधुर स्वर फूट रहे हैं। इससे उन्हें आन्तरिक प्रेरणा मिल रही थी, इससे उनके अन्दर यह भाव उठ रहा था कि हम शीघ्र से शीघ्र

एक दूसरे में घुलमिल जाँय। पुरुष और नारी दोनों ने ही उन जल स्वरों का खूब आनन्द लिया और उसी में वे मस्त होकर अपने आप सहसा दोनों आलिंगनपूर्ण होगये। उनके आलिंगन से स्वर का रूप स्थिर हुआ। और दोनों ने संगीत का जीवन के विकास के लिये वास्तविक महत्व समझा। बस इस प्रकार विश्व को संगीत का प्रथम ज्ञान हुआ।''

मिश्री कला विशेषज्ञ गवासा का कथन है—

''मनुष्य ने संगीत का मनोरम उपहार प्रकृति से उपलब्ध किया। उसने अपने जीवन के इर्द-गिर्द संगीतमय वातावरण देखा। सरिताओं की ऊँची-नीची लहरों से, सागर की उत्तंग तरंगों से, पक्षियों के प्रलुब्धकारी कलरव से, समीर के मधुर शीतल झोकों की अंगड़ाइयों से, चाँद और रजनी की प्रलुब्ध क्रीड़ाओं से, मतलब ये कि उसे प्रत्येक दिशा में संगीत के मधुर स्वर प्रस्फुटित होते हुए सुनाई दिये। शनैः शनैः मनुष्य ने उनका अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया। अनुकरण करने में कुछ समय लगा। जब उसने प्रकृति के ये मधुर स्वर अनुकरण कर लिये, तो उसके जीवन में एक नवीन सरसता का उदय हुआ। जीवन में इसी सरसता, इसी मिठास को अक्षुण रखने के लिये मनुष्य ने स्वरों पर अधिक विचारना प्रारम्भ कर दिया। उसी विचार का यह परिणाम हुआ कि आगे चलकर विश्व को संगीत परिष्कृत रूप में प्राप्त हो सका।

जल-ध्वनि ने ही संगीत का रूप ले लिया—

विख्यात संगीतज्ञ रिन्सोवोल्स ने अपने ''संगीत के रेखा चित्रों'' में लिखा है :—

''जब सृष्टि का निर्माण हुआ, तब प्रथम जब मानव को प्यास लगी, तो वह अपनी प्यास बुझाने के लिये एक नदी के किनारे गया। उसने देखा कि एक चट्टान से जल की धारायें नीचे गिर रही हैं, उस रमणीय दृश्य को देखकर वह अपनी प्यास कुछ क्षणों के लिये बिल्कुल भूल गया। उसने जल के गिरने से एक मीठी ध्वनि भी सुनी, वह मीठी ध्वनि उसको इतनी प्रिय लगी कि वह फिर रोजाना वहीं आने लगा। और वह उस ध्वनि का अनुकरण भी करने लगा। शनैः-शनैः उसने उस जल ध्वनि को पूर्णरूप से अपना लिया। फिर क्या था, फिर वह अपनी थकावट को दूर करने के लिये उसी जल ध्वनि का प्रयोग करने लगा। और यही जल ध्वनि आगे चलकर विकसित संगीत में परिणत होगई।''

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण—

सुप्रसिद्ध विद्वान हलटोरिश आईबो ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "द हिस्ट्री आफ म्यूजिक" में लिखा है—

"सृष्टि का जब सृजन हुआ, तब पुरुष और नारी के प्रथम मिलन अभिसार पर जो स्वर मुखरित हुए वही संगीत बन गया। वे स्वर इतने मधुर एवं आकर्षण पूर्ण थे कि जिसको सुनकर कोई भी प्राणी आत्मविभोरित हो सकता था, क्योंकि वे स्वर मधुर क्षणों के विशाल गर्भ से प्रसूत हुए थे। इन्हीं स्वरों का आगे चलकर विकास हुआ।"

पाश्चात्य विद्वान फ्राइड के मतानुसार संगीत का जन्म एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुआ, जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हँसना, आदि क्रियायें मनोविज्ञान की आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

जैम्स लोंग के मतानुयायियों का भी यही कहना है कि पहिले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना फिरना सीखा, और फिर शनैः-शनैः क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर संगीत स्वतः उत्पन्न हुआ।

संगीत के जन्म का उद्गम "नारी सौन्दर्य"—

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ काहिमोलामो ने अपनी पुस्तक "संगीत के जन्म और विकास की कहानी" में एक स्थान पर लिखा है :—

"जब सृष्टि में प्रथम नारी का जन्म हुआ, तो पुरुष उसकी ओर आकर्षित न हुआ। नारी का सौन्दर्य पुरुष को विमुग्ध न कर सका, पुरुष ने उस सौन्दर्य में कोई गतिशीलता न देखी, कोई दिव्यता न देखी, उसमें उसे वे रश्मियां प्राप्त न हुई, जिसके द्वारा वह उसकी ओर खिंच सकता, उसकी ओर बढ़ सकता, इससे विवश होकर सृष्टिकर्ता ने नारी को पृथ्वी से वापिस बुला लिया, और उसका पुनः परीक्षण किया कि इसमें क्या कमी रह गई, जिसके कारण पुरुष इस पर आसक्त न हो सका। बहुत सोच विचार करने के बाद सृष्टिकर्ता को अपनी कमी मिल गई। फिर नारी को संगीत से अलंकृत कर दिया। और फिर उसे पृथ्वी पर भेजा। उसके आते ही विश्व का वातावरण झंकृत हो उठा। नारी के सौन्दर्य से सप्त स्वर निकले, यही स्वर

प्रकृति ने लिये, इन्ही स्वरों को पुरुष ने अपनाया, और यही सप्त स्वर सृष्टि में व्याप्त हो गये। इस प्रकार संगीत की जननी नारी ही है। अगर विश्व में नारी न होती, तो विश्व संगीत शून्य हो जाता। नारी की प्रत्येक चेष्टा में, उसकी प्रत्येक भाव भंगिमा में, उसके प्रत्येक कार्यकलाप में संगीत की दिव्य आभा का प्रस्फुरण रहता है। और अगर नारी के अन्दर संगीत न होता तो वह सृष्टि की जननी न बन पाती, फिर उसके अन्दर कोमलता, स्निग्धता, शालीनता एवं मधुरता का जन्म न होता, फिर वह सृष्टि की प्रेरणा न बन पाती। नारी चाहें कितनी हो अपने उच्च स्तर से नीचे क्यों न खिसक आये, परन्तु फिर भी वह "हैवान" "दानवी" न बन पायेगी। उसके अन्दर नारीत्व की जाज्वल्यमान आभा बराबर बनी रहेगी क्योंकि नारी की बुनियाद संगीत के पावन पृष्ठभूमि पर रखी हुई है। और चूँकि पुरुष की बुनियाद संगीत पर नहीं है, इसलिये जब वह अपने उच्च स्तर से गिरता है तो वह बिल्कुल " दानव" "हैवान" "पुरुषत्वहीन" बन जाता है। नारी के जन्म से ही विश्व को संगीत प्राप्त हुआ। बस यही संगीत के जन्म की कहानी है।"

ईसा मसीह ही संगीत के जन्म दाता हैं—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार बन्टोडल ने अपनी पुस्तक "द यूनीवर्सल म्यूजिक" में लिखा है—

"एक बार ईसा मसीह घूमघाम कर आ रहे थे, वह रास्ते में थक गये। उन्हें एक पेड़ की शीतल छाया दीख पड़ी। इस वृक्ष का सुन्दर वातावरण देखकर ईसा मसीह बहुत प्रसन्न हुए, और वह उसी की शीतल छाया में विश्राम करने लगे। कुछ देर बाद उनकी आंख लग गई। जब वह सोकर उठे तो उन्होंने एक ऐसा मधुर स्वर सुना जो कि इससे पूर्व उन्हें कभी सुनाई न दिया था। वह चारों तरफ देखने लगे कि यह मधुर स्वर कहां से आ रहा है, किन्तु उन्हें स्वर का उद्गम न दीख पड़ा, इसी बीच वह इस विचारधारा में बह गये कि क्या स्वर इतना मीठा इतना आकर्षक हो सकता है, क्या स्वर को इतने चढ़ाव उतार में मोड़ा जा सकता है, लेकिन वह किसी विशेष निश्चय पर न पहुँचे, इसी दरिम्यान फिर उन्हें वह मधुर स्वर सुनाई पड़ा, वह मधुर स्वर इतना मंत्रमुग्धक था, कि ईसा मसीह के कदम भी अपने आप थिरकने लगे। और वह झूम-झूम कर उस पीयूषभरे स्वर का आनन्द लेने लगे। थिरकते-थिरकते उनकी दृष्टि वृक्ष पर जा पड़ी, उन्होंने देखा कि हरे-हरे पल्लवों से एवं रंगीन पुष्पों के बीच एक खूबसूरत चिड़िया स्वर अलाप कर रही है। ईसा मसीह

ने उस स्वर का पूर्ण अनुकरण कर लिया। जिस पेड़ के नीचे ईसा मसीह बैठे, उसका नाम "ऐलकाजा" है और जिस चिड़िया से उन्होंने मधुर स्वर सुना, वह "लिन्डा" है। इसी लिये एलकाजा को संगीत का कल्पवृक्ष मान लिया गया और लिन्डा को संगीत की जन्मदात्री मान लिया। और ईसा मसीह की थिरकन को नृत्य का रूप दे दिया गया। इस प्रकार ईसामसीह ने ही सर्व प्रथम विश्व को संगीत ज्ञान कराया। ईसा मसीह से पूर्व विश्व संगीत ज्ञान से अनभिज्ञ था। बाद में ईसामसीह के स्वरों का विकास होता गया, और वे देश देशान्तरों में पहुंच कर विभिन्न सांचे में ढल गये, विभिन्न रूपों में आबद्ध होगये। वास्तव में ईसामसीह के पूर्व कोई सृष्टि न थी, और न कोई संगीत। यदि वह विश्व को संगीत भेंट न करते, तो आज विश्व में कहीं भी आपको संगीत न सुन पड़ता।"

गीत का उद्गम स्थल स्वर्ग है, पृथ्वी नहीं—

जापानी विद्वान शिकोवा हुची ने अपनी सुन्दर पुस्तक "संगीत का नव इतिहास" में लिखा है—

"जब सृष्टि का निर्माण हुआ, तो पृथ्वी पर पुरुष और नारी आये। वे अपने साथ ही संगीत को भी लेते आये। उन्होंने पृथ्वी पर आकर किसी से संगीत सीखा नहीं, उनको यह संगीत का अलभ्य उपहार ईश्वरीय मिला हुआ था। लेकिन हां पृथ्वी पर आकर उन्होंने अपने संगीत का विकास किया। संगीत का जन्म और विराम पृथ्वी पर नहीं है, बल्कि स्वर्ग में है। संगीत का उद्गम स्थल स्वर्ग है पृथ्वी नहीं। इसीलिये संगीत को ईश्वर का रूप माना गया है। इसके द्वारा मानव ईश्वर तक पहुँच सकता है। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि संगीत सृष्टि के जन्मकाल में कैसा रहा होगा? वास्तव में उस वक्त के स्वरों को ही संगीत की संज्ञा दी गई है। ईंट से ईंट मारने से जो स्वर निकलता है, डाल से डाल रगड़ने पर जो स्वर प्रस्फुटित होता है, लहरों के किनारे पर टकराने पर जो स्वर गुंजित होता है, अथवा इन्सान के बोलने से जो स्वर निकलता है, उन्हीं सब ने संगीत का रूप निर्मित किया। हां आगे चल कर इन स्वरों का विकास होता गया। इन स्वरों की साधना की गई, और साधना के द्वारा इन्सान ने स्वरों के गर्भ से अनमोल रत्न निकाल लिये। लेकिन यह निश्चित है कि पहिले स्वरों को ही संगीत कहा जाता था और स्वर को इन्सान अपने साथ ही लाया है, स्वर उसे किसी से सीखना नहीं पड़ा, हाँ स्वर के वभिन्न विकास स्तरों को सीखना पड़ा, पर स्वर को नहीं। यदि हम स्वर को ही

संगीत माने तो संगीत अनादि है । लेकिन स्वर को ही संगीत इसलिये मानना पड़ेगा, क्योंकि स्वर ही संगीत का अन्तर एवं वाह्य आलोक है । लेकिन हाँ मानव ने अपने स्वर को प्रथम चाहें भले संगीत की संज्ञा न दी हो, किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों सभ्यता और संस्कृति का उदय होता गया, त्यों-त्यों मानव स्वर की सूक्ष्मताओं को समझता गया, स्वर की शिल्पज्ञता से अवगत होता गया । और तभी उसने स्वर को संगीत का रूप दिया होगा । किन्तु यह निश्चत है कि सृष्टि के आरम्भ में मानव ने स्वर से ही अठखेलियाँ की होंगी । और उन सुन्दर अठखेलियों से ही उसने आनन्द लिया होगा । वे ही अठखेलियाँ आगे चलकर परिष्कृत होती गई होंगी और उन परिष्कृत अठखेलियों का नाम संगीत पड़ा ।

संगीत अनादि है—

जाकोबिल ने अपनी पुस्तक "द स्टेजेज आफ म्यूजिक" में लिखा है :— "मानव को संगीत का प्रथम ज्ञान कैसे हुआ, ये विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है, जब उसको भूख और प्यास महसूस हुई होगी, तब ही उसे अपने अन्दर संगीत की हल-चल महसूस हुई होगी । यह हल-चल प्रथम कैसे उठी होगी, इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहना बड़ा मुश्किल कार्य है, क्योंकि अभी तक हमें खोज करने पर ऐसे तथ्य प्राप्त नहीं हुए जिसको हम इतिहास की लड़ी में पिरो सकें, जो तथ्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार प्रायः धार्मिक हैं । अथवा वे किवदंतियों पर आश्रित हैं । वे तथ्य इतिहास की श्रंखला को विकसित नहीं कर पाते, लेकिन हाँ इतना तो निश्चित ही है कि मानव को संगीत का ज्ञान अन्य समस्त कलाओं से पूर्व हो चुका होगा । और अगर हम ये भी कहें कि संगीत अनादि है तो कोई अनुचित न होगा, क्योंकि संगीत के अनादि रूप को प्रमाणित करने के लिये हमारे पास अनेक तथ्य विद्यमान हैं ।"

ज्ञान ही संगीत के जन्म का कारण —

इतिहासकार ओलकसथोवर ने "विश्व संगीत का एक अध्ययन" नामक पुस्तक में लिखा है :—

"मैं इस तथ्य को नहीं मानता कि संगीत मानव के साथ आया, अथवा उसने विश्व में आकर शीघ्र ही सीख लिया हो । ऐसा कदापि नहीं हो सकता । प्रारम्भ में मानव की जंगली अवस्था रही होगी, उस जंगली अवस्था में संगीत का जन्म नहीं

हुआ होगा, संगीत ही क्या किसी भी कला का उस अवस्था में जन्म न हुआ होगा। फिर संगीत का उज्ज्वल प्रकाश मानव को कब प्राप्त हुआ, इस प्रश्न पर जब हम गहराई से सोचते हैं, तो हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि जब उसके अन्दर भाषा का ज्ञान हुआ होगा, तब उसके बाद ही संगीत का जन्म हुआ होगा, यह मुमकिन नहीं हो सकता कि ज्ञान शून्यता में संगीत का जन्म हो गया हो। ज्ञान का पावन प्रकाश ज्यों-ज्यों मानव के अन्दर बढ़ता गया होगा त्यों-त्यों उसे अपने अन्दर एक कमी महसूस हुई होगी, लेकिन उस कमी का नाम संगीत तभी दिया गया होगा, जबकि मानव का मस्तिष्क परिष्कृत हो चुका होगा। मानव का एक युग तो यों ही अज्ञानता में व्यतीत हुआ होगा। उस अज्ञानता के युग में संगीत का जन्म कैसे हो सकता है, उस वक्त तो मानव के इर्द-गिर्द घोर अन्धकार रहा होगा, परन्तु जैसे ही उनके जीवन का थोड़ा सा अन्धकार कम हुआ होगा, तभी संगीत ने जन्म लिया होगा।"

नारी को रिझाने के लिये संगीत का जन्म हुआ—

मानव को संगीत की प्रथम आवश्यकता कब पड़ी होगी, इस पर विचार करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि पुरुष नारी को रिझाने के लिये नाना-प्रकार के उपाय करता होगा, उन नाना-प्रकार के उपायों में संगीत भी एक महत्वपूर्ण उपाय रहा होगा, क्योंकि संगीत के स्वर उसे अधिक पसन्द आते होंगे। जब पुरुष नारी के सामने जलस्वर, पक्षियों के स्वर, समीर स्वर, घन स्वर, एवं प्रपात स्वर की प्रतिलिपियां प्रदर्शित करता होगा, तो वह कितनी मंत्रमुग्धित हो जाती होगी, कितनी प्रसन्न हो जाती होगी इसकी कल्पना करना मुश्किल है। नारी को प्रसन्न रखने के लिये पुरुष नित्यप्रति स्वर के नवीन मोड़ एवं घुमाव सीखता होगा। अपने स्वर को नाना प्रकार से प्रस्तुत करता होगा। बस इसी लग्न ने संगीत का जन्म किया होगा। और फिर नारी भी अपने असीम आनन्द में डूबी हुई इन स्वरों को सीखती होगी, वह भी पुरुष के सम्मुख उन मधुर स्वरों को अपनी मधुर वाणी में प्रस्तुत करती होगी, तब पुरुष और नारी में श्रेष्ठ स्वर प्रस्तुत करने की प्रतिस्पर्द्धा चलती होगी। कभी नारी पुरुष को हरा दिया करती होगी और कभी पुरुष नारी को हरा दिया करता होगा। इस हारजीत में ही संगीत विकसित हुआ होगा।

संगीत के जन्म का कारण ईश्वर उपासना—

संगीत की उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण कारण ये भी है, जब मानव पृथ्वी पर आया, तो वह अपने कार्य में संलग्न हो गया, जीवन को सुन्दर एवं सुव्यवस्थित

बनाने के लिये उसके सामने अनेक महान कार्य थे, उन कार्यों का जन्म भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार होता गया। चूंकि मानव को ईश्वर ने पैदा किया था इसलिये उसके ईश्वर के प्रति असीम आदर एवं श्रद्धा की भावना जाग्रति होगई, हालांकि उसने ईश्वर को अपने इर्द-गिर्द देखा नहीं होगा, किन्तु उसने अनुमान लगा लिया होगा कि हमें अवश्य किसी न किसी शक्ति ने पृथ्वी पर पैदा किया है, और फिर इतनी सुन्दर पृथ्वी, इतना सुन्दर आकाश, तथा चांद, सूर्य किसने बनाये हैं, ये मनोरम प्रकृति किसने निर्मित की है, अवश्य ही कोई ऐसी अपूर्व एवं दिव्य शक्ति है जो कि हम सब से अद्वितीय है, महान है। बस उसी शक्ति को उन्होंने ईश्वर मान लिया होगा। उस सर्वशक्तिमान की उपासना करने के लिये उन्हें संगीत की आवश्यकता पड़ी, क्योंकि बिना प्रार्थनाओं के, स्तुति के, आराधना कैसे हो सकती है ? इसलिये उन्होंने सर्वप्रथम संगीत को सीखा होगा। काव्य और साहित्य से पूर्व ही संगीत को उन्होंने जन्म दिया होगा। ईश्वर उपासना जीवन निर्माण की मुख्य वस्तु थी। बिना ईश्वर उपासना के जीवन में सुख शान्ति का प्रादुर्भाव नहीं हो पाता है। संगीत का धार्मिक रूप इसीलिये हुआ। वास्तव में संगीत का जन्म धर्म की पावनता की विशाल पृष्ठभूमि पर हुआ। भारतीय संगीत के जन्म की यहीं मुख्य विशेषता है। भारतीय संगीत के गर्भ में विलासता के लिये कोई स्थान नहीं। वासनाओं को उभाड़ने के लिये उसमें किंचित मात्र भी स्थान नहीं। भारतीय संगीत को पूर्ण रूप से ईश्वरीय रूप प्रदान कर दिया गया। संगीत ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष का प्रमुख संबल बन गया। इसीलिये ये आज संगीत के सम्बन्ध में धार्मिक भावनायें एवं धार्मिक तथ्य अधिक पाये जाते हैं और उन्हीं का हमें इतिहास लिखने में प्रपय लेना पड़ता है। मानव अपने ईश्वर को, अपने देवी देवताओं को नाच गा कर प्रसन्न करता था। जब उन्हें ईश्वर से कोई वरदान लेना होता तो वे संगीत का ही सहारा पकड़ते थे। बस इस महत्वपूर्ण कारण ने संगीत को जन्म दिया।

संगीत के जन्म का उत्स "ओउम्"—

कुछ विद्वानों का मत है कि संगीत का जन्म ओउम् शब्द के गर्भ से हुआ। ओउम् शब्द ऐकाक्षर होकर भी, अ, उ, म इन तीन अक्षरों से निर्मित हुआ है। ये ऐकाक्षर इस अर्थ में कहा जाता है कि तीनों अक्षरों के संयोग से इसकी ध्वनि एक ही अक्षर के समान होती है। ओउम् के तीनों अक्षर अ, उ, और म तीन शक्तियों के द्योतक हैं। अ उत्पत्ति शक्ति द्योतक सृष्टिकर्ता ब्रह्मा। उ धारक, पालन, रक्षण अर्थात स्थिति शक्ति का प्रतीक विष्णु। म, महेश शक्ति का द्योतक है। तीनों शक्तियों का पुंज ही "त्रिमूर्ति" परमेश्वर है

ओउम् वेद का बीज मन्त्र है। इसके विषय में मनु कहते हैं कि ऋगवेद, सामवेद और यजुर्वेद से "अ" "उ" "म" ये तीन अक्षर लेकर प्रणव। ओउम्। बना है। श्रुति स्मृति के अनुसार ये प्रणव परमात्मा का अनुपम नाम है।

वेद में संक्षेप से ब्रह्म पद वरण करते समय ओउम् रूप से ही उस पद का वर्णन किया गया है, यथाकंठोपनिषद में

"सर्वे वेदा मत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद बदन्ति।"
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्रे पदं संग्रहेण ब्रवीमि।"

सकल वेद तथा सम्पूर्ण तपस्या में लक्ष्य रूप से जिस पद का वर्णन है, और जिस पद की इच्छा करके मुमुक्षुगण ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करते हैं उस पद का संक्षिप्त नाम "ओउम्" है। तंत्रों में वर्णन है।

"अकारो विष्णु रुद्दिष्ट उकारास्तु महेश्वरः।
मकारेण्येच्यते ब्रह्मा प्रणावेन मयो मतः।"

अर्थात् अकार विष्णु का वाचक, उकार महेश्वर का वाचक, और मकार ब्रह्म का वाचक है।

महर्षियों ने वेदांग रूपी शिक्षा शास्त्र द्वारा यह भली भांति सिद्ध कर दिया है कि प्रणव में तीनों गुणों की तीनों शक्तियाँ भरी हुई हैं, इसी कारण प्रणव ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीनों स्वरों की सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता। पुनः गान्धर्व उपवेद सम्बन्धी शिक्षाओं में भलीभांति वर्णित है कि षड्ज, आदि सातों स्वर एकमात्र ओंकार के ही अन्तरविभाग हैं। जिस प्रकार बहिः सृष्टि में सात दिन, सात रंग, सात धातु, आदि सप्त विभाग पाये जाते हैं, और जिस प्रकार अन्तर राज्य में सप्त ज्ञान भूमिका आदि सप्त विभागों का प्रमाण मिलता है, उसी शैली के अनुसार एकमात्र अद्वितीय शब्द ब्रह्म रूपी ओंकार षड्ज आदि सप्त स्वर विभाग में विभक्त होकर नाना शब्द राज्य की सृष्टि किया करता है। इसी कारण शब्द वाह्म रूपी ओंकार सब मन्त्रों का चालक है। तंत्रों में लेख है "मंत्रणाम प्रणवः सेतुः" सब मंत्रों का एकमात्र प्रणव (ओउम्) ही सेतु है, जिस प्रकार बिना सेतु के पथ अवरोधी नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना ओंकार की सहायता के न तो मंत्र

समूह पूर्ण बल को प्राप्त होते हैं और न वे लक्ष्य के अनुसार यथावत् काम करने में उपयोगी ही हो सकते हैं। फलतः एकमात्र प्रणव (ओउम्) ही शब्दमय साक्षात शब्द बृह्म है, स्वर बृह्म है। शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओउम् के गर्भ से हुई है। प्रथम स्वर प्रसूत हुआ और फिर शब्द निकले। पहिले मनुष्य को स्वर सुनाई दिया, इसके बाद शब्द सुनाई दिये। मुख से उच्चारण होने योग्य प्रणव यद्यपि अलौकिक प्रणव नाद का प्रति शब्द है, तथापि वह केवल लौकिक सम्बन्ध से अविष्कृत नहीं हुआ है। तंत्रों में यह निश्चय कर लिया गया है कि मुख से उच्चारण होने योग्य ओंकार ध्वनि ही अपूर्व रीति से आधार पद्म से उठकर सहस्त्रदल स्थिति पुरुष में लय हुआ करती है। प्रणव ही संगीत के जन्म का मूल आधार है। इससे सत्य को पाश्चात्य विद्वान भी मान गये हैं। मिस्टर ऐलने फाउलर "प्रेक्टीकल योग" में लिखते हैं:

The pronunciation of the sacred word "ओउम्" is one which has engaged the attention of all the Europeans devoted to eastern studies. The vibrations set up by the same word are so powerful that if persisted in, they would bring the largest building to the ground. I have tested the power of the vibrations and can quite believe that the effect would be as stated. Pronounced as spelt, it will have a certain effect upon the student, but pronounced in its correct method, it arouses and transform every atom in his physical body, setting up new vibrations and awakening the sleeping power of the body.'

अर्थात् आजकल आर्य शास्त्र को चर्चा करने वाले पच्छिमी विद्वानों की दृष्टि प्रणव (ओउम्) उच्चारण की ओर विशेप रूप से पड़ी है। इस शब्द के उच्चारण से जो स्पन्दन उत्पन्न होता है वह इतना तीव्र तथा बलवान है कि लगातार ऐसा स्पन्दन होते रहने पर बड़े-बड़े मकान तक गिरा दिये जा सकते हैं। मैंने इस स्पन्दन शक्ति की परीक्षा की है और मुझे इस विषय में स्थिर विश्वास है। सामान्यरूप से उच्चारण करने पर भी छात्र पर इसका कुछ प्रभाव होता है, किन्तु यथार्थ रीति से यदि ओउम् का उच्चारण किया जाय तो शरीर के प्रत्येक परमाणु में परिवर्तन हो जाता है। उसमें नवीन स्पन्दन से नवीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है और देह स्थिति अनेक निद्रित शक्तियां जाग उठती हैं।

मैं एक से बहुत हो जाऊँ, सृष्टि करूं ये संकल्प होता है, कभी बृह्मान्ड प्रकृति में कम्पन होता है। ये कम्पन ही संगीत की प्रथम किरण है। और समस्त बृह्मान्ड प्रकृति को कपाकर जो प्रथम स्वर निकलता है वही "प्रणव नाद" है। ये ध्वनि कैसी है इस विषय में योग शास्त्र में लिखा है।

"तैलधारमिवाच्छिन्नं। दीर्घघन्टानि नाद वत"

अर्थात् ये प्रणव तैलधारा के समान अविच्छन्न" एवं दीर्घ घन्टा के स्वर की तरह श्रुति मधुर है एवं उसको तभी ग्रहण किया जा सकता है जब कि साम्यावस्था होकर प्रकृति में मन स्थिर करके साधना कर सकें। ये ओंकार ध्वनि वाच्य वाचक सम्बन्ध से अनादि व अनन्त है। अतएव संगीत भी अनादि एवं अनन्त हुआ।

वास्तव में ओउम् शब्द ही संगीत के जन्म का उपकरण है। ओउम् के परे कुछ भी नहीं, समस्त कलायें ही ओउम् के विशाल गर्भ से आविर्भूत हुई हैं। जो ओउम् की साधना कर पाते हैं, वे ही वास्तव में संगीत का यथार्थ रूप समझ पाते हैं, इसमें लय, ताल, स्वर सभी कुछ तो है। क्या नहीं है इसमें। आप ओउम् शब्द की दार्शनिकता को गहराई से समझिये, तब आपको उसके वास्तविक रूप का ज्ञान होगा।

संगीत के जन्म का शास्त्रीय रूप :—

मिस्टर ह्लीटन ने कलकत्ता के छात्रों के सम्मुख संगीत के जन्म के सम्बन्ध में एक व्याख्यान दिया था, वह इस प्रकार है :—

"The God of the Hindus is Brahma and the invention of music is ascribed to this deity and to his wife Saraswati, the Goddess of Learning, music and poetry. According to popular belief, in the beginning, the Gods and Goddess met on special occasions for the purpose of composing and singing songs, the result of which was the production of a series of systems or modes known to all Hindus as Rags and Raginees. To Shiva or Mahadeva is ascribed the creation of the six Rags and from his wife the Goddess Parwati are said to have

emanated thirty six Raginees. These Rags though really representing the original systems or styles of melody, bear in the estimation of the Hindus a sacred and peculiar interest as being the palpable personifications of the will of their originator, each having a separate existence and shape, although unperceived by the eyes of mortals. with each of these six male Rags are associated six female Raginees, which partake of the peculiar measure or quality of their males, but in a softer and more feminine degree.

From each of these thirty six Raginees have been born three Raginees reproducing the special peculiarity of their original; and these have in their turn produced offsprings without number each bearing a distinct individuality to the primary Rag, or to use a Hindu expression "They are as numerous and alike as the waves of the sea".

These Rag were designed to move some passion or affection of the mind and to Catch was assigned some particular season of the year, the time of the day and night, or special locality or district; and for a performer to sing a Rag out of its appropriate season or district would make him in the eyes of all Hindus an ignorant pretender and unworthy the character of a musician.

The allotment of a particular mode to a particular district is not common to India alone, the same system prevails in Arabia, Persia and other ancient countries. A line from the veiled prophet of Khorassan runs :—
"In the pathetic mode of Ispahan". And this peculiar custom is further described in a footnote as follows :—

The Persians, like the ancient Greeks call their musical modes or Perdas by the names of different countries or cities as the mode of Ispahan, the mode of Irakh etc."

And I would venture to refer even to another passage from Lal Rookh, thus—"Last of all she took a guitar and sang a pathetic air in the measure called Nava; which is always used to express the lamentations of absent lovers."

The names of Rags and their peculiar qualities may be thus briefly described :—

1. **HINDOL** :—The effect of the performance of this Rag is to produce in the mind of the hearers all the sweetness and freshness of spring, sweet as the honey of the bee and fragrant as the perfume of a thousand blossoms.

2. **SHRI RAG** :—The quality of this Rag is to affect the mind with the calmness and silence of declining day; to tinge the thoughts with a roseate hue, as clouds are guilded by the setting sun before the approach of darkness and night.

3. **MEGH MALLAR**:—This is descriptive of storms and tempests or the effect of an approaching thunder storm and rain; having the power also a influencing clouds in times of drought.

Tradition asserts that a singing girl once, by exerting the powers of her voice in this Rag drew down from the clouds, timely and refreshing showers on the parched rice-crops of Bengal, and thereby averted the horrors of famine in the land.

4. DEEPUK :—This Rag is said to be extinct. No one could sing it and live; it has consequently fallen into disuse. But although never practised now, its qualities or effects are well known and are referred to with great awe and expression of wonder.

5. BHYRUB :—The effect of this Rag is to inspire the mind with a feeling of a approaching dawn; of the busy hum of insects, the carolling of birds the sweetness of the perfumed air and the sparking freshness of dew dropping morn.

6. KOWSHIK :—The effects of this Rag are generally unknown. The renowned singers alone are able to comprehend it.

These several Rags and modes are supposed to possess a god like and magnetic effect".

मानव के वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने संगीत का जन्म किया —

संगीत का जन्म कैसे हुआ इसके सम्बन्ध में मिस्टर जी० एच० रानाडे "हिन्दुस्तानी संगीत" में पृष्ठ ५५ पर लिखते हैं :—

"Music consists of artistic expression in tone and time or rhythm, and every form of natural or human activity may have something to contribute towards its making. In fact, every action implies some form of motion and is usually accompanied by some kind of sound. Thus music may have its roots in the simplest of unintentional and impersonal activity such as the blowing of the breeze, and the rustling of the Leaves, the surging of the billows and the thundering of the clouds or the murmuring of the brook. The result may not be what we

call music today, but is certainly musical. The cries of some birds and beasts are much more musical than the music of the elements and must therefore have attracted the attention of the primitive man. But it should be remembered that even birds and beasts have undergone a process of evolution. The beginnings of human music are therefore really rooted in the evolution of the human ear and the vocal organs and not in the supposed imitation of the cries of bird and beasts, as they are found to day. Even speech was not the product of a day. In the absence of the speech, man's first language must have been one of automatic exclamations or mechanical sounds and it must have cost him an experience of several generations to produce even such notes as the cries of birds and beasts either orally or mechanically. The earliest forms of acoustic expression must have been, therefore, of the nature of rough and ready sounds, produced vocally or mechanically. At this stage, a human being must have been in no way superior to birds and beasts. The music of the birds and the beasts has however mostly remained the same. The lions roar, the sheep bleat or the peacocks cry to-day just as in the days of our fore-fathers. Human speech has however been developed by the inherent urge in mankind for further development and is continually enriched with growing experience, and this is equally true of music too. In so far as the child repeats the history of the race, some of these stages of the evolution of speech and music are distinctly discernible in its progress. In short, commencing from simple exclamations and mechanical sounds, speech as employed in simple narrration and dialogue chanting, recitation of verses, folk-songs and classical songs appear to be the significant stages in the

growth of vocal expression and musical form. These forms evidently fall into two groups; the one not requiring any musical accompaniment and the other requiring it as a matter of necessity. Thus speech in any of its forms does not require any accompaniment, chanting, recitation, of verses, and simple folk-songs seldom need any, and even when accompanied are poetic rather than musical in effect. To the other class, which necessarily require accompaniment, belong the advanced folk-songs, songs for dances and those of the classical type.

ऐतिहासिक मूल्याँकन

संगीत के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों के जो ये अभिमत प्राप्त हुए हैं, वे प्रायः धार्मिक हैं अथवा किवदंतियों पर आधारित हैं, वे ऐतिहासिक कसौटी पर खरे नहीं उतरते। बात तो दरअसल ये है कि संगीत के जन्म के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक तथ्य अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं, और जो कुछ भी हैं, वे पूर्ण प्रमाणिक नहीं हैं, उनमें काल्पनिक आधार पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित हैं। लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में हमें उन्हीं तथ्यों का सहारा लेना पड़ता है। संगीत का जन्म कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में हम संगीत की विभिन्न पुस्तकों को ज्यों-ज्यों पढ़ते हैं, त्यों-त्यों हमारे सामने विभिन्न प्रकार के अभिमत आते हैं, और वे अभिमत परस्पर एक दूसरे से बहुत कम सादृश्यता रखते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि लोगों ने संगीत के सम्बन्ध में अपने-अपने वातावरण एवं धर्म एवं देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार कल्पना की है, उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगाने का बहुत कम प्रयास किया है। अगर हम ऐतिहासिक रूप से इस विषय पर विचार करें तो संगीत के जन्म के सम्बन्ध में एक दूसरी ही प्रकार की तस्वीर सामने प्रस्तुत होती है। वह तस्वीर इस प्रकार है, जब सृष्टि का आविर्भाव हुआ, तो पुरुष और नारी दोनों ही पृथ्वी पर आये, उन्होंने अपने इर्द गिर्द एक अभिनव वातावरण देखा। वे उस नवीन वातावरण में मस्त रहने लगे। पुरुष ने नारी को समझने की कोशिश की, क्योंकि उसके मधुर सहयोग से उसके हृदय की दुनिया में एक अपूर्व शान्ति, एक असीम आनन्द का प्रादुर्भाव हुआ, और इसी प्रकार नारी ने भी पुरुष को समझने का प्रयास किया, क्योंकि उसे भी पुरुष शक्तिशाली संरक्षण से अद्वितीय सुख आनन्द प्राप्त हो रहा था, तथा वह अपने जीवन में

एक नवीन कायाकल्प महसूस कर रही थी, बस इस प्रकार दोनों परस्पर सहयोग से अपनी जीवन यात्रा की मंजिल की ओर अग्रसर हो रहे थे। जीवन की इस महा यात्रा में उन्हें अनेक पड़ाव करने पड़े होंगे, तथा अनेक कड़ुए एवं मीठे अनुभव प्राप्त हुए होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया होगा, त्यों-त्यों उन्हें अनेक पदार्थों की आवश्यकताएँ महसूस हुई होंगी। जैसे पानी पड़ने पर अथवा कड़ी धूप के बचाव के लिये उसे किसी संरक्षण आवास की आवश्यकता महसूस हुई होगी, भूख लगने पर वृक्षों के फल वगैरह खा लिया करता होगा, प्यास अपनी नदी, तालाब के पानी से बुझाता होगा। पेड़ों की छालों के वस्त्र धारण करता होगा। आपत्तिकाल में सहयोग की आवश्यकता महसूस हुई होगी। जीवन के लम्बे सफर में परस्पर सहयोग का बड़ा महत्व है, अतएव समाज की भावना का जन्म हुआ होगा। शनैः शनैः समाज की भावना विकसित हुई होगी, और फिर समाज के निर्मित हो जाने पर अनेक समस्यायें सामने आई होंगी जिनको उन्होंने सम्मिलित प्रयास से हल किया होगा। सुन्दर ढंग से कैसे रहा जाय यह भी प्रश्न उनके सामने अवश्य होगा। और इस प्रश्न की पूर्ति के लिये उन्होंने बहुत कुछ सोचा विचारा होगा, सम्मिलित प्रतिभाओं के सहयोग से अनेक मूल्यवान तथ्यों का जन्म हुआ होगा। इन्हीं मूल्यवान तथ्यों के गर्भ से सभ्यता एवं संस्कृति का आविर्भाव हुआ होगा। सभ्यता के प्रथम चरण में ही संगीत का जन्म हुआ होगा। जब मानव ने अपने जीवन के इर्द-गिर्द सारा वातावरण मधुर देखा होगा, जिधर भी वह प्रकृति की ओर जाता होगा, उधर ही उसे संगीतमय वातावरण प्राप्त हुआ होगा। रंगबिरंगी चिड़ियों के कलरव में, सरिताओं की लहरों के चढ़ाव उतार में, समीर के बहने में, वृक्षों की खड़खड़ाहट में, बादलों के गर्जन में, बिजली के कौंधने में, मयूरों की कूकों में, मतलब यह कि हर तरफ उसे मीठे स्वरों का सरंजाम मिलता होगा, जिससे उसका मन प्रसन्नता के महासागर में डूब जाता होगा, और वह अवश्य कुछ क्षणों के लिये जीवन की पीड़ा एवं कष्टों को भूल जाया करता होगा। इन मीठे स्वरों को सुनकर उसके हृदय में भी यह भाव जाग्रत हुआ होगा कि काश, हम भी वैसा ही मधुर स्वर प्रस्फुटित कर सकते। इस भाव के जाग्रत होने पर फिर उन्होंने उसके अनुकरण का प्रयास किया होगा। इस अनुकरण की यात्रा में उन्हें अनेक असफलतायें भी प्राप्त हुई होंगी, अनेक बार उनके मन में ये भावना पैदा हुई होगी, क्यों व्यर्थ में इन स्वरों को अपनाया जाय, लेकिन फिर इस भाव पर अनुकरण करने वाले भाव की जीत हुई होगी। शैनः शैनः उन्हें स्वर अनुकरण करने में सफलता प्राप्त हो गई होगी। बस यही सफलता संगीत के जन्म की वास्तविक पृष्ठभूमि है। यह पृष्ठभूमि ठोस है एवं स्वाभाविक है। विकास की शृंखला इसी प्रकार आगे बढ़ती है, इसी प्रकार

प्रत्येक पदार्थ नवीन रूप धारण करता है। और इसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति की शृंखला अपने केन्द्र विन्दु पर अहर्निस गति से क्रियाशील रहती है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार अर्लेन्टाइल ने भी इसी मत की पुष्टि की है, वह लिखते हैं:—"संगीत के जन्म के सम्बन्ध में जितनी बातें पाई जाती हैं, उन पर सहसा विश्वास नहीं जमता, क्योंकि वे तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। मैंने इस तथ्य का गहराई से अध्ययन एवं अनुसन्धान किया है और इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि सर्वप्रथम मानव ने समाज की स्थापना की होगी, इसके उपरान्त उसके अन्दर भाषा का ज्ञान हुआ होगा, तभी संस्कृति का विकास हुआ होगा। संगीत का जन्म उस वक्त हुआ होगा जबकि मानव ने खाने, पीने, रहने-सहने पर विकास प्राप्त कर लिया होगा और जबकि उसकी बुद्धि परिपक्व हुई होगी, तभी संगीत का जन्म हुआ होगा। सभ्यता के प्रथम चरण में ही संगीत की आवश्यकता महसूस हुई होगी, उससे पूर्व नहीं। अज्ञानावस्था में मानव का ध्यान संगीत की ओर नहीं गया होगा। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ संगीत का जन्म होना सम्भव एवं स्वाभाविक है। लेकिन सभ्यता का जन्म भी समाज की स्थापना के उपरान्त ही हुआ होगा। जब तक मानव के अन्दर समाज भावना न रही होगी, तब तक संगीत के अंकुर भी न अंकुरित हुए होंगे।

ईसामसीह के नौ दस हजार वर्ष पूर्व भी संगीत का जन्म हो चुका था—

ईसा मसीह के बीस पच्चीस हजार वर्ष पूर्व सृष्टि का अविर्भाव हो चुका था। नौ दस हजार वर्ष पूर्व के तो अभी-अभी शिला लेख एवं मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, किन्तु भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई का कार्य जारी है, अतएव निकट भविष्य में अवश्य ही और भी प्राचीन मूर्तियां एवं शिलालेख प्राप्त होंगे ऐसी आशा है। किन्तु यह निश्चित हो चुका है कि भारतीय संगीत का जन्म ईसामसीह से दस हजार वर्ष पूर्व ही हो चुका था। ईसा मसीह के काल में तो भारतीय संगीत उच्चता की दैदीप्यमान मंजिल पर सुशोभित हो रहा था। इस तथ्य की पुष्टि विख्यात इतिहासकार जौन एलौ ने अपनी पुस्तक "संगीत का बृहत् इतिहास" में की है। उसमें लिखा है :—

"भारतीय संगीत का जन्म ईसा मसीह से आठ नौ हजार वर्ष पूर्व हो गया था, क्योंकि ऐसा उल्लेख हमें उन प्रस्तर मूर्तियों से प्राप्त हुआ है जो कि हाल में खुदाई में प्राप्त हुई हैं। किन्तु मेरी राय में भारतीय संगीत इससे भी बहुत अधिक

प्राचीन है, लग-भग ईसा मसीह से पन्द्रह बीस हजार वर्ष पूर्व भारतीय संगीत का जन्म हुआ होगा। निकट भविष्य में यह तथ्य ऐतिहासिक रूप से भी प्रमाणित हो जायगा। पर यह तो निश्चित ही है कि भारतीय संगीत का जब जन्म हुआ होगा उस वक्त विश्व में कहीं भी संगीत का उज्ज्वल प्रकाश प्रसारित न हुआ होगा। भारत ने ही सर्वप्रथम विश्व को संगीत का अद्वितीय उपहार प्रदान किया है, यह तथ्य तो ऐतिहासिक रूप से भी प्रमाणित हो चुका है। चूँकि सर्वप्रथम कई हजार वर्ष पूर्व संगीत का जन्म भारत में हुआ, इस नाते उसने संगीत में बड़ा विकास किया और संगीत के क्षेत्र में वह विश्व का पथ प्रदर्शक बन गया।"

लोक प्रिय विद्वान् हार्वनोटीस ने भी इसी मत की पुष्टि की है, वह लिखते हैं:—"भारतीय संगीत का जन्म ईसामसीह से आठ नौ हजार वर्ष पूर्व हो चुका था। ईसा मसीह के वक्त में तो भारतीय संगीत का गौरव अद्वितीय था। आज जब हम भारतीय संगीत की गहराई को देखते हैं तो उससे यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय संगीत का जन्म अवश्य ही ईसा मसीह से आठ नौ हजार वर्ष पूर्व हुआ होगा, संगीत में वैसी गहराई पैदा करने के लिये इतना ही वक्त चाहिए, इससे कम नहीं।"

———

संगीत और भाषा

संगीत की उत्पत्ति पहिले हुई अथवा भाषा की , इस सम्बन्ध में विश्व के विद्वानों में मतैक्य नहीं है । कुछ विद्वानों के अभिमतों के अनुसार विश्व में संगीत का जन्म प्रथम हुआ, इसके उपरान्त भाषा का जन्म हुआ, किन्तु कुछ विद्वानों की इसके विपरीत भी विचारधारा है। लेकिन हमें तो इन दोनों प्रकार के अभिमतों का विश्लेषण करके एक ऐतिहासिक निश्चय पर पहुँचना है। मि० लिवार्ड का कथन है कि "संगीत से पूर्व विश्व में भाषा आ चुकी थी, बिना भाषा बोध के संगीत का जन्म होना कठिन है।" मि० हुल पार्डी ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए लिखा है—"भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि भाषा की उत्पत्ति से पूर्व ही मानव को संगीत का ज्ञान हो चुका होगा। बिना भाषा ज्ञान के किसी भी कला का जन्म होना असम्भव है, क्योंकि जब तक मानव अज्ञानावस्था में रहेगा तब तक उसे किसी भी कला का परिचय नहीं हो सकता। बिना भाषा के ज्ञान का उदय होना बिल्कुल असम्भव है। भाषा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। ज्ञान के पावन प्रकाश में ही समस्त कलाओं का जन्म होना सम्भव है। यह तो बड़ी बिचित्र बात है कि जबतक मानव को किसी भी प्रकार के ज्ञान का अभास न हुआ हो, उससे पूर्व ही उसे संगीत का मनोरम उपहार प्राप्त हो चुका हो।"

भाषा ने ही मानव को संगीत का पावन पथ निर्देशित किया है—

मि० ओलीवर क्रिफिल्ड की राय है कि, "मानव को प्रथम ज्ञान भाषा का हुआ, और इसके उपरान्त संगीत का। संगीत ज्ञान ने भाषा का मार्ग नहीं निर्देशित किया, अपितु भाषा ने ही मानव को संगीत का पावन पथ निर्देशित किया होगा। क्या बालक गीत गाते हुए पैदा होता है, अथवा बायलिन या सितार बजाते हुए उसका जन्म होता है, ऐसा तो कदापि नहीं होता, तो फिर यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि भाषा के पूर्व ही मानव को संगीत ज्ञान हो चुका होगा अथवा संगीत के साथ उसका जन्म हुआ हो, और बाद में उसने भाषा सीखी हो, पर ये तथ्य तो कृत्रिम-सा मालूम पड़ता है।"

संगीत से पूर्व भाषा के जन्म की पुष्टि करने वाले अभिमत—

मि० कार्ली गुड ने भी इसी अभिमत का समर्थन करते हुए लिखा है, "बिना सभ्यता के आविर्भाव के संगीत का जन्म होना नितान्त दुस्तर है, क्योंकि सभ्यता के विशाल आवरण में ही पृथ्वी की सम्पूर्ण कलायें प्रच्छन्न हैं। भाषा का ज्ञान मानव को सभ्यता के भव्य मार्ग पर प्रयाण कराता है, और सभ्यता मानव को संस्कृति के स्वर्णिम प्रासाद में प्रवेश कराती है। अतएव हम इस तथ्य पर विश्वास नहीं कर सकते कि भाषा के पूर्व ही सृष्टि में संगीत आ चुका होगा। ऐसी कल्पना करना ही मानों अपने को अन्धकार में रखना है।"

मानव को प्रथम भाषा के ज्ञान ने ही संगीत का ज्ञान कराया—

मि० प्रिफहार्ड कोविन का कथन है, "मानव की बुद्धि का ज्यों-ज्यों विकास हुआ होगा, त्यों-त्यों उसने जीवन को सुन्दर बनाने वाली कलाओं पर ध्यान दिया होगा और तभी उसे महसूस हुआ होगा कि संगीत कला से वे अपने जीवन को सुन्दर और कलात्मक बना सकते हैं। परन्तु यह ज्ञान भी तो मानव को भाषा के माध्यम से हुआ होगा। यह मुमकिन नहीं कि संगीत के माध्यम से उसे भाषा का ज्ञान हुआ हो। हां ये तो सम्भव हो सकता है कि भाषा के ज्ञान से उसे संगीत का ज्ञान हुआ हो।"

जब विकास के द्वार ही न खुलेंगे तो फिर किसी भी कला का मानव के अन्दर कैसे जन्म हो सकता है—

मि० वर्नव्हाइट ने भी इन्हीं सब बातों की पुष्टि करते हुए "भाषा और कला के इतिहास" में लिखा है :— "संगीत जैसी उत्कृष्ट एवं पावन कला को मानव बिना भाषा ज्ञान के कैसे प्राप्त कर सका होगा; यह हमारी समझ में नहीं आता। इतनी उत्कृष्ट एवं देदीप्यमान कला के ज्ञान में भाषा का ज्ञान होने पर ही सम्भव हो सकता है। बिना भाषा के जो वस्तु मस्तिष्क में आयेगी वह अपनी धूमिल अवस्था में होगी, उसका चित्र कभी भी इतना उत्कृष्ट, इतना स्पष्ट, इतना दिव्य, एवं इतना व्यापक नहीं हो सकता। वह तो अपनी सिकुड़ी अवस्था में होगा। और बात तो दरअसल यह है कि बिना भाषा के मानव की विकास वृत्तियों के द्वार नहीं खुलते, जब ये विकास के द्वार ही नहीं खुलेंगे तब फिर किसी भी कला का उसके हृदय में कैसे जन्म हो सकता है ? वास्तव में मानव की प्रमुख वृत्तियों को जगाने की अमर शक्ति एक-

मात्र भाषा के अन्दर ही है। भाषा मानव की समस्त जड़ता को विनष्ट करती है, उसे चेतनपूर्ण बनाती है, उसे जंगली जानवर से मनुष्य बनाती है।"

भाषा से पूर्व ही संगीत का जन्म हुआ, इस तथ्य की पुष्टि करने वाले अभिमत—

मि० जोर्ज पिफ फोक्स ने अपनी सुन्दर पुस्तक "संगीत और भाषा" पृष्ठ अट्ठाईस पर लिखा है, "भाषा से पूर्व ही संगीत का जन्म हो चुका था। संगीत का जन्म तो सृष्टि के जन्म के साथ ही साथ हुआ। सृष्टि के प्रत्येक कण में संगीत झंकृत हो रहा था। सृष्टि के प्रलय और जन्म दोनों ही अवस्था में एकमात्र संगीत ही अक्षुण रहता है। सारी चीजें विनष्ट हो जाती हैं। संङ्गीत ज्ञान के कई युग बाद ही भाषा का ज्ञान मानव को हुआ होगा। जब बालक पैदा होता है, तो वह उस वक्त कोई भाषा नहीं बोलता, उसे किसी भाषा का ज्ञान नहीं होता, वह सिर्फ रोता है। स्वर का ज्ञान उसे नहीं होता है। रोना हँसना भी तो संगीत की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। बालक रोने एवं हंसने के द्वारा ही अपनी रुष्टता एवं प्रफुल्लता को प्रकट करता है। जब उसका मन स्वस्थ होता है तो वह हंस देता है, उसकी हंसी कितनी सुन्दर होती है, कितनी पवित्र होती है कि जो कोई भी उस हंसते हुए बालक को देखता है, वही उस पर न्यौछावर हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसकी हंसी के गर्भ में संगीत की मनोरम आभा प्रदीप्त होती है, तभी उसकी हंसी इतनी निर्मल इतनी पावन, एवं इतनी मंत्रमुग्धक होती है। हंसी के समान ही बालक का रोना भी प्रभावशाली होता है। बालक के रोने का प्रभाव मानव पर अधिक पड़ेगा, अपेक्षा किसी बड़े व्यक्ति के रोने से वह इतना प्रभावित न हो सकेगा। बालक के रोने और हंसने में जो आप मंत्रमुग्धक शक्ति देखते हैं उसका आधार संगीत ही है। तो आप प्रश्न करेंगे कि क्या बालक को संगीत आता है? संगीत उसको आता नहीं, किन्तु संगीतिक उपकरण तो उसके पास हैं, जो कि सदैव क्रियाशील रहते हैं। स्वर का ज्ञान बालक को होता है इसीलिये वह इसके द्वारा अपने भूख प्यास की अभिव्यक्ति किया करता है। वास्तव में स्वर ही संगीत है चाहे उसकी जो भी अवस्था हो लेकिन जब बालक को भाषा का ज्ञान होता है, तो फिर उसकी हंसी एवं रोने की आकर्षण शक्ति कम हो जाती है, क्योंकि भाषा जहां एक ओर उसको सुसभ्य बनाती है, वहां दूसरी ओर उसको कुसंस्कारों, अनैतिकता के वातावरण में प्रविष्ट भी कराती है, इसलिये उसकी हंसी एवं रोने में बचपन की सौष्ठवता, बचपन की सौन्दर्यात्मकता नहीं रहती। कहने का मतलब यही है कि भाषा से पूर्व ही संगीत का जन्म हो चुका था।"

मानव के कंठ से प्रथम स्वर मुखरित हुआ और स्वर के आधार पर ही भाषा बनी—

मिस्टर विलियम गेयनर वेल्स ने अपनी पुस्तक "भाषा और संगीत की मुख्य प्रवृतियों का इतिहास" में लखा है:—

"संगीत से पूर्व भाषा की कल्पना करना उस व्यक्ति के समान है जो बिना अग्नि के भोजन बनाने का निश्चय कर बैठता है, वास्तव में मानव को भाषा से पूर्व ही संगीत का ज्ञान हो चुका था। संगीत के ज्ञान से मतलब स्वर ज्ञान से है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मानव को भाषा का ज्ञान स्वर ज्ञान से पूर्व ही हो चुका हो। मानव के कंठ से प्रथम स्वर मुखरित हुआ, जो कि संगीत का मुख्य अंग है, भाषा का मुख्य अंग शब्द है, स्वर नहीं। बिना स्वर के भाषा तो सीखी जा सकती है किन्तु संगीत नहीं सीखा जा सकता। इसलिये स्वर संगीत की मुख्य पृष्ठभूमि हुई। जब मानव पृथ्वी पर प्रथम आया होगा तो उसने प्रथम अनेक प्रकार के स्वर ही सुने होंगे, अनेक प्रकार की भाषायें नहीं सुनने को मिली होंगी। उसने सुना होगा वृक्षों के पल्लवों की खड़खड़ाहट, समीर की सरसराहट, पानी की कल-कल, बादल की गर्जन, चिड़ियों के विभिन्न प्रकार के स्वर, इन स्वरों की उसने अवश्य नकल करनी शुरू करदी होगी, इस प्रकार उसे स्वर ज्ञान हुआ होगा। पहिले वह अपना प्रत्येक कार्य स्वर की विभिन्न मुद्राओं से निकालता रहा होगा लेकिन बाद में जब स्वरों के आधार पर अनेक शब्द बन गये होंगे तब इनका सहारा उसने लिया होगा। इस प्रकार स्वर ही भाषा निर्माण का मुख्य उद्गम है। हम यह निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि संगीत ही भाषा की जननी है। यदि विश्व में संगीत की उत्पत्ति नहीं हुई होती, तो फिर भाषा का निर्माण ही न हुआ होता। वास्तव में भाषा को पुष्ट बनाने वाला संगीत ही है। संगीत के अभाव में भाषा की सजीवता, उसकी स्फूर्तिता, तथा उसकी उत्कृष्टता स्थिर नहीं रह सकती। स्वर के द्वारा ही पुरुष ने प्रथम नारी का स्वागत किया होगा, पुरुष और नारी के मध्य प्रेम के विकास का एकमात्र साधन स्वर ही रहा है, भाषा नहीं। जितना हृदय की सूक्ष्मताओं को स्पष्ट स्वर कर सकते हैं उतना भाषा नहीं और तभी स्वर अभिव्यक्ति का जितना प्राणी मात्र पर प्रभाव पड़ता है, उतना भाषा का नहीं पड़ता। दरअसल हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को सरलता से प्रगट किया जा सकता है।"

जब मनुष्य भय की परिस्थितियों से आतंकित हो उठता है तो उस वक्त उसका बोलना रुक जाता है और उस वक्त उसके स्वर ही सजीव रहते हैं—

डा० वर्न्स का कथन है, "भाषा से पूर्व ही मनुष्य के हृदय में मानवीय भावनायें एवं अन्तर क्षोभ वर्तमान थे, इसमें किसी को सन्देह नहीं तथा मनोविज्ञान प्रमाणित करता है कि उन भावों को जब तक प्रगट न कर दिया जाय तब तक मनुष्य चैन नहीं पा सकता, अतएव उन भावों के प्रदर्शनार्थ भाषा की उत्पत्ति के पूर्व ही कोई ध्वनि अवश्य रही होगी। उदाहरणार्थ "ओह" "आह" "हाय" "अहाहा" आदि शब्द। प्रत्येक जाति एवं जन समुदाय में अब भी यह शब्द प्रचलित हैं। वास्तव में ये स्वर ही जिनके ऊपर ये शब्द आधारित हैं, संगीत के बीज रूप हैं। वैसे भी यदि आप मानव की भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो आप को ज्ञात हो जायगा कि भाषा का स्थान संगीत के बाद ही आता है, जैसे मान लीजिये कि आप रात को कहीं घूमने जा रहे हैं, रास्ते में एक रस्सी के टुकड़े को सांप समझ-कर भय से उछल पड़ते हैं, तो आपकी उस भय की दशा में आपके मुख से एक चीख निकल पड़ेगी, भाषा तो बाद में अपना कार्य करेगी, जबकि आपका भय का कुहरा कम हो जायगा। ये चीख ही वास्तव में संगीत का प्रतिनिधित्व करती है। जब मनुष्य भय की परिस्थितियों से अधिक आतंकित हो उठता है, तो उस वक्त उसका बोलना रुक जाता है, बल्कि उसके स्वर ही सजीव रहते हैं, भय के वातावरण में भाषा दब जाती है, और स्वर मुखरित रहता है क्योंकि उसमें दिव्य शक्ति प्रच्छन्न रहती है, और जब स्वर पर भी भय का आधिपत्य हो जाता है, तभी मानव की मृत्यु हो जाती है। स्वर के अभाव में मानव के अंदर घुटन पैदा हो जाती है और यही घुटन उसकी मृत्यु का प्रतीक बनती है। सृष्टि के निर्माण-काल में मनुष्य को कोई भी ऐसी वस्तु नहीं दिखलाई दी, जो भाषा का प्रस्फुरण करती हो, लेकिन इसके विपरीत उसे हर तरफ अनेक स्वर सुनाई पड़े, जिधर भी वह जाता, उसे नाना प्रकार के स्वर सुनने को मिलते, कुछ स्वर तो इतने सुन्दर एवं आकर्षक मिलते कि जिनको घन्टों वह तन्मय होकर सुना करता और उसके अन्दर यह प्रेरणा भी जाग्रति हो उठती कि क्यों न ऐसे स्वरों का अनुकरण किया जाय। बस इस प्रकार उसको भाषा के पूर्व ही संगीत का ज्ञान हो गया। और उन स्वरों की साधना करके उनका परिमार्जन किया। स्वरों के परिमार्जित रूप ने ही मानव को शास्त्रीय संगीत का अनुपम उपहार भेंट किया।"

संगीत और भाषा का एक ही स्तर है—

कैप्टन जोर्ज ग्रान्ट ने अपनी पुस्तक "द यूनीवर्सल टाइड्स आफ म्यूजिक" में लिखा है:—"संगीत और भाषा दोनों की उत्पत्ति साथ ही साथ हुई। न संगीत पहिले आया और न भाषा। बालक में बोलने और गाने का विकास साथ ही साथ होता है।

मनुष्य को जब बोलने का ज्ञान हुआ होगा, तभी उसको संगीत का ज्ञान हुआ होगा, क्योंकि संगीत का ज्ञान उसी स्तर पर प्रस्फुटित होता है जिस स्तर पर भाषा-ज्ञान प्रस्फुटित होता है । जब दोनों का एक स्तर है तो आगे पीछे ज्ञान का होना सम्भव नहीं । मानव के अन्दर मस्तिष्क की जो शिरायें हैं वे शिरायें भी एक ही बार खुलती हैं, ऐसा नहीं हो सकता कि पहिले संगीत के लिये खुली हों और बाद में भाषा के लिये । शब्द और संगीत दोनों मानव के अन्दर साथ ही साथ मुखरित हुए, ठीक उसी प्रकार जिस तरह पुष्प के अन्दर सौरभ और सौन्दर्य साथ ही साथ प्रस्फुटित होते हैं, जिस प्रकार चाँद और चाँदनी के अन्दर स्निग्धता साथ ही साथ प्रसूत होती है और जिस प्रकार सूर्य और धूप के अन्दर उष्णता साथ ही साथ अभिव्यक्ति होती है तो फिर मानव के अन्दर संगीत अथवा भाषा की उत्पत्ति एक दूसरे से पूर्व कैसे हो सकती है ।''

संगीत के माध्यम से ही मानव प्रकाश के युग में आया होगा—

डा० लिपोर्ड हार्ली बिन्स का कथन है :—''जब मानव अन्धकार युग में रहा होगा, उस वक्त भी उसे संगीत का ज्ञान अवश्य रहा होगा, लेकिन उस अन्धकार युग में भाषा का ज्ञान उसे न हुआ होगा, भाषा तो बहुत बाद की चीज है । वास्तव में मानव अन्धकार के युग से संगीत के माध्यम से ही प्रकाश के युग में आया होगा । अगर यह शक्ति भी उसके पास न रही होती, तो फिर सम्पूर्ण सृष्टि आज अन्धकारपूर्ण होती । मेरा तो यहां तक विश्वास है कि सभ्यता का उदय भी संगीत के विशाल गर्भ से ही हुआ होगा । मैं इस तथ्य को कतई नहीं मानता कि मानव को संगीत के पूर्व ही भाषा का ज्ञान हो गया होगा । ये तो बिलकुल समझ के बाहर की बात है । आप चाहें किसी भी दृष्टिकोण से विचार करें आप को इसी निश्चय पर पहुंचना होगा कि मानव को सर्व प्रथम संगीत का ज्ञान हुआ और उसके बाद भाषा का । लेकिन हाँ भाषा के ज्ञान हो जाने पर मानव ने संगीत को नवीन रूप दिया, उसका नवीनीकरण प्रस्तुत किया । भाषा ने संगीत के अद्वितीय सौन्दर्य को और द्विगुणित कर दिया ।''

मानव का प्रथम स्वर नारी के अद्वितीय लावण्य को देखकर फूटा होगा—

सुप्रसिद्ध चीनी लेखक चिनताई वान का कथन है:—''मानव ने जब पृथ्वी पर जन्म लिया तो उसको कुछ भी ज्ञान न होगा । वह ज्ञानशून्य उत्पन्न हुआ, लेकिन हाँ ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति उसके अन्दर अवश्य रही होगी, किन्तु वह शक्ति मुखरित अवस्था में न होगी बल्कि वह अज्ञान के घने कुहरे में दबी होगी । स्वर का ज्ञान उसे

सर्व प्रथम कैसे हुआ होगा इस पर हमें विचार करना है। मानव के कंठ से स्वर अपने आप बिना किसी कारण के न फूटा होगा, बल्कि जब पुरुष के सम्मुख सर्वप्रथम नारी ने जब अपनी झाँकी दी होगी, तो उस वक्त पुरुष उसके अनिर्वचनीय लावण्य को देखकर इतना भावों से भर गया होगा, इतना आनन्दित हो उठा होगा कि उसके कंठ से अपने आप स्वर फूट निकले होंगे, लेकिन वे स्वर भाषा शून्य रहे होंगे। उन स्वरों पर भाषा का आवरण न रहा होगा। भाषा का ज्ञान मनुष्य को कब हुआ इस पर गम्भीरता से विचार करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि संगीत ज्ञान के एक हजार वर्ष उपरान्त मानव को भाषा का ज्ञान हुआ होगा। इस एक हजार वर्ष के अन्दर मानव अपना काम स्वरों के द्वारा ही निकालता रहा होगा। लेकिन इन एक हजार वर्षों में मानव की प्रगति अवरुद्ध न रही होगी। प्रगति का क्रम अवश्य चलता रहा होगा। भाषा के ज्ञान के पूर्व ही मानव इतना सभ्य एवं सुसंस्कृत अवश्य हो गया होगा कि वह पेड़ों पर रहने के बजाय पृथ्वी पर जंगलों को साफ कर गृह निर्माण करके रहने लगा होगा तथा पेड़ों की पत्तियों के खाने के बजाय पृथ्वी को साफ करके खेती करने लगा होगा और अन्न पैदा करने लगा होगा। समाजीकरण की प्रथम भावना का भी उनके अन्दर आविर्भाव हो चुका होगा। जब मानव ने अपने को सभ्य करने के लिये इतना परिश्रम किया होगा तो उसी परिश्रम के गर्भ से भाषा धारावाहिक रूप से प्रकट हुई होगी। वास्तव में मानव को श्रम का ज्ञान भाषा के पूर्व ही हो गया होगा। जिस वक्त मानव के कंठ से स्वर निकला होगा, उसी वक्त उसे श्रम का वास्तविक महत्व मालूम हो गया होगा। उस वक्त उसने समझ लिया होगा कि बिना श्रम के जीवन को सुन्दर एवं कलात्मक नहीं बनाया जा सकता, अतएव श्रम की जीवन के अन्दर उच्च स्थापना की। जिसका परिणाम यह निकला कि उसके लिये विकास के द्वार खुलते चले गये। उन्हीं विकास के द्वारों में एक द्वार भाषा का भी है जो कि बड़ा ही महत्वपूर्ण है, जिसने कि उसकी कायाकल्प ही करदी। भाषा का मानव जीवन में मुख्य क्रियात्मक कदम है"।

मानव के सामूहिक श्रम ने ही स्वर की उत्पत्ति की—

मिस्टर जेम्स मिचार केन्ट ने एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी है, जिसका नाम "दी डवलपमेन्ट आफ म्यूजिक" है जिसमें उन्होंने लिखा है, "विश्व में संगीत का जन्म पहिले हुआ या भाषा का। इस पर विचार करने पर हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं कि प्रथम संगीत का जन्म ही हुआ, भाषा तो बहुत बाद में आई। जब मनुष्य का ध्यान सामूहिक श्रम की ओर गया होगा, तभी उसे विकास का वास्तविक मार्ग मिला होगा,

वह सृष्टि के एक स्वाभाविक शृंखला को तोड़ता है। सृष्टि की क्रम शृंखला तो यही है कि बालक रोता हुआ पैदा हो, स्वर के साथ पैदा हो, शब्द के साथ नहीं। बाद में स्वर ही शब्द को ग्रहण करता है, यह ठीक है, किन्तु शब्द स्वर को ग्रहण नहीं करता। मनुष्य को जब भाषा का ज्ञान हुआ होगा तभी उसने संगीत को लिपिबद्ध किया होगा, तभी उसने उसको नियमों से जकड़ा होगा। मानव को संगीत का ज्ञान भाषा से भले ही पहिले हो चुका हो, किन्तु संगीत का सुव्यवस्थित रूप विश्व को तभी प्राप्त हो सका जब कि भाषा का जन्म हो गया था। भाषा के जन्म के पूर्व तो संगीत की प्रगति वेगपूर्ण नहीं थी लेकिन हम यह भी नहीं कह सकते कि संगीत की प्रगति भाषा के अभाव में रुकी पड़ी रही। प्रगति हुई अवश्य, किन्तु उसकी गति बहुत धीमी थी। उसकी गति में तीव्रता भाषा के आविर्भूत होने पर ही आई, यह निश्चित है।

मानव के अन्दर प्रथम स्वर कैसे फूटा और कब फूटा इस पर जब हम विचार करते हैं तब हमें पता लगता है कि जब वह पृथ्वी पर आया, तो उसे यहाँ अच्छा नहीं लगा, यहाँ की हर चीज उसे उपेक्षणीय लगती। पृथ्वी की कोई भी वस्तु उसे आकर्षित न कर सकी। वह उसके अन्दर एक दमघुटनेवाला वातावरण महसूस करने लगा। तब फिर सृष्टिकर्ता ने पुरुष की करुणापूर्ण स्थिति देखी, उसने फिर उसकी मायूसी को समाप्त करने के लिये एवं सृष्टिक्रम चलाने के लिये नारी को भेजा, जो कि सौन्दर्य की अधिष्ठात्री थी। नारी को पाकर पुरुष की सम्पूर्ण मायूसी एवं निराशा खत्म हो गई और उसको देखकर उसके अन्दर भावनाओं का सागर उमड़ पड़ा। उन भावनाओं ने इतना जोर मारा, उनकी लहरें इतनी ऊंची उठीं कि उसके कंठ से स्वर की धारायें प्रवाहित होने लगीं और स्वर-धारा के प्रवाहित होने पर सृष्टिक्रम स्वाभाविक रूप से गतिपूर्ण हो गया। उस स्वाभाविक गति के प्रवाह से भाषा का जन्म हुआ।"

उपर्युक्त तीन प्रकार के अभिमतों को जब हम मनोविज्ञान की कसौटी पर कसते हैं तो हम उन अभिमतों को सत्य एवं खरे पाते हैं; जिनमें कि संगीत को भाषा से पूर्व जन्म की पुष्टि की गई है और वे अभिमत ऐतिहासिक कसौटी पर भी खरे उतरते हैं, क्योंकि इनमें मानव भावनाओं का निर्देशन स्वाभाविक रूप से किया गया है। जिस अभिमत में संगीत और भाषा का जन्म साथ-साथ दिखाया गया है, वह तर्क संगत नहीं बनता, क्योंकि दोनों का ज्ञान साथ-साथ होना मानव स्वभाव एवं उसकी वृतियों के विपरीत है।

भाषा और संगीत का जन्म मानव के अन्दर एक साथ नहीं हुआ, दोनों के जन्म में अवश्य ही कुछ समय का अन्तर होगा। कितने समय का अन्तर होगा, इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि भाषा और संगीत का जन्म मानव के अन्दर एक साथ नहीं हुआ। संगीत का जन्म भाषा से पूर्व हुआ इस दृष्टिकोण की अधिक विद्वानों ने पुष्टि की है। और पुष्टि करने वाले विद्वानों के एक दूसरे के अभिमतों में बहुत थोड़ा सा ही अन्तर है। बहुत से तथ्य तो एक समान ही हैं, और बहुतों का आधार पृष्ठ भी एक ही है। मतलब यह है कि उन सब अभिमतों में बुनियादी तथ्य एक ही है। लेकिन जो अभिमत भाषा के जन्म की पुष्टि करने .वाले हैं, उनके बुनियादी एवं आधारभूत तथ्य एक ही समान है। मौलिक तथ्यों में बहुत कम व्यवधान है। अगर आप संगीत और भाषा की गहराई में प्रवेश करें, तो उसके अतल में पहुंचकर आपको फिर वास्तविक सत्य का पता बड़ी सुगमता से लग जायगा, क्योंकि गहराईयों में विभेद स्पष्ट हो जाता है। विभेद तभी उठते हैं जब कि मानव गहराइयों से हटकर तथ्यों का अपनी पृष्ठ से मूल्यांकन करता है। और अब तो अनेक भाषा शास्त्रियों ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि भाषा के पूर्व ही संगीत का जन्म हो चुका था। मनोविज्ञान के सबसे बड़े आचार्य एवं जन्म दाता डा० फ्राइड ने इस तथ्य को स्पष्ट स्वीकार किया है कि भाषा के पूर्व संगीत का जन्म हो चुका था। सुप्रसिद्ध भाषा विशेषज्ञ मिस्टर जोन आर्थर का कथन है कि "जब हम भाषा और संगीत का तुलनात्मक विवेचन करते हैं, तो हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि भाषा का जन्म कम से कम पांच छै सौ वर्ष बाद हुआ होगा जब कि मानव का स्वर परिपक्व बन गया होगा, और उसकी शक्ल स्थिर हो गई होगी।"

स्वर ही संगीत की आधार पृष्ठ है—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार वेवोरेन माइल्स ने अपनी पुस्तक "दी हिस्ट्री आफ दी आर्ट" में लिखा है:—"प्रारम्भ में मानव जंगली अवस्था में रहा, उसको किसी भी कला अथवा भाषा का ज्ञान न रहा होगा। उस अंधकार युग का हमें कुछ भी पता नहीं चलता। उस वक्त के इतिहास को हमें अनुमान से लिखना पड़ता है क्योंकि अन्धकार युग से सम्बन्धित कोई शिला लेख एवं प्रस्तर मूर्तियां अथवा अन्य कोई चिह्न अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुए हैं, लेकिन जहां-जहां तक हमारी दृष्टि जाती है और जहां तक हम युगों को ऐतिहासिक लड़ी में पिरो सके हैं, उन सबके आधार पर ही हम अन्धकार युग की कल्पना कर लेते हैं। अन्धकार युग का मानव कैसा रहा होगा,

जब हम इस पर विचार करते हैं, तो हमारे सामने मानव के जंगली रूप का ही चित्र आता है। भाषा के ज्ञान की उस युग में कल्पना करना ही अपनी अक्ल का दिवालापन निकालने के समान है। अब रह गई संगीत की बात, तो इसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि यदि हम मानव के स्वरों को ही संगीत मान लें तो हां उसका जन्म भाषा से पूर्व कहा जा सकता है। लेकिन स्वर को संगीत का रूप दिया जा सकता है अथवा नहीं, इस पर जब गहराई से विचार करते हैं, तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि वास्तव में स्वर ही संगीत के रूप को निर्मित करते हैं, बिना स्वर के संगीत का रूप किंचितमात्र भी नहीं बन सकता। फिर आप कहेंगे कि स्वर तो प्राणीमात्र में विद्यमान होता है, तो फिर क्यों न प्राणीमात्र को संगीतज्ञ कहा जाता है। प्रश्न आपका किसी हद तक सही है, लेकिन आपको इसका उत्तर देने से पूर्व संगीत की साईक्लोजी या उसका वैज्ञानिक रूप समझना होगा। दरअसल संगीत इतना व्यापक है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। उसकी यही व्यापकता उसको अन्य कलाओं से उत्कृष्ट बनाती है। आकाश और पृथ्वी के समान ही संगीत भी व्यापक है। इस प्रकार से कोई भी कला व्यापक नहीं। तो हां प्राणीमात्र में अप्रत्यक्ष संगीत व्याप्त है। संगीतज्ञ की पदवी उसी व्यक्ति को प्राप्त हो सकती है जो कि संगीत के अप्रत्यक्ष रूप को प्रत्यक्ष करके प्रवीण हो जाता है। इसीलिये प्राणीमात्र संगीतज्ञ बन सकता है, लेकिन उसके लिये उसे महान साधना करनी होगी, उसके लिये उसे स्वरों का सतत अभ्यास करना पड़ेगा। प्रसुप्त अवस्था में संगीत प्राणीमात्र में रहता है, विश्व का कोई भी पदार्थ आप ऐसा नहीं बता सकते जिसमें संगीत का यह प्रसुप्त रूप विद्यमान न हो। भाषा से पूर्व जो संगीत आविर्भूत हुआ, वह अवश्य प्रसुप्त अवस्था में ही रहा होगा। शास्त्रीय संगीत का जन्म भाषा के जन्म के उपरान्त ही हुआ, यह ऐतिहासिक रूप से भी सत्य है। प्रसुप्त संगीत से हमारा मतलब उस संगीत से है जिसमें स्वरों का विकास शिल्पज्ञता की पृष्ठभूमि पर नहीं किया गया हो। संगीत में शिल्पज्ञता का आविर्भाव भाषा के जन्म के उपरान्त ही हुआ। यह प्रसुप्त संगीत लोकसंगीत बन गया, हां बाद में इस लोक संगीत में भी अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए, वर्तमान लोकसंगीत एवं प्राचीन लोकसंगीत में काफी लम्बा व्यवधान है। पर यह तो निश्चित है कि वर्तमान लोक संगीत प्रसुप्त संगीत के गर्भ से ही पैदा हुआ। और इसी प्रसुप्त संगीत के गर्भ से शास्त्रीय संगीत का भी जन्म हुआ। इस प्रकार चाहे शास्त्रीय संगीत हो अथवा प्रसुप्त संगीत दोनों की आधार पृष्ठ एक ही है, इसलिये ही हम अधिकार पूर्वक कह सकते हैं कि भाषा के पूर्व ही संगीत का जन्म हो चुका था। लोक मानस को प्रवाहित प्रसुप्त संगीत ने ही किया, शास्त्रीय संगीत ने मानव के उच्चवर्गीय स्तर

को प्रवाहित किया। लोक संगीत में भी संगीत के सम्पूर्ण तथ्यों की रक्षा की गई है। अन्धकार युग को आज यदि कोई प्रतिनिधित्व करता है तो वह यही लोक संगीत है।"

अन्धकार युग में संगीत का जन्म हो चुका था—

विख्यात इतिहासकार जाइफो औस्टीन ने अपनी पुस्तक "दी बेक ग्राउन्ड आफ दी म्यूजिक" में लिखा है :—"इतिहास की किरणें अभी उस युग तक नहीं पहुँच पाईं जिसमें कि सृष्टि का जन्म हुआ था, जिसमें कि मानव ने सर्वप्रथम पृथ्वी और आकाश के सुरम्य दर्शन किये थे। इतिहासकार उस युग को अन्धकार युग के नाम से सम्बोधित करते हैं क्योंकि उस युग के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है किन्तु अनुसन्धान करने वालों का प्रयत्न बराबर जारी है और उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है, मतलब यह कि उस अन्धकार युग के लगभग एक चौथाई हिस्सा पर इतिहास अन्वेषकों ने विजय प्राप्त करली है। अब वह एक चौथाई भाग प्रकाशपूर्ण हो गया है, लेकिन जो प्रकाश के तथ्य हमें उपलब्ध हुए हैं उनका सर्वेक्षण जब हम करते हैं तो हम बहुत कुछ शेष अन्धकार युग के बारे में स्पष्ट कल्पना करने में सफल होगये हैं। कल्पना करने का हमारा आधार सुदृढ़ ऐतिहासिक है। इसलिए जो हमारी अनुमान पृष्ठ निर्मित होती है वह भी इतिहास की प्रतिलिपि ही है। तथ्यों का विकास व्यर्थ की कल्पनाओं पर आधारित नहीं होता, क्योंकि, विकास करते वक्त हम इस बात की पूर्ण सावधानी रखते हैं कि हम कहीं गलत दिशा की ओर न बह जायें, इसलिए हम यहाँ जो भी प्रस्तुत कर रहे हैं वे सब तथ्य इतिहास के वायुमण्डल में आगे बढ़े हैं। उस अन्धकार पूर्ण युग में संगीत और भाषा का अस्तित्व रहा होगा अथवा नहीं, जब हम इस पर विचार करते हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा मनुष्य को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाती है, भाषा अन्धकार के आवरण को नष्ट करती है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में भाषा का अस्तित्व नहीं रहा होगा। यदि भाषा का अस्तित्व ही रहा होता तो फिर उस युग के बारे में सब कुछ प्रकाश पूर्ण होता, लेकिन ऐसा नहीं है। किन्तु जब संगीत के बारे में विचार करते हैं कि क्या उस युग में संगीत का अस्तित्व हो सकता है तो इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि धूल में लिपटे हुए हीरे के समान अवश्य ही संगीत उस युग में रहा होगा। उस संगीत पर कलात्मक आभा दैदीप्यमान न होगी, बल्कि वह उस अग्नि के समान रहा होगा जो कि घनी राख से दबी रहती है। जिसका अस्तित्व बाहर से देखने से नहीं मालूम पड़ता। अन्धकार युग के लोगों को यह किंचितमात्र भी पता नहीं होगा कि उनके अन्दर अथवा उनके जीवन के बाहर की दुनियाँ में संगीत व्याप्त है। उन्हें

न मालूम होते हूए भी उनके अन्दर बराबर संगीत अपना काम करता रहा। हम उसको यथार्थ रूप में संगीत नहीं कह सकते क्योंकि उसमें संगीत का कोई भी नियम पालन नहीं किया जाता था। वैसे तो उस वक्त संगीत के लिये कोई भी नियम या विधान निर्मित ही नहीं हुए थे तो फिर पालन होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, पर फिर भी हम उसको यथार्थ संगीत नहीं कह सकते। लेकिन हां आप यह कह सकते हैं कि उन तथ्यों पर आगे चलकर संगीत की भित्त निर्मित हुई। वे तथ्य ही संगीत का अंग बन गये। इस दृष्टिकोण से हमें कहना पड़ता है कि संगीत का जन्म भाषा से पूर्व ही उस अन्धकार युग में हो चुका था, चाहे भले ही आज का मानव उस अन्धकार युग के संगीत को संगीत न माने; लेकिन इससे उस युग की संगीतिक लकीरें मिट नहीं सकतीं, उनका हमें मूल्यांकन करना ही पड़ेगा। बिना उन संगीततिक लकीरों के मूल्यांकन किये आप संगीत का इतिहास पूर्णरूप से नहीं समझ सकते। संगीत के इतिहास को पूर्णरूपेण समझने के लिये आपको युग के प्रथम चरण की कला पर दृष्टि डालनी पड़ेगी, चाहे वह कला कैसी ही अवस्था में रहीं हो। जो अन्धकार युग इतिहासकारों के सामने प्रस्तुत है उस अन्धकार युग के पीछे एक युग ऐसा रहा होगा जिसके सम्बन्ध में हमें कुछ भी पता नहीं, लेकिन जब हम उस युग के सम्बन्ध में भी कल्पना करते हैं तो हमारी दृष्टिपथ पर ठीक वैसा ही चित्र बनता है, जैसा कि अन्धकार युग का बना, बस फर्क इतना रहता है कि अन्धकार युग के चित्र में संगीत स्वर के रूप में विद्यमान था किन्तु अन्धकार युग के पीछे वाले युग के चित्र में संगीत का कोई स्वर नहीं था। मानव एकदम मूक था, प्रकृति एकदम मूक थी, सबकुछ मूकावस्था में था लेकिन संगीत तो मूकावस्था में भी विद्यमान रहता है ऐसा मत मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है। उस मूक संगीत को हर कोई नहीं समझ सकता।"

धार्मिक दृष्टिकोण से भी संगीत का जन्म भाषा से पूर्व हो चुका था—

जब हम संगीत के धार्मिक पहलू पर विचार करते हैं तो उसमें अनेक तथ्य ऐसे हैं जो इतिहास की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते इसलिये इतिहासकार संगीत के धार्मिक रूप की सत्यता को मान्यता प्रदान नहीं करते। धार्मिक दृष्टिकोण से नृत्य के जन्मदाता भगवान शंकर हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम पृथ्वी पर तांडव नृत्य किया था, और उसी तांडव नृत्य से सम्पूर्ण नृत्य निकले। पृथ्वी पर संगीत के प्रचारक नारदजी को माना जाता है, नारदजी से पूर्व संगीत का कोई अस्तित्व नहीं था। संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री वीणापाणि सरस्वती को माना जाता है। ब्रह्मा, बिष्णु और महेश तीनों ही संगीत के महान पंडित थे। विष्णु ने सागर मन्थन के

समय शंख बजा कर संगीत का प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कंठ स्वर के विकास के साथ-साथ अन्य स्वरों की उत्पत्ति हुई, और तब सात स्वरों का सप्तक बना। संगीत के इस धार्मिक पहलू की दृष्टि से भी संगीत का जन्म भाषा से पूर्व हो चुका था। धार्मिक दृष्टिकोण भी हमें यह बतलाता है कि विश्व के प्रांगण में प्रथम संगीत की उज्ज्वल किरणें बिखरीं तत्पश्चात भाषा की रम्य ज्योत्सना छिटकी। जिस दृष्टिकोण से भी आप सोचिये वही दृष्टिकोण आपको यही बतलायेगा कि भाषा का जन्म संगीत के बाद में हुआ लेकिन इससे भाषा का महत्व कोई कम नहीं हो जाता। भाषा का भी अपने स्थान पर विशेष महत्व है और हमारी राय में भाषा किसी प्रकार से संगीत से कम महत्वपूर्ण नहीं है। दोनों के अपने-अपने महत्व हैं। लेकिन जो इतिहास के वास्तविक तथ्य हैं, उनका प्रगटीकरण तो होना ही चाहिए ताकि प्रत्येक वस्तु का इतिहास आप सुगमता से समझ सकें और इस विकास और विज्ञान के युग में हमारी दृष्टि इतनी साफ और उज्ज्वल होनी चाहिए कि हम हर पदार्थ को सही रूप में पकड़ सकें। अब इस तथ्य में धूमिलता की गर्द गुबार नहीं रही कि पृथ्वी पर संगीत का जन्म प्रथम हुआ अथवा भाषा का। विश्व के अनेक इतिहासकार एवं विद्वानों ने एकमत होकर इस तथ्य को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि सङ्गीत का जन्म भाषा से कई युग पूर्व हो चुका था।

भारत की प्राकृतिक अवस्था का संगीत पर प्रभाव

भारतीय संगीत का विकास क्रम प्राकृतिक अवस्था पर निर्भर रहा है—

भारत की प्राकृतिक अवस्था का संगीत पर विशेषरूप से प्रभाव पड़ा है। प्राकृतिक अवस्था और कला का ऐतिहासिक सम्बन्ध रहता है। मनुष्य के कार्यों का मूल कारण, उस देश की प्राकृतिक अवस्था है जिसमें वह रहता है और इतिहास उन प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत करता है जो मनुष्य भौतिक एवं आध्यात्मिक तथा कलात्मक जगत में अपनी दिन प्रति दिन बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करते हैं। देश की प्राकृतिक अवस्था का उसके पहाड़ों, सरिताओं रेगिस्तानों बन-खण्डों जंगलों तथा जलवायु का मानव के स्वभाव, चरित्र एवं उसकी कार्य पृष्ठ पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मानव की क्रियात्मक धारा का प्रभाव उस अवस्था के अनुरूप ही होता है। मानव के कार्य की शृंखलाऐं उसकी प्राकृतिक परिस्थितिओं से प्रभावित रहती हैं। भारतीय संगीत का विकास क्रम पहाड़ों, नदियों एवं मैदानों की स्थिति पर निर्भर रहा है। हिमालय पर्वतमाला एवं हिन्दूकुश के दर्रों ने भारतीय संगीत के इतिहास पर गहरी छाप डाली है। मैदानी संगीत पहाड़ी संगीत से एक-दम भिन्न होगा, और इसी प्रकार पहाड़ों की तराई का संगीत भी मैदानी संगीत से सादृश्यता नहीं रखता। भारत के प्रत्येक प्रान्त के संगीत में परस्पर एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य आगई है। आसाम की पहाड़ियों का संगीत, गंगा नदी के किनारे बसने वाले नगरों एवं ग्रामों के संगीत से नहीं मिलता। आप भारत के चाहें जिस हिस्से में चले जांय, एक भाग का संगीत दूसरे भाग के संगीत से भिन्न होगा। उत्तर भारतीय संगीत, दक्षिण भारतीय संगीत से बिल्कुल नहीं मिलता क्योंकि भारत के इन दोनों भागों को प्रकृति ने पृथक रक्खा है। आज तो विज्ञान के इस युग से आने जाने के मार्ग इतने सुगम होगये हैं कि आप बड़ी सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं। आप भारत के चाहे जिस कोने में आ जा सकते हैं कोई कठिनाई नहीं किन्तु प्राचीन समय में ऐसी बात नहीं थीं। आने जाने के मार्ग बड़े कठिन थे। लोगों को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त के लोगों से बिना मिले हुए वर्षों हो जाते थे। इस प्रकार उनकी कला में भिन्नता आती गई। उनके स्वभाव, कार्य करने की शैली एवं रीति रिवाज में अन्तर पड़ता गया। जातियों के अनेक गिरोह होते गये। अनेक

उपजातियां बनती गईं और उन उपजातियों, उपवर्गों की कला भी एक दूसरे से भिन्न होती गई। कला अनेक वर्गों में विभक्त होती गई। मानव ने कला की कल्पना अपने अपने सिद्धातों एवं आदर्शों के अनुकूल करली। जलवायु ने भी कला के निर्माण में अपना प्रभाव डाला। पहाड़ी संगीत और मैदानी संगीत के प्रस्तुतीकरण, उनकी शृंगारिक प्रसाधनों एवं उनकी अभिव्यक्तिकरण में महान अन्तर पड़ता गया। नदियों के बदलते प्रवाह ने तथा दूसरी नैर्सागिक परिस्थितियों ने संगीत की आत्मा एवं शरीर को एक दम भिन्न बना दिया। भारत को प्राकृतिक दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। १. हिमालय प्रदेश २. बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक विस्तृति निम्नस्थप्रदेश, जिसे हम उत्तरी भारत का मैदान कह सकते हैं ३ दक्षिण का पठार जिसे प्राचीन भारत के लोग "दक्षिण पथ" कहते थे। यह प्रदेश उत्तर में विन्ध पर्वतमाला से एवं बंगाल और अरब सागर के तटों पर स्थित पूर्वीघाट तथा पश्चिमी घाट से घिरा हुआ है। हिमालय प्रदेश पच्छिम में विलोचिस्तान से लेकर पूर्व में ब्रह्मा तथा श्याम तक फैला हुआ है, हिमालय पर्वतमाला के अन्तर्गत कई समानान्तर श्रेणियां सम्मिलित हैं। इन पर्वत श्रेणियों ने भारत को शेष एशिया से पृथक कर रक्खा है तथा बाहरी देशों के साथ उसके व्यापारिक सम्बन्ध को रोक रक्खा है। आज-कल भी चीन तुर्किस्तान तथा तिब्बत से भारत का व्यापार बहुत थोड़ा होता है किन्तु हिमालय ने भारत की बाहरी आक्रमण से रक्षा की है। हिमालय पर्वत में कोई दर्रा नहीं है इसलिये उत्तर से भारत में कोई प्रवेश नहीं कर सकता है लेकिन उत्तर पच्छिम की ओर कुछ दर्रे हैं, जिसमें होकर विदेशी आक्रमणकारी पूर्व काल में आ सके हैं। विलोचिस्तान के दक्षिणी किनारे पर मेकरान नामक एक रेगिस्तानी प्रदेश है जो भारत को ईरान से मिलाता है। सिकन्दर महान ने अपनी एक पल्टन को इसी मार्ग से वापिस भेजा था और इसी मार्ग से सातवीं और आठवीं शताब्दी में अरब के आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया। खैबर का दर्रा, जिसमें होकर काबुल से पेशावर तक रास्ता चला गया है, भारतीय संगीत के इतिहास में महत्वपूर्ण है। बहुत प्राचीन काल से भारत पर आक्रमण करने वाले लोग आर्य, यूनानी, हूण, सिरियन, तुर्क, एवं मंगोल सब इसी दर्रे से होकर भारत में आये, इसका परिणाम यह हुआ कि इस दर्रे के निकटवर्ती भागों का संगीत युद्ध की भावनाओं से परिपूर्ण होगया। ऐसा संगीत अधिक निर्मित होने लगा जो कि मानवों को शान्ति देने के बजाय उनमें जोश एवं उत्साह अधिक भर सके, उनकी दृष्टि को आक्रमणकारियों के प्रति निर्दयी बना सके। संगीत का विकास जो इन भागों में हुआ उसमें मानव भावनाओं की गहराईयां बिल्कुल न उभरीं, उस संगीत में आध्यात्मिक सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं हो सका क्योंकि इसके लिये उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। आध्यात्मक सौन्दर्य तो

निरन्तर चिन्तन एवं साधना के द्वारा प्राप्त होता है, जिसमें कि उन लोगों को कभी अवकाश उपलब्ध न होता था। उनको तो दिन रात आक्रमणकारियों की चिन्ता रहा करती थी। कहीं किसी मार्ग पर युद्ध होरहा है, और कहीं किसी पर उनके जीवन का अधिक से अधिक समय युद्ध चिन्तन में ही जाता था। वे लोग संगीत के सम्बन्ध में गहराई से कभी न सोच सके, अतएव उनका संगीत शिल्पज्ञता एवं मानव भावनाओं के दृष्टिकोण से उथला बन गया। हिमालय प्रदेश के संगीत में आप को मानव जीवन की सौष्ठवता, आत्मा की दिव्यता, भावों की उच्चता एवं प्रस्तुतीकरण की सुरम्यता का दिग्दर्शन नहीं होगा। उसकी भूगोलिक स्थिति ने उसके संगीत पर पूरा-पूरा प्रभाव डाला है। इस प्रदेश के लोगों में जो संगीत निर्मित किया उसमें उत्तेजक भावों की प्रधानता रही, वे संगीत में वह उज्ज्वल प्रकाश पैदा नहीं कर सके जिसके द्वारा वे विकास की पावन मंजिल पर पहुँच पाते।

पंजाबी संगीत में हमें आत्मिक सौन्दर्य का जमाल नहीं दीखता—

इन दर्रों के द्वारा जो विभिन्न प्रकार के आक्रमणकारी आते थे वे भी अपने संगीत की कुछ न कुछ छाप अवश्य ही यहाँ के लोगों के हृदयों में छोड़ जाते थे। इन विदेशियों का संगीत भी कोई गम्भीर एवं उच्च संगीत नहीं होता था। क्योंकि ये स्वयं भी तो आक्रमणकारी थे। वे भी अपने साथ ऐसा ही सामान्य संगीत लाए, जो उनके सैनिकों में रुहानी ताकत के वजाय फौजी जोश, फौजी उमंग भर दे। इन विदेशी आक्रमणकारियों को भी तो अपने संगीत के विषय के लिए समय नहीं मिलता होगा। अतएव उनके सामान्य संगीत ने भारत के इस प्रदेश पर अपनी सामान्य स्थिति का प्रभाव डाला, जो कि शीघ्र मिट भी गया। वह प्रभाव स्थाई नहीं था। उस प्रभाव में न तो आत्मिक शक्ति थी, और न विकास पूर्ण आभा का प्रस्फुटन था। इन हमलों का पंजाब के संगीत पर भी विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। पंजाब प्रान्त चूँकि इस प्रदेश के निकट पड़ता है अतएव पंजाब प्रान्त के निवासियों का जीवन भी सदैव संकट पूर्ण रहा। उन्हें भी बार बार आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ता था, उन्हें हमले का भय बराबर बना रहता था, अतएव वे संगीत कला पर कोई अनुसंधान न कर सके और न उन्होंने संगीत कला के कला एवं आध्यात्मिक पक्ष को सुदृढ़ वनाने का प्रयत्न किया। इस ओर सोचने बिचारने का कभी उन्हें समय ही प्राप्त न हुआ। कठोर परिश्रम करने के बाद वे ऐसा मनोरंजन करना चाहते थे कि जिससे उनके थके हुए स्नायुओं को सुगमता से आराम मिल सके, उन्हे स्फूर्ति एवं चेतना मिल सके। अतएव संगीत सृजन में यहाँ के संगीत निर्माताओं ने इस बात का पूरा पूरा

ध्यान रक्खा। उन्होंने पंजाबी संगीत को अधिक बोझल नहीं बनने दिया। उसका उठान ऐसा किया गया कि जिससे वह प्रेक्षकों के समझ में आ सके प्रेक्षक पंजाबी संगीत को सुन कर जीवन की कोई गहरी समस्या में न उलझ जाए। वे अपने लड़ाई में थके हुए मस्तिष्क को शीघ्र से शीघ्र आराम पहुँचा सके। अधिक से अधिक अपना मनोरंजन कर सके। संगीत के तीनों अंग गायक वादन एवं नृत्य इसी प्रकार के साँचे में ढले। पंजाबी नृत्य, पंजाबी गायन, और पंजाबी वादन सभी में जीवन को उफनाने वाले भावों की बाहुल्यता हो गई। पंजाबी संगीत में आपको सौन्दर्य का वाह्य चित्र अधिक मिलेगा, आन्तरिक बहुत कम। पंजाबी संगीत का आन्तरिक उठान इतना कम हुआ है कि वह संगीत के वाह्य उठान में दब जाता है। और इसी लिए ही पंजाबी संगीत को सुन कर यौनिक भावनायें अधिक जागृति होती है। वह मानव की "सेक्सउलटी" को ऊपर उठाता है, यानी वासना को उभारता है। यह सब उसके वातावरण का ही प्रभाव है। दरअसल बात यह है कि पंजाबियों के कठोर परिश्रम से अवकाश नहीं मिला कि वे यह कल्पना कर सकने कि संगीत को कितना गहरा किया जा सकता है, इसको कितना फैलाया जा सकता है, इसके मौलिक तत्वों को किस प्रकार मोड़ा जाय, किस प्रकार उसमें घुमाव दिया जाय कि उसकी शिल्पज्ञता एवं कलात्मकता उच्चकोटि की बन जाय।

हिन्दूकुश के दर्रों के निकटवर्ती भागों में जो संगीतपन था, उसमें भी कला की गहराई, भावों की सुरम्यता, मानव हृदय को निर्मलता एवं आध्यात्मिक तत्वों का विकास बिल्कुल नहीं हो पाया। उस संगीत की पृष्ठभूमि मानव जीवन की सस्ती भावनाओं पर आधारित हुई। प्रकृति ने इस भाग के निवासियों को स्वाभाविक युद्ध एवं वासनाप्रिय बना दिया। जलवायु ने यहाँ के लोगों का शारीरिक उठान मैदानी लोगों की अपेक्षा शीघ्र किया। मैदानी लोगों में तरुणता की चमक सोलह वर्ष की वय में आ जाती है, किन्तु यहाँ के लोगों में दस बारह वर्ष की वय में ही तरुणता अपनी रौनक दिखला देती है। यहाँ का दस बारह वर्ष का लड़का पूर्ण जवान मालूम पड़ेगा। इन परिस्थितियों का संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने संगीत का ऐसा विकास किया कि जिसमें वे मानव की तरुण भावनाओं के रम्य वायु मन्डल को शीघ्र पकड़ सके। इन्ही प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण वे अभी तक अपने संगीत को नवीन साँचे में नहीं ढाल पाये। उन्मादित भावनाओं का भी विकास इस भाग के संगीत में हुआ। आपको यहाँ का संगीत ऐसा नहीं मिलेगा जो कि मानव की आत्मा का विराट रूप प्रस्तुत कर सके, जो कि मानवता को उच्च पराकाष्ठा पर पहुँचा सके, और जोकि विश्व में एक अभिनव क्रान्ति कर सके।

वर्गीय संगीत की उत्पत्ति—

इन सभी दर्रों के निकटवर्ती प्रदेशों के निवासियों की प्राकृतिक अवस्था ने उन्हें संगीत के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ने दिया, उन्हें इतना समय ही न मिल सका कि वे संगीत कला की गहराई में प्रवेश कर पाते, संगीत कला का अन्वेषण करते। उन्होंने संगीत का महत्व अपने जीवन में मनोरंजन तक सीमित कर लिया था। मनोरञ्जन के अतिरिक्त संगीत का महत्व सिर्फ युद्ध के लिए ही होता था, इससे अधिक और आगे उसकी सीमा बिल्कुल नहीं थी, क्योंकि प्रकृति ने यहाँ के निवासियों को ऐसे वातावरण में रक्खा कि ये लोग जीवन का विचार प्रगति की दुनियां में आगे न कर पाए। उन्होंने अपने प्रगति के विश्व को सीमित कर लिया था। उनकी प्रगति की सीमा को प्रकृति ने बहुत छोटा बना दिया था। इसीलिए उनके संगीत की विस्तार सीमा भी छोटी रही, चूंकि उनके जीवन का अधिक से अधिक भाग लड़ाई लड़ने में बीता, अतएव उनके जीवन में लड़ाई का महत्व सर्वोपरि रहा। इन भागों का संगीत वर्गीय संगीत हो गया। अनेक गिरोह, अनेक वर्ग इन दर्रों के निकट रहते थे, प्रत्येक गिरोह का संगीत दूसरे गिरोह से नहीं मिल पाता था। वे निकट-निकट रहते हुए भी परस्पर मिलते नहीं थे। दोनों गिरोहों के बीच सिर्फ एक पहाड़ी अथवा नदी का अन्तर रहता था। परन्तु ये कभी एक दूसरे से आपत्तिकाल में भी मिलते नहीं थे। वे एक दूसरे को दुश्मन समझते थे। इसी लिए विदेशी लोगों को इन दर्रों के द्वारा आक्रमण करने में बड़ी सुगमता प्राप्त हुई। अगर इनमें एकता होती, इनके जीवन का विकास एकसा होता, तो फिर इनकी कला का विकास भी एक ही तरह का हुआ होता, तब तो इनकी संगठित शक्ति महान हो जाती और वे जीवन की लड़ाई में सफल होते, परन्तु प्राकृतिक परिस्थितियों ने उन्हें परस्पर एक दूसरे वर्ग से मिलने नहीं दिया, इसीलिए उनका संगीत भी वर्गीय संगीत बन गया, जिसमें वर्गीय खूबियाँ तो रहीं लेकिन सम्पूर्ण प्रान्त की विशेषतायें आगे अभिव्यक्ति न हो पाई। यहाँ का "पासक नृत्य" "उपफल नृत्य" और "उत्सा नृत्य" युद्ध की भावनाओं को उभारने में बड़े प्रसिद्ध हैं। इन नृत्यों में भावनात्मक मुद्राओं का विशेष रूप से प्रदर्शन किया जाता है। साथ ही साथ इन नृत्यों में कोई ऐसी प्राचीन कथा गुँथी होती है जो मानव की प्रसुप्त वृतियों को उत्साह पूर्ण बना सके।

"दोआबा" की पावन भूमि ने संगीत-निर्माण में अपना विशेष क्रियात्मक योग दिया—

निम्नस्थ प्रदेश—उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में दक्षिणी पठार के बीच

निम्नस्थ प्रदेश स्थिति है । इस भाग में भारतवर्ष के बहुत उर्वर प्रदेश शामिल हैं । सिन्ध और गंगा का मैदान जो बड़ी-बड़ी नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है, इस प्रदेश का विशेष महत्वपूर्ण भाग है । यह वही "मध्य देश" है जिसका विवरण हमें हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों में प्राप्त होता है । यह प्राचीन काल के ऋषि, मुनियों, सूर्य वंशी एवं चन्द्र वंशी क्षत्रियों, देवताओं तथा रामायण एवं महाभारत के योद्धाओं का निवासस्थान था । इसी भाग में काशी, अयोध्या, मथुरा, कन्नौज, हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ स्थान हैं, यहीं पर बुद्ध भगवान ने अपना बौद्ध धर्म का उपदेश किया था, यहीं से धर्म प्रचारकों के दल उनके दिव्य सन्देश को दूर दूर के देशों में ले गए थे । यह विस्तृति मैदान सिन्ध, गंगा और यमुना तथा ब्रह्मपुत्र के जल से सींचा जाता है । समस्त प्रदेश बड़ा ही उर्वर एवं समृद्धिशाली रहा है, इसीलिए विदेशी आक्रमण कारियों को सदैव इस भाग का प्रलोभन रहा है । पहले पहल इसी भाग में आर्य लोग आए और उन्होंने अपनी बस्तियाँ स्थापित की । बाद में सभी विजेतागण यहाँ आकर बसे तथा उन्होंने बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किए । मुसलमान और अंगरेजों ने भी इसी भाग पर अपने राज्य स्थापित किए । यह "दो आबा" की भूमि बड़ी ही महत्व पूर्ण रही । भारतीय संस्कृति के विकास में गंगा एवं यमुना नदी ने बड़ा भारी योग दिया । यहीं पर महान आचार्य, महान पंडित, कला विशेषज्ञ, संगीतज्ञ एवं साहित्यकार पैदा होते रहे । इस सम्पूर्ण भाग में संगीत का विशेष रूप से विकास हुआ । चूँकि यहाँ लोग सम्पन्न एवं समृद्धि थे, उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी । उन्हें पंजाबियों की तरह कठोर परिश्रम नहीं करना पड़ता था, अतएव उनके पास संगीत साधना के लिए पर्याप्त समय था ! उन्होंने संगीत को सीमित दायरे में परिवर्तित नहीं किया, उन्होंने इसकी नींव बहुत गहरी रक्खी । उन्होंने संगीत कला के बाह्य तत्वों पर ही विवेचन नहीं किया, बल्कि उन्होंने संगीत के अन्तर्जगत-विश्व का भी पूर्ण रूप से अध्ययन किया, और उसके आत्मिक सौन्दर्य को खूब परखा, एवं उसके अपूर्व रूप को शिल्पज्ञता की लड़ी में पिरोया । इस भाग की प्राकृतिक अवस्था इतनी सुन्दर और आकर्षक थी कि यहाँ के निवासियों को विभिन्न कलाओं पर विकास करने का बड़ा सुन्दर अवसर मिला । उनके सामने कोई परेशानी न थी । उनके जीवन में शान्ति एवं समृद्धि का ही विशेष महत्व था, और उसीके अनुरूप उनकी समस्त कलायें भी हुई । यहाँ के निवासियों ने अन्य कलाओं की अपेक्षा संगीत पर विशेष अपना ध्यान केन्द्रित किया, क्यों कि संगीत को उन्होंने ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन मान लिया था । उनका ऐसा विश्वास था कि उनको ईश्वर के साक्षात दर्शन संगीत के अभूतपूर्व माध्यम से ही हो सकते हैं, अतएव उन्होंने इस ओर विशेष ध्यान दिया ।

दो आबा के संगीत में हमें आध्यात्मिक तरुणता पूर्णरूप से मिलती है—

गंगा तट के किनारे-किनारे यदि आप चले तो आपको भारत के बड़े-बड़े सुन्दर नगर मिलेंगे, आपको एक ऐसे प्रदेश में होकर जाना पड़ेगा जो रमणीक दृश्यों, अधिकता के साथ उगे हुए पेड़ पौधों, तथा मीलों तक फैले हुए प्रचुर फसलों से लदे हुए हरे-हरे खेतों से, जो करोड़ों व्यक्तियों को भोजन तथा जीवन प्रदान करते हैं, भरा होगा। यही कारण है कि भारत के लोग हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक इसे एक पवित्र नदी मान कर पूँजते हैं तथा इसके जल में स्नान करने को स्वर्ग प्राप्ति का मुख्य साधन समझते हैं। ऐसे रमणीक दृश्यों तथा ऐसे अनिर्वचनीय वातावरण का यहाँ की संस्कृति पर विशेप प्रभाव पड़ा। संगीत में सौन्दार्यात्मक भावों के विकास की ओर विशेप ध्यान दिया गया। ईश्वर आराधना का संगीत मुख्य सम्बल बन गया। संगीत मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश हुआ। उसका दायरा आकाश और पृथ्वी के समान व्यापक बनाया गया। संगीत की कल्पना यहाँ के निवासियों ने विलासता की सीमा तक नहीं की, क्योंकि संगीत को ये लोग बहुत पवित्र समझते थे। जिस प्रकार उनकी दृष्टि में गंगाजल का महत्व था, ठीक उसी प्रकार वे संगीत को समझते थे, क्योंकि संगीत उनके लिए पृथ्वी और स्वर्ग का स्वर्णिम मार्ग प्रशस्त करता था। इन लोगों ने संगीत को धार्मिक रूप प्रदान किया, जिससे उसकी महत्ता अद्वितीय होगई। उसकी आलोक ज्योति बढ़ गई। संगीत के द्वारा अनेक व्यक्तियों को मुक्ति भी प्राप्त हुई; आत्मशान्ति का संगीत एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता था। सम्पूर्ण भारत में संगीत का जितना उच्च विकास इस दोआब की भूमि में हुआ, उतना अन्यत्र भाग में नहीं हो पाया। सुप्रसिद्ध विद्वान ओगोन रास्क ने (The Histry of the Indian music) में लिखा है—
"गंगा-यमुना की दोआब की भूमि वास्तव में शास्त्रीय संगीत के विकास में प्रकाशस्तम्भ बनी। इस उर्वर भाग के निवासियों को प्राकृतिक सुषमा का अलभ्य उपहार मिला हुआ है, इसलिए यहाँ का संगीत श्रेष्ठ बन सका। और इस पावन भूमि में जितने महान कलाकार पैदा हुए, उतने भारत के अन्य भाग में न हो सके। इसका मुख्य कारण यह रहा कि यहाँ के निवासियों को अर्थ उपार्जन में जीवन संवर्प बहुत कम करना पड़ता था। वे सम्पन्न थे। उन्हें कला साधना के लिए पर्याप्त समय मिल जाया करता था, अतएव उन्होंने अपने जीवन का अधिक से अधिक भाग कला साधना में लगाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी संगीत कला इतनी उच्चकोटि की होगई, कि वह मानव जीवन की अनैतिकता की घनी धुन्ध को भी खत्म कर सकती थी। वास्तव में भारत के इसी भाग के संगीत ने सम्पूर्ण भारत के संगीत-गौरव की प्रतिष्ठा रखली।"

उत्तर भारत का संगीत अपने प्राकृतिक सौन्दर्य की अपूर्वता के कारण उच्चता की मंजिल पर पहुँचा—

लोकप्रिय इतिहासकार माइसो जोन्स ने अपनी पुस्तक (The Refflections of Indian music) में लिखा है :—"उत्तर भारत का संगीत अपने प्राकृतिक सौन्दर्य की अपूर्वता के कारण उच्चता की मंजिल पर पहुँचा। यहाँ के निवासियों ने संगीत को धर्म का अंग बना कर उसकी अपूर्वता को बढ़ा दिया और इसी प्रशस्त दृष्टिकोण को लेकर यहाँ के लोगों ने संगीत साधना की, और उन्हें अभिनव-अभिनव पथ प्राप्त हुए। संगीत के क्षेत्र में जितनी उन्नति भारतवर्ष के इस भाग ने की, उतनी अन्य किसी भाग ने नहीं की। प्राकृतिक साधनों ने यहाँ के निवासियों को एक ऐसी नवीन दृष्टि प्रदान की कि वे जिसके सहारे सगीत में नूतन क्रान्ति कर सके, प्राकृतिक वातावरण ने उनकी कल्पना को इतना प्रशस्त बना दिया कि वह नवीन-नवीन मार्ग आविर्भूत करने में सफल हुए।"

उत्तर भारत का संगीत विजेताओं के संगीत में मिल गया—

लेकिन उनको अपनी अर्थ सम्पन्नता एवं कला सम्पन्नता के लिए जोखिम भी उठानी पड़ी। यही भाग विदेशियों की दृष्टि में "सोने की चिड़िया" के समान मूल्यवान था। जो भी विदेशी आक्रमणकारी भारत में आता, उसकी दृष्टि इस सम्पन्न भाग पर अवश्य लगी रहती। अतएव यह समृद्धिशाली भाग कब तक बचा रहता। चूँकि इस भाग के लोग कला मर्मज्ञ थे कला साधक थे, वे योद्धा नहीं थे, इसलिए वे लड़ाई में विदेशियों को हरा न सके। इस भाग के लोगों ने तो अपना सम्पूर्ण समय संगीत विकास में लगा दिया था, और इससे जो समय बचता, वह अन्य कलाओं के विकास में खर्च करते थे। युद्ध की तरफ उनका ध्यान कतई नहीं गया था। वे तो अपने को सुरक्षित समझते थे। पर इसी गुमराही ने उनको गुलाम बना दिया। गुलाम बनने पर उनकी संस्कृति भी अछूती न रही। संगीत पर विदेशियों का विशेष गहरा प्रभाव पड़ा। उत्तर भारत का संगीत, विजेताओं के संगीत में मिल गया, वह अपनी सत्ता पृथक न रख सका। इसलिए इस भाग के संगीत ने समय-समय पर अनेक रूप लिए। आर्यों के आगमन से इस भाग के संगीत में अन्तर पड़ा, और फिर मुसलमानों के आगमन से इस भाग के संगीत ने पुनः अपना रूप बदला। यहाँ का मौलिक संगीत नये-नये रूपों में इतना दब गया, कि अब उसका कुछ पता नहीं चलता, कि उत्तर भारत का यथार्थ संगीत कौन सा था? इस सम्बन्ध में बहुत खोज की गई है, किन्तु अन्वेषक किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाए हैं। खैर जो कुछ भी हो इस भाग

का संगीत अपनी मौलिक आभा खोने पर भी अपनी भारतीयता की उच्च पृष्ठभूमि को नष्ट न कर सका, आज भी इस भाग का संगीत अपनी उच्च परम्परा के गौरव को लिए हुए है। कहने का मतलब यही है कि किसी भी देश का संगीत अपने चारों ओर के बिखरे प्राकृतिक वातावरण की अवहेलना नहीं कर सकता। उसके विकास में प्राकृतिक साधनों का अवश्य ही क्रियात्मक हाथ रहता है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेकराइडो का कथन है—"गंगा-यमुना के निवासी संगीत के महान पंडित थे, वे और भी अनेक कलाओं के मर्मज्ञ थे। वे दर्शन शास्त्र के महान ज्ञाता थे ? उनको युद्ध करना नहीं आता था। इसीलिए उनकी विदेशी आक्रमणों के समय हार हुई। लेकिन हारने पर भी उनकी कला प्रियता नष्ट नहीं हुई।"

भारत का रेगिस्तान—राजपूताना है जो उत्तर-पूर्व में पंजाब तथा उत्तरप्रदेश से, दक्षिण-पूर्व में मध्य भारत से, पच्छिम में गुजरात एवं सिन्ध से घिरा हुआ है। राजपूताना को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। अरावली पहाड़ के उत्तर का भाग रेतीला एवं ऊसर है, इसमें फसल पैदा नहीं होती, लेकिन अरावली के दक्षिण पूर्व का भाग उपजाऊ है। इसके अन्दर मालवा का प्रदेश है जो सदा हरा-भरा रहता है। अर्वरी पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी माऊन्ट आबू सिरोही राज्य में सम्मिलित है। यह चोटी समुद्र तल से ५,६५० फुट ऊँची है। इस मरु प्रदेश की प्राकृतिक अवस्था ने भारतीय संगीत पर विशेष प्रभाव डाला है। मरु प्रदेश के लोग संगीत में विशेष विकास नहीं कर सके, लेकिन फिर भी इनके जीवन में संगीत का महत्व था। यहाँ के लोग प्राकृतिक अवस्था के कारण संगीत साधक तो नहीं हो पाए, क्योंकि इनको संगीत साधना के लिए अवकाश नहीं मिलता था। इनके जीवन का बहुत सा भाग तो जीवन निर्वाह की समस्याओं को हल करने में चला जाता था। राजस्थानी संगीत को यदि आप देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि उससे आध्यात्मिक पुट की कमी है, जीवन की अनेक रंगरेलियों से वह परिपूर्ण है, इसका कारण यह रहा कि राजस्थानी लोग संगीत को आनन्द प्रमोद का साधन समझते थे। वे इसको ईश्वर प्राप्ति का प्रशस्त सम्बल नहीं जानते थे। उन्होंने संगीत को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश नहीं कराया, नृत्यों का जो आविर्भाव हुआ, उनमें जीवन की अभिव्यक्ति बहुत कम है, शिल्पज्ञता का उभार दिखाया गया है।

राजस्थानी संगीत में आपको आध्यात्मिक-पुट का अभाव मिलेगा—

राजस्थानी नृत्यों में आपको मानव जीवन का जो चित्र मिलेगा, उसमें जीवन के अन्धकारपूर्ण भाग का ही चित्रण होगा, संघर्षों का प्रस्तुतीकरण होगा। लेकिन हाँ राजस्थानी संगीत में आपको जो सबसे बड़ी बात मिलेगी वह यह कि इसमें वीर रस का बड़े सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया है। अनेक गौरवशाली गाथायें राजस्थानी नृत्यों में गुम्फित हैं। जिनका मानव हृदय पर बड़ा ही सजीव प्रभाव पड़ता है। राजस्थानी संगीत के समान आपको वीर रस की झाँकी अन्यत्र कहीं न मिल सकेगी, हाँ पंजाबी संगीत में भी आप थोड़ी सी झलक वीर-रस की पा सकेंगे, किन्तु वह शृङ्गारिक वातावरण में इतनी दब गई है कि वह कला की पृष्ठभूमि पर उभर नहीं पाई है। यहाँ के लोगों ने संगीत के क्षेत्र में कोई नवीन-नवीन प्रयोग नहीं किए, जिस प्रकार उत्तर भारतीय लोगों ने किए, और विशेष रूप से "दो आबा" वाले निवासियों ने। परन्तु फिर भी राजस्थानी संगीत का रूप इतना प्रदीप्त हो गया है कि वह श्रोताओं एवं दर्शकों के हृदयों पर आच्छादित हो जाता है। हमें राजस्थानी संगीत में मानव जीवन की मुस्कराहटों की अपेक्षा रोदन अधिक मिलता है। कला का उच्च ज्ञान चाहे भले ही आपको राजस्थानी संगीत में न मिल सके, किन्तु मानव जीवन की उच्चता एवं पावन चरित्र का स्वर्णिम गौरव अवश्य ही प्रस्फुटित पुष्प के समान खिलता हुआ दिग्दर्शित होगा। बस यही राजस्थानी संगीत की सबसे बड़ी विशेषता है, इसी गौरवशाली विशेषता के आवरण में उसकी अन्य कमियाँ प्रच्छन्न हो जाती हैं। वास्तव में प्राकृतिक स्थितियों ने राजस्थानवालों को संगीत के क्षेत्र में विशेष ऊपर न उठने दिया। उन्होंने संगीत में अपने जीवन की अनुभूतियों का ही विशेष रूप से चित्रण किया, इसीलिए उनके संगीत में गहराई न आ सकी। जिस प्रकार उनके प्रदेश में कोई गहराई नहीं। लेकिन आपको इस गहराई का अभाव खलेगा नहीं, इसकी पूर्ति मानव के चरित्र की उज्ज्वलता से करदी गई है, जिससे राजस्थानी संगीत में एक ऐसी चमक पैदा हो गई कि जो बरबस मानव को आत्म विभोरित बना देती है, जोकि मानव को अपनी अतीत के पुनीत गौरव की ओर ले जाती है।

दक्षिण भारत—

यह दक्षिण का प्रदेश, जिसका नाम प्राचीनकाल में दक्षिण पथ था, विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में स्थिति है और प्रायद्वीप के आकार का है। यह एक पठार है जो २००० फुट ऊँचा है तथा पूरब से पश्चिम की ओर ढालू है। यह तीन तरफ

पहाड़ों से घिरा हुआ है। पूर्व में पूर्वी घाट, पश्चिम में पश्चिमी घाट तथा उत्तर में विंध्य एवं सतपुड़ा पहाड़ों की दुहरी पङ्क्तियाँ हैं। ये दोनों श्रेणियाँ दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से पृथक करती हैं। दक्षिण के बिल्कुल किनारे पर स्थिति भूभाग को कभी-कभी सुदूर दक्षिण कहा जाता है। उसका अपना अलग इतिहास है। चूँकि दक्षिण की ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है, अतएव इस प्रदेश की अधिकाँश नदियाँ, जैसे महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी एवं तुंगभद्रा पूर्व की ओर बहती हैं तथा बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। नर्मदा और ताप्ती पश्चिम की ओर बहती हैं और अरब सागर में गिरती हैं। त्रिभुजाकार पठार के दोनों तरफ पर्वत श्रेणियाँ हैं जो पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्र तट के समानान्तर चली गई हैं। पश्चिमी घाट खम्भात की खाड़ी के दक्षिण में समुद्र तट के साथ-साथ नीचे चला गया है। इसमें मराठे बसते हैं। इस संकीर्ण भूभाग का उत्तरी भाग कोंकड़ एवं दक्षिणी भाग मलाबार का तट कहलाता है। महाराष्ट्र डामन से नागपुर तक लम्ब रूप में फैला हुआ है तथा नागपुर से दक्षिण पश्चिम की ओर करवार तक चला गया है। इस देश के तीन भाग हैं—(१) कोंकड़ (२) मावलों का देश (३) पूर्व का चौड़ा प्रदेश जिसे "देश" कहते हैं। पूर्व का समुद्र तट वाला मैदान, जो पूर्वी घाट तथा बंगाल की खाड़ी के बीच स्थिति है तीन भागों में बांटा जा सकता है—(१) उत्तरी भाग जिसमें महानदी का डेल्टा सम्मिलित है (२) मध्य भाग जो गोदावरी एवं कृष्णा नदी के डेल्टाओं से बना है (३) दक्षिणी भाग जो कर्नाटक कहलाता है। दक्षिण का ऊँचा पठार तामिल देश है जिसमें द्रविण जाति के लोग रहते हैं।

किसी भी प्रदेश के संगीत के इतिहास को समझने के लिये उस प्रदेश की भूगोलिक पृष्ठभूमि को प्रथम पूर्ण रूप से समझ लेना निहायत ही आवश्यक है, वरना आप उस प्रदेश के संगीत के इतिहास को ठीक-ठीक नहीं समझ सकेंगे। संगीत के इतिहास को समझने के लिए अनेक ऐसी बातें जाननी होती हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध संगीत से नहीं होता, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उनका सम्बन्ध संगीत से होता है, अतएव संगीत इतिहास को समझने के लिये आपको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तथ्यों का अवलोकन करना है, और उन तथ्यों का भी अनुशीलन करना है कि जिनका दूरगामी भी सम्बन्ध संगीत से है।

दक्षिण भारत अपने संगीत की पवित्र थाती को सुरक्षित रख सका—

दक्षिण भारत एक प्रकार से उत्तर भारत से पृथक सा ही रहता है, प्राकृतिक अड़चलों ने दोनों भागों को एक दूसरे से बहुत कम मिलने दिया, अतएव दोनों

भागों में जो विकास हुआ वह भी लगभग एक दूसरे से पृथक ही रहा। दक्षिण भारत में कई प्रकार का संगीत पाया जाता है, लेकिन मुख्य रूप से कर्नाटकी संगीत अधिक लोकप्रिय है। दक्षिण भारत के संगीत में तथा उत्तर भारत के संगीत में बिल्कुल समानता नहीं रहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि उत्तर भारत पर अनेक आक्रमण होते रहे अनेक विजेतागणों के संरक्षण में उत्तर भारत को गुजरना पड़ा जिससे उत्तर भारत के संगीत पर विजेताओं के संगीत का प्रभाव पड़ता गया। उत्तर भारत का संगीत विदेशियों की संस्कृति के अनुरूप ढलता गया। परन्तु यह आक्रमणकारी दक्षिण भारत में न पहुँच सके। दक्षिण भारत को जीतने में प्राकृतिक कठिनाईयां विशेष रूप से थी। अतएव वे अपनी संस्कृति को विदेशी सभ्यता से बचा सके। आज भी दक्षिण प्रदेश के संगीत में जितनी भारतीयता को पावनता एवं मौलिकता पाई जाती है, उतनी उत्तर भारतीय संगीत में नहीं मिलती, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उत्तर भारत का संगीत दक्षिण भारत के संगीत से हीन है। कहने का मतलब यही है कि इन विन्ध पहाड़ियों की शृंखलाओं ने दक्षिण भारत के संगीत की विदेशियों से रक्षा की। और उसके पुनीत गौरव को सदैव अक्षुरग्ण रखने में पूर्ण सहायता प्रदान की। आज उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय दो प्रकार का संगीत भारत में चल रहा है।

महाराष्ट्रीय संगीत में मानव जीवन की जो सादगी और कला की जो शिल्पज्ञता प्राप्त होती है वह कर्नाटकी संगीत में नहीं मिलती—

दक्षिण भारत का संगीत उत्तर भारत के संगीत से क्यों सादृश्यता नहीं रखता, क्यों नहीं दोनों की धारा एक हुई, इसका प्रधान कारण यही है कि दोनों भागों को उँची-उँची पहाड़ियों ने, नदियों ने विभक्त कर दिया था। यह पर्वत शृंखलाएँ इतनी ऊँची थी कि एक भाग के लोग दूसरे भाग में नहीं जा सकते थे, क्योंकि उस वक्त में आवागमन के मार्ग आजकल के समान सुगम नहीं थे। अतएव दोनों भागों में जो संस्कृति, जो सभ्यता पनपी, वह एक दूसरे से पृथक रही। दक्षिण भारत के संगीत एवं रहन-सहन में परस्पर काफी एक दूसरे भाग से परिवर्तन पाया जाता है। जैसे महाराष्ट्रियों का पहनावा कर्नाटक के निवासियों से बिल्कुल नहीं मिलता। और न उनकी परस्पर भाषा ही मिलती है। फिर संगीत ही भला कैसे मिल सकता था, महाराष्ट्रीय संगीत में मानव जीवन की अनुभूतियों का जितना सफल चित्रण किया है, उतना कर्नाटको संगीत में नहीं मिलता। कर्नाटकी संगीत में हमें कला का आत्म सौन्दर्य अधिक ऊपर उठा हुआ दीखता है, किन्तु महाराष्ट्रीय संगीत में अनु-

भूतियों एवं कला की आन्तरिक सुषमा, दोनों का अनुपातिक उठान हुआ है। लेकिन कर्नाटकी संगीत में हमें आत्मा की दिव्यता की गहराई जितनी प्राप्त होती है, मानवता का जितना उच्च निखार मिलता है उतना महाराष्ट्रीय संगीत में नहीं प्राप्त होता। किन्तु महाराष्ट्रीय संगीत में मानव जीवन की जो सादगी, कला की जो शिल्पज्ञता प्राप्त होती है वह कर्नाटकी संगीत में नहीं प्राप्त होती। कहने का तात्पर्य यही है कि भारत के प्रत्येक प्रदेश का संगीत अपनी भूगोलिक अवस्था के अनुकूल ही विकसित हुआ। पश्चिमी घाट के सघन जंगलों, टेढ़े-मेढ़े मार्ग-खण्डों ने महाराष्ट्र प्रदेश को दुर्जेय बना दिया। ऊँची नीची पहाड़ियों ने महाराष्ट्र प्रदेश को युद्ध प्रिय बना दिया। महाराष्ट्रियों के संगीत में युद्ध की भावनाओं को राजस्थानी संगीत के समान ही स्वाभाविक रूप से सफल चित्रण किया है। लेकिन भारतीय संगीत में इतनी बड़ी विभिन्नता होते हुए भी उसका मौलिक आधार एक ही है, भारतीय संगीत को जहाँ जैसा प्राकृतिक आधार मिला, वहाँ वैसा उसने विकास किया।

"भारत की सामाजिक संस्कृति" का विवेचन करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—"काफी लम्बे इतिहास के अन्दर भूगोल ने भारत को जो रूप दिया उससे वह एक ऐसा देश बन गया जिसके दरवाजे बाहर की ओर से बन्द थे। समुद्र और विशाल हिमालय से घिरा होने के कारण बाहर के किसी का इस देश में आना जाना नहीं था।

"बहुत दिनों तक बाहरी दुनिया से अलग रहने के कारण, भारत का स्वभाव भी और देशों से भिन्न हो गया। हम ऐसी जाति बन गए जो अपने आप में घिरी रहती है। हमारे भीतर कुछ ऐसे रिवाजों का चलन हो गया, जिन्हें बाहर के लोग न तो जानते हैं, और न समझ ही पाते हैं। जाति-प्रथा के असंख्य रूप भारत के इसी विभिन्न स्वभाव के उदाहरण हैं। किसी भी दूसरे देश के लोग यह नहीं जानते कि छुआछूत क्या चीज है तथा दूसरों के साथ खाने-पीने या विवाह करने में जाति को लेकर किसी को क्या उज्र होना चाहिए। इन सब बातों को लेकर हमारी दृष्टि संकुचित हो गई। आज भी भारतवासियों को दूसरे लोगों से खुल कर मिलने में कठिनाई महसूस होती है। यह नहीं, जब भारतवासी भारत से बाहर जाते हैं, तब वहाँ भी एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से अलग रहना चाहते हैं। इससे बहुत लोग इन सारी बातों को स्वयं सिद्ध मानते हैं और हम यह समझ ही नहीं पाते कि इन बातों से दूसरे देश वालों को कितना आश्चर्य होता है, उनकी भावना को कैसी ठेस पहुँचती है।"

इस संकुचित मनोवृति ने संगीत पर भी गहरा प्रभाव डाला। लोगों ने संगीत को एक दूसरे को सिखाना ठीक नहीं समझा। संगीत को भी सीमित घेरे में बन्द कर दिया। इसी संकुचित मनोवृति के गर्भ से संगीत के क्षेत्र में घरानों की उत्पत्ति हुई, जिसने संगीत के विकास पर कुठाराघात किया।

अन्धकार युग में संगीत

भारत का प्राचीन इतिहास ई० पू० ३५०० के लगभग प्रारम्भ होता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इससे हजारों वर्ष पूर्व भी हमारा देश आबाद था, उसकी सभ्यता और संस्कृति थी। उस काल का हमें कोई इतिहास नहीं मिलता। इस काल को इतिहास में अन्धकार युग कहा गया है, जिसके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं। परन्तु खोज करने वालों ने इस अन्धकार युग के कुछ पाषाण चिन्ह प्राप्त कर लिए हैं तथा कई प्रकार की मूर्तियाँ भी मिली हैं, जिनके आधार पर इस युग को ऐतिहासिकों ने चार भागों में बाँटा है।

(१) पूर्व पाषाण काल

(२) उत्तर पाषाण काल

(३) ताम्र काल

(४) लौह काल

पूर्व पाषाण काल—इस काल के मनुष्य बिलकुल जंगली अवस्था में रहते थे, गुफाओं में रहना तथा मछलियों एवं जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट पालना इनका मुख्य काम था, जंगल के कंद मूल फल खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। इन लोगों का रंग काला होता था। इन लोगों को पत्थर के प्रयोग का ज्ञान हो गया था। इन्होंने पत्थर के बड़े ही सुन्दर अनेक प्रकार के औजार शिकार के लिए बना रक्खे थे। जंगली होने पर भी इनको संगीत से भी प्रेम था, इस युग में संगीत का कोई विकसित रूप नहीं मिलता, किन्तु फिर भी यह लोग संगीत कला से पूर्ण परिचित थे। यह अपना आनन्द प्रमोद प्रायः संगीत के माध्यम से ही किया करते थे। इन्होंने पत्थर के दो चौकोर मजीरे की शक्ल के वाद्यों का निर्माण किया था, जिनको यह गाते वक्त बजाया करते थे। इस पाषाण वाद्य का नाम "अग्सा" था। इन लोगों को गाने बजाने का ही ज्ञान था, नृत्य का ज्ञान इनको नहीं हो पाया था। यह लोग एक ही प्रकार के संगीत वाद्य का प्रयोग प्रत्येक अवसर पर करते थे। शिकार को जाते वक्त भी यह संगीत का प्रयोग करते थे। इस युग में संगीत का कलात्मक स्तर स्थिर नहीं हो पाया था। वे संगीत को कला की दृष्टि

से प्रयोग नहीं करते थे। संगीत प्रदर्शन में महिलाएँ शामिल नहीं होती थी। सिर्फ पुरुष ही संगीत का आनन्द लिया करते थे। जब कोई शिकार को यह लोग मार लिया करते थे तो यह लोग स्वर के टेढ़े-मेढ़े अलाप भर कर अपने आनन्द की अभिव्यक्ति करते थे। इनके गाने में कोई शब्द नहीं होता था, क्योंकि भाषा का जन्म इस युग में नहीं हो पाया था, इनका गाना स्वरों पर ही आधारित था। यह लोग विभिन्न स्वरों के द्वारा ही अपने आन्तरिक हर्ष एवं विषाद की अभिव्यक्ति किया करते थे। इन लोगों को अग्नि के प्रयोग का भी ज्ञान था और यह लोग वृक्ष की पत्तियों अथवा जानवरों के चमड़े से अपने शरीर को ढकते थे। इन लोगों के वंशधर आज भी अन्डमन द्वीप समूह, मलाया प्रायद्वीप और फिलीपाइन्स में पाये जाते हैं। यह लोग ही वास्तव में भारत के आदिम निवासी थे, यह लोग कहीं बाहर से नहीं आए थे।

पूर्व पाषाण काल का गाना स्वरों पर ही आधारित था—

मिस्टर गल्फइलमिल ने अपनी पुस्तक "The History of the early Music of India" में लिखा है—"पूर्व पाषाण काल के लोग वास्तव में भारत के मूल निवासी थे, इनको संगीत का ज्ञान पर्याप्त मात्रा में था। संगीत वाद्य का जन्म इस काल में हो चुका था। पत्थर का एक संगीतिक वाद्य इस युग का पाया जाता है, जिसको "अग्सा" कहते हैं, परन्तु इस वाद्य पर विद्वानों का मतभेद है। कुछ विद्वान इसको शिकार का औजार मानते हैं, लेकिन वास्तव में यह पत्थर का औजार नहीं है, संगीत वाद्य ही है, जिसको यह लोग बजा-बजा कर अपने विचित्र स्वरों का आनन्द लिया करते थे। मछली पकड़ते समय भी यह लोग गाना गाते थे, गाना गाते-गाते यह लोग मछलियाँ अथवा अन्य शिकार खेलते थे। नारी को प्रसन्न करने के लिए भी कभी-कभी यह लोग संगीत से काम लेते थे। नृत्य का ज्ञान इनको नहीं था। महिलाएँ संगीत प्रोग्राम में बिल्कुल शामिल नहीं होती थी। पुरुषों का ही एकमात्र संगीत पर अधिकार था। "हु हू हेवा, हू हू हेवा" विचित्र प्रकार की संगीतिक ध्वनि यह निकालते थे।"

उत्तर पाषाण काल में सामूहिक संगीत का जन्म हो चुका था—

उत्तर पाषाण काल—पूर्व पाषाण काल के लोगों को एक दूसरी जाति ने आकर पराजित कर दिया। यह लोग उनसे अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत थे। इनके पाषाण हथियार बड़े तेज एवं चमकीले होते थे। उन चमकीले हथियारों को देख-कर यह अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है कि यह बड़े पाषाण-शिल्पी थे।

पत्थरों का काटना छांटना और उनको सुडौल एवं सुन्दर बना देने की कला इनको खूब आती थी। यह लोग धनुष वाण चलाने में भी बड़े प्रवीण थे। भाला आदि अस्त्रों को फेंक कर मारने का भी इन लोगों को ज्ञान था। सामाजिक भावना भी इन लोगों में उदय हो चुकी थी। इन लोगों को संगीत का ज्ञान पूर्व पाषाण काल के लोगों से बहुत अधिक था। महिलाएँ और पुरुष दोनों ही संगीत का आनन्द लिया करते थे। सामूहिक संगीत का इस युग में जन्म हो चुका था। यह लोग युद्ध में भी संगीत का प्रयोग करने लग गये थे। महिलाएँ काम करते वक्त एक प्रकार का मीठा स्वर निकालती जाती थी, और इसी प्रकार पुरुष वर्ग भी काम करते वक्त अपने स्वर का अलाप विभिन्न ढंग से करते थे। इन लोगों को पक्षियों का कलरव सुनने में बडा आनन्द आता था। सामूहिक गाने की भावना शायद इन लोगों ने इन चिड़ियों से ही ली हो, क्योंकि यह चिड़ियाँ इकट्ठी होकर सुबह शाम नदी किनारे, जंगलों में गाती रहती थी। चिड़ियों के स्वरों का प्रभाव अवश्य ही इन लोगों पर पड़ा होगा। इन लोगों को संगीत साधना का महत्व मालूम पड़ गया था, क्योंकि चिड़ियों के मीठे स्वरों का अनुकरण करने में उनको स्वर अभ्यास करना पड़ता था। जिससे उन्हें स्वर के अनेक प्रकार के मोड़ों का ज्ञान हो चुका था। नारियाँ भी चिड़ियों के सुन्दर स्वरों को नकल किया करतीं थी। इन लोगों के जीवन में संगीत का विशेष महत्व होगया था। यह लोग मिट्टी के वर्तन बनाते वक्त भी संगीत का प्रयोग करते थे। इनकी सभ्यता के विकास का आधार वास्तव में संगीत ही है। काम करने की प्रेरणा इनको स्वरों के द्वारा ही मिलती थी। जब कभी इनको किसी नवीन पदार्थ पर सोचना पड़ता तो यह पहले स्वर अलाप करते थे। और स्वर अलाप करते-करते यह लोग उस पदार्थ का अविष्कार कर लिया करते थे, दरअसल इनके विकास की आधारशिला संगीत ही है, संगीत ने ही उनके मस्तिष्क को परिष्कृत करके नवीन साँचे में ढाला। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर टर्नेल आक्सी ने अपनी पुस्तक "The History of music Facts" में लिखा है—"उत्तर पाषाण काल में संगीत की अवस्था पूर्व काल से काफी सुधर चुकी थी। यदि हम इस काल की सभ्यता का विश्लेषण करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उसकी पृष्ठभूमि में संगीत ही था, जिसने उस सभ्यता को जन्म दिया। वह कैसे शायद आप इस बात को सोचें, लेकिन यदि आप इन लोगों के स्वभाव एवं आन्तरिक विश्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयत्न करें तो आपको अवश्य ज्ञात हो जायगा कि उनकी प्रत्येक कार्य शैली में स्वर का विशेष प्रेरणात्मक हाथ था। किसी भी कार्य के संचालन में इन लोगों ने स्वर का विशेष महत्व दिया है। यह अपने मूड को संगीत के द्वारा ही प्रसन्न किया करते थे। जब

कभी इन्हें कोई नवीन हथियार अथवा कोई नवीन पदार्थ की रचना करनी होती तो यह पहले स्वर अलाप किया करते थे, जिससे इनको स्फूर्ति और चेतना मिलती थी। संगीत ने इन लोगों को सभ्यता की ओर झुकाया। महिलाएँ भी संगीत में रस लिया करती थी। परन्तु इस युग का संगीत, इतना विकसित नहीं हो पाया था कि जिस पर आधुनिक संगीत की नींव पड़ती। लेकिन कई विद्वान यह कहते हैं कि उत्तर पाषाण काल का संगीत ही वास्तव में वर्तमान संगीत-विकास का आधार पृष्ठ है। पर हम इस तथ्य को नहीं मानते। लेकिन हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस काल की संगीतिक प्रवृति ने आगे के युग को अवश्य ही एक समृद्धिशाली प्रेरणा प्रदान की होगी। इस युग में किसी किस्म के संगीतिक वाद्य का प्रयोग नहीं पाया जाता। अभी तक कोई ऐतिहासिक सूत्र हमें ऐसा प्राप्त नहीं हुआ है कि जिसके द्वारा हम यह प्रमाणिक रूप से कह सके कि इस युग में संगीतिक वाद्य का प्रयोग होता था। इस काल के पिछले काल में संगीतिक वाद्य का प्रयोग होता था फिर इस काल में क्यों नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में अधिकार पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।"

संगीत ने उत्तर पाषाण काल के लोगों को सभ्यता की ओर झुकाया—

इन लोगों को चित्रण कला का भी ज्ञान था। चट्टानों और गुफाओं पर जो चित्र पाये गये हैं, उनसे भी हमें इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है कि इनका संगीत प्रेम विशेष रूप से बड़ा हुआ था। उन चित्रों में संगीतिक आभा पर्याप्त मात्रा में प्रस्फुटित हुई है। मध्य देश के संथाल, कोल और मुन्ड जातियों के लोग, आसाम के खासी तथा नीकोबार द्वीप समूह के निवासी उन्हीं लोगों के वंशधर हैं। और अभी तक जंगली अवस्था में ही रहते हैं। यह लोग भारत में दो जत्थों में आए थे। पहला दल सारे भारत में फैल गया, लेकिन दूसरे दल के लोग दक्षिण की ओर नहीं बढ़ सके। पहला दल कोल, संथाल तथा होस जाति के लोगों का था। दूसरे जत्थे के वे लोग जिनके वंशज नीकोबार द्वीप समूह के निवासी, आसाम के खासी और ब्रह्मा की कुछ आदिम जातियों के लोग हैं।

ताम्रकाल के लोगों की सभ्यता और संस्कृति बहुत ऊँची थी—

ताम्रकाल—उत्तर पाषाण काल के लोगों को दूसरे लोगों ने आकर हरा दिया, जिन्हें हम ताम्रकाल के लोग कहते हैं। इन लोगों के पास ताँबे के बने हुए हथियार थे जो बड़े उपयोगी थे। इनके सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि ये उसी जाति के लोग थे, जिनके वंशज मेसोपोटामिया के सुमेरियन एवं दक्षिण भारत के द्रविड़ लोग हैं। सम्भवतः यह लोग ई० पू० ५००० से भी पूर्व उत्तर पश्चिम के दर्रों

या मेकरान एवं विलोचिस्तान के मार्ग से भारत में आए तथा सिन्ध नदी की तलहटी में बस गए। दूसरा मत यह है कि वे दक्षिण की ओर से आये एवं शनैः शनैः उत्तर की ओर फैल गए। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों की विजय के पूर्व द्रविड़ लोग उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में बसे हुए थे। वे धातुओं का प्रयोग खूब अच्छी तरह जानते थे। उनके आभूषण सोने, चाँदी के होते थे। उनके यहाँ ताँबे के सिक्कों का भी प्रयोग था। वास्तव में इस काल की सभ्यता बड़ी उत्कृष्ट थी। यह लोग संगीत के बड़े प्रेमी थे। इस काल का संगीत पूर्व कालों से श्रेष्ठ था। लोगों को नृत्य का भी ज्ञान हो गया था। महिलायें नृत्य करने में बड़ी दक्ष थी। इस काल के संगीत में कलात्मक आभा की सुरुचिता भी आगई थी। इनके स्वर-अलाप की शैली बड़ी मनोरम हो गई थी।

इस काल में भाषा का जन्म हो चुका था—

भाषा का जन्म इसी युग में हो चुका था, लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि इस काल से पूर्व काल में ही भाषा का जन्म हो चुका था। इस प्रश्न पर सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। लेकिन अधिकतर विद्वानों की राय यही है कि इस काल में भाषा का जन्म हो चुका था, इसलिए संगीत में सौष्ठवता का आविर्भाव हो गया था। स्वरों के अन्दर लोगों ने शब्द भी उतारना आरम्भ कर दिया था, कहने का मतलब यह कि गीत अलाप में स्वर ही नहीं चलता था, अपितु शब्दों का प्रयोग भी होने लगा था। सुप्रसिद्ध अँग्रेज विद्वान लोवास्को का कथन है—"वर्तमान संगीत की आधारपृष्ठ ताम्र युग के संगीत पर रक्खी हुई है। वास्तव में इस युग का संगीत अब तक के युगों के संगीत से एक नवीन धारा का था। इस काल में नृत्य का चलन खूब हो चुका था। भारतीय लोगों ने ही नहीं बल्कि इस काल के संगीत से एशिया के अन्य देशों के लोगों ने भी प्रेरणात्मक शक्ति ली।" इस युग के लोगों ने सर्वप्रथम संगीत को ईश्वर आराधना का उपकरण बनाया। वे देवी, देवताओं की अर्चना में भी संगीत का ही प्रयोग करते थे। जब इन लोगों पर कोई आपत्ति पड़ती थी तो यह अपने देवता पर भागे जाते थे और देवता को प्रसन्न करने के लिए पुरुष और महिलायें दोनों मिलकर नाना प्रकार से नृत्य का प्रदर्शन किया करते थे। उनका विश्वास था कि इस संगीतिक प्रदर्शन से उनका देवता अवश्य प्रसन्न हो जायगा। और फिर वह उनके कष्टों एवं विपदा को विनष्ट कर देगा। जब कोई बीमार पड़ता था, तो यह लोग उसको दवा नहीं देते थे, बल्कि संगीत के द्वारा ही उसका उपचार करते थे। और इस संगीतिक उपचार से अनेक व्यक्ति स्वस्थ और सुन्दर भी बन जाते थे। मिस्टर डोवास्की रेमलो ने भी इसी मत की पुष्टि अपनी पुस्तक "The enchan-

ting power of Music" में की है। इसी मत की पुष्टि विख्यात लेखक जेन कोक्स ने अपनी पुस्तक "The Health and Music" में की है।

इस युग में संगीत को धार्मिक रूप दिया गया—

इस युग के लोगों की दृष्टि व्यापक बनती जा रही थी। उन्होंने कला पर सोचना प्रारम्भ कर दिया था, क्योंकि वे कला के वास्तविक महत्व को समझने लग गए थे, इस युग के लोगों की दृष्टि संगीत के आन्तरिक पहलू पर बिलकुल नहीं पहुँच पाई थी, किन्तु संगीत के बाह्य तत्वों को ग्रहण करने का उन्होंने महान् उपक्रम किया था। परन्तु इनको संगीत साधना के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिलता था, क्योंकि इनको लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती थीं, और जो वक़्त लड़ाई से बचता था, उसको ये अन्न उत्पन्न करने में लगाते थे। परन्तु फिर भी यह लोग संगीत के लिए कुछ न कुछ वक़्त निकाल ही लिया करते थे। संगीत को धार्मिक रूप देने का गौरव इसी युग के लोगों को प्राप्त है। यह लोग संगीत को ईश्वरी तोहफा मानते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि संगीत के द्वारा हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं, और इसके द्वारा अपने जीवन की अस्तव्यस्तता को भी मिटा सकते हैं। पर यह लोग संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष अन्वेषण नहीं कर सके, पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने संगीत जगत को एक नवीन दृष्टिकोण दिया। इस युग में मनुष्यों का सामाजीकरण हो चुका था, अतएव इस सामाजीकरण ने संगीत के क्षेत्र को व्यापक बनाने में बड़ा योगदान दिया। इन लोगों का भाषा और साहित्य पर काफी अधिकार था, इस शिल्पज्ञता पूर्ण अधिकार ने संगीत में एक ऐसा मोड़ दिया कि जिससे संगीत की स्थिति इतनी परिपक्व होगई थी कि आने वाले युग के लोगों ने भी उसी स्थिति से लाभ उठाया। आर्यों के संगीत पर वास्तव में इसी युग के संगीत का काफी प्रभाव पड़ा। आर्यों ने इस युग के संगीत के मौलिक तत्वों को ज्यों का त्यों अपना लिया। आर्यों ने भी संगीत के धार्मिक रूप को इस युग के अनुसार स्वीकार कर लिया, जिस प्रकार संगीत के द्वारा यह लोग अपने देवताओं की पूजा किया करते थे, ठीक वही संगीतिक शैली आर्यों ने भी अपना ली। आर्यों को दरअसल संगीत की एक सुन्दर और सुदृढ़ पृष्ठभूमि मिली, जिसका उन्होंने बाद में परिष्कार करके नया रूप दिया। द्रविड़ लोग भारत भर में फैल चुके थे, इसलिए उनकी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार सम्पूर्ण भारत में होगया था। द्रविड़ लोग विवाह के शुभ अवसर पर संगीत का प्रदर्शन करते थे। द्रविड़ लोगों की संस्कृति का यहाँ के आदिम निवासियों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

आर्यों ने द्रविड़ों से ही संगीत की अलभ्य थाती प्राप्त की—

मिस्टर याल्डीरसेल ने अपनी पुस्तक "The Rise of the Indian Music" में लिखा है—"द्रविड़ लोगों की सभ्यता और संस्कृति बड़ी उच्चकोटि की थी। इनका संगीतिक ज्ञान भी प्रशस्त था। आर्यों ने द्रविड़ों से ही संगीत की अलभ्य थाती प्राप्त की थी। संगीत को द्रविडों ने जीवन क अनेक क्षेत्रों में प्रवेश किया। उनका संगीत किसी भी सभ्य एवं सुसंस्कृत जाति से कम नहीं था।"

द्रविड़ प्रकाश युग लाने के जबरदस्त स्रोत समझे जाते हैं—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डास्की योलो ने "The History of the Human Race" नामक पुस्तक में लिखा है—"भारतीय संगीत की बुनियाद वास्तव में द्रविड़ों के संगीत पर आधारित है। संगीत विकास में जितना योग इन लोगों ने दिया, उतना अन्धकार युग के किसी भी वर्ग ने नहीं दिया, इसीलिए द्रविड़ अन्धकार युग में रहते हुए भी प्रकाश युग लाने के जबरदस्त स्रोत समझे जाते हैं। वास्तव में प्रकाश युग को लाने में द्रविड़ों की सभ्यता ने महान कार्य किया। अन्धकार युग की यह जाति बड़ी कला प्रिय थी। इन्होंने अपनी कला का विस्तार खूब किया। चूँकि द्रविड़ों की दृष्टि बड़ी प्रशस्त थी, इसीलिए इन्होंने संगीत के अनेक उपकरण पर चिन्तन किया, और चिन्तन करके संगीत के सौन्दर्य की अभिवृद्धि की। द्रविड़ों को संगीत का वैज्ञानिक रूप का भी पता था। तभी तो उन्होंने संगीत को चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया था। इससे मालूम पड़ता है कि द्रविड़ लोग संगीत की महत्ता धार्मिक सीमा तक ही नहीं समझते थे, इससे आगे भी उन्होंने संगीत की कल्पना करली थी, तभी उन्होंने संगीत को चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया और उसमें उन्होंने बड़ी सफलता प्राप्त करली थी। जिस चीज को द्रविड़ों ने संगीत में ढूँढ निकाला था, उस चीज को आज का वैज्ञानिक युग भी ढूँढ निकालने में असमर्थ है। तभी तो आज का युग संगीत को चिकित्सा क्षेत्र में व्यापक प्रयोग नहीं कर रहा।"

लौह काल के लोग द्रविड़ों के समान संगीत-प्रिय नहीं थे—

लौह काल—ताम्र युग के बाद जो दूसरी जाति भारतवर्ष में आई वह पामीर पर्वत की ओर से आई। यह लोग लौह के हथियारों का प्रयोग करते थे, इसलिए इस युग का नाम लौह युग पड़ा। यह लोग धीरे-धीरे सम्पूर्ण महाराष्ट्र में फैल गए तथा मध्य-प्रदेश के वन खण्डों में से होकर बंगाल की ओर बढ़ गए। उनकी विजय थोड़े ही दिन की थी। उनकी विजय का भारत पर कोई आर्थिक, कलात्मक प्रभाव

नहीं पड़ा। मेसोपोटामिया से सुमेर जाति के लोगों को सैमाइट जाति के लोगों ने निकाल दिया और इस प्रकार वहाँ द्रविड़ सभ्यता का अन्त हो गया। परन्तु भारत में द्रविड़ों ने अपने विजेताओं का डटकर सामना किया तथा बौद्ध धर्म के उत्कर्ष के समय तक अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा की। लौह युग के लोगों के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं है, लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि यह लोग भी कला के बड़े मर्मज्ञ थे। संगीत प्रिय भी थे, लेकिन द्रविड़ों के समान इनका संगीत परिष्कृत नहीं था। लेकिन बहुत कुछ द्रविड़ों से मिलता जुलता था। इसीलिए इनके संगीत की कोई विशेष छाप भारतीय संगीत पर नहीं पड़ी। द्रविड़ों के समान ही यह लोग भी संगीत को धार्मिक रूप समझते थे। और वे अपने देवताओं की पूजा संगीत के माध्यम से ही किया करते थे। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि लौह युग के लोगों ने संगीतिक वाद्य का भी निमार्ण किया था, लेकिन उस वाद्य का अधिक प्रचलन नहीं हो सका, परन्तु इस मत की पुष्टि ऐतिहासिक तथ्यों से नहीं होती है, इसलिए इसके सम्बन्ध में कुछ अधिकार पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह लोग भी द्रविड़ों के समान हीं विवाह उत्सवों को गा-बजा कर करते थे। यह लोग कई प्रकार के त्यौहार भी मनाते थे जिनमें संगीत का खुलकर प्रयोग करते थे। इन त्यौहारों में पुरुष और नारियाँ दोनों ही भाग लिया करते थे। नारियाँ रंग-बिरंगे कपड़े पहिन कर नृत्य करती थी। नृत्य में इतनी तन्मय हो जाया करती थी कि वे नाचते-नाचते आत्मविभोरित हो जाती थी।

लौह काल की नारियाँ द्रविड़ों की नारियों के समान ही उन्नतिशील थीं—

नृत्य करते वक्त महिलाएँ अपने कमर में नाना प्रकार के पक्षियों के पंखों को खोंस लिया करती थी, पुरुष नृत्य करते वक्त अपने सिर पर पंखों का मुकुट लगाया करते थे, गले में कौड़ियों की माला भी पहिनते थे। नारियाँ अपने पैरों में लौह के बने घुँघरू पहिनती थी, जो नाचते वक्त बड़ी सुरीली ध्वनि का प्रस्फुरण करते थे। पुरुषों की नृत्य-वेशभूषा लगभग द्रविड़ों जैसी ही होती थी, जाँघों तक अलफा (एक प्रकार का घुट्टना) पहिनते थे "औसा" (एक प्रकार की बनियान) पहिनते थे जो चमड़े की बनी हुई होती थी, नारियों की जाँघे नृत्य करते वक्त नग्न रहती थी, जाँघों से ऊपर वे "उस्वा" (एक प्रकार का अन्डरवीयर) पहिनती थी, जोकि पतले रंगीन चमड़े का बना होता था, लेकिन वह चमड़ा इतना महीन होता था कि वस्त्र से भी सुन्दर एवं पतला लगता था। कमर के ऊपर चासा (एक प्रकार

का ब्लाउज) पहिनती थी । लम्बे बाल खुले रहते थे, लेकिन उन खुले हुए बालों में द्रविड़ों की नारियों के समान रंग विरंगे पुष्प गुथे रहते थे, जोकि बड़े ग्राकर्षक लगते थे । पुष्पों का प्रयोग नारियाँ नृत्य के ग्रलावा ग्रपने सामान्य जीवन में भी किया करती थीं । लौह युग की नारियों का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध लेखिका कुमारी चिक्सा हील ने ग्रपनी पुस्तक "भारतीय संगीत के चार चरण" में लिखा है— "जब हम लौह युग की नारियों पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें पता लगता है कि यह द्रविड़ों की नारियों के समान ही उन्नतिशील तथा संगीत मर्मज्ञ थी । इनकी रुचि बड़ी परिष्कृत थी । इन्होंने पुरुषों से ग्रधिक संगीत को ग्रपनाया । जब पुरुष ग्रपनी पत्नियों से रुष्ट हो जाते थे तो वे उनको प्रसन्न करने के लिए संगीत का ही प्रयोग करती थी, क्योंकि उनका विश्वास था कि जब संगीत के द्वारा देवता तक प्रसन्न हो जाते हैं तो फिर पति क्यों न प्रसन्न हो जायेगा । इसी विश्वास के साथ वे संगीत का प्रदर्शन पुरुषों को रिझाने में किया करती थी, जिनमें कि वे सफल भी हो जाती थी । लौह काल की नारियों के इस प्रशस्त दृष्टिकोण को वर्तमान काल की नारियाँ ग्रपनाले तो उनके ग्रशान्तिमय जीवन में कितनी महान क्रान्ति हो जायगी इसकी ग्रभी कल्पना करना मुश्किल है ।"

सिन्ध नदी की घाटी की सभ्यता और संगीत

अभी हाल में (सन् १६२४ में) सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में मोहन-जोदड़ो नामक स्थान पर खुदाई हुई, उसमें बहुत सी चीजें उपलब्धि हुईं। इस खुदाई में जो प्राप्त हुआ है, उससे यह प्रमाणित होता है कि सिन्ध नदी की घाटी में जो अनार्य लोग बसे थे उनकी सभ्यता बहुत उच्चकोटि की थी। जिस स्थान पर यह खुदाई हुई है, वहाँ पर किसी समय एक विशाल नगर आबाद था। बड़े-बड़े सुन्दर एवं कलात्मक मकानों, सार्वजनिक स्थानों, नालियों तथा स्नानागारों के खण्डहर वहाँ पर पाए गए हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी वस्तुएँ वहाँ मिली हैं, मनुष्यों और देवताओं की मूर्तियाँ, सोने और अन्य धातुओं के आभूषण, दैनिक व्यवहार की बहुत सी श्रृङ्गारिक प्रसाधन तथा अनेक प्रकार के औजार भी मिले। इन चीजों को देखने से मालूम होता है कि वहाँ के लोग धातुओं और खनिज पदार्थों का प्रयोग करना जानते थे, ऊनी सूती, कपड़े भी तैयार करते थे। पशुओं को भी पालते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय सिन्ध नदी की घाटी में अच्छी नस्ल के पशु अधिकता से होते थे। मुहरों पर इन पशुओं के जो सजीव चित्र खुदे हुए हैं, उनसे यह बात प्रमाणित होती है। मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई में संगीत सम्बन्धी वस्तुएँ भी मिली हैं, ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व की शिवजी की ताण्डव नृत्य करती हुई मूर्ति भी प्राप्त हुई है। एक और नारी मूर्ति नृत्य की मुद्रा में उपलब्धि हुई है। इससे मालूम होता है, सिन्ध घाटी की सभ्यता में संगीत का स्तर बहुत उत्कृष्ट था। इस काल में संगीत का रूप काफी निखर चुका था। इस काल की उच्च सभ्यता को देखते हुए यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि यह काल भारतवर्ष में कितना महान रहा होगा। जब कि सारा विश्व जंगली और अशिक्षित था, उस वक्त भारत की सभ्यता और संस्कृति के खुशनुमा प्रसून सिन्ध घाटी के प्रदेश में पुष्पित हो रहे थे। उसका अद्वितीय सौरभ चारों ओर बिखर रहा था। उस काल के लोगों को कला, संस्कृति, धर्म, विज्ञान सब का ज्ञान पूर्ण रूप से था।

इस युग में नृत्य और गाने का सार्वजनिक प्रयोग आरम्भ हो चुका था—

मोहनजोदड़ो और हरप्पा दोनों स्थानों की खुदाई में उत्कृष्ट सभ्यता और

संस्कृति के अनेक चिन्ह प्राप्त हुए। यह लोग सार्वजनिक उत्सवों पर नृत्य और गाने का प्रयोग करते थे। इनका नृत्य अन्धकार युग के नृत्य से उत्कृष्ट बन चुका था, यह बात खुदाई में प्राप्त हुई मूर्तियों से प्रमाणित होती है। उनमें अनेक ऐसे चित्र मिले हैं, जिनमें उत्कृष्ट नृत्य के सुन्दर नमूने प्रस्तुत किये गये हैं। इन सुन्दर नृत्यों को देखकर कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि उस काल का संगीत किसी भी दशा में निम्न वर्ग का था। जब उस समय इतने विशाल एवं सुन्दर नगर आबाद थे, तो अवश्य ही वे लोग कला शिल्पी भी थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगीत का प्रवेश हो चुका था, तभी हमें उनकी संस्कृति के इतने सुन्दर नमूने प्राप्त होते हैं। उन खण्डहरों की दीवालों पर संगीतिक चित्र भी मिले, जिनसे पता लगता है कि उस काल के लोग संगीत को अपने जीवन में कितना लम्बा उतार चुके थे। लेकिन इस बात का पता नहीं चलता कि इस समय के लोगों ने संगीत में क्या-क्या निर्माण किया। कौन-कौन से नवीन मार्गों का आविर्भाव किया, परन्तु इतना तो निश्चित पूर्वक कहा जा सकता है कि इस युग के लोगों ने अवश्य ही संगीत साधना की होगी तभी वे अपने संगीत को इतना उत्कृष्ट एवं व्यापक बना सके। उनकी वैभवशाली सभ्यता का अध्ययन करने पर हमें इस बात का स्पष्ट पता लगता है कि उनके पास संगीत साधना के लिये अवश्य ही वक्त होगा, उन्हें जीवन निर्वाह के लिए कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता होगा। और वह जहाँ भी जाते होंगे, वहीं अपनी कला और संस्कृति को ले जाते होंगे, क्योंकि वे लोग कुशल व्यापारी भी थे, उनका सम्बन्ध बाहरी देशों से भी था, विशेष रूप से बेबीलोनियाँ के सुमेरियन लोगों के साथ। अतएव उन्होंने अपनी कला और सभ्यता का प्रचार बाहर भी किया होगा। नृत्य करती हुई उस महिला की मूर्ति को देखकर यह कल्पना सहज ही में लगाई जा सकती है कि वे लोग नृत्य के आत्मिक सौन्दर्य, उसकी अन्तरजगत की भाव पृष्ठ को उभारने में बड़े कुशल थे।

मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व में प्राचीनतम है—

विख्यात इतिहासकार कोर्डियलशोम्स ने (The Rise & Fall of Indian Music) में लिखा है—"सिन्धवाटी की सभ्यता को जब हम पढ़ते हैं तो हमारे सामने अनेक चित्र स्पष्ट हो जाते हैं। कभी विश्व के इतिहासकार यह समझा करते थे कि ईसा के पूर्व कोई महत्वपूर्ण इतिहास नहीं, भारत की सभ्यता को वे लोग वैदिक युग से पूर्व नहीं आँकते थे, वास्तव में कभी उन्होंने अन्वेषक के रूप में इस तत्व की खोज नहीं की। भारत का यह दावा कि उसकी सभ्यता व संस्कृति विश्व

में प्राचीनतम हैं, एवं गौरवपूर्ण है, बिल्कुल सही है, किन्तु अनेक इतिहासकारों ने भारत के इस दावे की खिल्ली उड़ाई थी। पर अब मोहनजोदड़ो एवं हरप्पा की खुदाई ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति प्राचीनतम है। भारतीय संगीत भी विश्व के संगीत क्षेत्र में अग्रणीय हो गया है, पहले भी अग्रणीय था, किन्तु इतिहासकार भारत के इस दावे को मानते नहीं थे, भारत के पास उस वक्त अपने दावे को मनवाने के लिए कोई एतिहासिक प्रमाण भी नहीं थे, परन्तु जब से मोहनजोदड़ो एवं हरप्पा की खुदाई का कार्य प्रारम्भ हुआ है तब से भारत के पास अनेक ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हो गये हैं। और विश्व को भी पता चल गया कि भारतीय संगीत का गौरव सिन्धघाटी की अद्वितीय सभ्यता के कारण अलभ्य है। वास्तव में देखा जाय तो अब तक सिन्धकाल की सम्पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति पर अन्धकार का आवरण पड़ा था, वह आवरण अब हटाया गया है। मगर इसी प्रकार खुदाई जारी रही तो बहुत मुमकिन है कि भविष्य में और भी ऐतिहासिक तथ्यों का प्रकटीकरण हो। लेकिन यह तथ्य तो अब स्पष्ट ही हो गया कि सिन्धकाल की सभ्यता में संगीत का उत्कृष्ट स्तर था। उस समय लोगों ने संगीत के नैतिक स्तर को ऊपर उठाया। उसमें आध्यात्मिक पृष्ठ को उभारा गया, जिससे उनका संगीत नैतिक रूप से सुन्दर और पवित्र हो गया, उनके संगीत में कोई भी शृंगारिक भावना की मुद्रा नहीं पनपी।"

मिस्टर जोनमान्स केली ने अपनी छोटी-सी सुन्दर पुस्तक "The Flow of Indian music" में लिखा है—"इतिहास अब तक सिन्ध घाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में मौन था, लेकिन जब से 'मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई हुई तब से इस काल की सभ्यता और संस्कृति गौरवपूर्ण ढंग से विश्व के सामने आई, भारत का पुरातत्व विभाग इस ओर सजग है। वह अनेक स्थानों में खुदाई करा रहा है, इससे और भी अधिक भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की गौरवमयी कहानी का पता लगेगा। जब उन वस्तुओं का जो मोहनजोदड़ो एवं हरप्पा में प्राप्त हुई हैं, निकटवर्ती सर्वेक्षण करते हैं, तो हमें पता चलता है कि आर्य जाति को अवश्य ही उत्कृष्ट संगीत की प्रेरणा इसी काल के उष्कृष्ट संस्कृति से उपलब्धि हुई होगी। आर्य जाति की सभ्यता में अवश्य ही सिन्ध-घाटी की सभ्यता प्रस्फुटित हुई होगी। आर्य लोगों को सिन्ध-घाटी वालों से युद्ध करना पड़ा, अतएव उन्हें अनेक कलात्मक वस्तुएं प्राप्त हुई होंगी जिनके आधार पर उन्होंने बाद में अपनी सभ्यता और संस्कृति की नींव रक्खी थी। वास्तव में देखा जाय तो आर्य जाति की सम्पूर्ण संस्कृति सिन्ध-घाटी की संस्कृति पर ही अवलम्बित है। कला का जितना विशद एवं गहरा ज्ञान सिन्ध-घाटी की सभ्यता में मिलता है, उतना

इससे पूर्व के कालों में नहीं मिलता। इस काल में गीतों का विकास हो चुका था। अनेक छन्द बन चुके थे, जो कि सांगीतिक रूप से गाये जाते थे। खुदाई में एक ऐसा पोज भी मिला है जिसमें एक नारी गाती हुई मुद्रा में चित्रित है। भाषा सौष्ठव उत्कृष्ट था। काव्य और संगीत का मिलन इस युग में हो चुका होगा। संगीत और काव्य को निकट लाने में इस युग ने विशेष प्रयास किया होगा, क्योंकि इसी युग के लोगों से आर्यों को भी काव्य और संगीत का समन्वित रूप प्रस्तुत करने की शक्तिशाली प्रेरणा मिली होगी। हमारे साथी पश्चिमी इतिहासकार इस बात की कल्पना भी नहीं करते थे कि ईसा से पूर्व भारतीय सभ्यता इतनी उत्कृष्ट एवं स्वर्णिम होगी। लेकिन अब उनकी आँखें भी खुल गईं।"

द्रविड़ और सिन्ध घाटी की सभ्यता में संगीत का विकास एक-सा ही मिलता है--

सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रारल्य प्रतिसांख्यायन ने अपनी पुस्तक "भारतीय संगीत के जन्म और विकास के स्वर्णिम पथ" में लिखा है—"द्रविड़ जाति की सभ्यता और संस्कृति तथा सिन्ध घाटी की सभ्यता और संस्कृति में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। प्राय: दोनों की सभ्यताओं में साम्यता ही पाई जाती है। दोनों वर्गों की सभ्यता में संगीत का विकास एक-सा ही है, कुछ भी अन्तर नहीं मालूम पड़ता। कई विद्वानों का यह अभिमत है कि सिन्ध घाटी की सभ्यता ही द्रविड़ों की सभ्यता थी, क्योंकि उस वक्त में आर्यों के आने से पूर्व द्रविड़ ही विकासशील थे, उन्हीं की सभ्यता का गौरव भारतवर्ष में फैल रहा था। हमारी भी राय इस मत को पुष्टि करती है। वास्तव में द्रविड़ ही भारत में सर्वत्र फैल चुके थे, उनका ज्ञान अद्वितीय था। वे कला के क्षेत्र में सबसे आगे थे। युद्ध करने में भी वे प्रवीण थे। आर्यों ने युद्ध करने की कला द्रविड़ों से ही सीखी, वैसे उनको भी उत्कृष्ट युद्ध करने की कला मालूम थी। पर आर्यों को द्रविड़ों की संगीतप्रियता बहुत पसन्द आई। कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि सिन्ध घाटी वाले लोग अन्य जाति के थे, वे द्रविड़ों से पृथक थे। उनका द्रविड़ों से कोई सम्पर्क नहीं था। आर्यों को भारतवर्ष में आकर पहले सिन्ध घाटी वालों से लड़ना पड़ा, फिर बाद में द्रविड़ों को हराया, जो कुछ भी हो यह तो निश्चित ही है कि द्रविड़ों का संगीत तथा सिन्ध घाटी के युग का संगीत, दोनों ही उत्कृष्ट थे, दोनों युगों के लोगों को संगीत साधना करने में विशेष दिलचस्पी होगी। वे साधनामय जीवन को विशेष पसन्द करते होंगे। वे मानव-जीवन की उच्चता का मापदण्ड अर्थ से नहीं करते होंगे, बल्कि अर्जित कला की उच्चता से

किया जाता होगा। अर्थ का मानव-जीवन में कला से श्रेष्ठ स्थान प्राप्त न होगा। तभी तो लोगों को कला साधना में दिलचस्पी पैदा हुई होगी। इन दोनों युगों के संगीत में हमें मानव-जीवन के विकास की देदीप्यमान मंजिल की ओर ले जाने वाले उपकरणों की बाहुल्यता प्राप्त होती है। इन लोगों के जीवन में संगीत के विकास का मतलब मानव-जीवन के विकास से था। तभी इन्होंने संगीत का मूल्यांकन उसकी सही दिशा में किया, उन्होंने संगीत को विलासता की शृङ्खलाओं से नहीं जकड़ा।

पंजाब के मौन्टगोमरी जिले में हरप्पा और मोहनजोदड़ो में खुदाई हुई थी। ये दोनों स्थान एक दूसरे से ४५० मील दूर हैं, परन्तु इन स्थानों पर पृथ्वी के अन्दर से खोदकर निकाले हुए भवनों और वस्तुओं में बहुत समानता है, इसलिए विद्वानों का विचार है कि इन स्थानों का निर्माण लगभग एक ही साथ या कुछ आगे-पीछे हुआ होगा। ये स्थान सिन्ध नदी की घाटी में स्थिति होने के कारण, सिन्ध नदी की घाटी की सभ्यता के नाम से विख्यात है। इस सभ्यता का विकास और अन्त कब और कैसे हुआ? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है, क्योंकि हमारा ज्ञान केवल खोदकर निकाली हुई वस्तुओं तक ही सीमित है। खोदकर वे ही वस्तुएँ और भवन निकाले जा सके हैं जो भूमि के अन्दर के पानी के धरातल के ऊपर हैं। इन नगरों के नीचे के भाग पानी के अन्दर हैं, और हमको उनके विषय में प्रायः कुछ भी पता नहीं। तो भी विद्वानों का अनुमान है कि सिन्ध नदी की घाटी की सभ्यता कम से कम पाँच हजार वर्ष पुरानी है। इसी मत की पुष्टि उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री एवं हिन्दी तथा संस्कृत के महान् आचार्य श्री सम्पूर्णानन्द जी ने की है।

इस खुदाई में नृत्य की मुद्रा में जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे पता लगता है कि भारतीय संगीत मिश्र, यूनान और मेसोपोटामियाँ के संगीत से श्रेष्ठ था। इस वैभवशाली नगर की उत्कृष्ट संगीत शैली को देखकर यह प्रतीत होता है कि संगीत निर्माण की व्यवस्था एक निश्चित सुन्दर योजना के अनुसार हुई होगी। जिस प्रकार इनका भोजन सात्विक था, ठीक वैसा ही इनका संगीत भी सात्विकता के वातावरण में परिपूर्ण रहा होगा, क्योंकि सात्विक वातावरण ही संगीत के आन्तरिक सौन्दर्य को प्रदीप्त कर सकता है। जिस उज्ज्वल एवं प्रशस्त सूझ-बूझ से अपनी सभ्यता को उच्चता की पराकाष्ठा पर चढ़ाया, उसी से इन्होंने संगीत की पावन आत्मा की स्वर्णिमा को प्रस्फुटित किया होगा। सभ्यता और संस्कृति का कोई भी ऐसा अंग नहीं था, जिसका ज्ञान सिन्ध घाटी की सभ्यता वालों को मालूम न हो।

सिन्ध नदी की घाटी की उत्कृष्ट सभ्यता ने इतिहासकारों की आँखें खोल दी हैं, उनके लिए यह गवेषणा का विषय बन गया है। भारत की सभ्यता और संस्कृति पर जो आवरण पड़ा हुआ था वह उठ गया है, लेकिन पूरी तौर पर नहीं, अभी बहुत-सी सम्भावनाएँ भविष्य के गर्भ में प्रच्छन्न हैं।

सिन्धघाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में "हिन्दुस्तान की खोज" में पं० जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं—"मोहनजोदड़ो और हरप्पा एक दूसरे से काफी दूरी पर हैं। इन दो जगहों के खण्डहरों की खोज एक इत्तिफाक की बात थी। इसमें शक नहीं कि बहुत से ऐसे, मिट्टी में दबे हुए शहर और पुराने जमाने के आदमियों के कारनामे इन दो जगहों के बीच पड़े होंगे, और यह कि तहजीब हिन्दुस्तान के बड़े हिस्सों में, और यकीनी तौर पर उत्तरी हिन्दुस्तान में फैली हुई थी। ऐसा वक्त आ सकता है जबकि हिन्दुस्तान के क़दीम जमाने के ऊपर से परदा उठाने का काम फिर हाथ में लिया जाए और मार्के की खोजें हों। अभी ही इस सभ्यता के निशान हमें इतनी दूर फैली हुई जगहों में मिले हैं जैसे पच्छिम में काठियावाड़ और पंजाब में अम्बाला जिला और ऐसा यकीन करने की वजहें हैं कि यह सभ्यता गंगा की चोटी तक फैली हुई थी। इस तरह यह सभ्यता उच्च भारतीय गौरव को लिए हुए थी। मोहनजोदड़ो में मिले हुए लेख अभी तक ठीक ठीक पढ़े नहीं जा सके हैं।

सिन्धघाटी की सभ्यता जैसा भी हम जान सके हैं, एक बड़ी तरक्की-याफ्ता थी—

लेकिन जो भी हम अब तक जान सके हैं, वह बड़े महत्व की बातें हैं। सिन्ध-घाटी की सभ्यता, जैसा भी हम उसे जान सके हैं, एक बड़ी तरक्कीयाफ्ता थी और उसे इस दर्जे तक पहुँचाने में हजारों साल लगे होंगे। यह काफी अचरज की बात है कि यह सभ्यता लौकिक और दुनियावी सभ्यता है और अगर्चे इसमें मजहबी अंश भी मौजूद थे, वह इस पर हावी न थे। यह भी जाहिर है कि यह सभ्यता हिन्दुस्तान के और तहजीबी जमानों की पूर्व सूचक थी।

सर जान मार्शल हमें बताते हैं—मोहनजोदड़ो और हरप्पा इन दोनों जगहों में, एक चीज जो साफ तौर पर जाहिर होती है और जिसके बारे में कोई धोखा नहीं हो सकता, वह यह है कि इन दोनों जगहों में जो सभ्यता हमारे सामने आई है वह कोई इन्तदाई सभ्यता नहीं है, बल्कि ऐसी है जो उस समय ही युगों पुरानी पड़ चुकी थी, हिन्दुस्तान की जमीन पर मजबूत हो चुकी थी, और उसके पीछे आदमी का कई हजार

वर्ष पुराना कारनामा था। इस तरह अब मानना पड़ेगा कि ईरानी, मेसोपोटामिया और मिश्र की तरह हिन्दुस्तान भी उन सबसे प्रमुख प्रदेशों में एक है, "जहाँ कि सभ्यता का आरम्भ और विकास हुआ था।" और फिर वह कहते हैं कि "पंजाब और सिन्ध में अगर हम हिन्दुस्तान के और दूसरे हिस्सों में भी न माने, एक बहुत तरक्कीयाफ्ता और अदभुत रूप से आपस में मिलती जुलती हुई सभ्यता का प्रचार था, जो कि उसी जमाने की मेसोपोटामिया और मिश्र की सभ्यताओं से जुदे होते हुये भी, कुछ बातों में उससे ज्यादा तरक्की पर थी।"

आगे नेहरू जी लिखते हैं—"मार्शल से जोकि सिन्ध घाटी की सभ्यता के माने हुए विशेषज्ञ हैं और जिन्होंने खुद खुदाई कराई थी, एक और उद्धरण दूँगा। वह कहते हैं—सिन्ध घाटी की कला और धर्म भी उतने ही विचित्र हैं और उन पर एक अपनी खास छाप है। इस जमाने के दूसरे मुल्कों की हम कोई ऐसी चीज नहीं जानते जो शैली के ख्याल से यहाँ की चीनीमट्टी की बनी भेड़ों, कुत्तों या मरे जानवरों की मूर्तियों से मिलती हो या उन खुदी हुई मुहरों से, खास तौर से जिन पर छोटी सींगों के कूबड़ वाले बैलों की नक्कासी है, और जो बनाने के कौशल और सुडौलपन की दृष्टि से बेमिशाल है। न यही मुमकिन होगा कि हरप्पा में पाई गई दो छोटी मूर्तियों का मुकाबिला बनावट की सुघराई के ख्याल से किन्हीं और मूर्तियों से कर सकें, सिवाय इसके कि जब यूनान की सभ्यता के प्रौढ़काल के कारनामें देखें।

सिन्ध घाटी की सभ्यता और आज के हिन्दू-समाज के बीच की बहुत-सी कड़ियाँ गायब हैं और ऐसे जमाने गुजरे हैं जिनके बारे में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है। एक जमाने को दूसरे जमाने से जोड़ने वाली कड़ियाँ अक्सर जाहिर भी नहीं हैं, और इस बावत जाने कितनी घटनाएँ घटी हैं और कितनी तब्दीलियाँ हुई हैं। फिर भी ऐसा मालूम देता है कि एक सिलसिला कायम रहा है, और एक साबित जंजीर है जो आज के हिन्तुस्तान को उस छः सात हजार पुराने-जमाने से, जबकि सिन्ध-घाटी की सभ्यता शायद शुरू हुई थी बाँध रही है। मोहनजोदड़ो और हरप्पा की कितनी चीजें हमें चली आती हुई परम्परा की, रहन-सहन की, लोगों के पूजा-पाठ, कारीगर, यहाँ तक कि पोशाक के ढङ्गों की याद दिलाती रहती है, इस पर अचरज होता है। इनमें से बहुत-सी बातों ने पश्चिमी एशिया पर प्रभाव डाला था।

वह एक दिलचस्प बात है कि हिन्दुस्तान की कहानी के इस उषा-काल में हम उसे एक नन्हें बच्चे के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि इस वक्त भी वह अनेक प्रकार से सयानी हो चुकी थी। वह जिन्दगी के तरीकों से अनजान नहीं है, वह किसी धुँधली

और न हासिल होने वाली दूसरी दुनियाँ के सपनों में खोई हुई नहीं है। बल्कि उसने जिन्दगी की कला में, रहन-सहन के साधनों में काफी तरक्की करली है, और न महज सुन्दर चीजों की रचना की है, बल्कि आज की सभ्यता के उपयोगी और खास चिन्हों, अच्छे हम्मामों और नालियों को भी तैयार किया है।"

जब सिन्धघाटी की सभ्यता और कला इतनी सर्वोत्कृष्ट थी तो उसमें संगीत भी अपनी चरम उत्कर्ष पर रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय की संगीत सम्बन्धी मूर्तियाँ भी खुदाई में प्राप्त हुई, जो इस बात की गवाही हैं और उत्कृष्ट सभ्यता तथा कला स्वयं संगीत की उत्कृष्टता के प्रतीक हैं।

———

वैदिक युग में संगीत

भारत की सभ्यता और संस्कृति उसकी अपनी है—यह बाहर से नहीं आई, इस तथ्य पर सब विद्वान एक मत हैं। हाँ कुछ विद्वानों की राय इससे विपरीत हो सकती है, लेकिन सर्वमान्य तथ्य यही है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता किसी दूसरी जगह से नहीं आई। किन्तु सभ्यता और संस्कृति के सम्पूर्ण उपादानों का क्रम-विकास के भव्य पथ का अनुसरण करते हुए भी पृथ्वी के विशाल वक्ष पर भिन्न-भिन्न रूप में रूपायित हुए हैं, और आज भी यह विकास-क्रम निर्बाध गति से गतिशील हो रहा है। इस विकास धारा के व्यक्तीकरण को हम शास्त्रीय भाषा में "अभिव्यक्ति" कहते हैं। विकास की विचित्र धारा एवं सुषमा को लेते हुए समाज का गठन होता है। मनुष्य और प्राणियों को लेकर ही समाज निर्मित होता है। प्राणियों की विविध विभिन्नताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न समाजों में भी वैचित्र्य होता है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज तक मानव-समाज जिन-जिन परिवर्तनों से गुजरा है, उनके पीछे क्रमाभिव्यक्ति की मर्म कथा ही प्रच्छन्न है। इस मर्मकथा को साधारणतया इतिहास प्रगट करता है। भारत में इस इतिहास के विविध रूप, वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, संहिता, प्रतिसांख्य, शिक्षा, कला, निरुक्त, व्याकरण, पुराण, साहित्य, नाट्य, काव्य, शिल्प, भास्कर्य, राजनीति, धर्म, अध्यात्म आदि में व्यक्त हुए। यह कहा जा सकता है कि ये सब हमारे इतिहास के उपादान हैं। इन सबको समिष्टगत करके ही पूर्ण भारतीय इतिहास की रचना हो सकती है। किन्तु इसके आंशिक अथवा व्यष्टि रूप में प्रत्येक का पृथक्-पृथक् इतिहास भी बन जाता है और जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इतिहास क्रमानुगत अभिव्यक्ति की कहानी मात्र है। यह अभिव्यक्ति लहरों की भाँति उत्थान और पतन तथा प्रवाह की गति का परिचय कराती है। अपनी पूर्ण परिणति तक न पहुँचने तक यह प्रवाह अनन्त के वक्ष पर चलता ही रहता है।

शिल्प के क्षेत्र में ललित एवं चारु कलाएँ ही प्रधान हैं। चारु कला का विकास चित्र, भास्कर्य और संगीत के माध्यम से हुआ है। इन तीनों के पीछे मनोवैज्ञानिक वृत्ति तथा प्रचेष्टा वस्तुत: एक ही प्रकार की है। भिन्नता केवल प्रयोग

और प्रकाश में है। आन्तरिक एवं वाह्य इन दो विकासों से समवेत रूप ही चित्र, भास्कर्य और संगीत में लीलायित एवं अभिव्यक्ति होता है। इन तीनों कलाओं में कलाकार पहले अपने हृदय के अन्दर अपने मानस पट पर ही भावों की व्यंजना का चित्र बनाते हैं, और इसके उपरान्त उनके अन्तर्मन में रूपायित होने वाला वह ध्यान चित्र ही तूलिका छेनी अपना कण्ठ स्वर के माध्यम से अपना वाह्य स्वरूप उपलब्धि करता है। यह तीनों ही कलाएँ ललित कलाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं और सचमुच इनके भाव-सौन्दर्य की कोई सीमा नहीं। फिर भी इन तीनों में संगीत कला को सबसे अधिक श्रेष्ठ वताया गया है। संगीत की मनोमुग्धकारी स्वर लहरी मानव के अंग-प्रत्यंग में उन्माद एवं प्राण संचारणी प्रवाह की सृष्टि करती है और उसकी स्वाभाविक गति एवं प्रकृति को पवित्रता के आलोक से उद्भासित करती है।

वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन पर होता है। आर्यों की जन्मभूमि कहाँ पर थी, इस विषय में इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वे डैन्यूब नदी के पास आस्ट्रया-हंगरी के विस्तृत मैदानों में रहते थे, और वहीं से वे भारतवर्ष को आये, पर इसके विपरीत कुछ विद्वानों की यह राय है कि उनका आदिम निवास स्थान दक्षिण रूस में था। कतिपय विद्वान, श्री बालगंगाधर तिलक की तरह यह कहते हैं कि आर्यों का मूल स्थान उत्तरी ध्रुव प्रदेश में था। बहुत से विद्वानों की राय पहले यह थी, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू जी भी शामिल हैं, कि वे मध्य एशिया के मैदानों में रहते थे और वहीं से भारत की ओर आये तथा अन्य देशों में भी गये। लेकिन कुछ ऐसे विद्वान भी हैं, जिनका मत है कि आर्य लोग भारत के आदिम निवासी थे, और यहीं से वे संसार के अन्य भागों में फैले थे।

कुछ विद्वानों की जिनकी दृष्टि धार्मिक है उनका अभिमत है—

प्रत्येक देश की प्राचीन संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाज, धार्मिक कृत्य, कला, साहित्य आदि में कुछ ऐसी बातें अवश्य प्राप्त होती हैं, जो भारतीय-सी जान पड़ती हैं। इन देशों की भाषाओं के बहुत से शब्द एक दूसरे से बहुत ज्यादा मिलते-जुलते हैं, जैसे—

संस्कृत	ईरानी (फारसी)	लैटिन	अँगरेजी
पितृ	पिदर	पेटर	फादर
मातृ	मादर	मेटर	मदर

संस्कृत	ईरानी (फारसी)	लैटिन	अँगरेजी
भ्रातृ	बिरादर	फ्रेटर	ब्रदर
दुहितृ	दुख़्तर	—	डाटर
पद	पा	पड	फुट
द्वि	—	डाई	टू

प्रायः समस्त प्राचीन धर्मग्रन्थों एवं दर्शन शास्त्रों में यत्र तत्र प्राचीन भारतीय सिद्धान्त बिखरे हुए मिलते हैं। इनके एक नहीं अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। अब हमें यह देखना है कि यह समता आई कैसे ? इस सम्बन्ध में तीन ही बातें सम्भव हैं। पहली—विभिन्न देशों में स्वतन्त्र रीति से लोगों के मस्तिष्क में वैसी ही बातों का प्रादर्भाव हुआ। दूसरी, किसी प्रकार भारत से उन देशों में गई, या तो भारतियों ने उन देशों में जाकर अपनी संस्कृति का प्रचार किया अथवा वहाँ के लोग भारत आकर यहाँ की कुछ बातें अपने साथ ले गये। तीसरी, विभिन्न देशों से वे बातें भारत ने ही ली। पाश्चात्य विद्वान प्रायः तीसरी ही बात की पुष्टि करते हैं। बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकर उन्होंने सिद्ध किया है कि प्राचीन मिश्र, चीन, यूनान आदि से भारत ने सभ्यता और संस्कृति की अनेक बातें सीखी। संस्कृति के इतिहासकारों में एक मत ऐसा अवश्य है कि विभिन्न देशों की संस्कृति का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ। पर उसके मानने वाले इने गिने विद्वान हैं। अधिकांश विद्वानों का यही मत है कि विभिन्न संस्कृतियों का कुछ न कुछ परस्पर सम्बन्ध अवश्य है। अन्ततः सिर्फ दूसरा ही मत रह जाता है और उसके विवेचन में देखना होगा कि विभिन्न देशों की संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का समावेश कैसे हुआ ?

इस पर विचार करने के लिए हमें अपने प्राचीन इतिहास को ही अपना आधार मानना पड़ेगा। पाश्चात्य विद्वानों के लिखे इतिहास के आधार पर हम नहीं चल सकते, क्योंकि उनका अभिमत एवं उनकी शैली भिन्न है। प्रस्तुत विषय पर विचार करने पर सबसे प्रथम यही प्रश्न उठता है कि क्या मानव सृष्टि किसी एक ही स्थान पर हुई तथा शनैः शनैः मनुष्य सभी भू-भागों पर फैल गए अथवा विभिन्न भू-खण्डों में समय-समय पर स्वतन्त्र रीति से मानव सृष्टि हुई ? हमारे यहाँ के इतिहास को पहला ही मत मान्य है। पुराणों में जो सृष्टि क्रम दिया गया है, उससे यही प्रमाणित होता है कि प्रथम मानव सृष्टि भारत में हुई तथा उसका विस्तार सम्पूर्ण विश्व में हुआ। पुराणों के अनुसार पहले महाशक्तिमान संगीत के महान् पंडित नारद, मरीचि, बशिष्ठ आदि ब्रह्मा के दस मानस पुत्र हुए, लेकिन वे सृष्टि का विस्तार नहीं कर सके। ब्रह्माजी तब इस

चिन्ता में पड़ गए कि सृष्टि का सन्तोषजनक विस्तार किस प्रकार हो। इसी समय उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया और उससे एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा पैदा हुआ। उसमें पुरुष स्वायम्भुव मनु और स्त्री उनकी रानी शतरूपा हुई। तब से नारी-पुरुष के संसर्ग द्वारा सृष्टि क्रम क्रियाशील हो गया, स्वायम्भुव ने शतरूपा से पाँच सन्तानें उत्पन्न की, जिनमें प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नाम के दो पुत्र और आकूति देवहूति एवं प्रसूति तीन कन्यायें हुई। उनमें से मनु ने आकूति का मरीचि प्रजापति, देवहूति का कर्दम प्रजापति तथा प्रसूति का दक्ष प्रजापति के साथ विवाह कर दिया। उन्हीं की उत्पन्न सन्तानों से सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण है। भागवत के तीसरे स्कन्ध में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। पाँच वे स्कन्ध में बतलाया गया है कि पृथ्वी पर राजा प्रियव्रत के रथ के पहिये की लीक से किस प्रकार सात समुद्र तथा सात द्वीपों की रचना हुई। चतुर्थ स्कन्ध में बतलाया गया है कि राजा पृथु के पहले इस पृथ्वी पर कहीं भी पुर, ग्रामादि की कल्पना नहीं थी। पिता के समान प्रजाओं को जीविका देने वाले महाराज पृथु ने सब पृथ्वी पर जहाँ तहाँ ग्राम, पुर, नगर, दुर्ग, वीरों के रहने योग्य स्थान, पशुशालाएँ, छावनियाँ, खानें, किसानों के गाँव तथा पर्वतों की तलहटी में वस्तियाँ बसाकर सबको यथायोग्य निवास स्थान प्रदान किया।

"अथास्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता।
निवासान् कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥
ग्रामान् पुरः पत्ननानि दुर्गाणि बिविधानि च।
घोषांन् व्रजान् सशिबिरानाकरान् खेट खर्वटान् ॥"
(श्री मद्भ० ४ । १८ । ३०–३१)

भारत से ही मानव सृष्टि का विस्तार अन्य भागों में हुआ—

इस प्रकार भारत से ही मानव-सृष्टि का विस्तार अन्य भागों में हुआ। भारतवर्ष में भी मानव सृष्टि का आरम्भ ब्रह्मावर्त में माना गया है यह प्रदेश देवताओं से निर्मित एवं आध्यात्मिक बतलाया गया है। भगवान राम, श्रीकृष्ण आदि के अवतार इसी प्रदेश में हुए। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के आधार वेद हैं, जिनको अपौरुषेय तथा नित्य माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी उन्हें सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। जिन-जिन भूमियों पर प्राचीन हिन्दू आबाद होते गए, वहाँ उनके साथ वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति भी पहुँची। पर संसार का केन्द्र या हृदय भारत ही रहा। अपने शास्त्रों में उसे कर्मभूमि कहा गया है। अन्य देश तो केवल भोग भूमि हैं।

कालान्तर में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के जलवायु की भिन्नता के कारण वहाँ जाकर बसने वाले भारतियों के वर्ण तथा आकृतियों में भी भिन्नता आगई। जलवायु का आचार-विचार पर भी प्रभाव पड़ा। आने-जाने की असुविधाओं के कारण कई देशों का भारत से सम्पर्क टूट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शुद्ध आचार-विचारों का पोषण बन्द हो गया तथा रूप रंग एवं रहन-सहन में इतना परिवर्तन हुआ कि वहाँ के प्रवासी भारतीय भारत में विदेशी तथा भिन्न जाति के प्रतीत होने लगे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्य लोग भारतवर्ष के ही मूल निवासी थे, और यहीं से समस्त विश्व में फैले। इस मत की पुष्टि सुप्रसिद्ध विद्वान हाइस्टन तथा विलोर्भील गिस्टा ने भी की है। खैर जो कुछ भी हो आर्यों की सभ्यता और संस्कृति उच्चकोटि की थी। इसी मत का जोरदार समर्थन कलकत्ता के प्रसिद्ध विद्वान एस० पी० दास ने अपनी पुस्तक "ऋग्वेदिक" में किया है। कुछ विद्वान् आर्यों का समय ईसा से ५००० हजार वर्ष पूर्व मानते हैं, और कुछ का कहना है कि तीन हजार वर्ष पूर्व वे भारत में थे, तथा कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि साढ़े छः हजार वर्ष पूर्व भी वे भारत में थे। और कुछ विद्वान इससे भी पूर्व मानते हैं।

आर्य लोग भारतवर्ष के ही मूल निवासी थे—

आधुनिक पुरातत्ववेताओं तथा भाषा वैज्ञानिकों के अनुसन्धानों ने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन भारतीय आर्यों का फारस, एशिया माइनर तथा यूरुप के निवासियों से अवश्य सम्बन्ध था। एशिया माइनर में बोगाज नामक स्थान पर चौदहवीं शताब्दी ई० पू० के कुछ लेख मिले हैं। उन लेखों में ऐसे रजाओं का उल्लेख है जिनके नाम आर्यों के से थे, और जो इन्द्र, वरुण, मरुत आदि देवताओं की प्रार्थना संगीत के माध्यम से करते थे। इन लेखों के आधार पर यह मत स्थिर किया गया है कि आर्य लोग भारतवर्ष में आने से पूर्व इन स्थानों में घूमते थे। अन्य विद्वानों का मत है कि भारतीय आर्यों तथा एशिया मायनर के निवासियों का व्यापारिक तथा साँस्कृतिक सम्पर्क रहा होगा जिसके कारण आर्यों के धर्म, संगीत एवं साहित्य का उन लोगों पर प्रभाव पड़ा। इस बात का निर्णय करना बड़ा कठिन है कि आर्य लोग एशिया माइनर से भारत में आए अथवा भारत से एशिया माइनर में गए।

भारत से ही सर्वप्रथम ईरान में संगीत गया—

प्राचीन ईरानियों के धर्मग्रन्थों एवं वैदिक साहित्य और कला का तुलनात्मक

अध्ययन ने कुछ नवीन ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। ईरानियों के धर्मग्रन्थ "जिन्दअवेस्ता" की भाषा वेदों की भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ईरानियों तथा वैदिक आर्यों के देवता भी लगभग एक ही थे। भारतीय संगीत एवं ईरानी संगीत के मौलिक सिद्धान्त भी एक ही पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। भारतीय संगीत के अनेक तथ्यों की समता ईरानी संगीत से आज भी पाई जाती है। इस अनुसन्धान से विद्वान इस परिणाम पर पहुँचे कि प्राचीन ईरानी तथा वैदिक आर्य एक ही पूर्वजों की संतान थे तथा उनका मूलनिवास स्थान भी एक ही रहा होगा। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि मध्य एशिया वह स्थान था जहाँ इन दोनों जातियों के पूर्वज सुदूर अतीत में रहते थे। जनसख्या की वृद्धि ने उन्हें अपना घर छोड़ने पर वाध्य किया। उनमें से कुछ कबीले भारत की ओर आए, और सप्तसिंधव प्रदेश में बस गए और कुछ पश्चिम की ओर मुड़ कर ईरान पहुँचे। इस मत के मानने वालों में प्रसिद्ध जरमन विद्वान मैक्समूलर का नाम अग्रणीय है। एक अन्य विद्वान थाइसोपीन का कथन है कि "भारत ही वह मूल केन्द्र है, जहाँ से यहाँ के लोग ईरान देश में गए, और वे अपने साथ भारतीय संगीत एवं साहित्य को ले गए इसीलिए ईरानी संगीत और ईरानी साहित्य भारतीय संगीत तथा भारतीय साहित्य से समता रखता है। भारतीय संगीत तथा इरानी संगीत के मौलिक तथ्यों में काफी समानता पाई जाती है।"

भाषा-विज्ञान सम्बन्धी नवीन अन्वेषणों ने इस अभिमत का भी खन्डन कर दिया है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान (Comparative Philology) ने यह प्रमाणित किया है कि आधुनिक योरुप की समस्त भाषायें उसी परिवार की हैं, जिसकी कि संस्कृत तथा प्राचीन ईरानियों की भाषा। इन भाषाओं में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनका रूप लगभग एकसा है। इस अनुसन्धान से यह परिणाम निकाला गया कि भारतीय आर्य तथा आधुनिक योरुप की कौमें जैसे यूनानी, इतालवी, फ्रेन्च, जरमन, अंग्रेज, रूसी आदि सब मूलतः एक ही परिवार के हैं। इस प्रकार एक नई खोज आरम्भ हुई सर्वप्रथम उन पशु-पक्षियों, फल फूलों वृक्षों आदि के नामों का संकलन किया गया जो इन सब कौमों की भाषाओं में पाए जाते हैं। तत्पश्चात् ऐसे स्थान की खोज हुई, जहाँ यह सब वस्तुएँ उपलब्धि हों। इस कसौटी पर कसते हुए विख्यात विद्वान पारविन हेल्वा का कथन है—"वह स्थान भारतवर्ष ही है जहाँ से आर्य लोग सम्पूर्ण विश्व में फैले। वास्तव में आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे। इनका संगीत इतना उत्कृष्ट था कि यह जहाँ भी गए इन्होंने सबसे अधिक अपने संगीत की छाप उस देश पर डाली, इसीलिए योरुप के समस्त देशों के संगीत में

तथा एशिया के संगीत में भारतीय संगीत की मौलिक आभा प्रदीप्त हो रही है। आर्य लोग अपने श्रेष्ठ चमत्कारिक संगीत के कारण ही विदेशों में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना सके। वे संगीत के द्वारा सबको मोह लिया करते थे, संगीत ने ही उनके स्वभाव को बहुत मधुर एवं उत्कृष्ट बना दिया था, संगीत ने आर्यों की आत्मा को विराट बना दिया था।"

आर्यों का संगीत इतना उत्कृष्ट था कि यह जहाँ भी गए इन्होंने सबसे अधिक अपने संगीत की छाप उस देश पर डाली—

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यों के आदि देश के विषय में विद्वान एक निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं। सभी मतों का आधार एक कसौटी, भाषा, संगीत, तथा रहन-सहन की समानता। परन्तु उन विद्वानों की संख्या अब बढ़ रही है जो कि यह मानते हैं कि आर्य लोग मूलत: भारत के ही निवासी थे, अब तो इस मत को पाश्चात्य यिद्वान भी मानने लगे हैं।

और यदि हम यह मान लेते हैं कि आर्य लोग बाहर से ही आए तो भी वे एक साथ नहीं आए। भिन्न-भिन्न कबीले अलग अलग समय पर आए और जहाँ स्थान पाया वहाँ बसते गए। यह भी सम्भव है कि इस प्रकार आर्यो का आगमन सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। यहाँ आने पर उन्हें इस भूमि के आदि निवासियों से युद्ध करना पड़ा और यह युद्ध दीर्घ काल तक चलता रहा।

आर्यों के कई कबीले द्रविड़ों से लड़ाई लड़ते हुए उनके उच्चकोटि के संगीत से प्रभावित हो गये थे तथा उन्होंने द्रविड़ों पर प्रसन्न होकर उनकी सम्पूर्ण संस्कृति को अपना लिया। तथा जो द्रविड़ आर्यों से लड़ाई लड़ते हुए परास्त हुए थे, उनको आर्यो ने दास बना लिया, किन्तु उनकी भी संस्कृति को अपना लिया।

ऋग्वेद का युग

ऋग्वेद काल में प्रत्येक परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था—

ऋग्वेद के काल तक आर्य लोग खानाबदोश कबीलों की अवस्था छोड़कर एक जगह बस गए थे तथा कृषि करने लगे थे। उनके सामाजिक संगठन का मूल आधार परिवार था। प्रत्येक परिवार में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था, परिवार में संगीत का आयोजन परिवार की अधिष्ठात्री नारी गृहलक्ष्मी ही करती थी। सुबह शाम प्रत्येक

परिवार में ईश्वर उपासना होती थी। प्रातःकाल काम शुरू करने से पूर्व घर की सब नारियाँ, बूढ़े, बच्चे सब एक स्थान पर एकत्रित होकर अपने इष्टदेव की आराधना गा-बजाकर किया करते थे। उनका गाना-बजाना ताल स्वर में होता था। ऋग्वेद काल का प्रत्येक गृह संगीत का सुन्दर केन्द्र बना हुआ था। इस संगीतिक वातावरण ने प्रत्येक परिवार में शान्ति एवं मधुरता का वायुमन्डल आविर्भूत कर दिया था। किसी घर में नारियाँ आपस में लड़ाई झगड़ा नहीं करती थीं, क्योंकि संगीत ने पुरुष और नारियों के हृदयों में सरसता की धारा प्रभावित करदी थी। हर घर सुख शान्ति का केन्द्र-सा बना हुआ था। ऋग्वेद काल में संगीत का विकास जितना गृहों में हुआ उतना बाहर नहीं हो पाया। वैसे तो सार्वजनिक रूप से भी संगीत प्रदर्शन हुआ करता था, किन्तु ऐसे सुन्दर अवसर बहुत कम आते थे। परुषों का दिन का जीवन बड़ा ही व्यस्त रहता था। हाँ उनको सुबह शाम घर में आकर अवश्य ही संगीत के लिए वक्त मिल जाता था, वह इसलिए कि दोनों वक्त वे अपने देवताओं की प्रार्थना करते थे, उठने पर और सोने पर वे अवश्य ही संगीत से आनन्द लिया करते थे। कभी कभी सोमरस पीकर पुरुष और नारियाँ एक साथ सार्वजनिक रूप से नृत्य करते थे और यह क्रम घंटों चला करता था। चूँकि ऋग्वेद-काल में ग्रामों की व्यवस्था हो चुकी थी। अतएव संगीत कई वर्गों में बट गया था, प्रत्येक वर्ग अपने संगीत विकास को जहाँ तक हो सकता था एक दूसरे वर्ग से पृथक् रखता। ऐसे बहुत कम अवसर आते थे जब कि सब वर्गों के संगीत मिलकर अपना एक रूप सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत किए जाते हों। अधिकतर तो यही क्रम चला करता कि आज किसी वर्ग का संगीत प्रदर्शित किया जा रहा है, तो कल किसी दूसरे वर्ग का।

संगीत के समझने की शक्ति सर्वसाधारण में पूर्ण रूप से पाई जाती थी—

संगीत को समझने की शक्ति सर्वसाधारण में पूर्ण रूप से पाई जाती थी। सामान्य लोग भी संगीत आयोजनों में विशेष रस लिया करते थे। वे भी शास्त्रीय संगीत को समझते थे लेकिन फिर भी संगीत की दो धारायें हो चुकी थीं। पहली धारा शास्त्रीय संगीत की थी, और दूसरी धारा लोकसंगीत की थी। लोकसंगीत की भी पृष्ठभूमि उच्चकोटि की थी। इस समय के लोक संगीत अधिकतर कलात्मक होते थे। उनमें ऐसी कथाएँ गुम्फित रहती थी कि जो आर्यों को युद्ध में विजय श्री, उपलब्धि कराये, जो आर्यों के नैतिक जीवन को ऊपर उठाए।

इस काल में संगीत की बागडोर मुख्य रूप से ब्राह्मणों के हाथ में थी—

लोकसंगीत की रचना प्रायः ब्राह्मण लोग ही करते थे, वे ही इस बात

का निर्णय करते थे कि कौन-सी कथा नृत्य में गुँथ कर मानव जीवन को उच्च बना सकती है। संगीतज्ञ प्रायः सब वर्गों में नहीं पाये जाते थे प्रायः वे ब्राह्मण ही होते थे, क्योंकि उन्हें कला साधना का सुअवसर मिलता था। उनका काम था कि कला और साहित्य के द्वारा समाज को चरित्र के उच्चतम मंजिल पर ले जाना। इस युग के संगीत की बागडोर मुख्य रूप से ब्राह्मणों के हाथ में ही थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि अन्य वर्गों में कोई संगीत प्रेमी नहीं था। संगीत प्रेमी तो आर्यों के सम्पूर्ण गिरोहों में पाए जाते थे। किन्तु सम्पूर्ण गिरोह के लोग संगीत साधना नहीं करते थे। आर्यों ने काम को सुन्दर ढगं से सम्पन्न करने के लिये परस्पर उसका वितरण कर लिया था। आर्यों का एक वर्ग युद्ध करता था, (२) दूसरा वर्ग खेती करता था, यह वर्ग पूर्ण रूप से अन्न उत्पादन का जिम्मेदार था, (३) तीसरा वर्ग का काम कला और साहित्य के द्वारा मानवों के जीवन का विकास करना था और (४) चौथे वर्ग का काम उपर्युक्त तीनों वर्गों की सेवा करना था। बस यही मुख्य चार वर्ग थे, जो कि अपने-अपने काम के जिम्मेदार थे। एक वर्ग दूसरे वर्ग के कार्य में दस्तन्दाजी नहीं करता था, प्रत्येक वर्ग को अपने काम से मतलब था। इस प्रकार संगीत विकास की जिम्मेदारी ब्राह्मणों पर पड़ी। यही चारों वर्ग आगे चलकर क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण एवं शूद्र हो गए। ब्राह्मण तीनों वर्गों को संगीतिक ज्ञान कराता था, उन्हें विद्या के उज्ज्वल आलोक से परिपूर्ण कराता था।

संगीतज्ञों को समाज उच्च दृष्टि से देखता था—

मिस्टर अलकरोटार्नी ने अपनी पुस्तक "The Chapters of Indian Music" में लिखा है—"ऋग्वेद काल के संगीत की बागडोर मुख्य रूप से ब्राह्मणों के हाथ में थी, ब्राह्मण ही संगीत का ज्ञान सर्वसाधारण को दिया करते थे। इस युग में हमें गायक और वादक एवं नर्तक तीनों प्रकार के कलाकार मिलते हैं। वास्तव में इस युग में संगीत के तीनों उपकरणों की उन्नति हुई। नृत्य भी अपनी उच्चता की पराकाष्ठा पर था। वीणा वाद्य का प्रयोग इस युग में होता था। वीणा का गायन और वादन दोनों से मुख्य सम्बन्ध था। वीणा वाद्य इस युग में विशेष रूप से लोकप्रिय हो रहा था। इस वाद्य को अधिकतर नारियाँ बहुत बजाया करती थीं। महिलाएँ कंठ संगीत में विशेष दिलचस्पी लिया करती थी। वे नृत्य भी करती थीं। नृत्य से भी उनको विशेष प्रेम था। संगीत के सार्वजनिक आयोजनों में नर्तकियां खुलकर भाग लिया करती थीं, उन्हें किसी किस्म की हिचक नहीं थी, क्योंकि समाज में गायकों,

वादकों एवं नर्तकियों का उच्चस्थान था। संगीतज्ञों को समाज उच्च दृष्टि से देखता था। उनका सामाजिक मान सम्मान किया जाता था। लोक संगीत के कलाकारों का भी समाज में मान सम्मान किया जाता था। उनको भी सुन्दर दृष्टि से देखा जाता था।"

"The Rgvedas are the Hindu Sacred writings which are probably the oldest literary compositions in the world." (Well's Sex and Sex worship Page 8)

इस काल में पुरुष नृत्य करते हुए बहुत कम देखे जाते थे। नृत्य का काम प्रायः नारियों का ही था। पुरुषों को तो अपने दैनिक कार्यों से ही अवकाश नहीं मिलता था। नृत्य करने से इस काल की नारियों का स्वास्थ्य बड़ा ही आकर्षक पूर्ण हो गया था। नारियों के शरीर बड़े सुडौल एवं गठे हुए होते थे। नृत्य उनके लिये व्यायाम का काम करता था। वास्तव में महिलायें नृत्य को व्यायाम के रूप में ही विशेष रूप से अपनाती थी, चूँकि उन्हें नृत्य करने से सुख और शान्ति प्राप्त होती थी, इसीलिऐ वे इसको खुले हृदय से अपनाया करती थी।

संगीत का शक्तिशाली प्रतीक "समन"—

ऋग्वेद में मधुर और मनोरंजक स्थानों की कमी नहीं। सुप्रसिद्ध विद्वान एवं साहित्यकार श्री भगवतशरण उपाध्याय वैदिक युग का वर-वधू महोत्सव "समन" पर एक लेख में लिखते हैं—"ऋग्वेद आदि ग्रन्थ में उत्सवों और त्यौहारों से मिलते-जुलते एक प्रकार के मेले का उल्लेख हुआ है जिसे "समन" कहते थे। स्त्रियाँ, विशेषकर कुमारियाँ, वर की खोज में वहाँ जाती थीं। उसमें घुड़दौड़ और रथ-धावन बड़ी तत्परता से होते थे। मेला रात में होता था। चमकते मशालों के उजाले में कुमारियाँ मधुर मुस्कराती हुई वहाँ जाती थी, अनेक बार वहीं खेल में सारी रात गुजार देती थीं। इन समनों में प्रेमियों के सम्मिलन और सम्यांक वर-वधू की खोज की सुविधा विशेष रूप से प्राप्त होती थी। कुछ अजब नहीं कि इस प्रकार की स्वतन्त्रता जब तब आचरण में दोष उत्पन्न कर देती रही हो। संहिता में समाज की अनुमति न मिलने पर प्रणय साधन के निमित्त प्रेमियों के भाग जाने के अनेक संकेत मिलते हैं। सम्भव है, अन्यत्र उस समाज में ऐसी स्वतन्त्रता सम्भव न रही हो, परन्तु समन में कुमारियाँ प्रमाणतः अपने प्रेमियों के साथ घूमती थी। अनेक प्रणयी युगल के लिए समन संकेत स्थान का कार्य करते होंगे। वस्तुतः विवाह कार्य और गुरुजनों का

दायित्व अधिकतर समन की संस्था द्वारा पर्याप्त हलका हो जाता होगा। अनेक विचारों, भिन्न रुचियों के कुमार-कुमारी वहाँ बड़ी संख्या में मिलते होंगे, जिससे चुनाव के कार्य में बड़ी सुविधा मिलती होगी। समन में यज्ञ-होमादि भी होते थे। ऋग्वैदिक कवि अग्नि के प्रकाश में युवतियों के समुज्ज्वल बदन को स्मित हास्य से प्रफुल्लित देखता है। इन समनों में यौन-सम्बन्धिनी देवी इन्द्राणी की विशेष पूजा प्राचीन प्रथा के अनुसार हुआ करती थी। ऋषि कहता है कि—"सनातन काल से नारी (इंद्राणी) समन और यज्ञोत्सव को जाती है। "संहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति"।

जर्मन विद्वान केगी ने अपनी पुस्तक ऋग्वेद पृष्ठ १९ में समन के उत्सव का सुन्दर संक्षिप्त उदाहरण दिया है :—

"पत्नियाँ और कुमारियाँ प्रसन्न वसनों से अलंकृत समन की ओर चल पड़ती हैं। जब वन प्रान्तर और खेत हरियाली से ढक जाते हैं, तब युवा और युवतियाँ सह नृत्य करती हुई फैले मैदानों की ओर दौड़ चलते हैं, मृदंग धमक उठते हैं, तरुण-तरुणियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ नाचने लगते हैं और तब तक नाचते रहते हैं जब तक उनके साथ भूमि और दिशायें नहीं चक्कर खाने लगतीं और उनके नाचते समुदाय को जब तक धूल के बादल नहीं घेर लेते।"

प्रगट है कि समनों का सामूहिक नृत्य और गायन संगीत का एक आवश्यक अंग था। "वैदिक इंडेक्स" के प्रणेताओं ने इस प्रसंग में पिशेल को उद्धृत किया है। पिशेल का कहना है कि "समन एक प्रकार का संगीतिक मेला था, जहाँ आमोद के लिए नारियाँ जाती थीं, युवतियाँ और प्रौढ़ाएँ पति की खोज में, और वेश्याएँ मौके से लाभ उठाने।" यह भी अनुमान किया जाता है कि समनों में ही सम्भवतः नाटकीय रंगमंच का भी उदय हुआ। पहले सम्भवत: वहीं यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, उर्वशी आदि के संवाद होते थे जो केवल कथनोपकथन के रूप में थे फिर नाटकों के आधार बन गये।"

इस काल के संगीत को विकसित करने में "समन" ने विशेष क्रियात्मक योग दिया—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार गाविआमल ने अपनी पुस्तक "The Music of Rigwed" में लिखा है "ऋग्वेद काल का समन बड़ा प्रभावशाली था। समन में नृत्य और गायन एवं वादन तीनों ही सुन्दर ढंग से चलते थे। युवक युवतियाँ इस संगीत समारोह में विशेष दिलचस्पी लिया करती थीं। इस संगीत समारोह में सभी

वर्ग के पुरुष और नारियाँ सम्मिलित होते थे। नारियाँ खूब सजधज के आतीं थीं। समन ने समाज के अन्दर संगीतमय वातावरण को खूब फैलाया। समन के अन्दर नारियाँ कई प्रकार के नृत्य प्रदर्शित किया करती थीं, पुरुष वर्ग कण्ठ संगीत का सुन्दर ढंग से प्रदर्शन करते थे।"

कुमारियों की संगीतिक प्रतिभा की कसौटी "समन" था—

इतिहास विशेषज्ञ श्री आर्चल विग्स ने "Music History of Vedic Period" नामक पुस्तक में लिखा है—"वैदिक पीरियड का संगीतमय आयोजन "समन" के रूप में होता था, इस संगीतिक उत्सव में कुमारियों की संगीतिक प्रतिभा की जांच होती थी, और जो कुमारी अपनी संगीतिक प्रतिभा की उच्चता को प्रमाणित करने में सफल होती थी, उसका चुनाव विवाह के लिए कर लिया जाता था। "समन" में कुमारियों की संगीतिक प्रतिभा के परीक्षण के अतिरिक्त युवकों के संगीत-ज्ञान की भी जाँच की जाती थी। जाँच करने के नाना प्रकार की शैलियाँ थीं। वास्तव में संगीत के इस अद्वितीय आयोजन में उत्तीर्ण होने के लिए तरुणी और तरुणियाँ महिनों पहले से प्रयास करती थीं। यही समन आगे चलकर "समज्जा" के नाम से प्रस्फुटित हुआ।"

"ऋग्वेद" आर्यों का ही नहीं, संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें १०१७ सूत्र और दस मण्डल हैं। ऋग्वेद एक समय की रचना नहीं है, और न उसके मन्त्र एक ही ऋषि ने बनाये थे। इस वेद में संगीत सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है। जितने भी इसमें मन्त्र हैं, वे सब संगीतमय हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान मैक्स-मूलर भी ऋग्वेद के संगीतिक पृष्ठभूमि की उच्चता से बड़े प्रभावित हुए थे। इस वेद में मृदंग, वीणा, बंशी, डमरू आदि वाद्य यन्त्रों का वर्णन मिलता है। वैदिक काल में संगीत गायन के साथ-साथ नृत्य-कला भी प्रचलित थी, इसका प्रमाण ऋग्वेद के (५।३३।६) में आया है "नृत्यमनो अमृता" इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में और भी अनेक स्थानों में नृत्य का विवरण आता है। जिनसे यह सिद्ध होता है कि इस काल में नृत्य अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर था। नृत्य के अनेक रूप समाज में प्रचलित थे। नारियाँ जब नृत्य का प्रदर्शन करने जाती थी तो वे अपने को नृत्य के अलंकारों से सुसज्जित करती थी। पैरों में घुँघरू आदि बाँधती थी। कई ऐसे नृत्यों का प्रचार था जिनमें नृत्य के साथ गायन भी चलता था। नृत्यों के प्रदर्शन के लिए छोटे-छोटे रंगमंच भी निर्मित किए जाते थे।

इस युग में नाटक और संगीत में कोई भेद नहीं था—

ऋग्वेद के अतिरिक्त तीन और वेद रचे गये। सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद, लेकिन यह सब ऋग्वेद की बाद की रचनाएँ हैं। सामवेद तो पूर्ण संगीतमय है। इस वेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान में आबद्ध कर दिया गया था। कहा जाता है कि साम गान में पहले केवल ३ स्वरों का प्रयोग होता था, जिनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते थे। आगे चलकर एक-एक करके स्वर और बढ़ते गये और इस वैदिक काल में ही साम गान सप्त स्वरों में होने लगा। इसका प्रमाण "सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगंवुधंः माराड्कशिक्षा" की पंक्ति से भी मिलता है।

पाणिणि शिक्षा तथा नारदीय शिक्षा में निम्नलिखित श्लोक मिलता है, जिसके आधार पर सप्त स्वर उनके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अन्तर्गत इस प्रकार आते थे :—

"उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्त रिषभधैवतो।
स्वरित प्रभवा ह्येते षडज मध्यम पंचमा।।"

अर्थात्	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित
	नि ग	रे ध	सम प

संगीत के गर्भ से नाटक का भी जन्म हुआ—

विख्यात इतिहासकार मीवलो ग्रीन ने "The Music Reflections on The Early History of India" नामक पुस्तक में लिखा है—"वैदिक युग में पुरुष और नारियाँ सोमरस पीकर नृत्य करते थे, वे नृत्य करते-करते इतने मस्त हो जाते थे कि घण्टों उसी वातावरण में झूमते रहते थे। इस युग में "रज्जु नृत्य", "सलिल नृत्य", "अरुण नृत्य", "प्रकृति नृत्य", "पुष्प नृत्य", "बसन्त नृत्य" आदि प्रचलित थे। वर्तमान नाटक भी वैदिक युग के संगीत के गर्भ से निकला है। इस युग में नाटक और संगीत में कोई विशेष अन्तर नहीं था। दोनों का लगभग एक ही रूप था। वैदिक युग के बाद ही नाटक की धारा संगीत की धारा से पृथक हो गई होगी। वैदिक युग में संगीत के दोनों रूप प्रचलित थे मनोरंजनात्मक रूप एवं आध्यात्मिक रूप।"

इस युग में मन्डलियों का जन्म हुआ, जिन्होंने संगीत को बहुत ऊपर उठाया—

वैदिक युग में अनेक ऐसी धार्मिक मन्डलियाँ भी बन गई थी, जिनमें संगीत के आध्यात्मिक रूप का विकास किया जाता था। इन मन्डलियों के नाना प्रकार के नाम थे, जिनका कार्य क्षेत्र संगीत के शास्त्रीय एवं आध्यात्मिक स्तर को विकास पूर्ण बनाना था। इन मन्डलियों में धार्मिक लोग ही प्रायः सम्मिलित होते थे। इन मन्डलियों ने जहाँ एक ओर संगीत के आत्मिक स्तर को ऊँचा किया। वहाँ दूसरी ओर संगीत के शिल्पक रूप को भी विकास पूर्ण बनाया। समाज में समय-समय पर इन मन्डलियों का शास्त्रीय संगीत प्रदर्शित होता रहता था। जिनमें श्रोताओं की संख्या उच्चवर्ग के बुद्धिजीवी लोगों की अधिक रहती थी। इन मन्डलियों ने सबसे सुन्दर कार्य यह किया कि समाज के नैतिक स्तर को नहीं गिरने दिया। संगीत के अनुपात क्रम को नहीं टूँटने दिया। सामान्य वर्ग में नटों का भी खेल होता था, जोकि वे अनेक प्रकार से संगीतिक अभिव्यक्ति के द्वारा उनका मनोरंजन किया करते थे। परन्तु इन नटों के तमाशा करने वालों को भी समाज में किसी भी प्रकार से निम्नकोटि का नहीं समझा जाता था। वैसे उनका चरित्रक स्तर पर्याप्त ऊँचे धरातल का होता था।

कला और चरित्र पर इस युग में विशेष बल दिया गया—

कला और चरित्र पर वैदिक युग में विशेष बल दिया जाता था। इसीलिए कोई भी कलाकार इस युग का नैतिक स्तर से गिरा हुआ नहीं पाया जाता था। वह व्यक्ति सौभाग्यशाली समझा जाता था, जोकि संगीत के क्षेत्र में कार्य करता था, उसकी प्रतिष्ठा सामान्य व्यक्ति से कहीं ऊँची समझी जाती थी। संगीतज्ञ की स्थिति, किसी भी उच्चवर्गीय व्यक्ति से कम नहीं आँकी जाती थी। सुप्रसिद्ध विद्वान रोजयोर्क का कथन है —"वैदिक युग के कलाकारों का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और उच्चकोटि का होता था। वे सामान्य प्रलोभनों में नहीं फँसा करते थे। वे कला की तपस्या बड़ी सयंम से किया करते थे। कला की साधना के लिए वे लोग बड़े से बड़े आकर्षण का त्याग करने को सदैव तैयार रहा करते थे।"

साम गान के मुख्य तीन भाग थे, प्रस्ताव, प्रतिहार और उद्गीत तथा इनके तीन उपांग हिंकार उपद्रव व निधान थे। यही ध्रुपद के चार पद बने। यह छन्द सर्वसाधारण के लिए कठिन होने के कारण ही लोकगीत, जातीय गीत तथा मौसमी गीतों का प्रचार हुआ। वैदिक युग में संगीत का निर्माण व्यवसायिक ढंग से

नहीं किया गया था। संगीत के निर्माण में कला का दृष्टिकोण ही सर्वोपरि रहता था। वैदिक युग के लोग संगीत को व्यवसाय का उपकरण नहीं मानते थे। जीवन निर्माण का जबरदस्त प्रलम्बन संगीत को समझा जाता था।

वैदिक युग के संगीत की सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी अपूर्व पवित्रता—

हिंकार को गायन आरम्भ करने के पूर्व गाया जाता था तथा निधान जो गायन समाप्त होने के उपरान्त गाये जाते हैं। सुप्रसिद्ध यूनानी विद्वान ओवगीसा ने अपनी पुस्तक The oldest music of the world" में लिखा है—"वैदिक पीरियड के संगीत में सबसे बड़ी विशेषता जो हम पाते हैं वह यह है कि उसका शास्त्रीय रूप इतना पवित्र एवं शुद्ध है कि उसके मुकाबिले विश्व के अन्य देशों के संगीत में वैसा उच्चरूप नहीं पाया जाता। भारतीय संगीत की इसी पवित्रता एवं उच्चता के सम्मुख, जिसको सैकड़ों वर्षों की एकान्त साधना के बाद भारतियों ने उपलब्ध की होगी, यूनानी संगीत की पवित्रता धूमिल पड़ जाती है। हमें इस तथ्य को स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि वैदिक काल के संगीत में हम जो स्वर्गीय सौन्दर्य, जो आत्मा को गुदगुदाने वाला प्रकाश, जो नवीन विश्व में प्रवेश कराने वाली प्रेरणा, और जो मानव जीवन को निखारने वाली दिव्य शान्ति पाते हैं, वह हम विश्व के अन्य संगीत में नहीं पाते हैं। वास्तव में वैदिक युग के ऋषियों ने इसी संगीतिक साधना के बल पर अपने मन पर इतना अधिकार कर लिया होगा कि वे भारत के किसी कोने में बैठे हुए सम्पूर्ण विश्व की हलचल का पता लगा लिया करते थे। वास्तव में जो भारतीय संगीत की शक्ति नहीं समझते, उनके लिए यह कथन अवश्य ही विस्मयजनक होगा।"

वैदिक संस्कृति में भक्ति और संगीत का घनिष्ट सम्बन्ध रहा—

हमारी वैदिक संस्कृति में भक्ति और संगीत का अटूट सम्बन्ध है। यहाँ तो पद-पद पर भक्ति के साथ संगीत का प्रणय-बन्धन सुदृढ़ है। एक दूसरे से कभी अलग रह ही नहीं सकता। वैदिक संस्कृति में कहना चाहिए कि संगीत भक्ति के लिए ही है। भक्ति के ही अनुषङ्गिक कर्म, उपासना, ज्ञान आदि की भूमिकाओं तक संगीत का कार्यक्षेत्र सीमित है। इन्हीं में उनके राष्ट्र, जाति, धर्म और व्यक्ति के अभ्युदय की अमर भावनाएँ सन्निहित हैं। वैदिक दर्शन का तो सिद्धान्त ही है कि देश जाति, धर्म, व्यक्ति आदि सभी के अन्तर्प्राणों में वही एक दिव्य सत्ता अवस्थित है और इन सभी रूपों में अपने अभ्युत्थान के लिए उसकी उपासना का दृष्टिकोण आर्यों ने रक्खा। उनका विश्वास था कि प्राणीमात्र के हित-चिन्तन में ही हमारा आत्म-

चिन्तन और उस आत्म चिन्तन में ही ब्रह्म-चिन्तन है, जिसके लिए साकार भावाना-त्मक दृष्टि से आर्यों ने अपनी भक्ति की भूमिका स्थिर की है और जिसके आधार स्तरों में संगीत कला गूँज रही है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार जोर्जबुलर्स ने अपनी सुन्दर पुस्तक "The origin of universal devotion" में लिखा है—"जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि विश्व संगीत के द्वारा ईश्वर अर्चना का भाव कैसे फैला, कहाँ से उसकी मूल उत्पत्ति हुई, तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यह संगीतिक उपासना का भाव विश्व को भारत के वैदिक युग से प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम इसी युग में इस तथ्य में विश्वास किया गया कि ईश्वर की सत्ता संगीत से पृथक नहीं है, यदि हम उसे रिझाना चाहते हैं, उस तक पहुँचना चाहते हैं तो संगीत के माध्यम को पकड़ ले, यही सुन्दर माध्यम आपको पृथ्वी से स्वर्ग के दिव्य प्रांगण में पहुँचा देगा। हमारे यहाँ गिरजा-घरों में उपासना के समय जो घन्टानाद किया जाता है उसकी मूल प्रवृति में संगीत का ही मौलिक भाव प्रस्फुटित होरहा है। जिससे एक विशाल जन-समूह एकत्रित हो जाता है। उन घन्टों के स्वरों में कितना पीयूष भरा संगीत होता है, इसको एक संगीतज्ञ ही समझ सकता है। लेकिन संगीत के द्वारा अपने प्रभु को स्मरण करने की मौलिक भावना हमें भारत के वैदिक युग से प्राप्त हुई। हमारा तो यह विश्वास है कि वैदिक युग से ही सम्पूर्ण विश्व में संगीतमय उपासना की मौलिक भावना फैली होगी।"

वैदिक युग में संगीत को पूर्णरूपेण धर्म से जकड़ दिया गया था—

वैदिक युग में संगीत को पूर्णरूपेण धर्म से जकड़ दिया गया था। कला और धर्म दोनों को मिला दिया, ताकि कलाकार धर्म से पराँगमुख न होजाए। जब कलाकार अपने धर्म से विमुख ही हो जायगा तो वह किस प्रकार अपने कला की रक्षा कर पाएगा, फिर तो वह अनैतिकता के पथ पर चला जायगा। फिर वह कला के द्वारा अपना जीवन निर्माण नहीं कर सकता, फिर वह कला के द्वारा विश्व को मानव जीवन का सुन्दरतम सन्देश प्रदान नहीं कर सकता, और फिर वह कला के पावन आदर्श "सत्यम शिवम सुन्दरम" की रक्षा नहीं कर सकेगा। कला को विकासपूर्ण बनाने में धर्म का विशेष योग रहता है, कला तभी पतनोन्मुख होती है, जब कि वह धर्म के उज्ज्वल पथ से हट जाती है। इस विशाल दृष्टिकोण को आर्यों ने पूर्णरूप से समझ लिया था। उनका विश्वास था कि कलाकार तभी अपने कलात्मक जीवन को सुन्दरतम बना सकता है, जब कि वह अपने चरित्र की नैतिकता को सुदृढ़ रक्खेगा,

और चरित्र की नैतिकता बिना धर्म के सुदृढ़ नहीं हो सकती, इसलिए आर्य लोगों ने संगीत को धर्म के आवरण में लपेट दिया और उसीका यह परिणाम है कि भारतीय संगीत आज भी अपने उच्च गौरव की मर्यादा को अक्षुण्ण रख सका। संगीत और धर्म का सामञ्जस्य हो जाने से संगीत के अन्दर गंगाजल के समान पवित्रता का समावेश हो गया। वास्तव में आर्यों ने भारतीय संगीत को पवित्रतम बना दिया। आज विश्व के किसी भी देश का संगीत इतना पवित्र नहीं है जितना कि भारत का संगीत पवित्र है, क्योंकि भारतीय संगीत का धार्मिक रूप है। उसकी नींव धर्म की पावन पृष्ठभूमि पर रक्खी हुई है, इसीलिए उसमें इतनी शक्ति आ सकी कि वह समस्त गन्दगी को आत्मसात कर सके। इसलिए भारतीय संगीत ने कभी भी मानव को नैतिकता की उच्च पृष्ठभूमि से नीचे नहीं गिरने दिया, किन्तु आगे चलकर जब कुछ समय के लिए संगीत धर्म से हट गया था, तभी उसने मानव को नैतिकता से गिराना प्रारम्भ कर दिया।

वैदिक युग के संगीत की सबसे बड़ी विशेषता धर्म और संगीत का एक रूप होना है।

इस युग के संगीत-वाद्यों में वीणा एक अद्वितीय देन है—

वैदिक युग में वीणा वाद्य के और भी अनेक नाम प्रचलित थे, जैसे, महती, पिनाकी, कत्यायनी, रावणी, मत्त, कोकिला-औदुम्बरी, घोषवती, सैरंध्री-जया-ज्येष्ठा, कच्छपी कुन्जिका। वैदिक युग में वीणा के निर्माण के समय तीन बातों का ध्यान रखा जाता था। सारणा, घोड़ी, नखी (Plectrum) तथा घोड़ा के केश वगैरह की जानकारी प्राप्त करते थे। धीरे धीरे पत्थरों में से भी नवीन-नवीन चीजें बनाने लगे। चमड़े का भी उपयोग वाद्य की बनावट में होने लगा। उस समय जाति का भेद नहीं था। वीणा की प्रगति 'ब्राह्मण', 'आरण्यक' और 'सूत्र' काल में ज्यादा हुई। वीणा के अनेक प्रकार उस समय प्रचार में आए थे, जैसे गज के बजाने का वीणा, पीनाकी नेतर के दण्ड से बजाने का वीणा, शततंत्री वीणा। वैदिक युग में धातु का आविष्कार हो चुका था। इस युग की वीणा का एक नाम वाण भी प्रचलित था, जिस पर सौ तार चढ़ चुके थे। दक्षिण भारत में वैदिक युग की वीणा का रूप याल के रूप में आज भी पाया जाता है। वाण और "याल" का समान होना सम्भव है। यदि इतिहास देखा जाए तो वैदिक युग में उत्तर दिशा में हिन्द के मूल निवासी रहते थे। दोनों प्रजा एक दूसरे से सम्पर्क में आगई होगी। आर्यों के आजाने के बाद सौ तार के वाण वाद्य का नाम वेदों में उल्लेख किया गया, इसीलिए दक्षिण भारत में सम्भवतः वही वाद्य याल नाम से अस्तित्व में आया होगा। मिस्टर मेलू इलौज ने अपनी पुस्तक

"The Universal musical Instruments" में लिखा है—"भारत के वैदिक युग की वीणा के मधुर स्वर विश्व के सभी संगीतिक वाद्यों के स्वरों में श्रेष्ठ और कलात्मक हैं। वीणा का स्वर बड़ा ही हृदयग्राही होता है। दरअसल इस अभूतपूर्व वाद्य को आर्यों ने आविष्कृत करके भारतीय संगीत की अपूर्वता में एक अभिनव सुरभित पुष्प खिला दिया। इस उच्चकोटि के धरातल का संगीत वाद्य आज तक संसार में कोई अन्य आविष्कृत नहीं हो सका।"

आर्यों ने संगीत, जीवन को विकास पथ पर ले जाने का प्रमुख साधन स्वीकार किया था—

इस युग में जन सामान्य संगीत में विशेष दिलचस्पी रखते थे, वे संगीत को जीवन का मुख्य अंग मानते थे। महिलायें रोटी बनाते वक्त गाना गुनगुनाती जाती थी, बरतन माँजते वक्त भी वे गाती थीं। पनघट को पानी भरने जाते वक्त भी वे गाना गाती हुई जाती थीं। पुरुष भी पशुओं को चराते वक्त, खेती करते वक्त गाना गाते थे। उनके गाने उनके काम से सम्बन्धित होते थे। उन गानों में उनके व्यस्त जीवन का सुन्दर ढंग से चित्रण होता था। उन गीतों से उन्हें काम करने की प्रभावशाली प्रेरणा मिला करती थी। लोगों को काम करने में अधिक अभिरुचि हो, इसलिए आर्यों ने संगीत का प्रवेश जीवन संघर्ष में भी कर दिया था, ताकि जीवन का संघर्ष मानव को असह्य न मालूम पड़े। कहने का मतलब यह है कि आर्यों ने संगीत से पूरा-पूरा लाभ उठाने की कोशिश की थी। उन्होंने संगीत को सिर्फ मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रक्खा था। उन्होंने संगीत को विलासता का उपकरण नहीं बनाया था, बल्कि उन्होंने इसको, जीवन को विकास पथ पर ले जाने का प्रमुख अंग स्वीकार किया था। उनका ऐसा विश्वास था कि मानव जीवन की सम्पूर्ण सम्भावनाएँ संगीत के विशाल गर्भ में सन्निहित हैं और इसी दृष्टिकोण को लेकर उन्होंने संगीत का सृजन किया था। सुप्रसिद्ध विद्वान हेलीन कौफ मेन (Heleen Kaufmann) ने अपनी पुस्तक "The music of Aaraya" में लिखा है—"आर्यों के संगीत में हमें जीवन का व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त होता है। उन्होंने संगीत को जीवन के छोटे-छोटे घेरों में आबद्ध नहीं किया था, संगीत की विराट आत्मा को उन्होंने सजीव रक्खा। वैदिक युग में संगीत का जितना सुन्दर रूप हमें प्राप्त होता है, उतना हमें भारत के किसी भी युग में प्राप्त नहीं हुआ। इस युग का प्रत्येक मनुष्य संगीत की मर्यादा की रक्षा करता था। पुरुष और नारियों के जीवन पूर्ण संगीतमय थे, इसलिए उनके चेहरे सदैव प्रसन्नता से गुलाब पुष्प के समान खिले रहते थे। उनका जीवन समृद्धि से परिपूर्ण था। ये लोग संगीत और

जीवन को दो रूप नहीं समझते थे। जीवन का उपनाम ही संगीत मानते थे। और संगीत का उपनाम जीवन मानते थे। इस प्रकार इस युग में संगीत का जो विकास हुआ, उससे मानव विकास भी हुआ, और जो मानव विकास हुआ उससे संगीत का विकास हुआ।"

इस युग में कवि और संगीतज्ञ का घनिष्ट रिश्ता बन चुका था—

इस युग में कवि और संगीतज्ञ का भी घनिष्ट सम्बन्ध स्थिर हो चुका था। काव्य संगीत से पृथक नहीं समझा जाता था। साहित्यकार और संगीतकार दोनों को एक दूसरे का पूरक माना जाता था। संगीतकार साहित्यकार का मान करता था तथा साहित्यकार संगीतकार का सम्मान करता था। इन दोनों में यह हीन भावना नहीं थी कि साहित्यकार संगीतकार से बड़ा है अथवा संगीतकार साहित्यकार से बड़ा है। वास्तव में दोनों कलाकारों की समान स्थिति थी। साहित्यकार संगीत के जानकार होते थे तथा संगीतकार साहित्य के जानकार होते थे। दोनों के कार्य करने के क्षेत्र पृथक-पृथक नहीं थे। दोनों के लक्ष्य एक थे, मानवता की सेवा करना। मिस्टर रोवत ने इस तथ्य की पुष्टि अपनी पुस्तक "The universal Mirror of Music" में की है।

संगीत के माध्यम द्वारा यज्ञों को परिपूर्ण किया जाता था—

इस युग में जो यज्ञ किए जाते थे, उनमें नारियाँ शामिल होती थीं, इस पवित्र अवसर पर संगीत का प्रस्फुटन होता था, लेकिन यह मंत्रों के रूप में गाया जाता था। नारियाँ भी वेद मंत्रों को कई ढंग से, कई शैलियों में गाती थी, उनके गाने की शैली बड़ी आकर्षक होती थी। इन यज्ञों में सामान्य जन भी शामिल होते थे। आर्य लोग पशुओं के बलिदान के वक्त भी संगीत का प्रदर्शन करते थे। आर्य लोगों के जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र ऐसा बचा हो जिसमें संगीत ने प्रवेश न किया हो। इस युग में अनेक संगीत की पुस्तकें रची गई, किन्तु आज इस युग की कोई भी पुस्तक नहीं पाई जाती, सबकी सब नष्ट होगई। लेकिन जो पुस्तकें स्वतंत्र रूप से रची गई उन सबका आधार सामवेद ही था। इस युग में अनेक नारियों ने वेद मन्त्र भी रचे। मन्त्रों के निर्माण में संगीत का वायुमन्डल रहता था, अतएव मंत्र रचयिता को संगीत का ज्ञान पूरा-पूरा होता था। आर्यों की देव कल्पना में उनकी धार्मिक प्रवृति के साथ-साथ उनकी संगीत-कल्पना भी विद्यमान रहती थी। आर्यों के देवता घिनौने तथा डरावने नहीं थे। आर्य लोग अपने देवताओं में मानवोचित गुणों का आरोप करते थे। उनके देवता उनको वरदान दिया करते थे, जो उनकी संगीत के द्वारा उपासना किया करते

थे। आर्य लोगों ने अपने देवताओं को प्रसन्न करने का तरीका एकमात्र संगीतमय स्तुति एवं प्रार्थनाओं में समझा था। वास्तव में वैदिक युग में संगीत के आन्तरिक एवं वाह्य सौन्दर्य दोनों अंगों का विकास हुआ।

वैदिक युग के संगीत के सम्बन्ध में मिस्टर जी एच रानाडे अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत" में लिखते हैं—

"In the Vedic period, the hymns as a class used to be chanted and some of them were further set to tune and rhythm and thus there soon came into existence a class of singer priests. The hymns needed accurate pronunciation and emphasis on particular syllables and words and extended over a fairly long duration of time. Their chanting, therefore, required great modulation of voice and insertion of intermediate pauses. Thus unconsciously, the essentials of both melody and rhythm came into prominence. In the early stages, the melody was bound to be plain and curt. Gradually, the limits were widened and it moved through a fairly large portion of the scale. What was true of melody was equally true of rhythm. From a simple accent and a pause, the rhythm developed into a science of evergrowing and varied cycles of time-keeping. This resulted in a greater polish in the practice of the art and before long a Theory—rather a Grammar—of music based partly on observed facts and partly on hypothetical prepossessions came into existence.

मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संगीत अपने पैर फैला चुका था। मानव अपने हर्ष और विषाद को संगीत के द्वारा प्रदर्शित करने में पूर्ण रूप से दक्ष था—

The Vedic hymns were however too grave and rigid a subject for so plastic and subtle an art as music. Eventually, music made a move towards the lighter side of life, and was more at ease with it, as it always has at its command a rare wealth of emotional appeal. On this account, music has always been considered to be the fittest medium to express the joys and sorrows, the languishing hopes and despairs and the thousand and one little vanities of the human race. It is no wonder, therefore, if its field of activity soon shifted from the altar to the stage. Thus, there were performers for all occasions, religious or festive. There was already the singer-priest who perhaps in course of time became the temple-singer. There was the tramp—as he is there even today—who went round the country and entertained the country-folk. Lastly, there were reputed actors and actresses, who performed for the kings or for people or more urbane tastes.

This really marked the beginning of a true and classical form of music. The popular practices of the earlier period were abandoned and several innovations were adopted, as the result of a close observation of the nature of musical sounds. The opera of those days consisted of vocal as well as of a number of instrumental performers. Among the instruments, there were stringed instruments of many kinds—some to be directly plucked and played and others to be played with a bow. There were in addition, flutes, horns, cymbals and drums of many kinds. These facts clearly show that in those days, music was on the high road to advancement. The oldest and probably the first detailed exposition of the Theory of Indian Music belongs to this period."

वैदिक युग का संगीत मुख्य रूप से यज्ञों के रूप में प्रस्फुटित हुआ था—

एक इतिहास लेखक लिखता है :—

"वैदिक युग का संगीत अधिकांश रूप में यज्ञों के अंगीभूत था। उस समय आरण्यक संहिता, पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक, ग्राम गेय गान, अरण्यगेय गान, स्तोब, स्तोम प्रभृति संगीतों का ही प्रचलन था। ब्राह्मण संहिता और प्रतिसांख्य युग तक में अपना अस्तित्व स्थिर रखने में समर्थ हुये थे। तथापि इस सुदीर्घ काल में क्रमोन्नति के फलस्वरूप इनका रूप बहुत कुछ परिवर्तित और परिवर्द्धित होगया था। वेदों में केवल सामवेद के अन्दर ही गान और संगीत के उपकरण प्राप्त होते हैं। सामवेद में गेय छन्द हैं और इन छन्दों को एक विचित्र स्वर विन्यास के साथ गाने की रीति उस समय थी। इस प्रकार छन्द और स्वर के सम्मिश्रण से सामवेद संगीत की सृष्टि होती थी। साधारणतया उस समय तीन स्वर ही माने जाते थे। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित "शिक्षा" और "प्रतिसांख्य" ग्रन्थों में इन ही स्वरों का परिचय दिया गया है। ऋक प्रतिसांख्य के टीकाकार ने स्वरों का परिचय इस प्रकार दिया है "स्वर्यन्ते शब्द्यन्ते इतिस्वराः यथा अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ, लृ" किन्तु संगीत में स्वर का अर्थ कुछ दूसरा ही है। यहाँ हम स्वर से षड़ज, ऋषभ, गांधार आदि का अर्थ लगाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के रूप में जो वर्गीकरण हुआ था वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। स्वर सदा स्थान विशेष के अनुसार मन्द, मध्य और उच्चरूप में रूपायित होते हैं। याज्ञवल्क्य और पाणिनि के अनुसार परवर्ती काल में उपरोक्त तीन आदि स्वरों से ही षड़जादि सात स्वर उत्पन्न हुए।

इस प्रकार अनुदात्त से ऋषभ और धैवत की, उदात्त से निषाद और गांधार की और स्वरित से षड़ज मध्यम और पंचम की सृष्टि हुई थी। अनुदात्त को उच्च,

मन्द्र, अथवा खाद भी कहते हैं। उदात्त को तार भी कहते हैं और स्वरित समता-रक्षक मध्य स्वर है। ऋक प्रातिसांख्य में इस बात को भलीभाँति स्पष्टीकरण किया गया है कि मन्द्र, मध्य और तार इन तीन स्थानों से ही षड़जादि सात स्वरों की सृष्टि हुई थी।

वैदिक संगीत ग्रन्थ सामवेद की साधारणतया। पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। उत्तरार्चिक को ऊह और उह्य इन दो भागों में विभक्त किया गया है। ऊह और उह्य रहस्य गान है जो सब लोग न गा पाते थे। इनके अधिकारी उपनिषदो के रहस्य को समझ लेने वाले साधक (Mystics) ही समझ जाते थे। उपनिषद को स्वयं एक रहस्य शास्त्र के रूप में बताया गया है, क्योंकि सत्योपलब्धि का शब्द वद्ध रूप ही उपनिषद है। ग्राम भेद गान ग्रामांचलों में निवास करने वाले जन साधारण के लिए था। इसे सभी गा सकते थे। अरण्यगेय गानों को निर्जन वन्य-प्रदेश में गाया जाता था। इस श्रेणी के ग्रानों का विस्तृत परिचय प्रातिसांख्याकार पुण्यर्षि और टीकाकार अजातशत्रु ने दिया है।

इस प्रकार वैदिक युग के संगीत का स्वरूप सामवेद में प्राप्त होता है। हम ऊपर देख आए हैं कि साम गान के तीन प्रधान स्वर किस प्रकार सात स्वरों में लीलायित हुए। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस विकास क्रम में कई सौ वर्ष लग गए होंगे। किन्तु हमारे सामने इस विकास क्रम का कोई स्पष्ट एवं प्रमाणित चित्र नहीं है। इसीलिए इस दिशा में बड़ा भ्रम है। हमारी दृष्टि के सामने इस विकास कथा के केवल सात स्तर आते हैं और ये सातों स्तर सात स्वरों के क्रमिक विकास को लेकर चलते हैं। एक-एक स्तर एक-एक "युग" का पर्यायवाची है। प्रत्येक युग समकालीन काल धारा को लेकर रूपायित हुआ है। साम गान "सामिक" से लेकर सम्पूर्ण युग तक विस्तृत है। "सामिक" युग का स्वर विकास केवल तीन स्वरों तक ही सीमित है। "सामसु त्र्यान्तर विद्यात्" (नारदी १/२३) ये तीन वैदिक स्वर क्रुष्ट, प्रथम और चतुर्थ हैं। इन स्वरों को राग विबोधकार सोमनाथ (१६ शताब्दी) ने स्वयभू व अविनाशी (unborn and uncreated) बताया है। उन्होंने कहा कि ये स्वर स्वयभू हैं। किन्तु कल्लिनाथ (१४४०–१४६५ ई०) ने मध्यम तथा वैदिक प्रथम स्वर को ही अविनाशी तथा अलोपी बताया है। शार्ंगदेव (१२१०–१२४७ ई०) ने मध्यम स्वर को ही अविनाशी माना है। "मध्यम तथा प्रथम स्वर ही सृष्टि का आदि स्वर है। आकाश अथवा वरुण देवता ने इनकी सृष्टि की है।" तीन स्वर युक्त सामिक युग के बाद और भी दो युगों का परिचय मिलता है। आर्चिक और गातिक। आर्चिक एक स्वर का गान है और जिस युग में इसका प्रचलन था

वह आर्चिक युग के नाम से प्रसिद्ध है। आर्चिक युग के स्वर वैदिक प्रथम तथा लौकिक मध्यम है। गातिक दो स्वर युग गान है। गातिक युग तथा गान का स्वर क्रुष्ट एवं प्रथम तथा लौकिक पचंम और मध्यम हैं "इनकी सृष्टि हुई है मित्र अर्थात् सूर्य एवं वरुण देवता द्वारा" ये देवता स्वर के अधिष्ठाता माने गए हैं। अंग्रेजी में इन्हें (Presiding Deity) की संज्ञा दी गई है। सामिक के बाद स्वरान्तर, औड़व, षाड़व, और सम्पूर्ण यथाक्रम चार, पाँच, छै और सात स्वरों को लेकर रूपायित हुए।

वैदिक सामगान में प्रचलित सात स्वरों के नाम इस प्रकार हैं—"क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीध, चतुर्थ, मन्द्र, और गति स्वार्य। वैदिक साहित्य में इनके नाम अभिनिहित, प्राश्लिष्ट, जात्य, क्षेत्र, पादवृत, तेरवञ्जन और तेरविराम भी है। छान्दोग्य उपनिषद में अनिरुक्त, निरुक्त मृदु, कौञ्च आदि नाम मिलते हैं।

वैदिक गान यज्ञ वेदियों के सम्मुख गाए जाते थे। शतपथ ब्राह्मण में ऋत्विक एवं उसकी पत्नी के नृत्य गीत का उल्लेख मिलता है। यज्ञ वेदी को घेरकर ऋत्विक और उसकी पत्नी तथा अन्य पुरवासियों ने ताल पर ताल मिलाते हुए अग्नि कुण्ड के आस पास नृत्य किया था। ऐसा वर्णन किया गया है। वैदिक संगीत प्रस्त्वा हुँकार उद्गीय, प्रतिहार, उपद्रव, निधान और प्रणाव इन सात भागों में विभाजित था। और वैदिक युग में वीणा, वेणु, दुन्दभि आदि वाद्य यन्त्रों का प्रचलन था।"

वैदिक युग में गीतों के गाने की शैली तथा स्वर के क्रम विकास का सुन्दर चित्र मिस्टर रानाडे ने लिखा है, वह इस प्रकार है:—

"The Vedic Hymns are the living and authentic examples of the world's most ancient and sacred literature and music, as well. They are composed in what are called the Chandas or the Vedic metres. A chandas has four similar lines with a fixed number of syllables, whether long or short. It is thus the number of syllables and not the quantity of vowels that determines the length of a line. The stanzas or the Rks forming a hymn used to be chanted or sung according to the need of the occasion and there were three different ways of doing it.

इस युग में स्वर के प्रस्तुतीकरण पर विशेष बल दिया जाता था। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता स्वर साधना रही।

The first or the Arcika way of chanting employs only one note for all the syllables and it is literally monotonous. It is used for prayer, in private, or for scholastic purposes such as revising, memorising, or for learning the text of the Rks by rote. The

second way of chanting is called the Gathika or the musical way, musical in the sense that it employs a second note in addition to the base note. The Samika style is the third and the most common way of chanting Vedic hymns. It employs the three notes viz. the fundamental, and the notes just a major tone above and below it. The Samika style is employed for all formal or public recitations, individual or collective. Since collective recitation requires unity of accurate pronunciation and synchronous delivery, the Samika way had to be a permanently set way of chanting In fact, it may be justly named as 'the uniformstyle of delivery' of Vedic chant, since it is one and the same throughout India, in spite of provincial differences of language and customs. The grammatical rules and the other details concerning Vedic chant are given at great length in the ancient Pratisakhya and Siksa books. For our purpose, it will be enough to give here a brief summary of the findings concerning the music of the Vedic chant."

पौराणिक काल में संगीत

इस युग में "समन" का नवीनीकरण "समज्जा" के रूप में हो चुका था—

पौराणिक युग में संगीत की स्थिति कैसी थी, इस सम्बन्ध में हमें विशेष ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते, लेकिन जो कुछ मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक युग से पौराणिक युग में संगीत आते-आते कोई विशेष विकास-पूर्ण नहीं हो पाया था। परन्तु फिर भी समाज के अन्दर संगीत की स्थिति आदरणीय थी। लेकिन जितनी पवित्रता एवं निर्मलता वैदिक युग के समय में संगीत में थी, उतनी इस युग में नहीं रही। इस युग में संगीतकार वैदिक युग के समान संयमी एवं चरित्रवान नहीं था। संगीत चरित्र से हटता जा रहा था। समाज के अन्दर उच्छृंखलता बढ़ती जारही थी, लेकिन फिर भी समाज के अन्दर संगीतकारों का जीवन संतुलित रूप से ही था। समन (संगीत उत्सव) ने इस युग में समज्जा का रूप ले लिया-था। "समज्जा" के द्वारा वर वधू एक दूसरे को अपना जीवन साथी बनाते थे। समन से समज्जा का दायरा विस्तृत हो गया था। इसमें नारियाँ बड़ी सजधज के साथ शामिल होती थीं और युवकों के सामने नृत्यों का प्रदर्शन करती, युवक गण भी अपने कंठ संगीत का जौहर दिखाते थे। समज्जा एक प्रकार का वरवधू के चुनाव का संगीतिक मेला था। इसके सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध विद्वान रोवर्ट टेम्पल ने अपनी पुस्तक "The Heart of the Indian Music" में लिखा है—"पौराणिक युग में वर-वधू के चुनाव समज्जा के द्वारा हुआ करते थे। यह पूर्ण संगीतमय उत्सव था। इसमें युवक-युवतियाँ अपनी संगीतिक प्रतिभा की अपूर्वता का सुन्दर ढंग से प्रदर्शन किया करते थे। प्रत्येक युवक और युवती को इसमें शामिल होने का अधिकार था। इस संगीत उत्सव में शामिल होने के लिए कोई विशेष शर्त नहीं थी। इस स्वच्छन्द वातावरण से समाज के अन्दर दूषण भाव भी बढ़ते जारहे थे। लेकिन फिर भी संगीत अपनी नैतिकता के पावन आदर्श पर स्थिर था। उसके डग-मगाने के चिन्ह तो स्पष्ट हो रहे थे, किन्तु वह डगमगा नहीं रहा था। साधना का क्रम बराबर संगीतकारों में जारी था। "समजा" में जो नृत्य प्रदर्शित किए जाते, वे प्रायः बहुत उच्चकोटि के नहीं होते थे। लेकिन उनका शास्त्रीय स्तर गिरा हुआ भी नहीं होता था।"

"समज्जा" के सम्बन्ध में डा० वासदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं :—"सूत्र ३/३/९९ के अनुसार यह संज्ञा शब्द था। 'वार्तिक' और 'भाष्य' में कहा है कि जिसमें जन समुदाय इकट्ठा हो वह उत्सव समज्जा कहलाता था। (समजन्ति तस्या समज्जा) जातकों से विदित होता है कि समज्जा से विशेष प्रकार की गोष्ठियाँ थी, जिसमें स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध एकत्र होकर अनेक प्रकार के खेल, तमाशे, नृत्य संगीत, हस्तियुद्ध, मेषयुद्ध, अजायुद्ध, दण्डयुद्ध, मल्लयुद्ध आदि खेल या क्रीड़ायें खेलते थे। इन्हें समाज भी कहा जाता था। अशोक के अभिलेखों में समाज नामक उत्सवों के विषय में लिखा है कि अच्छे और बुरे दो प्रकार के समाज होते थे। "विधुर पण्डित जातक" में एक समज्जा का चित्र खींचा गया है, जिसमें भाग लेने के लिए स्त्री-पुरुषों का समूह एकत्र हुआ था, और वे पंक्तियों में बनी हुई अपनी-अपनी जगह (मचातिमंच) पर बैठ गए थे (जातक ६/२७७) महाभारत में विस्तार से समाज नामक क्रीड़ोत्सवों का उल्लेख किया है। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को यही भुलावा देकर वारणावत को भेजा था कि वहाँ एक समाजोत्सव होने को है। तुम लोग उसे जाकर देखो। समज्जा या समाज महाजनपद युग के नागरिक जीवन की बहुत बड़ी विशेषता थी। पाणिनि ने जनसमूह के एकत्र होने के इन अवसरों के लिए समवाय यह सामान्य शब्द प्रयुक्त किया है (समवायन समवैति ४/४/४३) समवाय के अन्तर्गत टीका में समाज का भी उल्लेख किया है। समवाय या समाज में सम्मिलित होने वाले लोग समवायिक या सामाजिक कहलाते थे। इस दृष्टि से समवाय पारिभाषिक शब्द था 'कामसूत्र' (१/४/३१) में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। (आगन्तूनां कृत-समवायानाम) महाभारत में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर द्रुपद ने जो "समाज" किया था, उसे भी समवाय कहा गया है। जो इस शब्द के पाणिनीय अर्थ से संगत होता है। (समवाय सत्तो राजाम, १/८२) समाज और सन्निवेश में समवाय के दो विशेष प्रकार थे। जिनका उल्लेख 'समवायान् समवैति' सूत्र के उदाहरण में भी है और रक्षति (४/४/३३) इस सूत्र में भी है। इस प्रकार शब्दों के दो जोड़े हुए।

(१) समाज रक्षित सामाजिक, समाज समवैति सामाजिकः ; (२) सन्निवेश रक्षति सन्निवेशिक ; सन्निवेश समवैति सान्निवेशिकः।

यह स्पष्ट है कि शब्द रूप में समानता होते हुए भी सामाजिक शब्द के दो भिन्न अर्थ थे। पाणिनि ने स्वयं सूत्रों में उन अर्थों को बताया है। (४/४/३३) सूत्र में रक्षित का ठीक वही अर्थ है जो हिन्दी में आज तक 'रखना' धातु का है, जैसे वह चकला रखता है, अर्थात् अपनी जीविका के लिए उसे चलाता है। सामाजिक का पहला अर्थ ठीक ऐसा ही है। जो जीविका या धनोपार्जन के लिए समाज रखे अर्थात्

चलाए या प्रबन्ध करे वह सामाजिक कहलाता था। (समाज रक्षतं) दूसरी ओर जो व्यक्ति उस समाज में क्रीड़ा या मनोविनोद के लिए भाग ले (समाजं समवैति, आगत्य तदेक देशी भवति-काशिका) वह भी सामाजिक कहलाता था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रक्षधातु के इस विशिष्ट अर्थ की ओर संस्कृत कोपकारों का ध्यान प्रायः नहीं गया, इसीलिए किसी भी कोप में सामाजिक शब्द का पहला अर्थ नहीं मिलता। यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है कि हिन्दी में रक्ष धातु का जो विशेष अर्थ अभी जीवित है, वह पाणिनि के युग में ही संस्कृत रक्ष धातु में विद्यमान था।"

इस युग में कंठ-संगीत का विकास बड़ी तेजी के साथ हुआ—

इस युग में कोई नवीन वाद्य यन्त्र का आविष्कार नहीं हुआ, वैदिक काल के वाद्य यन्त्रों का ही उपयोग किया जाता था। नवीन वाद्य यन्त्रों का आविष्कार न होने का कारण एक यह भी था कि मानव वैदिक काल से अधिक संघर्षपूर्ण हो गया था। उनके जीवन का अधिक वक्त जीवन निर्वाह के कार्यों में व्यय होता था। इस युग में वादन का विकास जैसा वैदिक युग में था ठीक वैसा ही रहा, न घटा और न बढ़ा, किन्तु कंठ संगीत एवं नृत्य में अवश्य ही विकास हुआ। गाने की अनेक नवीन पद्धतियाँ निकाली गई, जो आगे चल कर लोप भी हो गई, सर्वसाधारण की दिलचस्पी कंठ संगीत की ओर विशेष थी और दूसरे नम्बर पर उनका झुकाव नृत्यों की ओर था। पुरुष और नारियाँ दोनों ही नृत्य किया करते थे। इस युग में वैदिक युग से अधिक पुरुष नृत्य प्रिय हो गए थे। नारियों का नृत्य के प्रति प्रेम वैसा ही था जैसा कि पहले। पर हाँ इस युग में अनेक नृत्यों का जन्म हुआ। नवीन-नवीन नृत्यों के जन्म करने में नृत्यकारों को अधिक चाव था।

समाज के अन्दर नाटकों की प्रथा चल पड़ी थी—

इस काल में नाटक की प्रथा भी चल पड़ी थी, किन्तु वे सब पूर्ण संगीतमय ही रहते थे। परन्तु नाटकों की प्रथा समाज के अन्दर विशेष अधिक नहीं थी, जब कभी किसी विशेष अवसर पर वे प्रदर्शित किए जाते थे। लेकिन अनेक नाटक मंडलियाँ बन गई थी जोकि संगीत और नाटक दोनों का प्रचार किया करती थीं। नाटकों के रंगमंच पर नारियों का काम करना बुरा नहीं समझा जाता था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पुत्री को अथवा पत्नी को नाटकीय रंगमंच पर कला प्रदर्शन के लिए भेजने में अपना गौरव ही समझता था। समाज में संगीतज्ञों की संख्या बढ़ रही थी। संगीतज्ञ अशिक्षित नहीं होते थे। संगीत और शिक्षा दोनों का ज्ञान प्रारम्भ ही से बालक को कराया जाता था। चूँकि प्रत्येक घर की माता संगीत से पूर्ण परिचित

होती थी। अतएव उसे अपने बालक को प्रथम संगीत ज्ञान देने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती थी। इस प्रकार बालक जब स्कूल में प्रवेश होता, तो उसको संगीतिक ज्ञान भी होता था।

इस युग में पुरुष और नारी में प्रेम करने का आधार संगीत ही था—

वैदिक काल के मानव जीवन के चार आश्रम इस काल में भी चल रहे थे। पच्चीस वर्ष तक प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मचर्य पालन करते हुए ज्ञान उपार्जन करता था। इसी विद्यार्थी जीवन में वह शिक्षा के साथ-साथ संगीत अध्ययन भी करता था। विद्या उपार्जन करने के उपरान्त ही वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थाश्रम पचास वर्ष तक चलता था। जो विद्या उसने ब्रह्मचर्य रखकर संयमी बनकर अर्जित की थी, उसके उज्ज्वल प्रकाश में वह अपने गृहस्थ जीवन को सुखमय, शान्तिमय तथा आनन्द पूर्ण बनाने का प्रयत्न करता। गृहस्थ जीवन भी पूर्ण संगीतमय होता था। दाम्पत्य जीवन में संगीत का समावेश हो चुका था। पुरुष और नारी में प्रेम करने का आधार संगीत ही था। पुरुष और नारी दोनों परस्पर इसी सुदृढ़ आधार पर मिलते थे। संगीत ने उनके दाम्पत्य जीवन को शान्तिमय बना दिया था। सामान्य लोगों में शास्त्रीय संगीत का प्रेम कम होता जा रहा था, लोकगीत लोकनृत्यों का प्रचार बढ़ता जा रहा था। इस काल में अनेक नवीन लोकगीत एवं लोकनृत्य भी निर्मित हुए, इन लोकनृत्यों एवं गीतों में मानव रुचियों का पूर्ण ध्यान रक्खा जाता था। मेले, तमाशे वैदिक युग से अधिक बढ़ गए थे, इन मेलों में नाच गाना खूब होता था। मेलों का एकमात्र आकर्षण संगीत ही होता था। यह मेले दो तीन दिनों तक बराबर चलते रहेते थे, जिनमें चीजों का क्रय-विक्रय भी होता था। इन मेलों में रथों अथवा गाड़ियों की दौड़ भी होती थी, गाड़ियों में बैल की जोड़ी जोती जाती थी, उनकी गरदनों में ऐसी घन्टियाँ बाँधी जाती थी कि बैलों के दौड़ने पर घन्टियों से बड़ा ही सुरीला संगीत प्रस्फुरण होता था। जिस गाड़ी के बैल अधिक मन्त्रमुग्धक संगीत प्रस्फुरण करने में सफल होते, उनको पुरस्कार भी दिया जाता था। आम जनता ऐसी संगीतिक प्रतियोगिता में बड़ा आनन्द लिया करती थी। इन दौड़ प्रतियोगिताओं से जन साधारण में संगीत का चाव बढ़ रहा था। दूर-दूर से लोग आकर इनमें शामिल होते थे। गृहस्थ जीवन ५० वर्ष की वय में समाप्त करने के बाद फिर वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था, फिर वह गृह त्यागकर वनों में रहकर तपस्या करता था, अथवा संगीत की साधना में डूब जाता था और फिर इसके बाद जीवन के अन्तिम आश्रम में पहुँच जाता था इसलिए वह सन्यास ग्रहण करता था, जो ज्ञान उसने सन्यास अवस्था में प्राप्त किया उसको जन-समाज में पहुँचाया जाता था।

संगीत साधना के क्षेत्र से हटता जा रहा था—

पौराणिक युग में संगीत की एकछत्रता खत्म हो चुकी थी। संगीत प्रचार के लिए अनेक छोटे-छोटे वर्ग बन गए थे। एक वर्ग दूसरे वर्ग से सहयोग नहीं करता था। हर वर्ग अपने संगीत विकास को छिपा कर रखने की कोशिश करता था। परन्तु यह संकीर्ण प्रवृति समाज के अन्दर अधिक मात्रा में नहीं फैलने पाई थी, परन्तु शनैः शनैः यह फैलती जा रही थी। आम जनता संगीत की साधना से भी हटती जा रही थी। संगीत का मनोरंजक पहलू मानव वर्ग में विकसित होता जा रहा था। अब लोग संगीत के अभ्यान्तरिक सौन्दर्य की ओर कम ध्यान देने लग गये थे, वे सगीत के वाह्य उपादानों में अधिक दिलचस्पी लेने लगे थे।

संगीत के वाह्य उपादानों पर अधिक ध्यान दिया गया—

विख्यात इतिहासकार जीवोतन्यका ने अपनी पुस्तक "The depth of the Indian culture" में लिखा है—"पौराणिक युग में आम जनता गाड़ियों की संगीतमयी दौड़ में विशेष भाग लिया करती थी। वैदिक काल में जैसा संगीत की आन्तरिक सुषमा का उभार हमें प्राप्त होता है, वैसा इस काल में नहीं होता। इस काल में सँगीत का पुष्प प्रस्फुटित अवश्य हुआ है, लेकिन वह अपना सौरभ विस्तीर्ण क्षेत्र में न फैला सका। इस युग के संगीतकार वैदिक युग के संगीतकारों के समान उदार दृष्टि वाले नहीं होते थे। संगीतकारों के मस्तिष्क संकीर्ण होते जा रहे थे। सार्वजनिक उत्सवों की संख्या पहले से बढ़ गई थी, जिनमें संगीत को खुल कर प्रयोग किया जाता था। संस्कृत के मंत्रों का उच्चारण इस युग की नारियाँ बड़े सुन्दर ढंग से करती थी, इन मन्त्रों को वाद्यों की सहायता से गाया बजाया भी जाता था। गाते वक्त शब्दों का उच्चारण ठीक एवं स्वाभाविक रूप से होता था। गायक को श्रोताओं की रुचियों का पूरा-पूरा ध्यान रहता था।"

संगीत विधान पूर्ण हो गया था—

इस युग के संगीत में सबसे बड़ी विशेषता यह पाई जाती है कि यह विधान पूर्ण होगया था। संगीत की प्रत्येक चीज अपने विधान में थी। इस युग की नारियाँ वीणा पर ही गाती थी, गाते वक्त वे इसी वाद्य का प्रयोग करती थी। वीणा को वादन में भी प्रयोग किया जाता था।

संगीत को आत्मोत्थान का मुख्य साधन माना गया—

सार्वजनिक संगीत शिक्षण की व्यवस्था भी इस युग में थी। लेकिन संगीत-शिक्षण-केन्द्र अधिक निर्मित नहीं हो पाए थे, लेकिन जो कुछ भी थे वे अपना सुन्दर

कार्य कर रहे थे। उन संगीत शिक्षण-केन्द्रों से सैकड़ों व्यक्तियों को संगीत ज्ञान प्राप्त होता था। संगीत का उच्च दृष्टिकोण इस युग में बदला नहीं था, वही वैदिक युग का उच्च दृष्टिकोण था। यानी संगीत द्वारा अपनी आत्मा का विकास करना। पौराणिक युग के लोग यही विश्वास करते थे कि आत्मोत्थान का सर्वश्रेष्ठ सम्बल संगीत ही है। लेकिन इस युग में यज्ञ तथा हवन का प्रचलन कम हो गया था, इससे संगीत के प्रसरण में भी कुछ कमी पड़ी, किन्तु यह लोग मोक्ष को जीवन में प्रधानता देते थे। इनका ऐसा विश्वास था कि यदि मनुष्य अपनी व्यक्तिगत साधना करें तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है, पर यह मोक्ष संगीत के अभाव में नहीं मिल सकती थी, ऐसा इनका विश्वास था। मोक्ष और संगीत दोनों को इन लोगों ने एक सूत्र में गूँथ दिया था। अतएव यज्ञ के द्वारा जो संगीत का सार्वजनिक प्रदर्शन होता था, वह अब इस युग में वैयक्तिक रूप में सिमट गया; पर इससे संगीत की उज्ज्वल ज्योति में किंचितमात्र भी धूमिलता नहीं आई। कैम्पटन डे ने "The History of the world music" नामक पुस्तक में लिखा है—"पौराणिक युग में संगीत की स्थिति सुन्दर थी, लेकिन वैदिक युग में जो संगीत यज्ञों में फैल चुका था, वह अब मानव की व्यक्तिगत कारा में बन्द होगया। इस युग में जीवन की अमरता का प्रतीक मोक्ष माना गया। तथा मोक्ष प्राप्त करने का साधन संगीत माना गया। परन्तु इससे संगीत की उच्चता में अन्तर नहीं पड़ा। संगीत का प्रवाह अपनी गति पर चलता रहा। वैदिक युग तथा पौराणिक युग के संगीत में थोड़ा अन्तर अवश्य पड़ गया था। समाज के अन्दर समय-समय पर संगीत सम्बन्धी भाषण हो जाया करते थे, लेकिन यह भाषण सम्पूर्ण रूप से कला पक्ष लेते हुए नहीं होते थे, बल्कि इनमें जीवन की वे पगडन्डियाँ भी दिखलाई जातीं, जिन पर चलकर मानव प्रगति की खुशनुमा मंजिल पर पहुँचता है।"

इस युग के सम्बन्ध में एक इतिहास लेखक लिखता है :—

"तैत्तिरीय उपनिषद, ऐतरेय उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में संगीत का यथेष्ट दिग्दर्शन प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों में हमें इस दिशा में अनेक संकेत प्राप्त होते हैं। हमें इन ग्रन्थों में वैदिक सात स्वरों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य, वर्ण, रत्न-प्रदीपिका, प्रातिभाष्य प्रदीप और नारदी प्रभृति ग्रन्थों में भी संगीत का परिचय मिलता है। अभिनिहित प्रभृति सात स्वरों के स्थान पर वर्ण-प्रदीपिका में आठ स्वरों का उल्लेख किया गया है "अष्ठौ स्वरान" यहाँ "तथा भास्य" नामक एक और स्वर जोड़ दिया गया है। किन्तु अन्य सभी प्रातिसांख्य ग्रन्थों में सात स्वरों का ही उल्लेख किया गया है। ऋक-यजु प्रातिसांख्य में भी सात स्वरों का ही वर्णन है और टीकाकार कात्यायन ने भी षड़जादि सात स्वर ही माने हैं।

हरिवंश और अन्य पुराणों में जैसे मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, विष्णु-पुराण आदि में भी संगीत का विस्तृत विवरण मिलता है। वायु पुराण में तो संगीत शास्त्र की आलोचना विशद रूप में हुई है। हरिवंश पुराण में एक स्थान पर "आगान्धारराग़म्" आदि शब्दों से ज्ञात होता है कि गान्धार राग महाभारत काल में प्रचलित था। इसके अतिरिक्त सप्त स्वरों द्वारा लीलायित होने वाले ग्राम राग ("षड्ग्राम रागादि") भिन्न भिन्न रागिनियों, तीन स्थानों (मन्द्र, मध्य और तार) मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य, वाद्य आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। गाथा और साम गान साधना का भी इस युग में प्रचलन था। हरिवंश पुराण में इनका विशेष वर्णन मिलता है। एक प्रसंग आता है कि महाराज उग्रसेन को राज्य भार सौंपकर श्रीकृष्ण यादवगण के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकले और तीर्थ स्थानों में जलक्रीड़ा के समय नृत्य गीत-वाद्य आदि का सुन्दर आयोजन हुआ। "अप्सरायें ताल पर ताल देती हुई नृत्य करने लगीं, उनकी नृत्यभंगी और अपूर्व वेषभूषा को देख कर यादव गण परम आनन्दित हुए। बलदेव भी रेवती के साथ ताली दे देकर नाचने लगे। सत्यभामा नृत्य गीत देख सुनकर अत्यन्त उल्लासिनी हुई।"

हरिवंश पुराण में जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार नर्त्तकाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय थीं उर्वशी, हेमा, रम्भा मेनका, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा आदि। वे अपने भिन्न-भिन्न वाद्ययंत्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न रीतियों से नृत्य करती थी। नीलकण्ठ कहते हैं—"एवमेष नर्तकी प्रवेशा भरतस्यानुमतः"

मार्कण्डेय पुराण में भी संगीत सम्बन्धी आलोचना मिलती है। मार्कण्डेय पुराण का उपाख्यान नागराज अश्वतर, उनके भ्राता कम्बल एवं देवी सरस्वती का अवलम्बन लेते हुए रचित हुआ है। नागराज अश्वतर ने कठोर तपस्या करके विष्णु की जिह्वारूपिणी देवी सरस्वती को संतुष्ट किया और देवी ने उनसे वर माँगने के लिए कहा। नागराज ने देवी से प्रार्थना की कि वे उन्हें तथा उनके भाई कम्बल को समस्त स्वर विज्ञान दान करें। देवी ने तथास्तु कहा तथा अश्वतर एवं उनके भ्राता को सम्पूर्ण स्वर विज्ञान प्राप्त होगया। मार्कण्डेय पुराण के इस उपाख्यान से हमें आगे चलकर षड़जादि सात स्वरों, पांच प्रकार के ग्राम रागों, पाँच प्रकार के गीतों, मूर्च्छनाओं ५१ प्रकार की तानों, तीन ग्रामों एवं चार प्रकार के पदों का परिचय प्राप्त होता है। वाद्य यंत्रों के रूप में वीणा, दर्दुर, पर्णव, पुस्कर मृदंग, देवदुन्दभि आदि का वर्णन मिलता है।

वायु पुराण में भी संगीत का प्रसंग आता है। सात स्वर, तीन ग्राम, २१ मूर्च्छनायें, ४ तालें और इनके समदृष्टिगत स्वरूप "स्वर मंडल" की विस्तृत आलोचना होती हैं। वायु पुराण से भी अधिक विस्तृत आलोचना वृहदधर्म पुराण में मिलती है।"

रामायण काल में संगीत

रामायण काल के संगीत में नवीन उन्मेष उत्पन्न हुआ—

उत्तर वैदिक काल में रामायण और महाभारत की रचना प्रारम्भ होगई थी। किन्तु जिस रूप में यह दोनों ग्रन्थ आजकल प्राप्त हैं, उस रूप को प्राप्त करने में लगभग १००० वर्ष लगे थे। विद्वानों का कहना है कि इन ग्रन्थों में समय समय पर बातें जोड़ी जाती रहीं, इस प्रकार इन ग्रन्थों का रचनाकाल ५०० ई० पू० से ५०० ई० तक माना जाता है और दोनों यह ग्रन्थ महाकाव्य माने जाते हैं। रामायण की रचना ऋषि वाल्मीकि ने की थी। बाल्मीकि संस्कृत भाषा के सब से पहले कवि माने जाते हैं। और रामायण सबसे पहला काव्य माना जाता है।

रामायण के सम्बन्ध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने "हिन्दुस्तान की खोज" में फ्रान्सीसी इतिहासकार मिशले का अभिमत दिया है। यह अभिमत सन् १८६४ में लिखा गया था, जो इस प्रकार है—"जिस किसी ने भी बड़े काम किए हैं या बड़ी आकाँक्षायें की हैं; उसे इस गहरे प्याले से जिन्दगी और जवानी की एक लम्बी घूँट पीनी चाहिए......... पश्चिम में सभी चीजें संकरी और तंग हैं—यूनान एक छोटी जगह है और उसका विचार करके मेरा दम घुटता है; जूडिया खुश्क जगह है और मैं हफ जाता हूँ। मुझे विशाल और गहन पूर्व की तरफ जरा देर को देखने दो वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य—हिन्दुस्तान सागर जैसा विस्तृत, मंगलमय, सूर्य के प्रकाश से चमकता हुआ, जिसमें दैवी संगीत है और जहाँ कोई बेसुरापन नहीं। वहाँ एक गहरी शान्ति का राज्य है, और कशमकश के बीच भी वहाँ बेहद मिठास और इतंहा दर्जे का भाईचारा है, जो कि सभी जिन्दा चीजों पर छाया हुआ है, मुहब्बत दया, क्षमा का अपार और अथाह समुन्दर है।"

जिस शान्ति और जीवन की मिठास का फ्रान्सीसी इतिहासकार ने जिक्र किया है, उसकी तह में वास्तव में उस समय के उच्चकोटि के संगीत की पावन धारा ही प्लावित हो रही थी।

संगीत का आत्म-सौन्दर्य विकसित होने लगा—

रामायण काल में सम्पूर्ण समाज पर संगीत की पावन एवं दिव्य आभा छिटक रही थी। पुरुष-नारियों के जीवन संगीत के देदीप्यमान सूर्य की ज्योतिर्मय रश्मियों से

आलोकित हो रहे थे। पौराणिक काल से अधिक इस काल में संगीत का आत्मसौन्दर्य समाज पर उभर आया था। पौराणिक काल में जो संगीत छोटे-छोटे दायरों में विभक्त होने लगा था, वह अब इस काल में रुक गया। इस काल के लोगों की दृष्टि भी पौराणिक काल से प्रशस्त बनती जा रही थी। समाज का नैतिक स्तर भी ऊपर उठता जारहा था, और इस उठते हुए स्तर पर संगीत की आभा पूर्णरूप से प्रदीप्त हो रही थी, इसीलिए लोगों के जीवन पौराणिक काल से अधिक गहरे तथा गम्भीर बनते जा रहे थे। लोगों के जीवनों में सागर के समान अथाह गहराई आती जा रही थी, और यह सब दैवी संगीत की अटूट साधना का प्रतिफल था। प्रत्येक आदमी सुख-शान्ति पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। संगीत ने लोगों की रुचियों को, उनके स्वभाव को परिष्कृत बना दिया था। पारवारिक जीवन में पावन प्रेम की निर्मल धारा वह रही थी। इस काल में शायद ही घर कोई शेष हो, जिसमें संगीत का अस्तित्व किसी न किसी रूप में न हो। वैदिक काल की तरह इस काल में भी हर गृह में प्रातःकाल होते ही ईश्वर आराधना की संगीतमय स्तुति प्रस्फुटित हो उठती थी। इस संगीतमय प्रार्थना में गृह के सब सदस्य शामिल होते थे। गरीब अमीर सभी ईश्वर उपासना किया करते थे। सार्वजनिक रूप से समाज में संगीत के आयोजन हुआ करते थे, इन आयोजनों में सर्वसाधारण लोग भी विशेष दिलचस्पी लिया करते थे। श्रीरामचन्द्र जी के विवाहोत्सव के शुभ अवसर पर संगीत का आयोजन हुआ था। महिलाओं ने मंगलगान गाए थे। वीणा तथा मृदंग आदि वाद्य यन्त्रों का वादन किया गया था। नारियाँ आनन्द विभोर होकर नृत्य में झूम उठी थीं। प्रजा ने भी संगीतमय आनन्दोत्सव मनाया था। इसी प्रकार जब श्रीरामचन्द्र जी चौदह वर्ष का बनवास काटकर पुनः अयोध्या को लौटे थे, तो उस वक्त अयोध्या नगरी को खूब सजाया गया था, प्रत्येक गृह दीप-मालकाओं से जगमगा रहा था। नगर में जगह-जगह गाने बजाने का उत्सव मनाया जा रहा था। नारियों ने मंगल गाते हुए श्रीरामचन्द्र जी का स्वागत किया था। सामान्य जनों ने भी नाच-गा कर अपने राजा का स्वागत किया था।

संगीत चरित्र की मर्यादा की रक्षा का प्रशस्त सम्बल माना जाता था—

इन नाच गानों में चरित्र की मर्यादा की रक्षा की जाती थी। नाच गानों का क्रम पवित्रता के सुरम्य वातावरण में सृजन किया जाता था। संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा समाज में वही वैदिक काल के समान ही स्थिर थी। जन सामान्य के विवाहोत्सव पर भी नाच गाने का क्रम चला करता था। दुन्दभी वाद्य यंत्र का प्रयोग इस युग में होने लगा था। स्वयंवर की प्रथा चालू थी। वर-वधू के चुनाव के अवसर पर संगीत

आयोजन चला करता था। युद्ध में जब कोई जीतकर घर आता था तो उस वक्त उसका स्वागत दुन्दभी बजाकर किया जाता था। जब लक्ष्मणजी सुग्रीव के अन्तर-महल में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ वीणा वादन के शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण भी संगीत शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान था। उसके दरबार में नाच गाने का आयोजन हुआ करता था। वह स्वयं उन नाच गाने के सुअवसरों में उपस्थित रहा करता था, और वह उस संगीतमय वातावरण का पूरा-पूरा आनन्द लिया करता था। कहते हैं कि अगर कोई गलत स्वरों से गाता था तो रावण उसको पकड़ लिया करता था। उसको स्वर का ज्ञान अपूर्व था। रावण की पत्नी मन्दोदरी स्वयं संगीतज्ञा थी। मंदोदरी का संगीत ज्ञान रावण से कम नहीं था, ऐसा कहा जाता है। रावण की दास-दासियाँ भी संगीत-प्रिय थीं। कहते हैं कि एक बार उसके किसी दरबारी ने कोई अपराध कर दिया था, वह दरबारी रावण के सम्मुख उपस्थित किया गया, लेकिन दरबारी ने अपने अपराध को एक गीत गाकर स्वीकृति दी। उस गीत को सुनकर रावण बहुत प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ और उस अपराधी दरबारी को सदैव के लिए क्षमा कर दिया तथा ऊपर से उसे पुरस्कार भी प्रदान किया। रावण की संगीत प्रियता के अनेक जन-श्रुतियाँ प्रचलित हैं, लेकिन उनका कोई ऐतिहासिक आधार हमें प्राप्त नहीं होता। बाल्मीकिजी ने भी रावण को संगीतज्ञ स्वीकार किया है। और इस तथ्य की पुष्टि तुलसीदासजी ने भी की है।

महान संगीतज्ञ रावण—

शिक्षा एवं विद्वता की दृष्टि से रावण मानों सर्वगुण सम्पन्न ही था। इसकी पुष्टि प्राचीन साहित्य और जनश्रुति दोनों से ही होती है। परम्परानुसार रावण वेदों का विद्वान और टीकाकार था। तमिल ग्रन्थों में ऐसी उक्तियाँ पाई जाती हैं जो रावण के शौर्य और शास्त्र ज्ञान, एवं महान संगीतज्ञ की समान रूपसे पुष्टि करती हैं। कहा जाता है कि स्वर सहित वेद पाठ करने की प्रणाली का आविष्कार सबसे पहले रावण ने ही किया। सामवेद के स्तोत्रों से उसने नर्मदा के तीर पर भगवान शंकर की आराधना की थी।

तुष्टाव वृषमध्वजम् ।
सामभिविविधैस्तोत्रैः प्रणम्यस दशाननः ।।

अशोकवाटिका में सीता के समीप जाते हुए रावण वैदिक मंत्रों का घोष करता था। रावण की मृत्यु पर विलाप करते हुए विभीषण ने अपने भाई को 'आहिताग्नि मेहातपा' और 'वेदान्तग' बताया था। अर्थात् रावण वेदों में निर्दिष्ट

अग्नि पूजा किया करता था। वह स्वस्थ संगीत का अभ्यास किया करता था। वह वैदिक शिक्षा की सीमा तक पहुँच गया था।

रावण संगीत का बड़ा प्रेमी और मर्मज्ञ था। परम्परानुसार रावण रचित एक संगीत ग्रन्थ "रावणीयम्" भी उपलब्ध होता है। रावण की रानियाँ सभी प्रकार के वाद्य यंत्रों को बजाने में निपुण थी। रावण का राजमहल भेरी, मृदंग, शंख, मुरज, (पखावज) तथा पणव के घोष से व्याप्त रहता था। जब वह अपनी धारा-सभा के अधिवेशन में जाता, तब हजारों तुरही और शंख बजाए जाते थे। उसकी दाहक्रिया में भी वाद्य यंत्र बजाए गए थे।

नर्मदा के तीर पर बालू की वेदी के बीच शिव मूर्ति स्थापित करके रावण ने दिव्य गंध वाले पुष्पों से उसकी अर्चना बन्दना की और हाथ फैलाकर नृत्य गान भी किया था।

ततः सतामार्तिहरं परं वरं
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम्।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ
प्रसार्य हस्तान् प्रणनर्त चाग्रितः॥

वाल्मीकि आश्रम में लव कुश को भी संगीत की शिक्षा दी गई थी। जहाँ लव कुश तीर चलाने में प्रवीण थे, वहाँ वह कंठ संगीत में भी दक्ष थे।

सुप्रसिद्ध विद्वान स्वामी प्रजानानन्द (Swami Prajnana Nanda) लिखते हैं—"Seven Shudha Jatiragaganas in the Ramayana (fourth century B. C.) sung by Lava & Kusa where the defination of Raga is visible in their charming effect."

इस काल में संगीत चन्द विद्वानों तक सीमित न था, वल्कि उसने सार्वजनिक रूप पूर्ण रूप से ले लिया था—

हमें बाल्मीकि रामायण में अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं जिनमें श्री रामचन्द्रजी का स्वागत संगीत द्वारा जन-ससाज ने किया था। रामचन्द्रजी संगीत प्रेमी थे। सीताजी भी संगीत-प्रेमिका थी। कैकेई को भी संगीत से प्रेम था। और लक्ष्मणजी भी संगीत अनुरागी थे। इसीलिए रामराज्य में संगीत का प्रचार खूब था। इस काल में संगीत की कई प्रकार की धारायें जन समाज में चल रहीं थी। रावण समय-समय पर संगीत आयोजन किया करता था, जिसमें बाहर के नाट्यकार भी शामिल होते थे।

युद्ध में संगीत का प्रयोग किया जाता था। युद्ध के संगीत में वादन-प्रवाह की प्रधानता रहती थी। इस काल में संगीत झोपड़ी से लेकर महलों तक में प्रचलित था। सुप्रसिद्ध विद्वान ग्रामसजील ने अपनी पुस्तक "The civilization of Dravan period" में लिखा है—रामायण काल में हमें जितने उत्कृष्ट एवं सुरम्य संगीत की मनोरम झांकी मिलती हैं उतनी इससे पूर्व के कालों में नहीं मिलती। वैदिक काल इसका अपवाद है। इस काल के मनुष्यों में जो सौम्यता, जो सुन्दर कल्पना, जो प्रभावशाली उमंग एवं जो आनन्दपूर्ण चेतना प्राप्त होती है, वह संगीत विकास के कारण ही है। रामायण काल में जब राजा ही संगीत मर्मज्ञ थे, तो फिर उनकी प्रजा क्यों न होगी। इस काल में संगीत के तीनों उपकरणों की गायन, वादन, एवं नृत्य की उन्नति हुई। हालाँकि वादन के क्षेत्र में कोई बड़ा भारी आविष्कार आविर्भूत नहीं हुआ।"

संगीत साधना पर विशेष ध्यान दिया गया—

रामायण काल के संगीत की खूबी यह थी कि उसमें गहराई अधिक आ चुकी थी। शास्त्रीय संगीत काफी विस्तृत हो चुका था। संगीत साधना करने वालों की इस युग में अधिकता रही होगी, तभी तो इस युग का संगीत इतना गहरा बन सका। अनेक व्यक्तियों का जीवन नाचने गाने पर ही निर्भर था, वे उसीके द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। नाटकों का भी प्रचार हो गया था, किन्तु इस काल के नाटकों में संगीत की अधिकता पौराणिक काल के समान नहीं रह गई थी, संगीत में चमत्कारिक शक्ति भी पैदा हो चली थी। जन समाज में संगीत सीखने का चाव जोरों पर था।

मिस्टर कोकड़नी ने अपने "संगीत के संक्षिप्त इतिहास" में लिखा है—"रामायण काल में लोगों का संगीत प्रशिक्षण का अनुराग बढ़ रहा था। बच्चों में भी संगीत प्रियता पाई जाती थी। नारियाँ अपने अवकाश में नृत्य सीखा करती थी। अनेक प्रकार के नृत्यों का चलन इस युग में शुरू हो गया था। मृदंग वाद्य का भी प्रचलन खूब था। रावण कुशल संगीतज्ञ होने के कारण अवश्य ही उसके राज्य में भी संगीत का प्रचार बाहुल्यता में होगा। देश धनधान्य पूर्ण था। अतएव रामराज्य के मनुष्यों को जीवन निर्वाह की चिन्ता नहीं सताती होगी, इसलिए वे अपना अधिक से अधिक समय संगीत साधना तथा अन्य प्रकार की कला साधना में देते होंगे। भेरी, घट, डिमडिम, मुद्दुक, आदम्बर आदि वाद्य यन्त्रों का प्रचार रामायण काल में पाया जाता है, जिनका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में आया है।"

वास्तव में रामायण काल के उत्कृष्ट संगीत पर आज अनेक विदेशी मुग्ध हो गए हैं और उन्होंने इसके ऊपर अपने विचार भी कई पुस्तकों में प्रगट किए हैं।

रूस वालों को भी इस काल का संगीत प्रिय लगा है, और वे बहुत प्रभावित हुए हैं। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ मिस्टर मिखाइलोव जो गत वर्ष भारत में आए थे, उन्होंने कहा था—मुझे रामायण काल के संगीत ने विशेष रूप से प्रभावित किया है, वास्तव में वह दैवी संगीत था। काश वैसा संगीत हम भी निर्मित कर सकें तो हमारे जीवन में कितनी गहराई एवं व्यापकता आजावेगी, जिसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती।

महर्षि बाल्मीकि संगीत के महान आचार्य थे, तभी वह रामायण जैसा अद्वितीय संगीतमय ग्रन्थ विश्व को भेंट कर सके—

रामायण एक कवि कलाकार की मनोहर रचना है। रामचरित्र जैसे अलौकिक विषय को एक अनूठी, संगीतमय, छन्दों बद्ध संवेदनशील शैली में प्रस्तुत कर महर्षि बाल्मीकि ने एक अद्वितीय कार्य किया, जोकि इतिहास में कभी नहीं भुलाया जा सकता। रामायण महाकाव्य का तत्कालीन समाज ने हार्दिक स्वागत किया। रामायण गान उसके लिए नूतन, चमत्कारी और अभूतपूर्व अनुभव सिद्ध हुआ। बाल्मीकि की यह रचना कवि की कलात्मक, संगीतात्मक अभिरुचि की परिचायक है। उसमें स्थापत्य कला, चित्रकला, वस्तु कला, संगीत नाट्य, और नृत्य जैसे कलात्मक विषयों पर परिष्कृत सामग्री उपलब्ध है।

बाल्मीकि ने अपनी रामायण में अनेक स्थानों पर नृत्य गान के समारोहों का सुन्दर वर्णन किया है। एक स्थान पर आपने लिखा है :—

"रामास्याभ्यवहारार्थं किंकरास्तूर्ण माहरन्।
उपानृत्यंश्च रामानं नृत्य गीत विशारदा॥
अप्सरोरग संधाश्च किन्नरी परिवारिता।
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः कामवशंगाताः।
उषानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्य गीत विशारदा॥"

अर्थात् राजा राम के सामने व्यवहार योग्य वस्तुएँ प्रस्तुत की गई और नाचना गाना भी शुरू हुआ। नृत्य गीत बिशारदाये प्रस्तुत हुई—एक से एक सुन्दर अप्सरायें, नाग वालाएँ, किन्नरियाँ, सबने मस्त होकर अपूर्व कला का प्रदर्शन किया।

धनुष के तोड़े जाने पर आकाश में देवताओं की दुन्दभी बज उठी, अप्सरायें नाचने लगीं और गाने लगीं। रंगविरंगे फूलों की वर्षा होने लगी। सुन्दरी और सयानी सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही थीं, जब सीता जी ने रामचन्द्र जी के गले

में जयमाला पहिनाई, तो उस वक्त भी संगीत का आयोजन किया गया। सखियाँ मंगल गाने लगीं, मंगल गान के साथ स्वयंवर की प्रथा समाप्त हुई।

रामायण के बालकान्ड में भी संगीत का वर्णन आता है जैसा "गायन्ता नृत्यमाना श्च वादयन्तास्तु राधव। आयोदम् परमम् यन्मूर्व राघरणभूषिता" यहाँ नृत्य ओर गीत और वाद्य का उल्लेख हुआ है। नृत्य, गीत और वाद्य का सम्मिश्रण ही संगीत है।

रामायण में जहाँ पर रामचन्द्र के विवाह और धनुर्भङ्ग का वर्णन है। वहाँ पर "गीतवादित" "ननृतुः" आदि शब्दों के अतिरिक्त "दुन्दभि", "देवदुन्दभि" आदि शब्दों का उल्लेख भी है। इसी प्रकार अन्य कई स्थानों पर नृत्य गान और वादन का संकेत प्राप्त होता है।

उत्तर वैदिक काल के अन्तिम चरण—

महाभारत काल में संगीत

महाभारत काल के संगीत के महान आचार्य श्रीकृष्ण ने संगीत को सर्व-साधारण के लिए सुलभ बनाया—

महाभारत के रचयिता वेदव्यास थे। महाभारत प्राचीन ज्ञान का एक बड़ा एवं फुटकर संग्रह है। यह महाकाव्य बौद्ध काल से पूर्व ही लिखा गया। महाभारत में कौरवों तथा पान्डवों के युद्ध का वर्णन है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक लाख श्लोक हैं, जो कि सभी संगीतमय हैं। प्रत्येक श्लोक को गाया जा सकता है, यही इन श्लोकों की विशेषता है। रामायण की भाँति इसकी भी मूल कहानी छोटी रही होगी, बाद के कवियों ने अपनी रचनायें जोड़कर उसके कलेवर को इतना बढ़ा दिया है। मूल ग्रन्थ ईसा से चौथी शताब्दी पूर्व लिखा गया होगा। महाभारत का मूल कथानक पूर्ण ऐतिहासिक माना जाता है। कुछ विद्वान महाभारत काल ३१०२ ई० पू० मानते हैं, कुछ अन्य विद्वानों का इससे भी पूर्व महाभारत काल को बताते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जिनकी मान्यता है कि यह घटना १००० ई० पू० से अधिक पुरानी नहीं है। खैर जो कुछ भी हो महाभारत काल संगीत की दृष्टि से भी महत्व पूर्ण काल है। इस युग में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र संगीत के महान् पंडित होगये हैं, उन्होंने जहाँ समाज में ज्ञान का प्रचार किया, वहाँ दूसरी ओर संगीत का भी प्रचार किया। उनका संगीत पर पूर्ण अधिकार था। उनके संगीत का मुख्य क्रीड़ा स्थल ब्रजभूमि रही। ब्रज के कण-कण में श्रीकृष्ण की बंशी की मधुर स्वर लहरियाँ आज भी गूँजायमान हो रही हैं, ऐसा मालूम पड़ता है कि यमुना को लोल लहरों की नृत्यमयी अठखेलियों में गोपिकाओं के मन्त्रमुग्धक गीत प्रतिध्वनित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण से गोपिकाएँ पावन प्रेम करती थीं। वे उनकी मस्त करने वाली बंशी की मधुर स्वर लहरी पर न्यौछावर हो रही थी, बंशी बजाने में श्रीकृष्ण इतने प्रवीण थे, कि गोपिकाए जैसी हालत में होती वैसी हालत में ही अपने प्रिय की बंशी सुनने के लिए दौड़ी चली आती। यदि कोई गोपी आटा गूँथ रही होती तो वह आटा को अध गुथा छोड़ कर भाग आती, कोई नारी कुएँ से पानी भरती होती तो वह

कुए में अपना घड़ा छोड़ कर दौड़ पड़ती, यदि कोई नारी बरतन माँजती होती तो वह भी उसी हालत में बरतनों को छोड़कर बंशी की मस्त लहरियों को सुनने के लिए दौड़ी आती, कहने का मतलव यह है कि श्रीकृष्ण की बंशी में कुछ ऐसी संगीतिक सम्मोहनता थी, कि जिसका प्रभाव मानव हृदय पर बड़ा गहरा पड़ता था। जिस प्रकार सपेरा बीन बजा बजाकर सर्प को मस्त कर देता है, ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण बंशी बजा बजाकर ब्रज की नारियों को मस्त कर देते थे, उन्हें आत्म-विभोरित बना देते थे। वे बंशी की प्यारी ध्वनि को सुनकर पागल हो उठती थीं। उन्हें अपने तन मन की बिल्कुल सुधि नहीं रहती थी। वे तो बंशी की स्वर लहरी के अथाह सागर में इतनी डूँब जाती थी, कि फिर बंशी की ध्वनि बन्द होने के घन्टों बाद वे भी उस अथाह सागर से ऊपर को उछरती नहीं थी। दरअसल वह संगीत के प्रकान्ड विद्वान थे। गायन, वादन एवं नृत्य तीनों पर उनका पूर्ण अधिकार था।

इस काल में अनेक प्रकार के नृत्यों का जन्म हुआ—

इस काल में रासलीला नृत्य का भी निर्माण होगया था और भी अनेक प्रकार के नृत्य निर्मित होगए थे। गोपिकाएँ नाना प्रकार से नृत्य करके भी श्रीकृष्ण को रिझाती थी, उनको मुग्ध बनाती थी। श्रीकृष्ण ग्वालाओं के साथ गौओं को चराने भी वनों में जाते थे, और वहाँ वह ग्वालाओं के साथ अपनी बंशी बजाते थे, ग्वाले लोग भी बंशी की मीठी तान सुनकर मस्त होकर नाच उठते थे और गा उठते थे। इस काल में सामान्य जन भी संगीत से उतना ही प्रेम करने लगा था जितना कि उच्चवर्गीय समाज। श्रीकृष्ण की बंशीं ने लोगों के जीवनों को सरसता एवं मधुरता से प्लावित कर दिए था।

महिलाओं ने संगीत को मुक्त-हृदय से अपनाया--

महिलाएँ रामायण काल से भी अधिक गाने और नाचने की अनुरागी हो गई थीं। नारियों का संगीत प्रेम ही इस काल में दिन व दिन बढ़ता जा रहा था। श्रम और संगीत दोनों को इस काल में रामायण काल से भी अधिक मिला दिया गया था। इन लोगों का विश्वास था के काम करते हुए संगीत का प्रयोग करने से काम की थकावट मानव के ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा पाती। इसलिए इस काल के लोग गाते बजाते प्रत्येक काम को करते थे। इन लोगों ने जोवन को मधुरमय एवं सुन्दरतम बनाने का महान् प्रयत्न किया।

संगीत और धर्म का रिश्ता पूर्व काल से भी अधिक निकट का बनता जा रहा था—

धर्म और संगीत का रिश्ता और भी निकट का बनता जा रहा था। रामायण काल से भी अधिक इस काल में यह रिश्ता सुदृढ़ बन गया था। इस काल के लोग भी वैदिक काल के लोगों के समान ही धर्म और संगीत की एक ही आत्मा मानते थे। इसीलिए संगीत का जो रूप इस काल में निर्मित हुआ उसमें धार्मिक भावनाओं के पुट की प्रधानता रही। धार्मिक संगीत ने मानव की वासना को ऊपर उभरने नहीं दिया, यदि इस काल का धार्मिक वातावरण न होता, तो इस काल का संगीत पवित्र एवं दिव्य न रह सकता था। श्रीकृष्ण के साथ गोपिकाओं का तन्मयता से नृत्य करना, उनके साथ एकान्त में वंशी की मधुर स्वर लहरी सुनना, तथा उसमें अपनी सुध-बुध भुला देने पर किंचितमात्र भी परस्पर अनैतिकता का वातावरण सृजन नहीं होता था, जिसको पढ़कर आपके शिक्षित समुदाय उस उच्च नैतिकता की कल्पना ही नहीं कर पाते, और वे श्रीकृष्ण के उज्ज्वल चरित्र पर कीचड़ उछालने लग जाते हैं। परन्तु उनको महाभारत काल के वास्तविक वातावरण का पता नहीं। उनको नहीं मालूम कि संगीत ने महाभारत काल में क्या क्या उच्च मान्यताएं स्थापित की थी, वे बिना वातावरण का यथार्थ अध्ययन किए हुए, यों ही अपनी सस्ती राय प्रकट कर देते हैं। पर दरअसल उस वक्त धार्मिक संगीत ने मानव जीवन को नैतिकता की पृष्ठ पर इतना ऊपर उठा दिया था कि वहाँ वासना, असंयमता एवं उच्छृंखलता को लेशमात्र भी स्थान नहीं था। उस संगीतमय वातावरण में तो जीवन का निर्माल्य एवं आत्मा का पावन प्रकाश ही सर्वोपरि था, फिर बताइये श्रीकृष्ण कैसे अपने उच्च नैतिकता के धरातल से फिसल सकते थे। सुन्दर नारियाँ श्रीकृष्ण के जीवन के ईद-गिर्द अधिक रहीं, किन्तु इससे उनका चरित्र भी धूमिल नहीं पड़ा, चूँकि उनके अन्दर तो संगीत का उच्चतम ज्ञान प्रस्फुटित हो रहा था, वह मानव का वास्तविक रूप समझते थे, भला उनको वासना कैसे दबोच सकती थी। इससे मालूम पड़ता है कि इस काल में संगीत ने मानव जीवन को कितना पवित्र एवं उज्ज्वल बना दिया था कि पुरुष और नारी संसर्ग से भी कलुषिता उत्पन्न नहीं होने पाती थी।

वही नारी सुन्दर समझी जाती थी जो संगीत-प्रतिभा से आलोकित हो रही हो—

इस काल में गायन, वादन और नृत्य इन तीनों भागों का विकास हुआ। रामायण काल की भाँति इस काल में भी नारियों को अपना जीवन साथी चुनने में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वर-वधू के चुनाव के लिए अनेक संगीतमय आयोजन किये जाते

थे। वही नारी सुन्दर समझी जाती थी जो संगीत प्रतिभा से आलोकित हो रही हो। इसी लिए इस युग की नारियों को संगीत सीखने का बड़ा चाव रहा।

संगीत नारत्व के निखार का सुन्दरतम उपकरण माना गया—

दूसरे संगीत नारित्व के निखार का सुन्दरतम साधन माना गया। नारियों के अन्दर धार्मिक संगीत से उनकी प्रवृतियों का आध्यात्मिक विकास किया जाता था। संगीत ने नारियों के अन्दर जहाँ कोमल भावनाओं का उदय किया, वहाँ दूसरी ओर उनको सबल भी बनाया, उन्हें आत्मज्ञान से परिपूर्ण बनाया, और नारत्व का वास्तविक लक्ष्य भी निर्देश किया। इस युग की नारियों के जीवन शान्तिमय होते थे, संगीत ने उनके जीवन में शान्ति का प्रवेश पूर्ण रूप से कर दिया था। रामायण काल से इस युग की नारियों का जीवन अधिक सुन्दर बन गया था।

नारियाँ संगीतमय प्रवाह की सजीव प्रतीक थी—

संगीत की सुरुचिता, जनसामान्य के चेहरों पर भी खिल रही थी, इसकी पावन प्रभा उच्च वर्ग में ही वन्दी बनकर न रह गई थी, अपितु वह प्रत्येक के आनन पर आनन्द और हर्ष की स्वर्णिम रश्मियाँ बन कर बिखर गई थी। संगीत ने सामान्य लोगों को उच्छृंखल एवं असंयमी नहीं बनाया। पुरुषों की दृष्टि में नारियों की इज्जत एवं प्रतिष्ठा बहुत ऊँची समझी जाती थी। वे नारियों को वासना का यंत्र नहीं मानते थे, बल्कि उनके संगीतमय जीवन का संगीतमय प्रवाह, संगीतमय गति मानते थे। इसलिए इस युग की नारियाँ अपनी नैतिकता की पृष्ठ से गिरी नहीं थी, संगीत ने उनकी आत्मा को सदैव सजग रक्खा। इस काल में संगीत का रूप वैदिक-काल के संगीत के रूप से कुछ परिवर्तित हो चला था, लेकिन परिवर्तन मौलिक तथ्यों में नहीं हुआ था बल्कि उसकी प्रदर्शन करने की शैलियों में हो गया था। इस काल में कोई नवीन वाद्य यंत्र आविष्कृत नहीं हुए, वही रामायण काल के वाद्य ही इस काल में भी चलते रहे। परन्तु इस काल में वादन से अधिक गायन को प्रोत्साहन दिया जाता था।

संगीत ने इस युग में योग का रूप ले लिया था—

इस काल में वैदिक काल के देवी देवताओं की आराधना करना छोड़ दिया गया था, और संगीत को जन्म देने वाले तथा उसके निर्माताओं का पूजना प्रारम्भ होगया था। जैसे ब्रह्मा, बिष्णु, महेश एवं गणेश इत्यादि नये देवताओं की समाज में प्रतिष्ठा हो चुकी थी। नारियाँ इन देवताओं को पूजने के लिए गाती बजाती हुई

जाती थी । सारे मार्ग में वे सुन्दर संगीत विखेरती जाती थी, और मन्दिरों में पहुँचकर देवताओं के सामने नृत्य करती थी, गाना गाती थी, इस प्रकार उनकी प्रसन्नता प्राप्त करती थी । पौराणिक युग का कर्मकांड अब कम होता जारहा था और उसके स्थान पर भक्ति और ज्ञान की प्रतिष्ठा होने लगी थी । भक्त का जीवन पूर्ण संगीतमय होता था । भक्त अपने ईश्वर को स्वरों के विभिन्न प्रवृतियों से रिझाता था । संगीत के अपूर्व रस में डूबकर ईश्वर की पावनता में वह तन्मय हो जाता था । संगीत ने इस युग में योग का रूप ले लिया था । ज्ञानी लोग संगीत को योग के रूप में ही उसकी साधना करते थे, और उससे जो पावन प्रकाश प्राप्त करते थे उसको वे समाज की कुरूपता मिटाने के कार्य में प्रयोग में लाते थे । संगीत ने समाज के स्तर को किसी भी दशा में गिरने नहीं दिया था, समाज दिन व दिन उठता जा रहा था । संगीत के महान आचार्य श्रीकृष्ण के अनेक व्यक्ति अनुयायी हो चले थे, उनके चरित्र को सब पवित्र और उज्ज्वल समझते थे, तभी उनसे खुलकर नारियाँ मिलती थी, और उनसे वंशी बजाना भी सीखती थीं । किसी भी व्यक्ति को उनके चरित्र पर लेशमात्र भी सन्देह नहीं था, वरना वे अपनी विवाहिता नारियों को श्रीकृष्ण के पास न भेजते ।

संगीत का चमत्कारिक रूप स्थिर हो चुका था—

इस युग में संगीत का चमत्कारिक रूप भी स्थिर हो चुका था । श्री कृष्ण की वंशी वास्तव में जादू का काम करती थी, तभी तो गोपिकायें आँधी तूफानों की परवाह न करती हुई मथुरा छोड़कर रातों रात द्वारिका पुरी अपने प्रिय श्रीकृष्ण के पास पहुँची थी । नदी का तूफानी वेग उनके मार्ग को अवरुद्ध न कर सका था, मतलब यह कि बंशी की मधुर तान के वशीभूत होकर वे भागती हुई द्वारका पहुँची, ऐसा चमत्कारिक जादू था श्री कृष्ण की बंशी में, यह चमत्कारिक जादू एक दो दिन में नहीं पैदा किया जा सकता, इसके लिए श्रीकृष्ण ने अवश्य ही बंशी बजाने की साधना की होगी, तभी वह बंशी वादन में दक्ष हो सके होंगे । लेकिन कुछ विद्वान कहते हैं कि वह तो भगवान थे, उन्हें साधना करने की क्या आवश्यकता रही होगी, संगीत पर उनका जन्म सिद्ध अधिकार था । लेकिन हम इस अभिमत को नहीं मानते यह अभिमत तर्कसंगत नहीं है । चूँकि वह मानव थे, अतएव अवश्य ही उन्हें मानवोचित गुणों का विकास करने के लिए साधना करनी पड़ी होगी । सुप्रसिद्ध इतिहासकार डाइयोगाल ने "The Survey of Indian Music" नामक पुस्तक में लिखा है—"महाभारत काल का संगीत पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था । श्रीकृष्ण जिनको हिन्दू लोग भगवान मानते हैं । संगीत के महान् पण्डित थे । उन्हें संगीत का पूर्ण ज्ञान था । उनकी बंशी में विचित्र जादू था । ऐसा जादू विश्व में

अन्यत्र नहीं देखा गया। श्रीकृष्ण जैसा बंशीवादक आज तक विश्व में कहीं पैदा नहीं हुआ, वास्तव में महाभारत काल में जो हम संगीत का विकास देखते हैं, उसका अधिकतर श्रेय श्रीकृष्ण को ही है। उन्हीं की बंशी ने समाज को संगीतमय बना डाला था। दूर-दूर से लोग उनकी बंशी सुनने आते थे और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। चूंकि उन्होंने अपने अन्दर साधना द्वारा इतनी उच्चकोटि का संगीतिक प्रतिभा आविर्भूत करली थी, कि जिसको सामान्य जन देखकर चकित रह जाते थे। वह सिर्फ संगीतज्ञ ही नहीं थे बल्कि एक महान दार्शनिक, महान राजनीतिज्ञ, महान कूटनीतिज्ञ, और महान धर्म संस्थापक, महान योद्धा, वह क्या नहीं थे, वे सब कुछ थे, लेकिन यह सब कैसे हुआ ? साधना ने उनके ज्ञान को बहुमुखी बना दिया, इसीलिए वह सर्वसाधारण के लिये भगवान बन गये। उनकी कला-साधना अटूट थी। संगीत से परे कुछ भी नहीं है, सब कुछ संगीत में ही सन्निहित है, जो व्यक्ति इसकी विधिपूर्वक साधना करेगा उसका ज्ञान बहुमुखी हो जायगा।''

अर्जुन महान संगीतज्ञ था, और उसने संगीत प्रसरण में महान योग दिया—

इस युग में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन भी महान संगीतज्ञ था। उसकी संगीत की अपूर्वता समाज के अन्दर बिखरी हुई थी। जब वह एक वर्ष अज्ञात दशा में रहे थे, तो उस समय अर्जुन ने वृहन्नला नाम धारण करके, विराट राजा के दरबार में रह कर, विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत सिखाया था। अर्जुन भी प्रखर वीणा-वादक था। अर्जुन को कंठ संगीत तथा वादन दोनों पर समान अधिकार था। वह जितना महान योद्धा था उतना ही महान संगीतज्ञ था। महाभारत काल में अनेक संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने संगीत का प्रचार देश के अन्दर खूब किया। मिस्टर लायन ने अपनी पुस्तक "The New out look of Indian Music" में लिखा है—"महाभारत काल के वीर अर्जुन को हम नहीं भूल सकते। महाभारत कालीन संगीत के विकास में इस महान वीर का विशेष हाथ रहा। कहते हैं कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण बंशी बजाने में अपना कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रखते थे, ठीक वैसे ही वीर अर्जुन भी वीणा वादन में उस वक्त अपना कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रखते थे। उनके वीणा को सुनकर श्रोतागण अपने तन मन की सुधि भूल जाते थे। वह वीणा पर ही गाते थे, और बड़ा सुन्दर गाते थे, वास्तव में उनके जीवन का अधिकतर भाग लड़ाई और राजनीत में खर्च होगया, वरना वह अकेले ही संगीत को विकास की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देते, यही बात श्रीकृष्ण के बारे में भी कही जा सकती है, अगर उनको भी अवकाश मिलता, तो वह संगीत के क्षेत्र में वही काम करके

दिखला देते; जो कि उन्होंने ज्ञान और राजनीत के क्षेत्र में करके दिखाया। लेकिन फिर भी हमें इन दोनों महान संगीतज्ञों के पावन चरणों में नतमस्तक होना पड़ता है। उन्होंने जो कुछ भी कार्य किया है, उसको कभी विस्मरण नहीं किया जा सकता। वह सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।"

कला जीवन निर्माण की सुदृढ़ सम्बल बन चुकी थी—

महाभारत काल पर जब आप गहराई से दृष्टि डाले तो आपको पता चलेगा कि इस काल का मानव कला को जीवन निर्माण का सुदृढ़ सम्बल समझता था, ठीक उसी प्रकार जिस तरह रामायण काल के लोग समझते थे।

"यात्रा" के माध्यम से संगीत ने एक नवीन मोड़ लिया—

महाभारत काल में भी "समज्जा" का प्रचलन था। इस काल में भी कुमार और कुमारियाँ समज्जा के द्वारा अपना जीवन साथी चुनते थे। समज्जा की संगीत प्रतिष्ठा इस काल में भी अक्षुण्ण रही। कौटल्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "अर्थशास्त्र" में "उत्सव" "समज्जा" और "यात्रा" का उल्लेख किया है। उसके अनुसार यह आयोजन पूर्ण संगीतमय थे। देश के अन्दर संगीत प्रचार के लिए ही इनका प्रदर्शन होता था। "यात्रा" के अन्दर युवक युवतियाँ प्राकृतिक पर्यटन को जाते थे, जहाँ तीन-चार दिनों तक प्राकृतिक सुषमा के नयनाभिराम वातावरण में नृत्य और गाने का धारावाहिक क्रम चला करता था। जब लोगों के अन्दर अधिक अस्वस्थता, अरुचिता तथा निराशा उत्पन्न हो जाती थी, तो वे ऐसी ही "यात्रा" का आयोजन करते थे, जिनसे उनका जीवन स्वस्थ और सुन्दर बन जाता था। इन संगीतिक उत्सवों की अशिव छाया समाज के किसी भी भाग पर नहीं पड़ती थी। यही महाभारत कालीन संगीत की सबसे बड़ी विशेषता थी। वास्तव में बात यह थी कि संगीत की पृष्ठ में दार्शिनिक भावों को पुट रहती थी, जिससे उसकी आत्मिक चारुता की अभिवृद्धि होगई थी। उसका कलेवर आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण होगया था, ठीक वैसा ही जैसा वैदिक काल के समय में था और इसीलिए ही संगीतिक उत्सवों का, युवक और युवतियों के संसर्ग से समाज पर अशिव प्रभाव नहीं पड़ता था। लोगों का धार्मिक जीवन तथा संगीतमय जीवन, दोनों का समन्वित रूप महाभारत काल में प्रस्फुरण होता था।

भगवद्गीता और संगीत का अटूट सम्बन्ध—

इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना श्रीकृष्ण की भगवद्गीता है, यह विश्व का सुप्रसिद्ध **काव्य** है। भगवद्गीता महाभारत का ही एक अंग है, यह एक बहुत बड़े

नाटक की एक घटना है, लेकिन उसकी अपनी अलग जगह है, और वह अपने में सम्पूर्ण है। इस विशाल एवं महत्वपूर्ण काव्य का उस वक्त के संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह दिव्य काव्य सब दर्शनों का निचोड़ है, इसमें ज्ञान योग, भक्ति योग तथा कर्मयोग इन तीनों का समन्वय किया गया है, यद्यपि कर्म को प्रधान माना है। निष्काम कर्म ही गीता का मुख्य उपदेश है। गीता के इस उपदेश का संगीत के उपकरणों पर गहरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि जीवन के दोनों वातावरण एक ही व्यक्ति के द्वारा प्रतिपादित हुए थे। संगीत के निर्माता श्रीकृष्ण ही गीता के रचयिता थे। अतएव उनकी मूल प्रवृत्तियों का प्रभाव संगीत पर भी वही रहा जोकि अर्जुन को उपदेश देते हुए था।

संगीत का उच्चतम रूप इस काल में स्थापित हुआ—

श्रीकृष्ण समाज का सुन्दर और स्वस्थ रूप देखना चाहते थे, वह कभी यह नहीं चाह सकते थे कि संगीत की धारा से उनका उत्कृष्ट समाज अनैतिकपूर्ण बन जाए। भला जो गीता जैसा पवित्र एवं दिव्य ग्रन्थ रच सकता था, वह अपने समाज को इतने निम्न धरातल पर कैसे उतार सकता, जहाँ मानव वासना की सरिता में डूब जाए, जहाँ मानव चरित्र के साथ मखौल करने लगे, जहाँ मानव, अपनी आत्मा की विराटता को कुचल दें, और जहाँ मनुष्य अपनी मनुष्यता का गला घोट दे, ऐसे निम्न समाज को तो श्रीकृष्ण फूटी आँख भी देख नहीं सकते थे, इसीलिए जहाँ श्रीकृष्ण ने अपना प्रथम रूप संगीत के रूप में प्रस्फुटित किया, वहाँ उन्होंने अपना दूसरा रूप भगवद्‌गीता के प्रणेता के रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत किया, वह इसीलिए ताकि संगीत को लोग जीवन से पृथक विलासिता का उपकरण न समझ बैठे। मानव जीवन का धरातल ऊँचा करने के लिए ही श्रीकृष्ण ने संगीत और गीता, एक ही वातावरण को सुखमय बनाने के लिए प्रस्तुत किए, इसीलिए महाभारत कालीन संगीत अपनी उच्च मर्यादाओं को तोड़ नहीं सका, जो कि पौराणिक काल में कुछ शिथिल पड़ गई थीं, वह इस काल में श्रीकृष्ण की विशाल छत्र छाया में पुनः उच्चता की पृष्ठभूमि पर पहुँच गई। महाभारत कालीन संगीत में आप जीवन की उज्ज्वल चारुता का धारावाहिक प्रवाह पायेंगे, और आपको इसमें मिलेगा मानव-जीवन का वह उच्चतम रूप, जिसमें विश्व की सम्पूर्ण कलुषिता धुल जाती है, जिसमें मानव जीवन का अहंम विनष्ट हो जाता है, और जिसमें उसकी सम्पूर्ण अपावनता पावनता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। दरअसल इस काल के संगीत में हमें मानव-जीवन के विकासशील तथ्य प्राप्त होते हैं।

पाणिनि-युग में संगीत

(८०० वर्ष पूर्व ईसा से)

पाणिनि उत्तरी पश्चिमी भारत के निवासी थे। इनका काल ईसा से लगभग ८०० वर्ष पूर्व माना जाता है। इन्होंने संस्कृत व्याकरण पर अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ लिखा है। इस रचना ने उन्हें अमर कर दिया। संस्कृत व्याकरण पर इससे श्रेष्ठ अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। यह सूत्र शैली में लिखा गया है। अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों को सूत्रबद्ध कर दिया गया है। पाणिनि ने वास्तव में संस्कृत भाषा को एक वैज्ञानिक रूप दिया। भाषा का जो रूप उन्होंने निर्धारित किया, वही आज तक प्रचलित है। पाणिनि के व्याकरण ने संस्कृत को जटिल बहुत बना दिया, उसमें स्वाभाविक विकास की गुंजायश न रही। इसीलिए संस्कृत कभी जनता की भाषा का पद न पा सकी।

इस काल में संगीत के रचयिता ब्राह्मण ही थे—

उत्तर वैदिक युग के उपरान्त आर्यों का सामाजिक तथा धार्मिक जीवन जटिल होता गया। वर्ण व्यवस्था के नियम कठोर होने लगे तथा धार्मिक कर्मकान्डों में वृद्धि हुई। पाणिनि के इस ग्रन्थ से हमें भारतीय संगीत के सम्बन्ध में भी पता लगता है। मंत्रों के उच्चारण करने की विधि भी इसमें बतलाई गई। उच्चारण-स्वर कैसा होना चाहिए इस पर भी प्रकाश डाला गया। पाणिनि कालीन युग में संगीत के रचयिता एवं शिक्षक ब्राह्मण ही थे, वे ही समाज को संगीत का ज्ञान कराते थे। इस काल में जो भी ग्रन्थ लिखे गए वे सब संस्कृत भाषा में लिखे गए। सूत्रों अथवा मंत्रों को कंठस्थ कराया जाता था। कंठस्थ कराने में स्वर पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन सूत्रों का उच्चारण इस ढंग से किया जाता था, कि जिससे स्वर की मधुरता आन्तरिक सुषमा को लेकर अभिव्यक्ति हो और सूत्रों की आन्तरिक भाव-सुषमा भी दब न जाए। सूत्रों के प्रस्तुतीकरण में स्वर को अनेक मोड़ों में मोड़ा जाता था। यज्ञ-हवन के समय भी संगीत अनुक्रम चलता था। सर्वसाधारण जनता के अन्दर भी उच्चकोटि का संगीत यानी शास्त्रीय संगीत प्रचलित था।

इस युग में संगीतिक क्रीड़ाओं की प्रधानता रही—

इस युग में अनेक प्रकार के संगीतिक उत्सव जैसे "उद्यान क्रीड़ा", "जल-क्रीड़ा", "पुष्पचयन उत्सव" आदि समाज में प्रचलित थे। इन संगीतिक क्रीड़ाओं में नारियाँ भी भाग लेती थीं। नृत्यों का प्रचलन समाज के अन्दर खूब था। "पुष्पचयन उत्सव" एक प्रकार से नृत्योत्सव ही था। यह उत्सव बसन्त के मादक भरे ऋतु में मनाया जाता था और यह उत्सव कई दिनों तक चलता रहता था। ग्रीष्म कालीन संगीतिक उत्सव "जलक्रीड़ा" था। ग्रीष्म ऋतु में पुरुष और नारियाँ इस उत्सव को गा-बजाकर नदी में मनाया करते थे, अथवा किसी सरोवर में मनाते थे। उद्यान-क्रीड़ा किसी बाग-बगीचे में मनाया जाता था। गायन, वादन इस उत्सव में चलता था। वीणा का प्रचलन था। वंशी का भी प्रयोग इस काल में होता था।

कंठ-संगीत का विकास इस काल में विशेष हुआ—

लेकिन इस काल में वादन की अपेक्षा गायन का अधिक विकास हुआ। कंठ-संगीत ही पाणिनि कालीन का प्रमुख संगीत था। इन सब उत्सवों में आम जनता भी भाग लेती थी। लेकिन ब्राह्मण, वैश्य, और क्षत्रिय यह तीन वर्ग मिलकर अपने उत्सव मनाया करते थे, और शूद्र कहलानी वाली जाति का तो पृथक ही उत्सव होता था। हाँलाकि यह पृथकता बहुत अधिक नहीं बढ़ी थी। किन्तु फिर भी संगीतमय उत्सवों के समय यह पृथकता स्पष्ट झलकती थी। प्रत्येक वर्ण अपने संगीत को, दूसरे वर्ण से पृथक रखने की कोशिश करता था। पाणिनि काल में संगीत पर वर्णों का पूर्ण रूप से अधिकार हो चला था। चारों वर्णों के संगीत की एक धारा नहीं थीं।

लोक संगीत भी पनप रहा था—

लोकसंगीत भी साथ ही साथ पनप रहा था। ग्रामीण लोग अपने मनमाने ढंग से गाते बजाते थे। वे अपने हृदय के उल्लास को स्वच्छन्दता से प्रगट करते थे। उनके अभिव्यक्तिकरण में ग्रामीण वातावरण ही सर्वोपरि रहता था। सम्पूर्ण धार्मिक कृत्यों में संगीत बराबर चलता रहता था। संगीत को विलासिता का उपकरण नहीं माना गया था। पाणिनि कालीन संगीत की पृष्ठ पूर्ण रूप से दिव्य उपकरणों पर आधारित थी। मानव-जीवन के विकास का प्रमुख अवलम्ब संगीत था, और इसे मोक्ष का सर्वोत्कृष्ट साधन मान लिया गया था।

शास्त्रीय संगीत का विकास भी खूब हुआ—

इस काल में संगीत के सात स्वरों का तथा गांधार ग्राम का वर्णन मिलता है। संगीत का उपयोग इस युग में पूर्ण विधान युक्त था। पौराणिक युग से अधिक

इस युग में शास्त्रीय संगीत का प्रचार था। इस युग की एक और सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि नारियाँ भी पुरुषों के समान शास्त्रीय संगीत में अनुराग रखती थीं। इस काल में पौराणिक युग से भी अधिक नारियाँ शास्त्रीय संगीत की साधक थीं। संगीत ने महाभारत काल की नारी की आत्मा को इतना ऊपर उठा दिया था कि उसे पुरुषों से वार्तालाप करने में तनिक भी संकोच नहीं लगता था, वे प्रत्येक विषय पर उनसे खुल कर वार्तालाप करती थीं, संगीत ने जहाँ नारी की आत्मा को जगाया, वहाँ उसको निर्भीक तथा शीलवान एवं मधुरमय भी बनाया। वह फूल के समान कोमल थी, लेकिन इसके साथ ही वह चट्टान के समान स्थिर एवं सुदृढ़ भी थी। इस प्रकार संगीत ने मानव को चरित्र के उच्चतम धरातल से गिराया नहीं, बल्कि उसको विकास के स्वर्णिम संसार में प्रवेश किया। पाणिनि के सम्बन्ध में नेहरूजी लिखते हैं :—"पाणिनि की पुस्तक को केवल व्याकरण न समझना चाहिए। लेनिनग्राड के सोवियत प्रोफेसर टी० शेरबात्सकी ने उसका बयान करते हुए उसे "इंसानी दिमाग की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक" बताया है। आज भी पाणिनि संस्कृत व्याकरण पर प्रमाण माने जाते हैं, हाँलाकि बाद के वैयाकरणों ने उसमें और बातें जोड़ी हैं और उसकी अपने ढंग से व्याख्यायें की हैं। यह एक दिलचस्प बात है कि पाणिनि ने यूनानी लिपि की चर्चा की है। इससे पता चलता है कि हिन्दुस्तान और यूनान के बीच अलेग्जैण्डर के आने से पहले ही किसी न किसी तरह का सम्पर्क हो चुका था।"

संगीत ने मानव को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया—

दरअसल इस युग में हमें संगीत का उज्ज्वल वायुमण्डल मिलता है, ऐसा उज्ज्वल कि जिसमें मनुष्य की प्रवृत्तियों का बहुमुखी विकास होता है। भक्ति मार्ग एवं ज्ञान-मार्ग दोनों ने मिलकर संगीत की पावनता की रश्मियों को पूर्ण ज्योतिमय कर दिया था। इस काल में गीता के इन पावन सिद्धान्तों ने कि "जिन्दगी अमर होने से धर्म बढ़ कर है" "सच्चे आनन्द के लिए तकलीफ उठाना आवश्यक है "असन्तोष तरक्की के लिए उकसाने वाला है", संगीत पृष्ठभूमि को इतना मजबूत एवं व्यापक बना दिया था कि वह दिव्य संगीत अपनी आत्मिक ज्योति से महान से महान दार्शनिक, महान से महान कर्मनिष्ठ तथा महान से महान धर्मनिष्ठ को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होता था। इस काल का संगीत-साहित्य गीता के इन्हीं पावन एवं दिव्य सिद्धान्तों पर आधारित है। वह उच्चकोटि का संगीत साहित्य आगे चलकर, जब विदेशियों के अपने देश पर आक्रमण हुए, उस वक्त नष्ट हो गया, वरना संगीत की पावन ज्योति किसी भी युग में धूमिल न पड़ती।

जनपदों के काल में संगीत

इस काल में संगीत के वाह्य सौन्दर्य पर अधिक बल दिया गया—

इस काल के इतिहास के सम्बन्ध में हमें वैदिक साहित्य के आधार पर लिखना पड़ता है, क्योंकि साँतवी तथा छठी शताब्दी ई० पू० से अन्धकार का आवरण हटने लगता है तथा इतिहास में कुछ क्रम और श्रंखला दीखने लगती है। महाभारत काल के बाद कुछ बीच के समय में ऐतिहासिक श्रंखला टूट-सी जाती है, किन्तु उस टूटती हुई शृङ्खला को ऐतिहासकों ने बड़ी चातुरी से जोड़ा है, उस कमी को उन्होंने बौद्ध साहित्य अथवा वैदिक साहित्य के अनुशीलन के बाद जो अभिनव तथ्य निकले, वे इस बीच के समय के मान लिए गए। जनपद क्या है, पहले आप इसको समझ लीजिए। जन कोई प्रादेशिक समुदाय नहीं था, किन्तु धीरे-धीरे यह निश्चित स्थानों पर बसने लगे। जिस प्रदेश में एक जन बस गया, वह जनपद कहलाने लगा। प्रारम्भ में एक जनपद एक जाति विशेष का निवास स्थान ही था, बाद में अन्य जनों के लोग भी आकर बसने लगे, किन्तु जनपदों के नाम मूल जन के नामों के आधार पर ही रहे, जैसे कुरु, बुद्ध, पाँचाल, चेरि, अवन्ति, औधेय, मद्र, शिवि इत्यादि। ऐसे ही अनेक जनपदों का उल्लेख हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। लेकिन आगे चलकर चार मुख्य जनपद या राज्य रह गए, (१) कौशल, (२) वत्स, (३) मगध और (४) अवन्ति। कौशल में अवध का प्रदेश था और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी। मगध में इलाहाबाद के आस-पास का प्रदेश था और उसकी राजधानी कोशाम्बी थी। वत्स में बिहार का प्रदेश था और उसकी राजधानी राजगृह थी। अवन्ति में मालवा प्रदेश था और उसको राजधानी उज्जयिनी थी।

इस काल में संगीत की उन्नति नहीं हुई, बल्कि महाभारत काल में जो संगीत की स्थिति थी, वह भी इस काल में स्थिर न रह सकी। लोगों का जोवन, साधना प्रिय न रहा। आत्म सौन्दर्य की अपेक्षा लोग वाह्य सौन्दर्य की ओर झुक गए थे। उन्होंने संगीत को भी वैसा ही वना लिया। संगीत के आत्मिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि उसके वाह्य-सौन्दर्य से दब चुकी थी। मनोरंजन का रूप ही उसका ऊपर उभर चुका था।

संगीत विलासिता का उपकरण बनता जारहा था—

वत्सराज उदयन जो जनमेजय का प्रपौत्र था, बड़ा ही प्रसिद्ध संगीतज्ञ था। उसके संगीत का गौरव चारों ओर बिखर चुका था। संगीत के वत्सराज उदयन इतने प्रेमी थे कि इन्होंने अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने मन्त्री को सौंप कर स्वयं संगीत साधना में सलग्न हो गए। राजपाट का गौरवशाली वैभव इन्हें संगीत साधना से रोक न सका। इस काल में यही एक ऐसे राजा थे जो संगीत को तन, मन और धन से प्यार करते थे। इन्होंने संगीत प्रचार और प्रसार के लिए महान प्रयत्न किया। बहुत सारा धन भी खर्च किया। लेकिन यह संगीत के आन्तरिक सौन्दर्य के पक्षपाती थे। इनका अपना विश्वास था कि जब तक देश के अन्दर संगीत का आन्तरिक सौंदर्य की अभिवृद्धि नहीं होगी, तब तक हमारा देश संगठन की एकसूत्रता में आबद्ध न हो सकेगा। संगीत को यह एकसूत्रता उत्पन्न करने का महान साधन समझते थे। उस वक्त चूँकि देश के अन्दर अनेक छोटे छोटे राज्य या जनपद बन चुके थे, जिनमें परस्पर कोई एकसूत्रता नहीं थी, वे परस्पर एक दूसरे के विकास से ईर्ष्या रखते थे। इस निन्दनीय वातावरण को वत्सराज उदयन संगीत के द्वारा समाप्त करना चाहते थे। उन्हें संगीत के चमत्कारिक शक्ति पर भी विश्वास था। वह संगीत की साधना में इसी प्रशस्त दृष्टिकोण को लेकर लीन हुए थे, कि उन्हें अवश्य ही साधना के गर्भ से कोई ऐसी चमत्कारिक शक्ति प्राप्त होगी, जिसके प्रयोग करने से देश का वातावरण शुद्ध और पवित्र हो जायगा, और देश विकास के पथ पर अग्रसर होने लगेगा। लेकिन उसका यह स्वप्न कभी पूरा नहीं हुआ, क्योंकि वह संतुलित ढंग से संगीत साधना न कर सका और फिर इधर देश का वायुमण्डल दिन व दिन नैतिकता की उच्चश्रेणी से फिसल रहा था। जन समुदाय संगीत को मनोरंजनार्थ ही अधिक उपयोग करते थे। उसकी आन्तरिक गहरी सुषमा की ओर सामान्य मानवों का ध्यान बिल्कुल न था। दरअसल संगीत विलासिता का उपकरण बनता जा रहा था।

वत्सराज उदयन महान वीणा वादक था—

वत्सराज उदयन वीणा वादन में बड़ा पारगंत था। वह इतनी सुन्दर वीणा बजाता था कि जो कोई भी उसको सुनता वही चित्र-लिखा-सा रह जाता था और वह एक प्रलुब्धकारी वातावरण निर्मित कर देता था, जिसमें श्रोतागण मस्त होकर झूमने लग जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे हवा के सुहावने झोंकों में वृक्षों की हरी-हरी टहनियाँ झूमती हैं। वीणा वादन पर उसको इतना अधिकार था कि वह इसके द्वारा मदमस्त गजों को पकड़ लेता था। जिस वक्त वह वीणा वादन करता था, तो स्वयं उसमें इतना तन्मय हो जाता था कि फिर उसे कुछ भी खबर नहीं रहती थी। वास्तव

में उस वक्त वह अपना अस्तित्व स्वर लहरियों में प्रवाहित कर दिया करता था। और हाथी मस्त होकर झूमते हुए चले आते, तथा वीणा की स्वर लहरियों में नृत्य करते रहते। ऐसा था वह महान वीणा वादक। देश विदेश के लोग उसकी वीणा वादन पर मस्त हो जाते थे। एक समय वह अपने शत्रु उज्जेन के राजा चंडमहासेन (प्रद्योत) के दाव पर चढ़ गया, किन्तु वीणा वादन में निष्णात होने से चंडमहासेन ने अपनी पुत्री वासवदत्ता, जो कि उस युग में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, को संगीत प्रशिक्षण देने के लिए जीवित रहने दिया। कहाँ प्रद्योत वत्सराज उदयन को फाँसी देने जा रहा था, किन्तु जैसे ही उसने उसका वीणा वादन सुना, उसका विचार एकदम बदल गया, क्योंकि वह बहुत दिनों से महान संगीतज्ञ की खोज में था, जोकि उसकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बेटी को संगीत सिखा सके, परन्तु उसे कोई ऐसा उच्चकोटि का संगीतज्ञ मिल नहीं रहा था, इसलिए वह पूर्णरूपेण निराश-सा हो चुका था, पर जब उसने वत्सराज उदयन की वीणा सुनी, तो वह असीम प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसने सोचा कि मेरी बेटी के अन्दर सिर्फ संगीत की कमी थी, जो कि एक सुन्दरी के लिए बहुत बड़ा अभाव था, वह अब बड़ी सरलता से पूर्ण हो जायगी।

वत्सराज उदयन और वासवदत्ता का प्रेम संगीत के माध्यम से हुआ—

वासवदत्ता और उदयन में परस्पर प्रेम उत्पन्न हो गया और यह प्रेम इतना बढ़ा कि दोनों को एक दूसरे के बिना देखे चैंन नहीं पड़ा करता था। वासवदत्ता बड़ी तन्मयता से संगीत सीखती, और उतनी ही तन्मयता से उदयन भी बासवदत्ता को संगीत सिखाता था। जिस वक्त उदयन वीणा पर गाता था तो वासवदत्ता उसकी उच्च कला पर विमुग्ध हो जाती, और वह इतनी विमुग्ध होती कि उसे अपने तन, मन की भी सुधि नहीं रहती थी। वह अपने को संगीत के वेगपूर्ण प्रवाह में डुबो देती। वत्सराज उदयन वासवदत्ता की इस अपूर्व मंत्रमुग्धता को देखकर बड़ा प्रसन्न हो उठता था।

वासवदत्ता ने संगीत के प्रचार में महान योग दिया—

इसी प्रेम प्रणय के आधार पर भास ने प्रसिद्ध नाटक "स्वप्न वासवदत्ता" लिखा था, जिसमें प्रेम का मुख्य आधार स्रोत संगीत को रक्खा गया है। यह नाटक संगीत प्रधान है। वासवदत्ता ने भी संगीत का प्रचार और प्रसार बहुत किया, उसके संगीत में हमें आत्मा की उत्कृष्ट एवं दिव्य ज्योति नहीं प्राप्त होती, किन्तु फिर भी उसमें हमें जीवन निर्माण करने वाले सृजनात्मक तथ्य मिलते हैं।

इस काल में लोकनृत्यों का निर्माण अधिक हुआ—

मगध देश पर राजा बिंबिसार का शासन था। वह ५४७ ई० पू० गद्दी पर बैठा और लगभग ४९५ ई० पू० में उसकी मृत्यु हुई। बिंबिसार ने कौशल नरेश तथा लच्छवि वंश को राजकुमारियों से विबाह कर लिया था, कहते हैं कि यह दोनों राजकुमारियाँ संगीत में बड़ी निपुण थीं, लच्छवि वंश की राजकुमारी वीणावादन में निपुण थी तथा कौशल नरेश की राजकुमारी कंठ-संगीत में प्रवीण थी। राजा विंबिसार ने इनके संगीत पर मुग्ध होकर ही इनसे विवाह किया। इन दोनों संगीतप्रिय राजकुमारियों ने अपने पति राजा बिंबिसार को भी संगीत का महान प्रेमी बना लिया था और फिर उसने मगध राज्य के अन्दर संगीत को उत्कृष्ट पृष्ठ पर ले जाने के महान प्रयत्न किए, किन्तु इसका हमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिल सका है, उपर्युक्त तथ्य हमें मिस्टर फोलगन की लोकप्रिय पुस्तक "The Music of the world" में मिलते हैं। खैर जो कुछ भी हो मगध राज्य में संगीत सामान्य जनों में प्रचलित हो गया था। सामान्य लोग लोकसंगीत में अधिक आनन्द लेते थे। विंबिसार के उपरान्त उसका पुत्र अजातशत्रु गद्दी पर बैठा लगभग ४९५ ई० पू०। अजातशत्रु के समय में संगीत श्रेणियों में विभक्त हो गया था। भिन्न भिन्न पेशे के लोगों के अपने अपने संगठन थे जो "श्रेणि" कहलाते थे। इन श्रेणियों की तुलना हम मध्यकालीन यूरोप के शिल्प संघों (Guilds) से कर सकते हैं। एक एक श्रेणि में एक-एक हजार शिल्पी होते थे। प्रत्येक श्रेणी का संगीत अपनी-अपनी शैली का होता था। कभी एक श्रेणि के संगीतकार दूसरी श्रेणि के संगीतकारों से मिलते-जुलते नहीं थे—उनके संगीत आयोजन अपनी श्रेणि के भीतर ही प्रायः हुआ करते थे। इससे संगीत फलफूल न सका। अजातशत्रु के बाद ४११ ई० पू० में शिशु नाग मगध की गद्दी पर बैठा, उसने अवन्ति को अपने राज्य में मिला लिया था और लगभग ३९३ ई० पू० तक शासन किया। शिशुनाग के समय मगध का राज्य विस्तार खूब हुआ। लेकिन यह संगीत से दिलचस्पी नहीं रखता था परन्तु फिर भी सर्वसाधारण में संगीत का प्रचार था। विशेष रूप से नारियों के अन्दर संगीतिक प्रवृत्तियाँ सजग हो रही थीं और कोई विकास इस समय में नहीं हुआ।

जनपदों के काल में भारतीय संगीत विदेशों में पहुँचा—

जनपदों के काल में सब से महत्वपूर्ण कार्य संगीत के क्षेत्र में जो हुआ वह यह था कि भारतीय संगीत भारत के बाहर भी पहुँचा। ब्रह्मा, लंका, पश्चिम में वावेरू आदि देशों में भारतीय संगीत का खूब प्रचार हुआ। भारतीय व्यापारी अपने साथ भारतीय संगीत के कलाकारों को भी ले जाते थे, और वे वहाँ संगीत का प्रचार

करते थे, इससे धन उपार्जन भी खूब होता था। इस प्रकार इस काल में भारतीय संगीत का विस्तार क्षेत्र व्यापक बना। जनपदों के काल में लोकनृत्यों का अधिक निर्माण हुआ। नाटकों का भी थोड़ा प्रचार था लेकिन यह प्रचार नगरों तक ही सीमित था। ग्रामों में संगीतमय नाटक नहीं खेले जाते थे। इस काल में ग्रामीण-संगीत का वातावरण बढ़ रहा था। शास्त्रीय संगीत का प्रचार बहुत कम हो गया था। हवन तथा यज्ञों में भी संगीत का उपयोग होता था। हवन तथा यज्ञों की प्रथा इस काल में बढ़ रही थी। संगीत के तत्व चिन्तन पर भी कुछ लोगों ने ध्यान दिया, जिसमें वत्सराज उदयन का नाम प्रमुख है। देवताओं की चमत्कारिक शक्ति में ये लोग विश्वास रखते थे, और उनका यह भी विश्वास था कि उस चमत्कारिक शक्ति को संगीत के द्वारा ही उपलब्ध किया जा सकता है। इसलिए सर्वसाधारण देवताओं की संगीतमयी आराधना में खूब लगे रहते थे। नारियाँ सार्वजनिक संगीत समारोह में बहुत कम भाग लिया करती थीं, लेकिन घरों में पूर्ण संगीतिक वातावरण रहता था। और इसका मुख्य कारण यह था कि नारियों की श्रद्धा अपने देवी-देवताओं पर अधिक थी, उन्हीं के पूजन के सहारे संगीत का अस्तित्व जनपदीय गृहों में रहता था।

क्रान्ति का प्रथम सूत्रपात—

जैन युग में संगीत

डेढ़ या दो हजार वर्ष तक वैदिक संस्कृति एवं धर्म का बोलबाला रहा और ब्राह्मणों ने तत्कालीन भारतीय समाज को जाति-पाँति के तथा कर्मकाण्ड के कड़े बन्धनों से बाँधने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों, यज्ञों और वर्णाश्रमों का विरोध होने लगा। लोग उनको व्यर्थ समझने लगे, और इस बात का प्रयत्न करने लगे कि पशुओं का बलिदान बन्द किया जाए, ब्राह्मणों का महत्व कम किया जाए तथा धर्म के बाहरी दिखावे और बनावट को दूर कर दिया जाए। इस प्रकार के विचारों से ओत-प्रोत भारतीय समाज में आज से लगभग २,५०० वर्ष पहले अर्थात आर्यों के भारत में आने के लगभग ढाई अथवा तीन हजार वर्षों के पश्चात छठी शताब्दी ई० पू० में उत्तरी भारत में दो महापुरुष उत्पन्न हुए। ये महा-पुरुष महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध के नाम से संसार के इतिहास में विख्यात हैं। प्रथम हम महावीर स्वामी के काल का विवेचन करेंगे, और उसके बाद गौतम बुद्ध के काल का। इस काल के संगीत की स्थिति समझने से पूर्व, युग निर्माता के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लीजिये, ताकि इस युग की संगीत पृष्ठभूमि को समझने में आपको सुगमता पड़ेगी और आप फिर जान सकेंगे कि संगीत में क्यों क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं।

संगीत की पृष्ठभूमि क्रान्तिपूर्ण लहरों से लहरा उठी—

महावीरजी का जन्म ईशा से ५९९ वर्ष पहले विहार में मुजफ्फरपुर के पास बसाढ़ नामक स्थान पर हुआ था। इनका बचपन का नाम वर्धमान था। इनकी माता त्रिशला लच्छवि राजघराने की और पिता वैशाली के राजपुत्र थे। महावीर के युवा होने पर यशोदा नाम की सुन्दरी से विवाह हुआ, जिससे एक लड़की उत्पन्न हुई। तीस वर्ष की अवस्था में यह घर-बार छोड़कर जंगल में तपस्या करने चले गए थे। वहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक तपस्या की और ४२ वर्ष की आयु में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। लोभ, मोह, सुख, दुःख, काम, क्रोध इत्यादि पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण इनको "जिन" कहने लगे। जिन का अर्थ है जीतने वाला। इनके चलाये हुए

धर्म को जैन धर्म कहते हैं। इन्होंने बिहार प्रदेश में घूम-घूमकर अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार किया, ७२ वर्ष की आयु में राजगृह के पास पावा नामक स्थान में इन्होंने अपने नाशवान शरीर को त्याग दिया।

यह युग एक अपूर्व मानसिक, आध्यात्मिक एवं कलात्मक क्रान्ति का युग था। फारस में जरथुस्त्र, चीन में कनफ्यूसियस इसी युग में हुए और उन्होंने अपने देशों में एक अपूर्व विचार क्रान्ति करदी। भारतवर्ष में इस काल में आध्यात्मिक एवं कलात्मक चिन्तन की अपूर्व लहर दौड़ गई। उपनिषदों के आचार्यों ने तत्व-चिन्तन का मार्ग खोल ही दिया था। इस काल में इस अभिनव विचार क्रान्ति का केन्द्र मगध था।

संगीत पर ब्राह्मणों का एकाधिकार न रहा—

संगीत पर जो एकमात्र ब्राह्मणों का एकाधिकार था, इस युग में वह अब उनसे निकल कर सर्वसाधारण के हाथों में पहुँच गया था। और इस प्रकार वैदिक-काल के संगीत के स्तर में प्रथम परिवर्तन हुआ। ब्राह्मण लोग संगीत को शूद्रों तथा अन्य छोटी-छोटी जातियों को नहीं सिखाते थे। इससे वे विचारे संगीत के पावन ज्ञान से अपरिचित रह जाते थे। संगीत शून्य होकर किस प्रकार वे अपने भगवान की उपासना कर पाते। वह अर्चना के पवित्र वातावरण से एकदम हट से गये थे। महावीर स्वामी ने प्रथम यह आवाज बुलन्द की कि प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी भी जाति या वर्ग में पैदा हुआ हो ईश्वर उपासना कर सकता है, और ईश्वर उपासना के लिए संगीत-विधि सीख सकता है। हर मनुष्य को सच्चा ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार है, चाहे वह सच्चा ज्ञान कला के द्वारा प्राप्त हो अथवा किसी अन्य साधन द्वारा, लेकिन वह सच्चा ज्ञान से बंचित नहीं रह सकता। इस प्रकार संगीत की धार्मिकता पहले-पहल इस युग में ढीली हुई। संगीत की धार्मिकता पर बन्धन का आवरण जो पड़ा था, वह इस युग ने हटा दिया और संगीत की पावन साधना करने का अधिकार मानव मात्र को मिल गया।

संगीत के आत्मिक सौन्दर्य का पुनीत द्वार मानव मात्र के लिए खोल दिया गया—

महाभारत के बाद भारतीय संगीत की आत्मिक पृष्ठभूमि कमजोर पड़ गई थी। उसका इस युग में सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया गया। संगीत के आत्मिक सौन्दर्य का पुनीत द्वार मानव मात्र के लिए मुक्त कर दिया गया, जिससे शूद्रों एवं पिछड़ी हुई कौमों के अन्दर भी कलात्मक चेतना का उभार आविर्भूत होने लगा, वे भी अब संगीत की महत्वता को, जीवन को सुन्दर एवं पवित्र बनाने के मनोरम लक्ष्य

में प्रयोग करने का दार्शिनिक आदर्श समझने लग गए थे। उनको मालूम होने लगा था कि यदि हम शूद्र वर्ग में पैदा हुए हैं, तो इससे हमारे जीवन का विकास अवरुद्ध नहीं हो सकता। संगीत तो ईश्वरी उपहार है, वह सब के लिए है, सब मनुष्य उसके द्वारा जीवन के चरम लक्ष्य की उपलब्ध कर सकते हैं और संगीत की साधना के लिए हमें अपने जीवन को बुराइयों से पृथक रखना पड़ेगा, चरित्र की निर्मलता को अक्षुण्ण रखना होगा तथा आत्मा के दिव्य प्रकाश को जीवन की सतह पर फैलाना होगा यानी सत्य से प्यार करना होगा, जीव-जन्तुओं की रक्षा करनी होगी, चोरी से दूर रहना होगा, धन दौलत इकट्ठी नहीं करनी होगी, इन्द्रियों को वश में रख कर मन वचन और कर्म से पवित्र रहना होगा, इन पाँच सिद्धान्तों का पालन करते हुए आप संगीत साधना करने योग्य हो सकते हैं। साधना के लिऐ जीवन के यह पाँच सिद्धान्त परमावश्यक हैं, ताकि आप उच्च चरित्र के द्वारा संगीत के अथाह अतल तक पहुँच सके, और अपनी मनवांछित वस्तु को प्राप्त कर सके। बस यही धर्म के भी सिद्धान्त हैं। महावीर स्वामी ने अहिंसा पर विशेष जोर दिया। जैनियों का विश्वास है कि एक खूँखार व्यक्ति, जो कि अनेक पशुओं एवं व्यक्तियों को मारता हो, वह भला कैसे कला की साधना कर सकता है, क्योंकि कला का रूप सत्यम शिवम् सुन्दरम् है। कला के इस पावन रूप को वही मानव प्राप्त कर सकता है, जिसका जीवन सत्यता, पावनता, सुन्दरता, अहिंसा एवं अस्तेय पर आधारित हो, जो व्यक्ति गरीबों का शोषण करके धन संग्रह करता है भला वह कैसे संगीत साधना के योग्य हो सकता है।

संगीत के पांच आधार स्तम्भ निर्मित हुए जो पंचशील कहलाये—

इस प्रकार जैन युग में संगीत की नींव इन्हीं पाँच आधारों पर रक्खी गई। इस युग में संगीत के आन्तरिक रूप में क्रान्ति हुई, वाह्य रूप तो जैसा था वैसा ही रहा, उसमें विशेष कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यही पाँच आधार मानव जीवन के थे, और वे ही आधार संगीत कला के बन गये। इसीलिए इस युग के संगीतज्ञों का जीवन बड़ा ही उच्च एवं सुन्दर होता था। इस युग में संगीत के आध्यात्मिक धरातल को ऊँचा बनाया गया और उस उच्च आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचने के लिए सर्वसाधारण में भी एक नवीन हलचल, एक अभिनव स्फूर्ति, एक नूतन वातावरण, और एक नवीन कल्पना का जन्म हुआ।

संगीत की एकसूत्रता पर अधिक बल दिया गया। जो समाज के लिए वरदान सिद्ध हुई—

जनपदों के युग में संगीत "श्रेणियों" में जो आवद्ध कर दिया था, वह अब इस युग में मुक्त कर दिया गया। इस युग में संगीत प्रशिक्षण के लिए पृथक-पृथक

छोटे-छोटे वर्ग नहीं रहे, इससे समाज के लिए सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि संगीत विकास के लिए संगठित प्रयास होने से समाज की एकसूत्रता स्थिर रही। वह विश्रखल न हो पाई, जैसा कि जनपदों के युग में हुआ था। जैनियों के अनुसार मनुष्य में अन्तर्हित शुभ शक्तियों के पूर्णतम अभिव्यक्ति ही परमात्मा है। भौतिक जीवन के वन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। मनुष्य का कर्म ही इस बन्धन का कारण है। जैनियों ने अपने संगीत को भी जीवन के इसी रम्य प्रारूप में ढाला, जिससे मानव वर्ग की ईश्वर उपासना की शैली बदल गई। वे ईश्वर को अपने से बाहर नहीं समझते थे, वे अपनी अन्तर्हित शुभ शक्तियों के विकास के लिए संगीत का प्रयोग करते थे, क्योंकि संगीत से मन एकाग्र होता है, चित वृत्तियों का विकास होता है, और आत्मा एक अपूर्व आनन्द के वातावरण में विहार करने लगती है, इसलिए संगीत इस युग में आत्म विकास का प्रमुख उपकरण समझा गया। नारियाँ भी संगीत से प्रेम रखती थीं। गा-बजा कर वे गृह का मधुरमय वातावरण बनाती थीं। सार्वजनिक संगीत उत्सवों के अवसरों पर भी नारियाँ शामिल होती थीं।

संगीत के क्षेत्र में प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हो गई थीं—

जैन ग्रन्थों में वीणा का उल्लेख आता है। एक जैन ग्रन्थ में उल्लेख है कि गुत्तिल नाम का एक गायक काशी के राजा ब्रह्मदत्त के दरबार में था। मुशिल नाम का गायक उसके पास संगीत सीखने के लिए आया। गुत्तिल ने उसे बिना संकोच सब विद्या सिखादी, ब्रह्मदत्त की सभा में गुरु, शिष्य को स्पर्धा हुई, इसमें गुत्तिल ने बाजी मारली और दुगना इनाम पाया। मुशिल क्रोधावेश में आकर गुत्तिल के साथ लड़ने लगा। गुत्तिल वयोवृद्ध था, इसलिए वन में जाकर उसने इन्द्र की आराधना की और वरदान प्राप्त किया। इसमें सप्त तार की वीणा का उल्लेख किया गया है। इससे अनुमान किया जाता है कि जैन युग में भी वीणा का प्रचार प्रगतिपूर्ण था। राजा भी संगीत के विकास में दिलचस्पी लेते थे। प्राचीन वीणा के नामों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। वीणा द्वारा धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। उस काल में, परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी, तुवंवीणा इत्यादि नाम प्रचीन वीणाओं के प्रचार में थे। इस युग में संगीत प्रतियोगिता भी की जाती थी, और जीतने वालों को पुरस्कार प्रदान किया जाता था। इन प्रतियोगिताओं का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि संगीतकारों में एकता पैदा हुई, और उसके साथ-साथ संगीत का विकास भी हुआ। यह प्रतियोगिता राज्य की ओर से की जाती थी, जिसमें सर्व-साधारण बिना किसी शर्त के भाग लेते थे। इन प्रतियोगिताओं में नारियाँ भी शामिल होती थीं, और इस प्रकार देश के अन्दर संगीतिक वायुमण्डल बना रहता। जैन

युग में वीणा वादन का विशेष विकास हुआ, क्यों कि यह वादन धर्म प्रचार का प्रशस्त सम्बल बना लिया गया था। इस काल में अनेक लोकप्रिय वीणा वादक हो चुके थे, जिनका उल्लेख जैन धर्म ग्रन्थों में पाया जाता है। इस काल में संगीत के शास्त्रीय रूप का विकास महाभारत काल से भी अधिक हुआ। जन साधारण भी संगीत के इस उत्कृष्ट एवं पावन रूप से पूर्ण परिचित थे।

इस काल में संगीत का एक नवीन पथ निर्माण हुआ, जो सब के लिए मुक्त था—

इस काल में संगीत ने एक अभिनव मोड़ लिया, नवीन पथ का निर्माण हुआ जो सबके लिए मुक्त था, नूतन-नूतन पगडन्डियाँ निर्मित हुई जिन पर चलकर जैन धर्म का प्रचार-प्रसार भारतवर्ष में हुआ। मानव ने इस काल में संगीत का एक ऐसा स्वर्णिम प्रकाश अपने जीवन के प्रकोष्ठ में देखा, जिसने कराहती हुई मानवता के अन्धकार को दूर भगा दिया, जिसने भूले-भटकों को पुन: सही मार्ग का निर्देशन किया, और जिसने पीड़ित-वर्ग को राहत पहुँचाई। इस युग में संगीत का सुन्दर रूप त्रस्त समाज में देखने को मिलता है। कुम्हार बरतन वनाते वक्त संगीत की ध्वनियाँ अलापता है, चरवाहे पशुओं को चराते वक्त गीत गाते हैं, और शूद्र सवर्ण वर्ग की सेवा करते हुए संगीत में मस्त रहता है, मतलब यह कि प्रत्येक निम्नकोटि के वर्ग ने संगीत को अपने जीवन में प्रवेश कर लिया था। और इसका परिणाम यह हुआ कि वे बिना थकावट महसूस किए हुए अधिक काम करने लगे। देश की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हुई, और देश धन-धान्य से सम्पन्न होता गया।

संगीतज्ञों का जीवन बड़ा सयंमी होता था—

इस युग में संगीत का मनोरंजन का अंग जो कि जनपदों के काल में अधिक विकसित हो गया था, वह दबता हुआ प्रतीत होने लगा, क्योंकि लोगों के जीवन से विलासिता उठती जा रही थी, और लोग तपस्या, उपवास का सच्चा महत्व समझने लग गए थे। सयंमी जीवन का यथार्थ महत्व सबको मालूम हो गया था, इसीलिए संगीत का उपयोग सर्वसाधारणों में उच्च आदर्श को लिए हुए होता था। महावीर स्वामी के पावन उपदेशों ने मानव जीवन में महान क्रान्ति करदी थी और उसी क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर संगीत का विशाल विकास-प्रासाद खड़ा किया गया। इसलिए इस युग के संगीत ने मानव जीवन में तत्व चिन्तन के दिव्य भावों को पर्याप्त मात्रा में स्फुरित किया। उनको कर्मशील तथा सुन्दर आचरणशील बनाया। भौतिक ऐश्वर्य के चमक की शून्यता का ज्ञान संगीत ने उनको कराया और साथ ही साथ मानव

के विराट रूप का भी दिग्दर्शन कराया, जिससे वह अपनी विराट शक्ति को समझने लग गया, इस प्रकार जैन युग के संगीत ने मानवता को सजीव बनाने में पूर्ण योगदान दिया।

संगीत का शिल्पक स्तर भी उत्कृष्ट हुआ—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार वाल्टयर (Waltair) ने अपने लोकप्रिय ग्रन्थ "The History of Internal facts of Indian Music" में लिखा है—"जैन युग में हमें बड़ा ही सजीव एवं प्राणवान तथा स्फूर्तिपूर्ण संगीत मिलता है। इस युग के संगीत ने अपने पुराने जातीय बन्धनों को तोड़ दिए थे और वह सबके लिए साधना का मुख्य विषय बन गया था। संगीत की इस अभिनव करवट से पिछड़ी हुई कौमों तथा शूद्रों ने, जो अब तक संगीत ज्ञान से वंचित रक्खे जाते थे, पूरा पूरा लाभ उठाना आरम्भ कर दिया था और इस प्रकार जैन युग में मानव की सबसे बड़ी भूल का परिष्कार किया गया। इससे संगीत का रूप व्यापक बना। संगीत की वेग पूर्ण धारा रंक से लेकर राजा तक धारावाहिक रूप से प्रवाहित होने लगी। संगीत के शिल्पक ज्ञान का भी इस युग में विकास हुआ। अनेक नवीन-नवीन ध्वनियाँ, तथा गायन शैलियों ने जन्म लिया। वाद्यों में मृदंग, वीणा, और दुन्दभी, ढप का प्रयोग होता था। नृत्यों के आयोजन सार्वजनिक स्थानों पर किए जाते थे, किन्तु राज दरबारों में नृत्य समारोह अधिक किए जाते थे, जिनमें श्रेष्ठ परिवारों की कन्याएँ भाग लेती थीं। जो कुमारियाँ सार्वजनिक रूप से नृत्य करती थीं, उनकी प्रतिष्ठा समाज में उच्च समझी जाती थी, उनको कोई कुदृष्टि से नहीं देख सकता था, उनका मान सम्मान उतना ही था जितना कि किसी राजा का। लेकिन उनका चरित्र भी बड़ा ही निर्मल होता था। समाज में संगीत का गौरव अपनी उच्च परम्परा पर था। संगीत के संचालन की बागडोर ब्राह्मणों से हट कर सर्वसाधारण के हाथों पहुँच चुकी थी, इसलिए अब संगीत के अन्दर सर्वसाधारण का सामान्य संगीत भी जुड़ गया था।"

जैन युग के संगीत के सम्बन्ध में हमें पश्चमीय, विद्वानों में वाल्टयर के अतिरिक्त और किसी विद्वान के इतने उदार एवं स्पष्ट विचार नहीं प्राप्त हुए। मिस्टर वाल्टयर ने जो चित्र खींचा है, वह उन्होंने बिल्कुल निष्पक्ष होकर ही अंकित किया है, वरना तो बहुत कम विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय संगीत के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत किया है।

क्रान्ति की द्वितीय रश्मि-आवृति—

बौद्ध-युग में संगीत

गौतम बुद्ध का जन्म गोरखपुर जिले के उत्तर में नैपाल की तराई लुम्बनी में ईसा के ५६३ वर्ष पहले हुआ था। यहाँ पर शाक्य लोग राज्य करते थे, और इस राज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। इनके पिता राजा शुद्धोधन ने इनको प्रसन्न रखने के लिए मनोरंजन के सभी साधन जिसमें संगीत भी शामिल था जुटा दिये थे। बचपन में यह संगीत बड़े प्रेम से सुना करते थे, और उस संगीत की स्वर लहरियों के सुरम्य वातावरण में यह एकाग्र हो जाया करते थे। वास्तव में गौतम बुद्ध शैशव से ही गम्भीर विचारों में डूबे रहते थे। इनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। इनकी माता का नाम माया था।

बुद्ध भगवान को मानव इतिहास का महानतम पुरुष माना जाता है। उन्होंने ज्ञान की जो ज्योति प्रज्वलित की उससे समस्त एशिया खण्ड आज भी प्रकाशित है। बुद्ध को निर्वाण प्राप्त किए आज लगभग ढाई हजार वर्ष हो चुके हैं, किन्तु सुदूर जापान से लेकर लंका तक करोड़ों नर-नारी प्रातः उठकर "बुद्धं शरणं गच्छामि धर्म्मं शरणम गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि" अर्थात् बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, संघ की शरण जाता हूँ, का जप करते हैं। बालकों की भाँति खेल-कूद में उनकी रुचि न थी। प्रायः वह जीवन की गूढ़ समस्याओं पर विचार किया करते थे। सिद्धार्थ के पिता ने जब इनका स्वभाव एकान्त-प्रेमी, चिन्तनशील देखा, तो उन्होंने शीघ्र ही इनको गृहस्थ जीवन में फसा देना चाहा, जिससे उनका इस संसार में मन रम जाए। उन्होंने शीघ्र ही सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा नाम की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से कर दिया। किन्तु विलासपूर्ण विवाहित जीवन भी सिद्धार्थ के स्वभाव को न बदल सका। संगीत का विलासपूर्ण वातावरण ही उनके सामने प्रस्तुत किया जाता था, किन्तु फिर भी उनकी दृढ़ प्रवृत्ति किंचितमात्र भी परिवर्तित नहीं हुई। उनके अन्दर तो एक ऐसा जीवन-संगीत प्रस्फुटित हो रहा था कि जिसका मेल उस वक्त के संसारिक संगीत से नहीं खाता था। उनके जीवन संगीत के वायुमण्डल में जीवन की विलासिता एवं वासना के लिए कोई स्थान नहीं था। वह इनको तुच्छ समझते थे।

इस युग के क्रान्तिकारी वायुमण्डल ने संगीत की पृष्ठ में भी एक अभिनव चेतना, एक सृजनात्मक स्फूर्ति का आविर्भाव किया—

अन्त में चार साधारण घटनाओं ने उनका हृदय इतना उद्वेलित कर दिया कि उन्होंने गृह त्याग करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। सिद्धार्थ ने उद्यान जाते समय मार्ग में एक दिन एक वृद्ध पुरुष, दूसरे दिन एक रोगी, तीसरे दिन एक मृतक और चौथे दिन एक परिव्राजक को देखा। इस प्रकार के दृश्य हम में से प्रत्येक मनुष्य नित्य-प्रति देखता है, लेकिन सिद्धार्थ के हृदय पर तो उनका यह प्रभाव पड़ा कि यह शरीर, यह चमकता यौवन तथा संसार के समस्त सुख क्षणिक हैं, इसलिए संसारिक भोग-विलासों में जीवन नष्ट करना पाप है। संसार दुखमय है। उसी समय सिद्धार्थ के पुत्र-रत्न भी उत्पन्न हुआ। किन्तु उनका हृदय संसार से हट चुका था। उनके आत्मिक संगीत ने उन्हें एक नवीन दृष्टि प्रदान की। एक रात को अपना हृदय सुदृढ़ करके, सुन्दरी स्त्री तथा नवजात शिशु के मोह को त्याग कर, संसार के सभी सुखों और विलासों को ठोकर मार कर, वे सत्य की खोज में एक गृह हीन पथिक, एक अकिंचन विद्यार्थी की भाँति गृह से निकल पड़े। वह रात मानव इतिहास में कितनी महत्वपूर्ण होगी, इसको उस समय कौन जानता था। सिद्धार्थ स्वयं नहीं जानते थे। इस गृह त्याग को ही बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण कहते हैं।

इस युग के क्रान्तिकारी वायुमण्डल ने संगीत की पृष्ठ में भी एक अभिनव चेतना, एक सृजनात्मक स्फूर्ति का आविर्भाव किया। गौतम बुद्ध के क्रान्तिकारी विचारों ने संगीत के गर्दोग़ुबार को बिल्कुल झाड़ दिया, और संगीत की वाह्य शक्ल भी सुन्दर और आकर्षक बन गई। संगीत की विलासपूर्ण शक्ल को लगभग दफना दिया गया, और संगीत की नवीन शक्ल का निर्माण गौतम बुद्ध के उत्कृष्ट एवं पावन सिद्धान्तों की सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर किया गया। इस समय के संगीत की आधार पृष्ठ गौतम बुद्ध के उत्कृष्ट आदर्शों पर रक्खी गई है :—

"भिक्षुओ अब तुम लोग जाओ और बहुतों के कुशल के लिए, संसार पर दया के लिए निमित्त, देवताओं और मनुष्यों की भलाई, कल्याण, और हित के लिए भ्रमण करो। तुम इस सिद्धान्त का प्रचार करो जो आदि में उत्तम है, मध्य में उत्तम है, और अन्त में उत्तम है। सम्पन्न, पूर्ण तथा पवित्र जीवन का प्रचार करो।"

इस युग में संगीत का निर्माण मानव मात्र की भलाई एवं कल्याण के लिए हुआ—

इस युग में संगीत का निर्माण मानव मात्र की भलाई एवं कल्याण के लिए हुआ। संगीत में से वे तत्व निकाल दिए गए कि जिनसे मानव, नैतिकता की

उज्ज्वल पृष्ठ से नीचे फिसलता है। गाने बजाने का ध्येय मानव के सन्मुख विलास पूर्ण वातावरण उपस्थित करना न रह गया, बल्कि संगीत के प्रदर्शन से मानव को एक ऐसी नव चेतना प्राप्त होने लगी कि जिससे मानव दिन व दिन आध्यात्मिक प्रकाश के जाज्वल्यमान विश्व में अग्रसर होता गया, जिससे वह अपना यथार्थ रूप समझता गया, और जिससे वह जान सका कि मानव सृष्टि में वह क्यों आया है ? मानव का उच्च लक्ष्य क्या है ? संगीत की इस क्रान्तिकारी कायापलट ने मानव वर्ग की भी काया पलट करदी। जैन युग के संगीत में और इस युग के संगीत में सिर्फ थोड़ा-सा ही अन्तर है। इस युग के संगीत में जीवन की व्यापकता का अधिक समावेश हो गया, और उसका महत्व शिल्पक ज्ञान से नहीं आँका गया, वल्कि उसके आन्तरिक विकास की ज्योति पुन्ज से, उसके उत्कृष्ट रूप का परिचय होता था। वही संगीतज्ञ सफल समझा जाता था, जोकि अपने संगीत प्रदर्शन से मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठाता। जैन युग में भी संगीत की आन्तरिक ज्योति को उज्ज्वल बनाया गया, किन्तु उसके मनोरंजन पहलू पर भी ध्यान दिया गया, उसको एकदम उपेक्षणीय नहीं समझा गया, परन्तु बौद्ध युग में संगीत के मनोरंजन पहलू को लगभग उपेक्षणीय समझा गया। अतएव इस युग में संगीत-साहित्य में एक जबरदस्त क्रान्ति हुई, उसके शृंगारिक गीतों को खत्म किया गया तथा जीवन को स्फूर्ति पूर्ण बनाने वाले एवं आत्मा की पावन रोशनी को अभिवृद्धि करने वाले गीतों का सृजन हुआ। इन गीतों में गौतमबुद्ध की फिलोसफी रहती, उनके जीवन के दार्शनिक भावों की बाहुल्यता रहती परन्तु वे दार्शनिक भाव सीधी सादी सरल भाषा में ही होते थे। गौतमबुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धान्तों को गीतों की लड़ी में पिरोदिया गया, और उनको सुन्दर ढंग से गा-गाकर नगर-नगर, गाँव-गाँव की सुप्त जनता को जागरण के भव्य पथ पर लाया गया। इस प्रकार संगीत क्रान्ति का प्रशस्त वाहन बनाया गया। गौतम बुद्ध संगीत के उस रूप को कतई पसन्द नहीं करते थे कि जिससे मानव अनैतिकता के खण्डहर में गिरता है, कि जिससे वह अपने पावन आदर्श से परांगमुख होता है। वचपन में संगीत का उन्होंने घिनोना रूप देखा था, उससे उन्हें चिढ़ हो गई थी। वह वैसे संगीत को भी ईश्वर की दिव्य आभा के समान ही पवित्र मानते थे।

इस युग में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नारियाँ हुईं—

इस युग में नारियों में भी संगीत विकास जनपदों के युग तथा जैन युग से अधिक हुआ। इस युग में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नारियाँ हुईं, जिन्होंने अपनी अद्वितीय कला से देश में संगीत की पावन धारा प्रवाहित की, जिन्होंने अपनी उच्च संगीतिक प्रतिभा से समाज को सर्वसम्पन्न बनाया और जिन्होंने अपनी अपूर्व

प्रगल्भता से संगीत की चारु आत्मा का दिव्य रूप देश के सामने प्रस्तुत किया। वास्तव में यह युग आध्यात्मिक संगीतोत्थान का नवप्रभात था, इस युग में आध्यात्मिक संगीत के नयनाभिराम उद्यान में नवीन-नवीन रंग-बिरंगे पुष्प प्रस्फुटित हुए; जिन्होंने अपने अपूर्व सौरभ से देश को सुवासित किया। नारियों ने कंठ संगीत में अधिक उन्नति की। वीणा वाद्य का जैन युग के समान इस युग में भी अधिक प्रचलन रहा। गायन वीणा पर ही चलता था। अनेक प्रकार की राग-रागनियों का जन्म हो चुका था। शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। उसकी सुषमा का खूब निखार किया गया। सर्वसाधारण लोग भी शास्त्रीय संगीत की बारीकियों को समझते थे, लोकसंगीत का प्रचलन कम हो गया और उसके स्थान पर शास्त्रीय संगीत अपनी मस्त बहार दिखला रहा था। कुमारियाँ भी शास्त्रीय संगीत में दक्ष होती थी। ऐसी अनेक कुमारियाँ इस युग में थी जिन्होंने संगीत का ज्ञान अठारह उन्नीस वर्ष की आयु में ही प्राप्त कर लिया था। सर्वसाधारण नारियाँ भी उच्च वर्गीय नारियों की तरह संगीत से प्रेम रखती थीं। संगीत के सार्वजनिक आयोजनों में भी सब श्रेणी की नारियाँ शामिल होती थीं।

नृत्यों में अधिक दिलचस्पी नारियों ने दिखलाई—

नृत्य का भी नारियों के अन्दर विकास हुआ, लेकिन नृत्य के क्षेत्र में पुरुष वर्ग उदासीन था। पुरुषों में कोई भी व्यक्ति सुप्रसिद्ध नृत्यकार नहीं हुआ। अनेक नारियाँ जब गौतम बुद्ध के दर्शन करने जाती थीं तो वे उनके रम्य गुण गान करती हुई जाती थीं और तथागत (गौतम बुद्ध) की आदर पूर्वक गाती हुई आरती उतारती थीं। नारियों के उन गीतों में मानव-आत्मा की दिव्यता की स्वर्णिमा पर ही प्रकाश होता। उनमें एक ऐसी संगीतिक स्फूर्ति होती कि जिसको महसूस करके मानव की प्रसुप्त वृतियाँ स्वाभाविक रूप से जागृत हो जाती।

"गिरबन्धु संगम" के द्वारा संगीत का प्रसार होता था—

इस युग में अनेक भिक्षुणी थीं, और वे अपने जीवन को आध्यात्मिक संगीत से पवित्र बनाती हुई तथागत के उच्च सिद्धान्तों का देश के अन्दर प्रचार करने में सलग्न थी। तथागत के आध्यात्मिक सौन्दर्य के सामने किसी भी प्रकार का वाह्य सौन्दर्य का जादू नहीं चल सकता था, और न वह किसी प्रकार के निम्नकोटि के संगीत ऐश्वर्य से प्रभावित हो सकते थे। इसकी एक बड़ी मनोरंजक कथा हमें बौद्ध-साहित्य में मिलती है। वह इस प्रकार है—"बुद्धकाल में श्रावस्ती नगरी के वैभव और सौन्दर्य के सामने विश्व की कोई नगरी टिकने वाली न थी। अनेक सुन्दर

आश्रम, वन उपवन तथा सरोवर से यह नगरी सुशोभित हो रही थी। चित्र विचित्र और भाँति-भाँति की कारीगरी से सुन्दर बनी हुई हवेलियों से यह नगरी अत्यन्त शोभा पारही थी। उसी श्रावस्ती में "गिरबन्धु संगम" नाम का एक संगीतिक पर्व लगता था। उसमें देश-विदेश के सुन्दर स्त्री-पुरुष एकत्रित होते थे और श्रीवास्ती में उस दिन बड़ी चहल-पहल रहती थी। पूर्ण संगीतिक वातावरण उस नगरी का होजाता था। एक बार इसी अवसर पर दक्षिण की ओर से एक सुन्दरी जोकि सफल संगीतज्ञा भी थी आई, उसका नाम था कुवलया। उसने भरी सभा में निवेदन किया—"क्या यहाँ कोई ऐसा पुरुष है जो मेरे संगीत से प्रभावित न हो उठे, और जो मेरे अद्वितीय सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध न हो सके।" सभा में निस्तब्धता छा गई। वास्तव में कुवलया बड़ी सुन्दर थी, और जब उसने अपना संगीत प्रदर्शन किया तो जितने भी पुरुष उस पर्व में थे, वे सबके सब उस पर आसक्त हो गये। सचमुच कुवलया की संगीत-कला भी उसके अनिर्वचनीय सौन्दर्य के अनुरूप ही थी। वह देखने में स्वर्गीय अप्सरा के समान लगती थी, और फिर ऊपर से संगीत कला की निपुणता ने उसमें सोने में सुहागा का कार्य किया। अनेक पुरुष उसके सौन्दर्य जाल में पड़कर अपना सर्वनाश कर चुके थे। अतएव उसका ऐसा कहना कुछ भी अयुक्त न था।

अन्त में संगीत समारोह से एक पुरुष उठ खड़ा हुआ और बोला, "हाँ एक ऐसा पुरुष है, जिसका नाम गौतम श्रमण है, और जेतवन में निवास कर रहा है।"

दिव्य संगीत ही इस युग की अपरिमित शक्ति थी—

सुन्दरी कुवलया जेतवन पहुँची, वहाँ गौतम बुद्ध ध्यानामग्न थे। वह वहाँ जाकर संगीत के द्वारा उनका नाना प्रकार से ध्यानभग्न करने लगी। परन्तु उसे क्या मालूम था कि तथागत की आध्यात्मिक शक्ति कितनी ऊँची है? उसकी सम्पूर्ण कला का प्रदर्शन व्यर्थ हो गया, और उसकी अद्वितीय सौन्दर्य की मन्त्रमुग्धक भाव-भगिमायें भी विफल होगई। उसका अभिमान चूर-चूर होगया। वह हाथ जोड़कर भगवान के चरणों में गिर पड़ी। वह अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो गई। उसका हृदय शान्ति प्राप्त करने के लिए छटपटाने लगा।

तब गौतम बुद्ध ने कहा—"भद्रे धर्म का मार्ग सबके लिए खुला हुआ है। संसार दुःखाग्नि की ज्वाला से प्रज्वलित हो रहा है। तुम अपने आत्मा का संगीत जगाओ। वह आध्यात्मिक संगीत ही विश्व कल्याणकारी होगा और वही आध्यात्मिक संगीत ही विश्व में एक नव प्रकाश का आविर्भाव करेगा। पथभ्रष्ट यात्री मार्ग पर चलने लगे तो उसका कल्याण निश्चय है।"

भगवान के उपदेश से कुवलया का चरित्र सुधर गया। वह संगीत के वास्तविक लक्ष्य को समझ गई। वह जान गई कि जब तक मानव के अन्दर दिव्य संगीत का जन्म नहीं होता, तब तक उसका जीवन ऊपर नहीं उठ सकता। संगीत जब तक वासना के संकुचित घेरे में पनपता रहेगा, तब तक वह उच्च चरित्र वालों को आसक्त नहीं कर सकेगा। शारीरिक सौन्दर्य का रंगीन पुष्प तभी खिलता है, तभी वह अपना सौरभ प्रदान करता है, जबकि उसी पृष्ठ से आत्मिक संगीत प्रस्फुरण होता है। थोड़े ही दिनों में कुवलया का जीवन इतना ऊपर उठ गया कि उसकी ख्याति चारों ओर होगई।

बौद्ध युग में अनेक ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनमें तथागत ने वासनापूर्ण संगीत को अपने उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशपूर्ण बनाया। वास्तव में यह युग प्रकाश पूर्ण संगीत का था। गौतम बुद्ध ने जहाँ ज्ञान का उपदेश दिया, वहाँ दूसरी ओर उस ज्ञान से संगीत कला का भी परिष्कार हुआ, संगीत कला पर जो वासना की धुन्ध छाई हुई थी वह विनष्ट हो गई।

"थेरी गाथा" संगीत की उत्कृष्ट रचना है—

बौद्ध युग के संगीत में नारियों ने बड़ा योग दिया, इस युग की यह सबसे महत्व पूर्ण बात है। इस युग में अनेक भिक्षुणियों ने संगीत के माध्यम से अपने इष्ट-देव को पहिचाना, अपने जीवन-पुष्प की आन्तरिक सुषमा को प्रस्फुटित किया। "थेरी गाथा", जो कि बौद्ध भिक्षुणियों के भाव-प्रणव गीतों का संग्रह है, इससे हमें इस काल के संगीत विकास क्रम की सजीव कहानी पढ़ने को मिलती है। "थेरी गाथा" का बौद्ध वाङ्मय में विशिष्ट स्थान है। पाली श्लोक को गाथा कहते हैं। इस गाथा में संगीत का रंग बहुत गहरा है। आध्यात्मिक पृष्ठ पर संगीत को अलंकृत किया गया है। भिक्षुणियों की गाथाओं में एक विशेष मृदुलता और आत्म समर्पण है। जहाँ तक इनकी काव्यात्मक उत्कृष्टता का प्रश्न है, डा० वितर्नीजने ने कहा था कि ऋग्वेदीय ऋचाओं से लेकर कालिदास और अमरु के गीत काव्यों तक, इस समस्त प्रसार में, अपनी शक्ति और सौन्दर्य में, ये गीत किसी रचना से नीचे न पड़ेंगे।

"थेरी गाथा" में रचयित्रियों की वैयक्तिकता फूटी पड़ती है। उसमें जीवन के चित्रण बड़े सजीव ढंग से किए गए हैं। "थेरी गाथा" संगीतमय काव्य से हम जान पाते हैं कि किस प्रकार दु:ख, क्लेश आदि से अभिभूत होकर नारियाँ संघ के प्रति आकर्षित होती थीं। इन सभी ने अपने पूर्व और बाद के जीवन के अन्तर का अपनी गाथाओं (गीतों) में बड़े सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। "थेरी गाथा" में ५२२

गीतों का संकलन है। इनकी रचने वाली ७३ भिक्षुणियाँ हैं। ये सभी भगवान बुद्ध की शिष्यायें थीं। महाराज शुद्धोधन की मृत्यु के उपरान्त बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह से, अपनी विमाता महाप्रजापती गौतमी को धम्म में प्रव्रजित किया था और उन्हें भिक्षुणी बनने की अनुमति दी थी। गौतमी के साथ ५०० और स्त्रियाँ प्रव्रजित हुई थीं। कालान्तर में भिक्षुणियों का एक अलग संघ ही बन गया, और अनेक कुलों की, और जीवन के विभिन्न स्तरों की स्त्रियों ने इस संघ में स्थान पाया। इन्हीं में से ७३ भिक्षुणियों ने आत्मानुभव को, अपने उदगारों को गीत बद्ध किया, जिनका संग्रह "थेरी गाथा" के रूप में प्राप्त है। यह गीत राग रागनियों से आबद्ध हैं। इन गीतों की रचयित्रियों को संगीत का पूर्ण ज्ञान था, ऐसा मालूम पड़ता है, तभी उनके गीत इतने शिल्पज्ञता, कलात्मकता एवं सौन्दर्यात्मिकता पूर्ण बन पड़े हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। एक-एक गीत में संगीत की कलात्मकता बिखरी पड़ रही है। मधुरता उमड़ी पड़ रही है। उच्चकोटि का संगीत हमें इन गीतों में मिलता है।

संगीत का समृद्धिशाली युग—

बौद्ध युग में संगीत साहित्य का इतना विकास हुआ, जितना कि वैदिक काल के पश्चात किसी भी युग में नहीं हुआ था। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि संगीत पर सुन्दर ग्रंथ लिखे गये, जिससे जनता का मार्ग दर्शन खूब हुआ। अब तक के युगों में जो भी पुस्तकें लिखी गई वे सब संगीत के किसी एक उपकरण को लेकर लिखी गई, किन्तु बौद्ध युग में जो ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमें संगीत के सम्पूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इस युग में नाटकों की भी वृद्धि हुई, लेकिन वे ही नाटक समाज में खेले जाते थे, जिनमें नृत्य और संगीत की भरमार रहती थी। इस युग में अनेक छोटे-छोटे रंगमंच भी स्थापित हो चुके थे, जहाँ नृत्यों तथा नाटकों का प्रदर्शन होता था। इस प्रकार बौद्ध युग जहाँ संगीत के आध्यात्मिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए सुप्रसिद्ध है, वहाँ दूसरी ओर वह अद्वितीय शिल्पज्ञता के लिए भी विख्यात है। इस युग में संगीत कला का विकास भावात्मक, कल्पनात्मक, सौन्दर्यात्मक, चेतनात्मक, रूपात्मक, तथ्यात्मक तथा रंगात्मक, और कलात्मक के रूप में हुआ। इसलिये यह युग संगीत के लिए समृद्धिशाली युग माना जाता है। इस युग के संगीत ने मानव की सुप्तावस्था को नष्ट किया, और उसे भव्य जागरण के पथ पर ला खड़ा किया और इस युग की सबसे बड़ी बात गौतमबुद्ध के पावन सिद्धान्त हैं, जोकि इस युग के संगीत की आधारशिला बने और जिसने संगीत की पृष्ठ को नैतिकता पूर्ण बना दिया, और जिसने उसकी बाह्य एवं आन्तरिक रूप की सत्ता को शक्तिशाली बनाकर कला के क्षेत्र में एक मार्ग-चिन्ह स्थापित कर दिया।

मौर्य काल में संगीत

चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका जीवन चित्र—

जिस समय सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी, उस समय मगध में नन्द वंश का अन्तिम राजा महापद्मनंद राज्य कर रहा था। उसके विरुद्ध युवक चन्द्रगुप्त ने विद्रोह किया, लेकिन वह उसमें असफल हो गया। वह छिपकर विन्ध्या के वनों में जीवन बिताने लगा, इसी बीच उसकी भेंट तक्षशिला के चाणक्य अथवा कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण से हुई। चाणक्य पाटलिपुत्र गया था, किन्तु वहाँ नन्द राजा ने उसका अपमान किया, इससे वह वापस चला आया। कहा जाता है कि पृथ्वी में कहीं उसको गढ़ा हुआ धन मिल गया, जिसकी सहायता से चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए सेना एकत्र की। सेना एकत्र करके चन्द्रगुप्त ने पंजाबी राजाओं की सहायता मांगी और उन्हें विदेशी यूनानियों को मार भगाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके बाद उसने सिकन्दर के सेनापतियों के विरुद्ध घोर युद्ध किया और उसने यूनानियों को देश से बाहर निकाल दिया। इसके उपरान्त ३२१ ई० पू० के लगभग उसने अपने मंत्री चाणक्य की सहायता से मगध के नन्द राजा को हराकर उसकी राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। वह मोरियवंश का था, इसलिए उसके वंश को मौर्य वंश कहते हैं।

मौर्य काल के सम्बन्ध में यूनानियों, चीनियों आदि ने कुछ बातें लिखी हैं, जिनकी सहायता से हमें मौर्य काल के समय में संगीत की स्थिति का भी पता चलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य को भारतवर्ष का सर्वप्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहते हैं। संगीत की स्थिति समझने से पूर्व आप चन्द्रगुप्त का राज्य विस्तार भी समझलें, ताकि आपको संगीत के विस्तार-क्षेत्र का भी ज्ञान हो जायगा। पंजाब तक के प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद उसने मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और सिंध को जीतकर मगध राज्य में मिला लिया। धीरे-धीरे समस्त उत्तरी भारत पर उसका अधिकार हो गया। तब उसने दक्षिणी भारत पर चढ़ाई की और मद्रास तथा मैसूर तक का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष पर चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन था। मगध राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिन्ध से यूनानियों को निकाल दिया था, इसलिए सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस ने ३०५ ई० पू० में भारतवर्ष पर चढ़ाई की। वीर और निडर मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त अपनी सेना लेकर उससे लड़ने के लिये पंजाब पहुँच गया। अन्त में सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से संधि करली। इस संधि के अनुसार सिल्यूकस ने अपनी बेटी का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया और दहेज में उसको हिरात, काबुल, कंधार और विलोचिस्तान के प्रदेश दिये। चन्द्रगुप्त ने सिल्यूकस को ५०० हाथी भेंट किए और सिल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज को अपने दरबार में रखना स्वीकार कर लिया। मेगस्थनीज ने उस समय के सम्पूर्ण वातावरण पर प्रकाश अपनी पुस्तक "इन्डिका" में डाला है। उस पुस्तक से हमें उस समय के संगीत-विकास का पता लगता है।

किसी काल का संगीत समझने से पूर्व उस काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को पूर्ण रूप से जान लेनी चाहिए, ताकि आप संगीत के वास्तविक विकास-क्रमों को, उसकी यथार्थ स्थितियों को और उसकी सही मंजिल को समझ सकें, बिना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत हुए आप उस काल के संगीत के प्रगतिपूर्ण लक्ष्य की दार्शनिकता को नहीं समझ सकेंगे।

चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत का बड़ा प्रेमी था—

चन्द्रगुप्त मौर्य स्वयं संगीत का बड़ा प्रेमी था। वह नित्य-प्रति अपने शाही महल में कलाकारों के नृत्य और गायन से मनोरंजन करता था। उसके यहाँ अनेक नर्तकियाँ एवं गायिकाएँ रहती थीं, जिनको अपनी कला पर पूर्ण अधिकार होता था। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य को संगीत प्रियता की बड़ी प्रशंसा की है। जो गायिका सुन्दर गाती थी और जो नर्त्तकी सुन्दर नृत्य का प्रदर्शन करती थी उसको वह पुरस्कार भी देता था। इससे उनमें संगीत-कला को विकसित करने का नवीन चाव पैदा होता।

संगीत अपनी नैतिक मर्यादा से हट रहा था—

चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत विकास के लिए भी प्रयत्न किया, जो भी संगीतकार उसके दरबार में आता था उसका वह आदर करता था, और उसके संगीत प्रदर्शन में स्वयं शामिल होकर कलाकार के उत्साह को वह बढ़ाता था। सार्वजनिक रूप में इस काल में संगीत की उन्नति बौद्ध युग के समान नहीं हुई। सामान्य जनता में संगीत का उतना प्रचार न रहा जितना कि जैन और बौद्ध युग में था। संगीतकारों की स्थिति सामान्य जनता में उतनी ऊँची न रह गई थी जितनी कि वैदिक काल में थी।

संगीत इस युग में अपनी नैतिक मर्यादा से हट रहा था और उसका मनोरंजन का रूप इतना ऊपर उठ रहा था कि जिसकी उठान-शक्ति में उसका आन्तरिक सौन्दर्य दब गया था। बौद्ध युग में आध्यात्मिक संगीत का जो विकास हुआ था, वह अब यूनानियों के सम्पर्क में पड़कर नष्ट होता जा रहा था। ऐसे लोगों का वर्ग इस काल में बढ़ रहा था, जो संगीत को विलासिता का उपकरण मानते थे। जिनका विश्वास था कि संगीत का एकमात्र धर्म मानव का मनोरंजन करना है। मानव को ज्ञान देना नहीं। यदि संगीत हमारी वासना को तृप्त नहीं करता, तो फिर वह संगीत कोटि में नहीं आ सकता। इस मत के मानने वालों की संख्या दिन व दिन बढ़ रही थी। यूनानियों के सम्पर्क से भारतीय संगीत पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन इस गहरे प्रभाव ने भारतीय संगीत के मौलिक रूप को विकृत नहीं कर पाया। उसका मौलिक रूप अब भी अपनी स्वाभाविक स्थिति में ही रहा। परन्तु फिर भी उसकी प्रदर्शन शैलियों में अन्तर आगया था। यूनानी संस्कृति और भारतीय संस्कृति घुलमिल गई। कहते हैं सिल्यूकस की बेटी, जिसका विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हुआ, बहुत सुन्दरी थी, साथ ही साथ बड़ी संगीतज्ञा थी। चन्द्रगुप्त मौर्य उसके अद्वितीय सौन्दर्य एवं उसकी अपूर्व संगीत कला पर मुग्ध हो गया था। उसके यूनानी संगीत का प्रभाव चन्द्रगुप्त पर बहुत पड़ा।

इस काल में उत्तर भारत और दक्षिण भारत के संगीत पद्धतियों में कोई अन्तर नहीं था--

इस युग में "नाट्यशालायें" एवं "संगीत-गृह" भी विद्यमान थे। इस तथ्य को मैगस्थनीज ने अपनी पुस्तक "इन्डिका" में लिखा है। जिस प्रकार का संगीत उत्तर भारत में चल रहा था, ठीक वैसे ही संगीत का विकास दक्षिणी भारत में भी हो रहा था। दोनों भागों के संगीत में आज की तरह भेद नहीं था। दोनों की मौलिक धारायें एक जैसी थीं। समय-समय पर दक्षिण भारत के संगीतकार और उत्तर भारत के संगीतकार परस्पर मिलते जुलते थे। उनमें आपस में प्रेम और सदभावना का वातावरण रहता था। इसका मुख्य कारण यह था कि चन्द्रगुप्त समय समय पर शाही संगीत आयोजनों में दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत दोनों स्थानों के संगीतज्ञों को एकत्रित करता, और उनकी उच्च कला का आनन्द लेता था।

लोकसंगीत का अधिक प्रचार हुआ--

इस युग में बौद्ध काल की तरह शास्त्रीय संगीत की अधिक उन्नति नहीं हुई, बल्कि लोकसंगीत, लोकनृत्य का अधिक प्रचार हुआ। जनता उस संगीत प्रदर्शन में अधिक भाग लिया करती थी जिसमें संगीत का मनोरंजक रूप अधिक प्रदर्शित किया

जाता। इसलिये इसी प्रकार के गायन और नृत्यों का अधिक प्रस्तुतीकरण होता था। कंठ संगीत के कला पक्ष का अधिक विकास हुआ अपेक्षा भाव पक्ष के। अनेक ऐसे संगीतिक आयोजन भी होते रहते, जिनमें संगीतिक प्रतिभा की जाँच हुआ करती। यह आयोजन अधिकतर राज्य की ओर से ही होते थे, जिनमें नारियाँ और पुरुष दोनों ही भाग लिया करते थे। इन संगीतिक आयोजनों में नवोदित कलाकार ही भाग लेते थे, चन्द्रगुप्त ऐसे नृत्यों को अधिक पसन्द करता था, जिनमें मानव जीवन की उड़ान नहीं भरी जाती थी, जिनमें जीवन के सरल और सादा भाव प्रदर्शित किए जाते थे और जिनमें पीड़ित हृदय को डूब जाने की शक्ति होती थी। इसीलिये इस काल में इसी प्रकार के नृत्यों का निर्माण हुआ। भारत के प्रत्येक प्रान्त में मौर्य काल के संगीत की रम्य किरणें फूट रही थीं, उन स्वर्णिम किरणों से मानव जीवन पूर्णरूपेण आलोकित हो रहा था, किन्तु इस काल में संगीत साहित्य की कोई रचना नहीं हुई। नाट्य-गीत ही इस काल में भी उच्चतम माने जाते थे।

यूनानी भारतीय कला के बड़े प्रशंसक बन गए—

संगीत-वाद्य में भी कोई नवीन आविष्कार नहीं हुआ। वीणा का प्रचलन इस युग में बौद्ध-युग के समान रहा, किन्तु फिर भी इसका प्रयोग बराबर चल रहा था। मृदंग, मजीरा, ढोल वंशी दुन्दभी, ढप आदि वाद्यों का खूब प्रचलन था। सर्वसाधारण लोग मृदंग, मजीरों का खूब प्रयोग करते थे। त्यौहारों के अवसरों पर भी संगीत के आयोजन चला करते थे। गरीब, अमीर सब इन आयोजनों में भाग लिया करते थे। यूनानी भी भारतीय संगीत से प्रभावित हो चुके थे, ऐसा मेगस्थनीज लिखता है। वे भारतीय कला के बड़े प्रशंसक बन गए।

इस काल में यूनानी और भारतीय संस्कृतियों का परस्पर आदान-प्रदान हुआ—

विख्यात इतिहासकार अलामी ने अपनी सुन्दर पुस्तक "The Music of Ancient India" में लिखा है—"चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत का महान प्रेमी था, वह अपने दरबार में अनेक ऐसी लड़कियों को रखता था जोकि उसका मनोरंजन गायन और नृत्य से किया करती थीं। समय-समय पर वह संगीत के आयोजन भी किया करता था जिसमें सब प्रकार के संगीत के कलाकार भाग लिया करते थे, और जिस संगीतकार का संगीत उसको पसन्द आता था, उसको वह पुरस्कार भी प्रदान करता था। देश के हर भाग में संगीत का दोड़ दौड़ा था। आम जनता विशेष रूप

से ग्रामीण वर्ग में संगीत की कम हलचल दिखाई देती थी। ग्रामीण वातावरण नगर के वातावरण के सदृश्य संगीतमय नहीं था। परन्तु फिर भी त्यौहारों के अवसर पर ग्रामीण लोग नृत्य में झूमते और गाते हुए दिखाई पड़ते थे। उनमें एक विचित्र प्रकार का आनन्द छा जाता था। इन ग्रामीण-आयोजनों में स्त्री पुरुष दोनों ही खुलकर भाग लेते थे। नगर में जो संगीत प्रदर्शन चला करते थे उनमें शास्त्रीय संगीत का कम प्रदर्शन किया जाता। परन्तु फिर भी शास्त्रीय संगीत का स्वरूप एक दम लोप नहीं हो गया था। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना यह है कि भारतीय संगीत प्रथम यूनान पहुँचा, और यूनान का संगीत प्रथम बार भारतवर्ष में आया। इससे दोनों देशों के लोगों को एक दूसरे को समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ।"

मौर्य काल के द्वितीय चरण में संगीत

बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के बाद उसका बेटा बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। इन्होंने २५ वर्ष तक राज्य किया और अपने पिता की तरह अनेक देशों को जीता। उसकी मृत्यु २७३ ई० पू० में हुई। बिन्दुसार के समय में संगीत की स्थिति वैसी ही रही जैसी कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में थी। कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

अशोक

(२७३ ई० पू० से २३२ ई० पू०)

संसार का इतिहास महान विजेताओं, साम्राज्य निर्माताओं तथा सुयोग्य शाशकों से भरा पड़ा है। इतिहासकारों ने, उनके गीत गाए हैं, अनेक उपाधियों से उन्हें विभूषित किया है। कवियों ने महाकाव्य लिख कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलियाँ भेंट की हैं। अशोक न तो कोई महा पराक्रमी विजेता ही थे, और न उन्होंने अपने बाहुबल से कोई महान साम्राज्य ही स्थापित किया। एक विस्तृत साम्राज्य उन्हें उत्तराधिकार में मिला था, वे चाहते तो भोग विलास का जीवन व्यतीत कर सकते थे, अथवा अन्य महत्वाकांक्षी सम्राटों की भाँति अपने राज्य के जन, धन तथा सैन्य बल को अपने साम्राज्य की सीमाओं के बढ़ाने एवं अपने पड़ोसी शाशकों को अपने चरणों पर नतमस्तक करने के लिए युद्ध में झोंक सकते थे। उनके सामने विश्व विजय का स्वर्णिम स्वप्न देखने वाले बड़े बड़े साम्राज्यों को धूल में मिलाने वाले सिकन्दर का आदर्श था। अपने दादा चन्द्रगुप्त से भी उन्हें स्फूर्ति और प्रेरणा मिल सकती थी। किन्तु एक छोटे से युद्ध ने उनकी कायापलट करदी। संसार के किसी देश के सिंहासन पर आज तक यदि कोई ऐसा व्यक्ति बैठा है जिसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मानव जाति की मौलिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में लगाई तो वह अशोक था।

अशोक २७३ ई० पू० में गद्दी पर बैठा। उसने २६२ ई० पू० के लगभग कलिंग के राज्य पर चढ़ाई की, कलिंग के सैनिक बड़ी वीरता से लड़े, परन्तु अन्त में उनकी हार हुई। इस लड़ाई में एक लाख आदमी मारे गए और डेढ़ लाख

कैद हुए। इस लड़ाई की मारकाट तथा खून खराबी को देखकर अशोक के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने भविष्य में युद्ध न करने का निश्चय कर लिया। तो भी उसका साम्राज्य उत्तर में हिन्दूकुश से लेकर दक्षिण में पैनार नदी तक और पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक फैला हुआ था। सुदूर दक्षिण के चेर-चोल और पांड्य नामक तीन राज्य उसके साम्राज्य में शामिल नहीं थे। इस विशाल साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। कलिंग विजय के पश्चात अशोक ने देशों पर नहीं वरन मनुष्यों के हृदयों पर विजय प्राप्त की। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया। उसके ऊपर बौद्ध भिक्षु उपगुप्त की शिक्षाओं का प्रभाव पड़ा।

इस युग में संगीत का आध्यात्मिक सौन्दर्य पुनः उभरने लगा—

अशोक के इस क्रान्तिकारी परिवर्तन से संगीत की धारा भी परिवर्तित हुई। इस समय में संगीत पुनः आध्यात्मिक वायुमण्डल ग्रहण करने लगा, जो कि चन्द्र-गुप्त मौर्य के समय में विशृङ्खल हो चुका था। संगीत का आदर्श मानव मात्र की सेवा करना हो गया। संगीत की नींव विलासिता के वातावरण से हटकर आत्मा के विकास में संस्थापित होने लगी। लोगों की रुचियों का परिष्कार किया जाने लगा। इस के लिए अशोक ने अनेक संघ बना दिए थे, जो कि देश के वायुमन्डल को पवित्र और सुन्दर बनाते थे। अशोक ऐसा संगीत तथा अन्य किसी कला को पसन्द नहीं करता था कि जिससे मानव, आचरण की दिव्यता से नीचे गिरता हो। वह स्वस्थ मनोरंजन चाहता था, इसीलिए उन्होंने अपनी प्रजा के लिए स्वस्थ संगीत का निर्माण कराया। श्रृङ्गारिक गीतों का बहिष्कार होने लगा। इनके समय में "समज्जा" (संगीतमय आयोजन) का प्रचलन पुनः हो गया था, जो कि बीच के वक्त में बन्द हो गया था। समज्जा का वर्णन हम पिछले किसी युग में कर चुके हैं। यह पूर्ण संगीतमय आयोजन था। इसके द्वारा कुमारियाँ अपने जीवन साथी का चुनाव करती थीं। परन्तु जब अशोक ने यह देखा कि इस संगीतमय आयोजन से देश का वायु-मन्डल गन्दा बनता जा रहा है। युवक और युवतियाँ अपने नैतिक पृष्ठ से गिरते जा रहे हैं तो उसने एक राज्य घोषणा की। वह इस प्रकार है—"न अब कोई समज्जा हो सकेगा, क्यों कि देवानां प्रियदर्शी राजा अशोक इस समज्जा में बहुत अनौचित्य देखता है, किन्तु उसके कुछ ऐसे प्रकार भी हैं जिनको प्रियदर्शी राजा मुनासिब भी मानता है" इससे मालूम पड़ता है कि सम्राट अशोक को प्रजा की नैतिकता का कितना ध्यान रहता था, और इससे यह भी मालूम पड़ता है कि वह संगीत से घृणा नहीं करता था, बल्कि वह उस संगीतमय आयोजन के कुछ प्रकारों की मान्यता स्वीकार भी करता था। दरअसल वह यह चाहता था कि देश का वायुमन्डल संगीत

के द्वारा उज्ज्वल और सुन्दर बने, न कि गन्दा और उच्छृङ्खल बने। वह अपने राज्य के लोगों का जीवन सुन्दर और उत्कृष्ट देखने का अभिलाषी था, और इसीलिए उसने वे सब प्रयत्न किए जिससे देश की नैतिक शक्ति उच्च और पवित्र बने। फिर वह भला संगीत की गिरावट को कैसे सहन कर सकता था। उसके राज्य में अनेक सुन्दर संगीतज्ञ थे, अनेक नारियाँ नृत्य और गायन में पारगंत थीं। उनकी पत्नी तिष्यरक्षिता की परिचारिका चारुमित्रा जो कि कलिंग की थी, संगीत की महान विशेषज्ञा थी। उसको नृत्य और गायन पर पूर्ण अधिकार था। तष्यिरक्षिता अपना मनोरंजन चारुमित्रा के सुन्दर नृत्यों एवं गायन से किया करती थी। चारुमित्रा का संगीत विलासिता पूर्ण नहीं था। उसकी पृष्ठ आध्यात्मिक सौन्दर्य को लिए हुए रहती। अशोक के राजमहल में और भी अनेक परिचारिकायें थीं, जिनको संगीत का ज्ञान उच्चकोटि का था। चारुमित्रा को भैरव राग पर भी पूर्ण अधिकार था। वह भैरव राग को बड़े सुन्दर ढंग से गाती थी। वीणा भी सुन्दर बजाती थी। अशोक के समय में वीणा का प्रचलन जो कि चन्द्रगुप्त के समय में कम हो गया था, पुनः गतिशील हो गया था।

संगीतज्ञों का आदर समाज में होने लगा था—

अशोक के धर्म की सबसे बड़ी विशेषता थी सहिष्णुता, इसी सहिष्णुता की पवित्र भूमि पर संगीत की भी नींव रक्खी गई। क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि कुप्रवृत्तियों के दमन पर जोर दिया गया। संगीतकार के चरित्र को भी इसी पावन वातावरण में ढाला गया। इसीलिये चन्द्रगुप्त के समय में संगीतज्ञों की जो प्रतिष्ठा समाज के अन्दर घट गई थी, वह अब अशोक के समय में पुनः स्थापित हो गई। संगीतज्ञों का आदर जन-समाज में किया जाने लगा। कोई भी संगीतज्ञ असंयमी नहीं होता था। संगीतज्ञ बनने से पूर्व उसे जीवन के आध्यात्मिक पहलू का अध्ययन करना होता, तथा अशोक के सुन्दर सिद्धान्तों को समझना होता और फिर उन रम्य सिद्धान्तों की भित्त पर ही अपनी कला का मनोरम प्रासाद निर्मित करना होता। वास्तव में यह युग बड़ा उथल-पुथल का था।

इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना भारतीय संगीत का आदर्शपूर्ण सन्देश विदेशों में पहुँचना है—

सम्राट अशोक के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना संगीत के क्षेत्र में यह हुई कि भारतीय संगीत का आदर्शपूर्ण सन्देश विदेशों में पहुँचा। विदेशी लोग हमारे भारतीय संगीत के उच्च गौरव को समझने लग गए थे। उन्होंने अपने धर्म प्रचारक विदेशों में भेजे। धर्म प्रचार के साथ-साथ भारतीय संगीत का भी प्रचार

होता गया। गान्धार, कम्बोज, लंका, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, मिस्र आदि देशों में संगीत का नवसन्देश भेजा गया। लंका में सम्राट अशोक का पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भेजा। इन दोनों ने लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया तथा वहाँ भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा की गई। लंका वालों ने भारतीय संगीत को मुक्त हृदय से अपनाया। इसी प्रकार गान्धार में भी भारतीय संगीत का स्वागत किया गया, और आज भी वहाँ भारतीय संगीत के मौलिक तत्व अपनी विकृत अवस्था में पाये जाते हैं। काश्मीर में भी भारतीय संगीत का प्रचार किया, मिश्र में भी बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय संगीत की उच्चता को स्वीकार किया गया। इसी प्रकार तिब्बत और चीन में भी भारतीय संगीत के उच्च गौरव को मान्यता दी गई और उन्होंने भारतीय संगीत के आध्यात्मिक पृष्ठ को पूर्ण रूप से अपना लिया, साथ ही साथ उसके शिल्पक स्तर को भी कुछ तोड़ मरोड़ कर अपना लिया गया।

विदेशों में भारतीय संगीत का मुक्त हृदय से स्वागत हुआ—

अशोक के काल में विदेशों में भारतीय संगीत के उत्कृष्ट रूप को सबने स्वीकृत किया और यही कारण है कि आज चीन, मिश्र, यूनान, तिब्बत तथा जापान, सुमात्रा, जावा, कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, लंका और ब्रह्मा का संगीत भारतीय संगीत के मौलिक तत्वों से सादृश्यता रखता है। स्याम और सुमात्रा की नृत्य शैली तो आज भी भारतीय नृत्य की शैलियों जैसी ही है। इन्डोनेशिया के कई नृत्य भारतीय नृत्यों से बिल्कुल मिलते हैं, वास्तव में सम्राट अशोक ने महान कार्य किया है, जहाँ उसने बौद्ध धर्म की महान सेवा की है, वहाँ उसने संगीत की भी महान सेवा की है, लेकिन संगीत के लिए उसे पृथक से प्रयत्न नहीं करने पड़े, वह तो स्वाभाविक रूप से अपने आप बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ होता गया, परन्तु हाँ भारतीय संगीत की आन्तरिक ज्योति को शक्तिशाली बनाने में अशोक के पावन सिद्धान्तों ने बड़ा योग दान दिया। अशोक के समय में संगीत ने एक ऐसा मोड़ लिया कि जिससे उसका रूप विश्व-व्यापी बन गया। उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व हो गया और विदेशी लोगों को भी भारतीय संगीत की उच्चता, उसकी सुन्दरता का ज्ञान होने लगा, वह यह समझने लगे कि भारतीय संगीत की परम्परा बड़ी गौरवमयी है तथा भारतीय संगीत विश्व के लिए अन्वेषण का विषय भी है, और इस प्रकार सम्राट अशोक ने विदेशियों को भारतीय संगीत पर सोचने एवं विवेचन करने का सुअवसर दिया। जिससे भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में ऐतिहासिक दृष्टकोण से आँकी जाने लगी। इस प्रकार मौर्यकाल का यह द्वितीय चरण भी संगीत के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण एवं समृद्धिपूर्ण रहा।

शुंग काल में संगीत

ब्राह्मण लोग फिर संगीत पर अपना एकाधिकार करने लग गए थे—

१८४ ई० पू० अन्तिम मौर्य सम्राट वृहदस्थ को मारकर उसका सेनापति पुष्पमित्र शुंग मगध के सिंहासन पर बैठा। यह ब्राह्मण जाति का था। पुष्यमित्र शुंग के शाशन काल में संगीत की स्थिति शिथिल पड़ती जा रही थी। संगीत का जो जाज्वल्यमान गौरव मौर्य काल में प्रदीप्त हो रहा था, वह अब धूमिलता के आवरण में प्रच्छन्न होता जा रहा था। परन्तु पुष्पमित्र शुंग साहित्य और कला का बड़ा प्रेमी था। उसके शाशन काल में ही संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान पतंजलि उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने पाणिनी रचित व्याकरण की पुस्तक अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखा। पुष्पमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें संगीत का प्रयोग किया जाता था। इसके समय में वैदिक यज्ञों का फिर से प्रचार होने लगा, इन यज्ञों में मन्त्रों को गा कर प्रस्तुत किया जाता था। वीणा का इस युग में प्रचलन नहीं मिलता, ऐसा कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता, कि जिससे यह सिद्ध हो सके कि इस युग में वीणा वाद्य का चलन था। ब्राह्मण लोग फिर से संगीत पर अपना एकाधिकार करने लगे, शास्त्रीय संगीत का रूप लग-भग वही रहा जो कि मौर्य काल में था, लेकिन उसका दायरा बहुत सीमित होता जा रहा था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार ऐलगन (Elgon) ने "Indian Music" नामक पुस्तक में लिखा है, "शुंग काल में संगीत के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ, किन्तु फिर भी संगीत की स्थिति अधिक डवाँडोल नहीं थी। शास्त्रीय संगीत का गौरव मौर्य काल से कुछ धूमिल हो गया था, और उसकी विस्तारिक सीमाएँ भी बहुत सिकुड़ चुकी थीं। ब्राह्मण लोग फिर से संगीत पर अपना एकाधिकार करने का प्रयत्न करने लग गए थे।" इस काल के सम्बन्ध में हमें विशेष ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं होती, जिसके आधार पर संगीत पर विस्तृत प्रकाश डाला जाय।

गरबा नृत्य की नींव इसी काल में पड़ गई थी—

गुजरात प्रान्त में संगीतिक चेतना खूब पनप रही थी, कहते हैं कि गरबा नृत्य की नींव इसी काल में पड़ गई थी। काठियावाड़ में भी संगीत का अच्छा

फैलाव हो रहा था। आँध्र में भी संगीत की उन्नति हुई, विशेष रूप से यहाँ कंठ संगीत का विकास हुआ। लेकिन इसका हमें कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, सिर्फ जनश्रुति के आधार पर ही ज्ञात होता है। खैर जो कुछ भी हो इतना तो निश्चयात्मक रूप से कहा ही जा सकता है कि इस युग में संगीत उन्नति के प्रशस्त-पथ पर नहीं था और सामान्य जनता के अन्दर संगीत उत्सव के लिए कोई विशेष चाव नहीं मिलता।

"संगीत का अवरुद्ध-पथ"—

इस काल में सार्वजनिक समारोहों का उल्लेख हमें विदेशी विद्वानों के हवालों से भी प्राप्त नहीं होता। इससे मालूम होता है कि सर्वसाधारण प्राय: सुषुप्तावस्था में था। सुप्रसिद्ध लेखक वोरियो ने अपनी छोटी-सी पुस्तक "The oriental Music" में लिखा है—"ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संगीत की उज्ज्वलता का सबसे अधिक ह्रास हमें शुंग काल में मिलता है। इस काल को हम संगीत के लिए (Dead lock Period) यानी अवरुद्ध काल कहें तो कोई अनुचित न होगा। हमें भारतीय संगीत की जो स्वर्णिम आभा, जो पवित्र गौरव गरिमा मौर्य काल और उससे पूर्व बौद्ध काल में मिलती है, उसके रम्य दर्शन इस काल में नहीं होते।"

सुप्रसिद्ध लोवान ने अपनी पुस्तक "The Indian Music and its Rise" में इस युग के सम्बन्ध में सिर्फ एक पंक्ति ही लिखी है—"राजा पुष्पमित्र संगीत और साहित्य का बड़ा प्रेमी था।" इसके अतिरिक्त हमें इस काल के सम्बन्ध में कहीं कुछ नहीं मिलता। इस काल में न तो भारतीय संगीत की आवाज विदेशों में पहुँची और न यहाँ ही, राजा की ओर से संगीतोत्थान का कोई विशेष प्रयत्न हुआ। पर यह कहा जाता है कि इस काल में संगीत को वैदिक संगीत के अनुरूप बनाने का ब्राह्मणों ने उपक्रम किया था, लेकिन वे अपने प्रयास में सफल नहीं हुए, इसका मुख्य कारण यही था, ब्राह्मणों की शक्ति सुदृढ़ दशा में न हो पाई थी। उनके विरुद्ध अब भी सामान्य जनता में दूषित भावना पनप रही थी, इसीलिए वे अपने उद्देश्य में असफल रहे।

"संगीत का प्रकर्ष युग"—

कनिष्क-काल में संगीत

(७८ ई०–१२० ई०)

कुशान जाति—यह जाति इधर-उधर घूमती फिरती थी। चीनी भाषा में इन लोगों को यूची कहते हैं। ईसा के लगभग १५० वर्ष पूर्व ये लोग अपने निवास-स्थान पश्चिमी चीन से चल दिए। इनकी एक शाखा का नाम कुशान है। धीरे-धीरे इस शाखा ने दूसरी यूची शाखाओं पर प्रभुत्व जमा लिया और ईसा की पहली शताब्दी में भारत में प्रवेश किया। कुशान-वंश का सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली राजा कनिष्क था। यह कब गद्दी पर बैठा, इसके विषय में लोगों में मतभेद है। शायद ७८ ई० में वह गद्दी पर बैठा था। कुछ भी हो कनिष्क साम्राज्य में अफगानिस्तान, काश्मीर, सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मालवा, इत्यादि देश शामिल थे। उसने चीनियों से युद्ध किये और काशगर, यारकंद तथा खुतुन पर अधिकार कर लिया। कहते हैं कि उसने मगध पर भी चढ़ाई की थी। इस प्रकार उसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिमी भारत तथा उसके बाहरी प्रदेशों तक फैला हुआ था। उसके साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। यह बौद्ध धर्म को मानता था। परन्तु अन्य धर्मों का भी आदर करता था। अशोक की तरह उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए महान कार्य किया।

विदेशियों के सैन्य बल के सामने भारतियों को झुकना पड़ा, किन्तु उनकी उच्च सभ्यता एवं संस्कृति का उन विदेशियों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि अल्प-काल में ही वे भारतीय जीवन में घुलमिल गए, अपना अस्तित्व पूर्णतया खो बैठे। अन्य विदेशी शाशकों की भाँति कनिष्क भी भारतीय वातावरण में घुलमिल गया।

सम्राट कनिष्क बड़ा संगीत प्रेमी था—

सम्राट कनिष्क के काल में संगीत का विकास बड़ी द्रुति गति से हुआ। मौर्य काल में भारतीय संगीत की जो प्रगति धीमी पड़ गई थी, वह कनिष्क-काल में

आते-आते द्रुति पूर्ण होगई। कनिष्क स्वयं बड़ा संगीत प्रेमी था, इसलिए वह संगीतज्ञों का बड़ा सम्मान करता था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे। संगीत का जो आध्यात्मिक धरातल बौद्ध युग के बाद शिथिल पड़ गया था, वह इस काल में पुनः सुदृढ़ होने लगा। साधना का क्रम भी बीच के काल में टूट गया था, वह अब फिर चालू हो गया। लोग साधना का महत्व समझने लग गए, संगीत की आत्मिक शक्ति का विकास किया गया। उसके शिल्पक स्तर को भी ऊपर उठाने का उपक्रम इस काल में हुआ।

संगीत की सार्वभौमिकता का इस युग में अधिक ध्यान रक्खा गया—

शुंगकाल में संगीत वर्गीकृत होगया था, वह अब पुनः वर्ग शून्य हो गया। इस काल में संगीत की सारभौमिकता का ध्यान रक्खा गया। वीणा वाद्य का प्रचार इस युग में खूब जोरों पर था; मौर्य युग के बाद इसके प्रचलन की शृंखला टूट गई थी, किन्तु वह टूटी हुई शृंखला फिर इस काल में जुड़ गई। इस काल में गायन का अभ्यास वीणा पर ही किया जाता था। विवाह शादी के अवसरों पर भी गाने-बजाने का क्रम चला करता था। जनता के अन्दर भी संगीत-प्रेम का काफी उत्साह था। संगीत के अनेक प्रकार के समारोह आम जनता के मनोरंजनार्थ किए जाते थे। आम-जनता की संगीत समझने की शक्ति पर्याप्त प्रशस्त थी। जो संगीत आम जनता में प्रदर्शित होता था, उसका स्तर भी काफी ऊँचा उठा हुआ था। नृत्य और गीतों में मानव जीवन की संघर्षपूर्ण घटनाओं की पुरलुत्फ कहानियों का चित्रण होता था। उनका चित्रण करने का ढंग भी बड़ा कलात्मक था। चित्रण करने में लोगों की सुरुचिता एवं मनोरंजन का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता था। "भाव-नृत्य" एवं "कल्पना-नृत्य" का अधिक प्रचलन था।

देश के अन्दर अनेक नृत्य-गृह एवं नृत्य-शालायें थीं, जिनमें समय-समय पर संगीत-समारोह होते रहते थे। ऐसे सार्वजनिक समारोहों में दर्शकों की इतनी भीड़ होती थी कि उनको स्थानाभाव के कारण वापस लौटना पड़ता था। इससे मालूम पड़ता है कि लोगों के अन्दर संगीत आयोजनों में शामिल होने का बड़ा चाव था। कभी-कभी राज्य की ओर से भी संगीत समारोह किए जाते थे, जिनमें काश्मीर, अफ़गानिस्तान, मगध, चीन, मतलब यह सब जगह के कलाकार एकत्रित होते थे और वे परस्पर एक-दूसरे के संगीत को निकट से समझते थे। कनिष्क काल में इस प्रकार का प्रयास सर्वप्रथम हुआ। अब तक के युगों में इस प्रकार के संगीत समारोह नहीं किए गए थे। यह एक अभिनव कदम था, जिसने कनिष्क काल के संगीतिक इतिहास में चार चाँद लगा दिए। सम्राट कनिष्क के इस प्रयास ने भारतीय संगीत

की गहरी छाप लगा दी। चीनी कलाकार भारतीय संगीत से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने भारतीय संगीत की अनेक ध्वनों को सीखने का प्रयास किया।

दूसरा लाभ इससे यह हुआ कि सम्पूर्ण भारत के संगीत-प्रवाह में एकरूपता आसकी, एक कलात्मक वातावरण निर्मित हो सका, उत्तर प्रदेश का संगीत, विहार का संगीत क्या काश्मीर का संगीत और क्या सीमा प्रान्त का संगीत अब तक एक दूसरे से पृथक-पृथक अपनी सत्ता स्थापित किए हुए थे, वे अब एकसूत्रता की विस्तृत लड़ी में गूँथ दिए गए, जिससे भारतीय संगीत के मौलिक तत्व विश्रृङ्खल न हो पाये।

कला के द्वारा विश्व बन्धुत्व की पावन भावना का जन्म हुआ—

तीसरा लाभ इससे यह हुआ कि संगीतकारों में परस्पर प्रान्तीयता की भावना उदय होगई थी, वह इस नवीन कदम से दबने लगी। कलाकारों ने एकता का महत्व समझ लिया था, और वे इस तथ्य को जान गए थे कि कोई भी कला मानव को पृथकता का पाठ नहीं पढ़ाती। इसलिए सच्चा कलाकार वही है, जिसकी कला विश्व बन्धुत्व की पावन भावना को जन्म दे, जिसकी कला ईर्ष्या की संकुचित भावना को दफन करे, और जिसकी कला मानव के संकुचित दृष्टिकोण को विकास पूर्ण बनाए। ऐसा कलाकार ही वास्तव में विश्व में दिव्य आलोक प्रसारित करने में सफल होता, और ऐसा कलाकार ही मानवता में संजीवना को प्रस्फुटित करता है। यही विश्वास कनिष्क काल के लोगों में जम रहा था, जिसने उनका स्तर संगीत के विशाल क्षेत्र में ऊँचा उठाया। वास्तव में कनिष्क काल संगीतोत्थान के दृष्टिकोण से एक "प्रगतिशील युग" माना जाता है। इस काल में वह कार्य सम्पादन हुआ जो अब तक किसी भी युग में नहीं हुआ था। संगीत प्रचार के नवीन-नवीन साधन ढूँढ़ निकाले गए थे।

इस काल में उत्तर भारत और दक्षिण भारत के कलाकारों में परस्पर कला का आदान-प्रदान होता रहा—

दक्षिण भारत में भी इस काल में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने नृत्य और वादन कला में विशेष उन्नति की। इस काल में दक्षिण भारत का संगीत और उत्तर भारत का संगीत दोनों की धारा एक ही थी, कोई अन्तर नहीं पड़ा था। एक ही प्रकार की गायन शैली दोनों स्थानों पर चल रही थी। दक्षिण भारत के संगीतज्ञ उत्तर भारत में आते, और उत्तर भारत के संगीतज्ञ दक्षिण भारत में अपनी कला का प्रदर्शन करने जाते थे, इसीप्रकार गुजरात के संगीतज्ञ विहार

जाते और विहार तथा बंगाल के संगीतज्ञ गुजरात प्रान्त में जाते। कला का यह परस्पर आदान प्रदान का क्रम बराबर चलता रहता था, जिससे भारतीय संगीत का आन्तरिक सौन्दर्य तथा वाह्य सौदर्न्य की प्रगति-क्रम की गति, एक उच्च स्तर पर अविच्छिन्न रूप में चलती रही।

इस काल में भारतीय संगीत का सम्पर्क मध्य एशिया तथा चीन से बढ़ा—

इस काल में भारतीय संगीत का सम्पर्क मध्य एशिया तथा चीन से बढ़ा। चीन में भारतीय संगीत पूर्ण रूप से इसी युग में फैला। कनिष्क ने अनेक भारतीय कलाकारों को सांस्कृतिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के लिए चीन भेजा, जिन्होंने चीन और भारत को सांस्कृतिक वातावरण में ला खड़ा किया। चीनियों ने सर्वप्रथम भारतीय संगीत की सराहना की और भारतीय संगीत के तात्विक सन्देश को समझा। मध्य एशिया भी भारतीय संगीत की आत्मिक एवं शिल्पज्ञ ज्ञान से जाज्वल्यमान हो उठा। उसे भारत का नवीन आलोक प्राप्त हुआ। जो कलाकार विदेशों में जाते थे, वे धर्म के साथ-साथ भारतीय सभ्यता, सांस्कृति और यहाँ की कला का भी प्रचार वहाँ करते थे। आज इन तमाम देशों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के भग्नावशेष प्राप्त हो रहे हैं। जिनसे हमारे इतिहास की गौरव गरिमा का पता लगता है। इसी काल में भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध रोमन साम्राज्य से भी हुआ। भारतीय संगीत का प्रचार क्षेत्र इस काल में इतना बढ़ गया था, कि भारत ने विश्व के संगीत के क्षेत्र में प्रथम स्थान ग्रहण कर लिया। यह काल संगीत को विश्व व्यापी बनाने में सब कालों से बाजी मार ले गया।

महान संगीतज्ञ अश्वघोष ने संगीत को एक नवीन मोड़ दिया—

इस काल में अश्व घोष पैदा हुआ था जो कि महान संगीतज्ञ, तथा महान दार्शनिक भी था। अश्व घोष के सम्पर्क में आकर ही कनिष्क का संगीत प्रेम बढ़ गया। अश्वघोष ने संगीत की आत्मिक पृष्ठ को बड़ा मजबूत बनाया। चूँकि यह स्वयं महान दार्शनिक था, इसलिए उसके निर्मित संगीत की पृष्ठभूमि भी भारतीय दार्शनिकता को लिए हुए रहती थी। विदेशों में जो भारतीय संगीत गया, वह अधिकतर अश्व घोष द्वारा निर्मित संगीत ही गया। अश्व घोष महान साहित्यकार भी था, इसलिए उसके संगीत की नींव में काव्यात्मक सुषमा का पुट भी रहा करता। अश्वघोष ने बुद्धचरित नामक एक महाकाव्य भी लिखा, इसमें उच्चकोटि का संगीतमय कवित्व पाया जाता है। इस महाकाव्य के संगीतमय गीतों को इस युग में पुरुष और नारियों द्वारा बड़े चाव से गाए जाते थे। यहाँ तक सामान्य जनता भी इन गीतों के गाने में दिलचस्पी लेती थी, इससे मालूम पड़ता है कि उच्च

शिक्षित वर्ग ही सिर्फ इन गीतों को नहीं समझता था, वरन सर्वसाधारण भी समझते थे।

इस युग में प्रथम बार संगीत का वैज्ञानिक विवेचन किया गया—

सम्राट कनिष्क पर अश्व घोष का विशेष प्रभाव था। कहते हैं कि इसके विशेष प्रभाव से कनिष्क ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। कनिष्क का दरबार विद्वानों से सुशोभित रहता था। नागार्जुन जो कि विश्व का माहन दार्शनिक था इसी युग में रहता था, जो कि कनिष्क के दरबार का सबसे सुन्दर रत्न था। एक रूसी विद्वान ने उसकी तुलना यूरोपीय दार्शनिक हीगेल तथा ब्रेडले से की है। भारतवर्ष में जितने भी प्रतिभाशाली एवं मेधावी व्यक्ति हुए हैं, उनमें नागार्जुन एक देदीप्यमान तारे की भाँति चमकता है। इन्होंने शून्य वाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। संगीत भी शून्य के गर्भ से प्रस्फुटित हुआ, इस प्रकार इस युग में प्रथम संगीत का वैज्ञानिक रूप का विवेचन किया गया। इसके अतिरिक्त वसुमित्र, चरक, मातृचेत आदि विद्वान हुए। चरक आयुर्वेद के विद्वान थे, जिन्होंने "चरक संहिता" का सृजन किया। कहते हैं कि चरक भी संगीत के चिकत्सात्मक रूप को मानते थे।

भारतीय संगीत के इतिहास में कनिष्क युग एक बड़ा महत्वपूर्ण काल रहा है। उसके साम्राज्य का तीन बड़े-बड़े राष्ट्रों से सम्पर्क था। उत्तर में चीन, पश्चिम में ईरान तथा दक्षिण में भारतवर्ष से उसका निकटतम सम्पर्क था। पश्चिम में रोमन साम्राज्य की सीमायें कनिष्क के साम्राज्य से केवल ६०० मील थी। इन सभी सम्पर्क साम्राज्यों में भारतीय संगीत का प्रचार एवं प्रसार हुआ।

भारतीय संगीत का नव प्रभात—

सुप्रसिद्ध विद्वान अलडास्कर (Aldaskar) ने "The Hints of Indian Music" नामक पुस्तक में लिखा है—"कनिष्क काल को हम भारतीय संगीत का "The dawn of Indian Music" अर्थात् भारतीय संगीत का नव प्रभात कह सकते हैं। इस काल के अन्दर संगीत का जितना विकसित रूप हमें प्राप्त होता है उतना उससे पूर्व युगों में प्राप्त नहीं होता। किसी युग में कोई कमी रहती है, और किसी में कोई, मतलब यह है कि यह युग संगीत के लिहाज से अपने में पूर्ण है। सम्राट कनिष्क संगीत का स्वयं महान ज्ञाता था, इसी कारण उसने संगीत विकास में इतनी दिलचस्पी ली। भारतीय संगीत को विदेशों में प्रचार एवं प्रसार का श्रेय मुख्य रूप से कनिष्क को ही प्राप्त है, हालांकि इसके पूर्व वाले युग बौद्ध युग में भी भारतीय संगीत की धारायें भारतीय सीमाओं को पार कर

चुकी थीं, किन्तु फिर भी जितना महान एवं संगठित प्रयत्न इस काल में हुआ उतना शायद पूर्व युगों में न हो सका।"

कनिष्क युग का पूर्ण अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि दरअसल यह संगीत का एक महान निर्माता था, एक महान प्रेमी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी कनिष्क का महत्व कम नहीं है। जो कुछ सामग्री हमें इसके युग की प्राप्त होती है उसी के आधार पर यह कह सकते हैं कि सम्राट कनिष्क विदेशी होते हुए भी उसका प्रेम भारतीय संस्कृति, भारतीय कला के प्रति अद्वितीय था। इस अद्वितीय प्रेम के कारण भारतीय संगीत के इतिहास में उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।

नाग-युग में संगीत

(तीसरी शताब्दि ई० स०)

नाग लोग साहित्य और कला के बड़े प्रेमी होते थे—

यह युग अन्धकार युग के नाम से भी भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है, क्योंकि इस युग के सम्बन्ध में विशेष इतिहास नहीं मिलता। कुषाण साम्राज्य के पतन से लेकर गुप्त युग के उदय तक के इतिहास का निर्माण करने के लिए प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। गुप्त वंश के अभ्युत्थान के पूर्व नाग तथा वाकाटक दो राजवंशों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन वंशों ने उत्तरी तथा मध्य भारत में देशी राज सत्ता पुनः स्थापित की। नाग वंश के शासकों ने हिन्दू सत्ता की फिर से नींव डाली, वाकाटक ने उसे सुदृढ़ बनाया और गुप्तों ने उस पर महान साम्राज्य खड़ा किया।

पहली शताब्दी ईस्वी का एक लेख प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि राजास्वामिन शिवनन्दी नामक एक नाग शासक मध्यभारत में राज्य करता था। उसकी राजधानी पद्मावती थी। कुषाणों की विजय के कारण नागों की स्थिति कमजोर होगई। कुषाण वंश के पतन के बाद उन्हें फिर अवसर मिला, और वीरसेन नाग ने मथुरा तथा गंगा-जमुना के बीच के प्रदेश पर अपना अधिपत्य स्थापित किया। वीरसेन के बाद चार और राजा हुए। उनके बाद भावनाग एक प्रतापी शासक हुआ। नागों का यह वंश भारशिव वंश कहलाता था। नागों का प्रभाव दूर तक फैला हुआ था। राजपूताना तथा मालवा के गणराज्य उनके आधीन थे। नाग राजा शिव के बड़े उपासक होते थे। हिन्दुत्व के पुनरुत्थान में उन्होंने बड़ा योग दिया। यह साहित्य और कला के भी बड़े प्रेमी होते थे।

कुछ विद्वान नागों को मनुष्य जाति का नहीं बताते हैं, और उनका मत है कि नाग जाति का कोई वर्ग-समूह नहीं था, लेकिन विख्यात विद्वान जेम्स फरगूसन का कथन है कि—"नाग वास्तव में सर्प नहीं हैं। अनिवार्यतः वे एक प्राचीन जाति है, जिनको आर्यों ने अपने आधीन किया था। इन नागों का धर्म था सर्पपूजा। इन्हीं के सर्पपूजा के धर्म को आर्यों ने भी अपना लिया था।" डाक्टर सी० एफ०

ग्रोल्थम के अनुसार "नाग राक्षस नहीं हैं, अपितु एक ऐसी मानव जाति है जो अपने को सूर्य वंशी कहने का दावा करती है, और जिसका प्रतीक फनीहर साँप है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि तक्षशिला नागाओं की मुख्य नगरी थी, और तक्षक उनका मुखिया था। नागों की सर्प पूजा कालान्तर में आर्यों ने अपना ली।"

सर्प पूजा बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती थी। यह पूर्ण रूप से संगीत पूर्ण उत्सव था—

नाग जाति, सर्प पूजा को बड़े धूम-धाम से मनाते थे। उनका यह मुख्य धार्मिक पर्व होता था। उनके सर्प पूजन का क्रम कई दिनों तक बराबर चलता रहता था। यह लोग गा बजा कर सर्प को रिझाते थे। नृत्य भी करते थे। इन नागाओं के नृत्य बड़े शास्त्रीय ढंग पर आधारित थे। इनको रागों का भी ज्ञान था। इनके गीतों में और नृत्यों में जीवन की गहरी छाप रहती थी। नाग कन्याएँ बड़ी सज-धज के साथ उद्यानों में इकट्ठी होती थीं, और रंग-बिरंगे पुष्पों को चुनती थीं, इन नाना प्रकार के सुमनों से यह अपने घर को सजाती थीं और इन पुष्पों को वे अपने लम्बे-लम्बे बालों में गूँथती थीं। फिर वे सर्पों के गीत गाती थीं। नाग जाति का यह सर्प पूजन वास्तव में संगीतोत्सव ही था। नागों का जीवन संगीत प्रधान था।

नाग मानव रूप थे—

नाग जाति के सम्बन्ध में डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास लिखते हैं—"प्राचीन भारत की अनेक जन जातियों को पशु पक्षियों की संज्ञा दी जाती है, वानर, गृध, नाग आदि निश्चय ही, ये जातियाँ मानवेतर नहीं थीं। किसी न किसी रूप में पशु पक्षियों से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें इन नामों से जोड़ दिया गया। भारत के दक्षिणी पठार की आदिवासी जाति वानरों को पूँछ जैसा भूषण पहनने तथा बन्दरों की सी उछल कूद मचाने के कारण वानर कहा जाने लगा। पश्चिमी समुद्री तट और तटवर्ती पर्वत श्रेणियों पर विचरण करने वाली एक घुमन्तू जाति को गृध् या सुपर्ण के नाम से सम्बोधित किया गया। नाग जाति का चिह्न (टोटम) सर्प था और वह एक जलचर जाति थी। इसलिए उसे सर्पों से संयुक्त कर दिया गया। कालान्तर में इन मूल बातों को भुलाकर इन जातियों को पशु पक्षियों के अन्तर्गत मान लिया गया।

नागों की वंश परम्परा काफी प्राचीन है—

रामायण कालीन नाग जाति दक्षिण भारत की एक अनार्य जाति थी तथा यक्षों और राक्षसों की समकालीन थी। सम्भवतः यक्षों के राजनीतिक पतन के बाद

नागों का उत्थान हुआ था। नागों ने लंका के कुछ भागों पर ही नहीं, वरन प्राचीन मलावार प्रदेश पर भी अधिकार जमा रक्खा था। वाल्मीकि ने सुरसा को नागों की माता और समुद्र को उनका अधिष्ठान बताया है। यह स्पष्टतः नागों का समुद्री जाति होने की ओर संकेत करता है। हनुमान द्वारा समुद्र तरण घटना को नागों ने प्रत्यक्ष देखा था। महेन्द्र और मैनाक पर्वत की गुफाओं में भी नाग निवास करते थे। नागों की स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध थीं। (नाग कन्या वरारोहा पूर्णचन्द्रि-निभानना:) राजर्षि तृरण बिन्दु के आश्रम में नाग कन्यायें क्रीड़ा करने जाती थीं (नाग कन्यायें संगीत और नृत्य में बड़ी निपुण हुआ करती थीं) हनुमान ने रावण के अन्तःपुर में कई नाग रमणियाँ देखी थीं। उनमें से कई को रावण बलपूर्वक हर कर लाया था। बासुकि, तक्षक, शंख और जटी नागों के मुखिया थे। जिनका रावण ने पराभव किया था। तक्षक की भार्या का भी उसने अपहरण किया था। समय के प्रवाह में नाग जाति चेर जाति में विलीन होगई।''

इससे मालूम पड़ता है कि नाग जाति वैदिक काल से ही चली आ रही है, और वह रामायण तथा महाभारत काल में भी विद्यमान थी। इनकी बंश परम्परा काफी प्राचीन है।

नाग कन्यायें बड़ी सुन्दरी और नृत्य में बड़ी प्रवीण होती थीं—

नाग कन्यायें नृत्य में बड़ी प्रवीण होती थीं, यह नाग कन्यायें सार्वजनिक रूप से भी अपने मनमोहक नृत्यों का प्रदर्शन किया करती थीं। सौन्दर्य और नृत्य के कारण ही यह राज घरानों में पहुँची और रानियाँ बनीं। यह कुमारियाँ बीणा वादन में भी प्रवीण थीं। इनके अनेक प्रकार के नृत्य और गान आज भी भारत के पूर्वी सीमान्त पर आसाम की पहाड़ियों में नागा पर्वतों की तराई में नागा जाति बसती है, प्रचलित हैं।

नाग युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना भरत मुनि का प्रसिद्ध ग्रन्थ "नाट्य शास्त्र" का निर्माण होना है—

नागा युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना संगीत कला के क्षेत्र में यह हुई कि भरत ने "नाट्य शास्त्र" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का निर्माण किया तथा संगीत के अन्य ग्रन्थ भी लिखे गए। "भरत नाट्य शास्त्र" से प्रेरणा पाकर ही इस काल में नाट्य और नृत्य का विशेष प्रचार हुआ। इसी काल में ३ ग्राम, २१ मूर्च्छना, ७ स्वर और २२ श्रुतियों की प्रणाली का वर्णन भी संगीत ग्रन्थों में किया गया। 'नाट्य-शास्त्र" यद्यपि एक नाटकीय ग्रन्थ है, किन्तु इसके २८, २९ और ३० वे अध्यायों में

संगीत सम्बन्धी शास्त्र दिया गया है। जिसमें गायन वादन और नृत्य तथा श्रुति, स्वर, ग्राम आदि का उल्लेख है। नाट्य भी नृत्य श्रेणी में आ जाने के कारण यह समूचा ग्रन्थ ही संगीत कला के अन्तर्गत आजाता है। आज भी नाट्य शास्त्र प्राचीन कला का एक आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू जी ने इस ग्रन्थ के बारे में लिखा है :—"नाट्य कला पर एक पुस्तक–"नाट्य शास्त्र" कहा जाता है कि तीसरी सदी ईस्वी में लिखी गई, लेकिन यह जाहिर है कि यह इसी मजमून की और पहले की रचनाओं के आधार पर लिखी गई है। ऐसी किताब उसी वक्त तैयार हो सकती है जब नाटक की कला की खासी तरक्की हो चुकी है। और आम लोगों के सामने खेल बराबर रचाए जाते रहे हैं। इससे कब्ल बहुत काफी साहित्य इस पर तैयार हो चुका रहा होगा, और इसके पीछे कई सदियों का रफ्ता-रफ्ता विकास जान पड़ता है। हाल में छोटा नागपुर में रामगढ़ की पहाड़ियों में, एक ऐसी कदीम रंगशाला का पता चला है, जिसकी तारीख ईसा से कब्ल की दूसरी सदी बताई जाती है। यह मार्के की बात है कि "नाट्य शास्त्र" में जो रंगशालाओं का भव्य बयान मिलता है उससे इस रंगशाला का नक्स मिल जाता है।"

विधान पूर्ण संगीत की अभिवृद्धि हुई—

वास्तव में भरत मुनि के पूर्व शताब्दियों में भारतीय संगीत की स्थिति बड़ी उच्चकोटि की रही, जैसा कि ऐतिहासिक गवेषणाओं से मालूम पड़ता है। अनेक संस्कृत नाटक लिखे गए, जिन्होंने भारतीय संगीत के स्तर को उत्कृष्ट किया। दरअसल भरत ने नाट्य शास्त्र को लिखकर संगीत की महान सेवा की है, क्योंकि भरत से पूर्व हमें कोई प्रमाणिक ग्रन्थ संगीत पर नहीं मिलता। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से इस युग में विधान पूर्ण संगीत की अभिवृद्धि हुई। इस काल के सम्बन्ध में स्वामी प्रजानन्दा ने अपनी रचना "Some Musical Features in Natya Sastra" में लिखा है :—"During Bharata's time, the Gandharava or Marga type of music was also in practice. But the tendency and act of formalizing and assimilating the regional tunes and different types of music (gitis) of different countries and tribes had already begun in the society, and Gitis like magadhi, ardha-magadhi, sambhabita prithula etc. are the examples. The magadhi and ardha-magadhi were the national type of music (gitis) of Magadha-desha and they were

sung independent of the Dhruva-gana and even of the Gandharva Jatiraga-ganas. Different kinds of folk music were already current among the aboriginal society. The classical music was generally divided into three main categories, Temple music, Court music and Drama music.
"इस काल में गन्धर्व या मार्ग संगीत भी प्रचलित था। लेकिन समाज में देशी संगीत का ही प्रचलन था। मगधी और अर्धमगधी शैली मगध में और उसकें इर्द-गिर्द प्रचलित थी। इस काल में लोक संगीत का भी प्रचलन था।"

"संगीत का स्वर्ण काल"—

गुप्त काल में संगीत

गुप्त सम्राट किस वंश के थे इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने गुप्त शब्द का यह अर्थ लगाया है कि ये सम्राट वैश्य वंश के थे। किन्तु यह मत भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। इतिहास में ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम के अन्त में गुप्त शब्द आता है। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्म गुप्त ब्राह्मण थे। गुप्त सम्राटों के लेखों में कई स्थानों पर उनकी वंशावली मिलती है, उनके अनुसार गुप्त नाम का कोई पुरुष इस वंश का संस्थापक था। गुप्त को केवल महाराज गुप्त कहा गया है, इससे मालूम पड़ता है कि वह एक साधारण सामन्त थे। गुप्त का पुत्र घटोत्कच था। उसको भी महाराज की पदवी दी गई थी। घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा।

यह युग हिन्दू संस्कृति के जागरण का युग था—

चन्द्रगुप्त प्रथम के समय में संगीत की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई, लेकिन उसकी आध्यात्मिक पृष्ठ में थोड़ा-सा परिवर्तन अवश्य किया गया, जिससे इस युग के संगीत में कनिष्क युग के संगीत से अधिक धार्मिक रूप परिवर्तित हुआ। यह युग हिन्दू संस्कृति के जागरण का युग था। वीणा का प्रचलन इस युग में भी चालू रहा। लेकिन कनिष्क युग के बाद ३०० वर्ष के लिए इतिहास में अज्ञात काल आ जाता है। इन ३०० वर्षों का हमें कुछ भी प्रमाणिक रूप से ज्ञात नहीं होता है, इसीलिए इतिहासकारों ने इस बीच के समय को जो कि कनिष्क युग तथा गुप्त युग के मध्य में पड़ता है, उसको अज्ञात काल के नाम से सम्बोधित किया है। इस अज्ञात काल में कनिष्क काल के संगीत का गौरव धूमिल पड़ गया था, क्योंकि ऐसा मालूम पड़ता है कि इस अज्ञात काल में कोई भी राजा ऐसा प्रभावशाली नहीं हुआ जिसने कि भारत के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने का उपक्रम किया हो। गुप्त-काल के अभ्युदय तक कनिष्क काल का संगीत एकदम क्षीण हो चुका था, वह अपनी जर्जर हालत में सिसकियां भर रहा था, परन्तु गुप्तकाल के अभ्युदय से संगीत में फिर से एक सजीवता, एक प्रभाव पूर्ण चेतना और एक प्रेरणात्मक रूप का निर्माण हुआ।

समन्वित संस्कृति का निखरा हुआ रूप इस काल में मिलता है—

चन्द्रगुप्त प्रथम को इतना अवकाश नहीं मिला कि वह अपना अधिक ध्यान संगीत विकास में केन्द्रित कर पाता, उसके जीवन का अधिकाँश भाग युद्ध लड़ने में, अपने साम्राज्य की सीमाओं के बढ़ाने में और उसकी प्रशानिक व्यवस्था को सुन्दर बनाने में व्यय हुआ। परन्तु फिर भी उसने संगीत के गिरते हुए स्तर को सम्भालने का प्रयास किया, ऐसा विख्यात लेखक आवोन ने अपनी पुस्तक "The Internal Cords of Indian Music" में लिखा है। खैर जो कुछ भी हो हम इतना तो निर्णयात्मक रूप से कह सकते हैं कि जो संगीत अज्ञात काल में पतन के खन्डहर में गिर चुका था, वह इस युग के प्रारम्भ होते ही उत्थान के भव्य मार्ग पर अग्रसर हुआ। चन्द्रगुप्त प्रथम के समय में हमें कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि जिससे यह ज्ञात हो सके कि गुप्त वंश के प्रारम्भ होते ही संगीत क्षेत्र में कोई जबरदस्त क्रान्ति आविर्भूत हुई हो, ऐसा तो कोई ऐतिहासिक प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होता, और न यह ज्ञात होता कि चन्द्रगुप्त प्रथम के दरबार में कोई प्रसिद्ध संगीतज्ञ रहता हो। और न ऐसे संगीत के सार्वजनिक सामारोह का ही विवरण मिलता है कि जिनमें चन्द्रगुप्त प्रथम ने स्पष्ट रूप से भाग लिया हो। इससे प्रतीत होता है कि संगीत के विकास का जो भी प्रयत्न किए गए, वे अधिकतर जन सामान्य की संगठित शक्ति द्वारा ही किए गए। गुप्तकाल के संगीत में इसीलिए जन चेतना की अधिक गहरी अभिव्यक्ति हुई है। जनता के विचारों में उथल-पुथल थी, देश के अन्दर, बौद्ध, जैन, और हिन्दू धर्म सभी का समन्वित दायरा चल रहा था। किन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम ने हिन्दू संस्कृति को पूर्ण रूप से अपना लिया था, इसलिए स्वाभाविक रूप से हिन्दू संस्कृति का बोल-बाला था, इसलिए आम जनता ने संगीत क्षेत्र में जो कायापलट की उसमें हिन्दू धर्म का विशेष पुट रहा, हिन्दू धर्म में भी वैष्णव संस्कृति का अधिक रंग दिया गया अपेक्षा वैदिक धर्म के। लेकिन फिर भी इस युग के संगीत के परिवर्तित रूप में समन्वित संस्कृति के भी दर्शन होते हैं।

इस युग में भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखित "दत्तिलम" ग्रन्थ का उल्लेख भी मिलता है। यह ग्रन्थ भी गुप्त युग में अपना उच्चस्थान रखता था, इसमें प्रतिपादित मत लगभग भरत से मिलते जुलते हैं। "दत्तिलम" में मूर्च्छना की परिभाषा नहीं दी गई, जब कि भरत के नाट्य शास्त्र में दी गई है। यह दोनों ग्रन्थ ही भारतीय संगीत की गौरवशाली रचनाएँ हैं।

महान संगीतज्ञ समुद्रगुप्त—

समुद्रगुप्त—चन्द्रगुप्त प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा। समुद्रगुप्त के सिंहासनासीन होने के युग से संगीत का इतिहास अधिक स्पष्ट

होने लगता है। समुद्रगुप्त के दरबार में प्रसिद्ध कवि हरीषेण रहता था। समुद्रगुप्त विद्वानों का आदर करता था। समुद्रगुप्त के दरबार में संगीतज्ञ भी थे, नर्त्तकाएँ भी थीं, जिनका कि समय-समय पर नृत्य हुआ करता था। समुद्रगुप्त स्वयं भी बड़ा संगीतज्ञ था, इसीलिए उसकी रुचि संगीत की ओर विशेष रही। जब समुद्रगुप्त किसी राज्य पर विजय प्राप्त करके लौटता था तो, राज्य भर में संगीत के आयोजन होते। गाना-बजाना खूब चलता, नारियाँ राजा का सम्मान उसके यशोगान गाकर ही करती थीं। सामान्य जनता भी इस शाही संगीत समारोह में भाग लेती थीं। समुद्रगुप्त स्वयं सुन्दर वीणा वादक था। कहते हैं कि जब उसका मूड खराब होता, अथवा उनके अन्दर निराशा की बाहुल्यता होती तो वह उस वक्त एकान्त में बैठकर वीणा-वादन ही करता था, और घन्टों उसकी साधना की गहराइयों में खो जाता था। जब कभी वह किसी देश पर चढ़ाई करने जाता था, तो उससे पूर्व वह अवश्य वीणा बजाता था, इससे अवश्य ही उसे आत्मिक चेतना का प्रकाश प्राप्त होता हो, जोकि उसे युद्ध क्षेत्र में विजय दिलाने में सहायक बनता हो। ऐसा मिस्टर प्रेलीनिअर (Preleenior) ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों में उल्लेख किया है। पुस्तक का नाम है—"The mirror of Music India"।

शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रचार हुआ—

शास्त्रीय संगीत की भी कायापलट की गई। समुद्रगुप्त के काल में शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रचार था। कहते हैं कि इस युग में ऐसे-ऐसे गायक थे कि जो अपनी गायन की अपूर्व शक्ति से पानी बरसा दिया करते थे, जो चलती हुई गाड़ियों को रोक दिया करते थे, और जो पानी में आग लगा दिया करते थे, और जिनका कि गायन विशाल पत्थरों को भी मोम की तरह पिघला कर प्रवाहित कर दिया करता था। गायन-कला की समुद्रगुप्त के समय में बड़ी उन्नति हुई। गायन-साधना के द्वारा कलाकारों ने अपने संगीत में चमत्कारिक शक्तियाँ पैदा करली थीं। सार्वजनिक संगीत समारोहों में समुद्रगुप्त खुलकर भाग लेता था। संगीतज्ञों को प्रोत्साहन भी देता था।

समाज के अन्दर संगीतकारों की प्रतिष्ठा बढ़ रही थी, जो कि अज्ञात काल में कम हो गई थी। संगीतकारों की उच्चता उनके नैतिक चरित्र से आँकी जाती थी। कौन संगीतज्ञ कितना बड़ा है, इसकी कसौटी उसका शिल्पक ज्ञान नहीं होता था बल्कि कलाकार की नैतिक शक्ति ही मानी जाती थी। इस काल में कलाकारों को नैतिक चरित्र पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया, क्योंकि इस काल के विद्वानों का विश्वास था कि कोई भी कला बिना पावन चरित्र के विकास की स्वर्णिम मंजिल की ओर प्रयाण नहीं कर सकती, चरित्रक उठान ही प्रत्येक कला की प्राणशक्ति होती

है। बस इसी विश्वास की विशाल पृष्ठभूमि पर इस युग के संगीत की नींव रक्खी गई। ऐसे गीत अधिक बनने लगे जिनमें वैष्णव धर्म का गुण गान होता था, और जिनमें हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता का अधिक चित्रण किया जाता था। समुद्रगुप्त के समय में देश के अन्दर संगीत का प्रचार एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में सामूहिक संगठन द्वारा किया जाता था। उत्तर से दक्षिण तक, पूरब से पश्चिम तक संगीत का संगठित प्रचार किया गया। समुद्रगुप्त नाटक देखने का भी बड़ा शौकीन था। वह ऐसे नाटक अधिक देखना पसन्द करता था कि जिनमें नृत्य के साथ गायन भी चलता हो और उस गीत नृत्य में मानवता के सौन्दर्य का उठान किया गया हो। इस काल में अनेक नाट्यशालायें स्थापित हुई। जिनमें अनेक प्रकार के नाटक चला करते थे। इस युग में नाटकों की बड़ी धूम रही। इन नाटकों के द्वारा वैष्णव धर्म के आदर्शों का प्रचार भी किया जाता था। नाटकों में पुरुष और नारियाँ दोनों भाग लेते थे। कहते हैं कि इस काल में कुमारियों के वर चुनाव के लिए "साम्या" लगा करता था, जिसमें कुमारियाँ अपनी संगीतिक प्रतिभा का परिचय दिया करती थीं, कुमार भी अपनी संगीतिक योग्यता प्रस्तुत करते थे, जो युवक और युवती एक दूसरे की कला पर मुग्ध होते थे, वे परस्पर विवाह कर लिया करते थे। पर इसका हमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, ऐतिहासिक प्रमाण हमें सिर्फ इतना मिलता है कि अनेक मेले इस युग में होते, जिनमें संगीतोत्सव भी हुआ करते थे। इन संगीतोत्सवों में युवक और युवतियाँ भाग लिया करते थे।

सितार की उत्पत्ति इसी काल में हुई—

समुद्रगुप्त के वीणा वादन पर अरेबियन प्रसन्न होकर समुद्रगुप्त की प्रशंसा करते हैं, और उनका अभिमत है कि—

इस्तम्बोल के प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालय में मकतबे सुलतानियाँ जिसे आज कल मकतबे जमहूरियाँ कहते हैं। जो टर्की ही नहीं वरन पूर्वीय समस्त देशों में बड़ा और विशाल है। उस पुस्तकालय के अरबी विभाग में सन् १७४९ ई० का लिखा हुआ एक काव्य ग्रन्थ मिला, जो टर्की के प्रसिद्ध राजा सुलतान सलीम ने अत्यन्त यत्न पूर्वक किसी प्राचीन प्रति के आधार पर लिखवाया था। यह हरीर (एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो इन्हीं कामों के लिए बनाया था) पर लिखा है और अत्यन्त सुन्दर सुनहरे बेल-बूटेदार काम से सजा हुआ है। यह संग्रह तीन भागों में है। प्रथम भाग में अरब के आदि कवियों का संक्षेप में परिचय दिया है। दूसरे भाग में मुहम्मद साहब के प्रारम्भिक जीवन से लेकर बनीउम्मया कुल के अन्त तक के कवियों का वर्णन है, और तीसरे भाग में अब्बास कुल के आरम्भ से प्रसिद्ध राजा

खलीफा हारूनुल रसीद के दरबारी कवियों और अपने समय तक के गायक और कवियों का वर्णन है। पुस्तक का नाम "सेजरूल उकोल" है। इसका संग्रह कर्त्ता अरबी काव्य का कालिदास अब्रु हमीर अब्दुल असमई है, जो इसलाम के प्रसिद्ध राजा खलीफा हारूनुल रसीद का प्रसिद्ध गायक, वादक और कवि था। इस संग्रह पुस्तक का प्रथम संस्करण १८६४ ई० में बर्लिन में प्रकाशित हुआ था, और दूसरा सन् १९३२ ई० में बेरूत (फिलीस्तीन) से प्रकाशित हुआ था।

इस पुस्तक की भूमिका में प्राचीन अरब की सामाजिक अवस्था, मक्का का वर्णन है। मेला (ओकाज) और कविता की बेहर को गाने के लिए एक सुन्दर वाद्य का भी वर्णन हैं, जो सितार के तुम्बे के बजाय बकरी की खाल से मढ़ा जाता था। और इसमें भी सितार के समान सात तार ही होते थे।

हजरत मुहम्मद से १६५ वर्ष पूर्व जरहम बिनतोई नामक एक गायक और कवि हो गया है जो निरन्तर ओकाज के मशायरे में तीन साल तक आता रहा था। इसकी तीन कविताएँ सोने के पत्रों पर अंकित होकर मक्का के मन्दिर में लटकाई थी। वह लिखता है कि वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रमादित्य के राज्य में रहते हैं, जो बड़ा दानी धर्मात्मा, प्रजापालक इल्मेमौसीकी (संगीत) का ज्ञाता है। उसके सेहतार (सितार) वादन से दिल की कली खिल जाती है। परन्तु ऐसे समय में हमारा "अरब" ईश्वर को भूलकर भोग विलास में लिप्त था। हृदय से इस अद्भुत कला को हम भूले हुए थे। सारे देश में अमावस्या की रात्रि के समान अन्धकार छाया हुआ था, परन्तु अब जो सूर्य की प्रातः कालीन किरणों के समान प्रकाश दिखाई देता है, वह कैसे हुआ ?

वह उसी धर्मात्मा राजा विक्रमादित्य की कृपा है (जिसे लोग समुद्रगुप्त भी कहते हैं) जिसने हम विदेशियों को भी अपनी दया-दृष्टि से वंचित नहीं रक्खा और पवित्र धर्म का सन्देश देकर अपनी जाति के विद्वानों को यहाँ भेजा, जो हमारे देश में सूर्य के समान चमकते थे। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने ईश्वर ज्ञान, संगीत-ज्ञान, काव्य ज्ञान और सामाजिक ज्ञान जाना और सत्पथ गामी होकर आत्म-तल्लीनता के लिए सेहतार वादन, जाना, वे लोग राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में विद्या, धर्म मौसीकी और सेहतार (सितार) के प्रचार के लिए आए थे। यह सब बातें नीचे लिखी नज़म से प्रगट होती हैः—

"इत्रंश्शफाई सनतुल बिकरमतुन,
फ़हलमीन, करीमुन, यर्तफीहा वयोवरसस,
विहिल्लाय समीमिन, एलाभोत, कव्वंनान।

विहिल्लाहा यूही कैद मिन होवा य फखरू,
फज्जल आसारी, नहनेओ, सारिम विजहेलीन,
परीदुन विजामिल, कजन विनय खतरू।
यह सब दुन्या कनातेफ नार्तकी विजहेलीन,
अतदरी विलल्ला महीरातुन, फकेफ् तसवहू,
कउन्नी एजा माजकर, लेहदा बलहदा ।।''

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि सितार की उत्पत्ति इसी काल में होगई थीं।

समुद्रगुप्त सिर्फ संगीतज्ञ ही नहीं था, बल्कि वह लोकप्रिय कवि भी था—

समुद्रगुप्त सिर्फ संगीतज्ञ ही नहीं था बल्कि वह लोकप्रिय कवि भी था। उसकी कवित्व शक्ति बड़ी प्रशंसनीय थी। उसका संगीत भी बड़ा काव्यात्मक रहता था। कहते हैं कि उसने अनेक गीत स्वयं रचे थे, और स्वयं ही उनकी ध्वनियाँ निर्मित की, जिनका प्रदर्शन दरबार में किया जाता था। समुद्रगुप्त को दो ही बातों का विशेष रूप से शौक था, प्रथम वीणा वादन करने का, द्वितीय गीत लिखने का। विद्वान कवि हरीषेण ने समुद्रगुप्त के कवित्व शक्ति की बड़ी प्रशंसा की है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि नृशंस साम्राज्य लोलुप विजेताओं में कलाभिरुचि कम देखी जाती है। लेकिन समुद्रगुप्त तो कला सौन्दर्य का महान उपासक था। परन्तु उसका संगीत विलासिता की संकीर्ण पृष्ठ लिए हुए नहीं होता था, वह स्वयं विलासिता से बहुत घृणा करता था। उसको सादा जीवन अधिक पसन्द था। वह ऐसे संगीत को लेशमात्र भी पसन्द नहीं करता था कि जिसमें यौनिक वातावरण अथवा भोग विलास का वायुमन्डल प्रस्तुत किया जाता हो। समुद्रगुप्त के समय में राग रागनियों का बड़ा प्रचार हुआ।

समुद्रगुप्त के समय के ऐसे भी सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर वीणा अंकित है।

लोकसंगीत की प्रगति हो रही थी—

लोक संगीत की भी प्रगति इस काल में हो रही थी। ग्रामीण जनता लोक नृत्यों, लोकगीतों में आनन्द लिया करती थी। अनेक लोकनृत्य तथा लोकगीत भी निर्मित हुए। इन लोकगीतों और लोकनृत्यों के निर्माताओं ने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा कि उसके निर्माण पृष्ठ में कोई ऐसा भाव न आजाए कि जिससे भारतीय संस्कृति के गौरव को धक्का लगता हो। अतएव लोक संस्कृति के इस युग का विकास-चित्र बड़ा ही भव्य एवं प्रगतिपूर्ण है। हमें इस युग की शक्तिशाली लोक संस्कृति प्राप्त होती है। शाही दरबार में लोक नृत्यों का भी प्रदर्शन होता था

और जिनमें समुद्रगुप्त बड़ा आनन्द लिया करता था। इस प्रकार भारतीय संगीत के सम्पूर्ण परिच्छेदों में प्रगति हुई।

लोक संगीत के सम्बन्ध में विख्यात विद्वान मिस्टर पेरी (mr. parry) लिखते हैं :—

"The basis of all Music and the very first steps in the long story of musical development are to be found in the musical utterances of the most Undeveloped and unconscious types of humanity, such as unadulterated savages and inhabitants of lonely isolated districts well removed from any of the influences of education and Culture. Such savages are in the same position in relation to music as the remote ancestors of the race before the story of the artistic development of music began, and through the study of the ways in which they, Contrive their primitive fragments of tune and rhythm, and oi the principles upon which they string these together, the first steps of musical development may be traced. True folk music begins a step higher, when these fragments of tune as nuclei are strung together upon any principles which give an appearance of orderliness and Completeness, but the power to organise materials in such a manner does not come to human creatures till a long way above the savage stage. In such things a savage lacks the power to think consecutively or to hold the relations of different factors in his mind atonce. His phrases are Necessarily very short and the order in which they are given is unsystematic. It would be quite a feat for the original brain to keep enough factors Under Control at once to get even two phrases to balance in an orderly manner. The standard of completeness in design depends upon the standard of intelligence of the makers of the product, and it Cannot therefore be expected to be definite or systematic when it represents the intellectual standard of savages"

इस काल में सम्पूर्ण भारत एक शाशन सूत्र में आवद्ध हुआ—

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य—३७५ ई० तथा ३८० ई० के बीच में किसी समय चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुए। प्राचीन भारत के इतिहास के महापुरुषों में उनकी

गणना है। उन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। उनको साम्राज्य निर्माण के कठिन कार्यों में अपना अधिक समय नष्ट नहीं करना पड़ा। उनके पिता ने अपने अतुल पराक्रम एवं अथक परिश्रम से एक विस्तृत और सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित कर दिया था। उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में कहीं भी कोई शाशक ऐसा नहीं रहा था जो उनका अधिपत्य स्वीकार न कर चुका हो। केवल पश्चिम के शक क्षत्रियों की शक्ति अब भी अक्षुण्ण थी। विक्रमादित्य ने इन शक क्षत्रयों की शक्ति का सर्वोन्मूलन करके गुप्त साम्राज्य की सीमाओं को पश्चिमी सागर के तट तक पहुँचाया। यही उनके शाशन काल का एक महत्वपूर्ण कार्य था।

इस काल में समस्त भारत पर एक शाशन कायम हो जाने से प्रशानिक अवस्था में बड़ी सहायता मिली। कहते हैं कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ही कुतुबमीनार के पास एक लौह स्तम्भ बनवाया, जिसमें चन्द्र नामक राजा की विजय का वर्णन है। उसमें लिखा है कि चन्द्र ने बंग देश में शत्रुओं के एक संघ को परास्त किया, दक्षिणी समुद्र तक अपने पराक्रम की कीर्ति फैलाई। सिंध नदी की सहायक सात नदियों को पार कर बाहलीकों को हराया, इस प्रकार इस पृथ्वी पर एकाधिराज्य स्थापित कर उसने दीर्घ काल तक शासन किया।"

चीनी यात्री फाह्यान का आगमन और उसका रोचक वर्णन—

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही चीनी यात्री फाह्यान भारतवर्ष में आया था। वह एक बौद्ध भिक्षु था। धर्म की पुस्तकों की खोज तथा बौद्ध तीर्थस्थानों के दर्शन के लिए अपने देश से चल कर मरूस्थल, वन, पर्वत, नदियों को पार करता हुआ, यात्रा के अनेक कष्ट सहता हुआ, बुद्धदेव की पवित्र जन्मभूमि भारत आ पहुँचा। वह लगभग ६ वर्ष यहाँ रहा। उसने भारत के बारे में जो अपनी यात्रा का विवरण लिखा है, उससे हमें एक हलका सा प्रकाश, उस समय की कलात्मक स्थिति का प्राप्त होता है।

विक्रमादित्य संगीत का बड़ा मर्मज्ञ था—

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में संगीत का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि इस काल में अधिकतर शान्ति कायम रही, और दूसरे विक्रमादित्य भी संगीत का बड़ा मर्मज्ञ था। वह विद्वानों, कवियों एवं कलाकारों का आदर करता था। जिस प्रकार वह भारत का एकाधिराज्य था, ठीक उसी प्रकार वह भारतीय संगीत का भी एकाधिराज्य बन गया। उसने भारतीय संगीत की विभिन्न प्रवृत्तियों को संगठित किया। उसका दृष्टिकोण संगीत के प्रति वही था जो

कि समुद्रगुप्त का रहा। वह समुद्रगुप्त के समान ही कला प्रेमी था। कहते हैं कि वह भी वीणा-वादन का विशेष ज्ञाता था, पर इसके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक नहीं मिला है, पर यह अनुमान किया जा सकता है, कलात्मक परिस्थितियों का विश्लेषण करके कि समुद्रगुप्त के तुरन्त बाद ही वीणा का चलन देश के अन्दर लोप नहीं हो गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अवश्य ही अपने पिता समुद्रगुप्त से वीणा-वादन सीखा होगा। समुद्रगुप्त के संगीतिक व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव अपने बेटे चन्द्रगुप्त द्वितीय पर अवश्य पड़ा होगा। उसके बेटे ने अवश्य ही अपने पिता के शानदार गौरव का अनुकरण किया होगा। इस तथ्य की पुष्टि व्लाइटर प्रसिद्ध इतिहासकार ने अपनी "संगीत की ऐतिहासिक डायरी" में किया है। वास्तव में चन्द्रगुप्त द्वितीय के अन्दर पिता के ही अदम्य साहस तथा उच्च अभिलाषाएँ थीं। उसने बड़ी चातुरी से अपने पिता की गौरवमयी कीर्ति को स्थिर रक्खा।

भारतीय संगीत योरपीय देशों में पहुँचा—

विक्रमादित्य के समय से भारतीय संगीत योरपीय देशों में पहुँचा, क्योंकि योरपीय देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध भी था। गुजरात के बन्दरगाहों पर इसी का अधिकार था, इसलिये योरपीय देशों से व्यापार करने में सुविधा थी। रोम, फ्रान्स, इगलैंड, आयरलैंड, हंगरी आदि देशों में भारतीय संगीत का अधिक प्रचार हुआ। कहते हैं, अरब देश में भी भारतीय संस्कृति पहुँची। अरब के विख्यात इतिहासकार जाहिज़ ने लिखा है—"भारतीय संगीत से अरब वालों को बहुत प्रेम था। उनके जीवन पर भारतीय संगीत की गहरी छाप पड़ी थी।" स्पेन के काजी-सईद अन्दलासी ने "तब का तुल उमम" नामक पुस्तक के बीसवें पृष्ठ पर लिखा है कि—"भारतीय संगीत की नाफर (यह एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है बुद्धिमत्ता के फल) नामक पुस्तक हमें प्राप्त हुई है। इसमें रागों और स्वरों का वर्णन है।" इससे यह स्पष्ट है कि संगीत की पुस्तकों का भी अरबी में अनुवाद हुआ था।

महाकवि एवं नाटककार कालिदास ने संगीत को नवीन दिशा दी, और उन्होंने संगीत-उद्यान में नवीन-नवीन पुष्प खिलाएँ—

इस काल में नाट्य-युग का स्वर्ण युग भी प्रारम्भ होता है। सम्राट विक्रमादित्य के दरबार में ही महान कवि एवं नाटककार कालिदास रहता था। कालिदास भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की अनुपम विभूति हैं। संस्कृत के वे अद्वितीय नाटककार तथा कवि हैं। इनके काल के सम्बन्ध में अब तक विवाद चल रहा है। कुछ विद्वान उन्हें पहली शताब्दी ई० पू० का मानते हैं। किन्तु बहुमत इसी मत के पक्ष में है कि वे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन थे। उनके जीवन के सम्बन्ध में

अधिक ज्ञात नहीं। अनेक किवदन्तियाँ प्रचलित हैं, लेकिन कोई ठोस ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। इन्होंने "कुमार सम्भव" तथा "रघुवंश" दो महाकाव्य लिखे तथा शकुन्तला, विक्रमोर्वशीयम एवं "मालविकाग्निमित्र" तीन नाटक लिखे। "मेघदूत" तथा "ऋतु संहार" दो अनुपम गीत काव्य लिखे। शकुन्तला विश्व साहित्य का अनुपम संगीतमय नाटक है। यह नाटक संगीत की स्वर्णिमा एवं मधुरिमा से परिपूर्ण हैं। सभी सभ्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। इसमें शकुन्तला और राजा दुष्यन्त की अमर प्रेम की सजीव कहानी वर्णित है। केवल इसी को लिखकर कालिदास अमर हो सकते थे। संगीत की उच्चता भी हमें इस नाटक में प्राप्त होती है, तभी तो जर्मन का महाकवि गेटे इसे पढ़कर नाच उठा था और उसने कहा था कि पृथ्वी पर कहीं स्वर्गीय आनन्द का दिव्य दृश्य देखने को मिलता है, तो वह इसी नाटक में प्राप्त होता है। जीवन और संगीत का जितनी कलात्मकता से इस नाटक में आलिंगन हुआ है, उसको पढ़ते ही बनता है। वास्तव में यह विश्व साहित्य में अद्वितीय कृति है। "मेघदूत" एक अनुपम गीत काव्य है। इसमें एक निर्वासित यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अपने जीवित रहने का सन्देश भेज रहा है। उसकी एक-एक पंक्ति माधुर्य तथा पदलालित्य से ओत-प्रोत है। इसकी पृष्ठभूमि पूर्ण संगीतमयी है। इस युग में महाकवि कालिदासजी के नाटक सार्वजनिक समारोहों में खेले जाते थे। इससे मालूम पड़ता है कि उस वक्त देश का वातावरण बड़ा ही उच्चकोटि का था।

वैसे तो कालिदास के सभी ग्रंथ अनुपम हैं। उनकी भाषा अत्यन्त सरल तथा परिमार्जित है। प्रेम तथा करुणा इन दो मानवीय भावों के व्यक्त करने में जो सफलता कालिदास को मिली है, शायद ही किसी को मिली हो। कालिदास को भारतीय शेक्सपीयर के नाम से योरपीय इतिहासकार सम्बोधित करते हैं। वास्तव में कालिदास की अद्वितीय कृतियों से संगीत के सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई। उसकी कृतियों ने भारतीय संगीत की स्वर्णिमा को विकास के गगन पर पहुँचा दिया।

श्री जवाहरलाल नेहरू महान नाटककार कालिदास के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तान की खोज" में लिखते हैं :—"यूरोप ने प्राचीन हिन्दुस्तानी नाटकों के बारे में तब जाना जब कि १७८९ ई० में सर विलियम जोन्स ने कालिदास के 'शकुन्तला" का अनुवाद प्रकाशित किया, इस खोज से यूरोप के विचारशील लोगों में हल-चल पैदा होगई, और इस पुस्तक के कई संस्करण निकले। सर विलियम जोन्स के अनुवाद के सहारे जर्मन, फ्रेन्च डेनिश और इटैलियन में इसके अनुवाद भी हुए। जर्मन का महान कवि गेटे पर इसका गहरा असर हुआ और उसने शकुन्तला की जी खोल कर तारीफ की। "फोस्ट" प्रस्तावना जोड़ने का विचार,

कहा जाता है, उसके मन में कालिदास की प्रस्तावना को पढ़ कर उठा, और यह संस्कृत नाटकों की साधारण परम्परा के अनुसार ही लिखी गई थी।

कालिदास संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा कवि और नाटककार माना गया है। प्रोफेसर सिल्वान लेवी ने लिखा है:—"हिन्दुस्तानी कविता और साहित्य के क्षेत्र में कालिदास का नाम चमक रहा है। नाटक, महाकाव्य और विरह गीत आज भी इस कलाकार की प्रतिभा और सूझ-बूझ का सबूत दे रहे हैं। सरस्वती के वरद पुत्रों में यह अद्वितीय है और इन्हें ही ऐसी महान रचना करने का सौभाग्य हुआ है, जिससे हिन्दुस्तान का आदर बढ़ा है और खुद मानवता ने अपने को पहचाना है।" उज्जयिनी में शकुन्तला के जन्म पर जो आलोक हुआ था, उसने कई लम्बी सदियों बाद पच्छिम की दुनिया को भी तब आलोकित किया जब कि विलियम जोन्स ने इसका उसे परिचय कराया। कालिदास ने अपने लिए उज्ज्वल तारों के बीच स्थान कर लिया है, जहाँ कि हर एक नाम इंसानी भावना के एक युग की नुमाइन्दगी करता है। इन नामों का सिल-सिला इतिहास की रचना करता है, बल्कि यों कहिए कि खुद इतिहास बन जाता है।

कालिदास ने और नाटक भी लिखे हैं, और कुछ लम्बे काव्य रचे हैं। उनका बहुत ठीक-ठीक तैय नहीं हो पाया है, लेकिन अनुमान है कि वह चौथी सदी ईसवी के अन्त के लगभग, उज्जायिनी में गुप्त खानदान के चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के जमाने में थे। परम्परा कहती है कि वह इस दरबार के नवरत्नों में से एक थे, और इसमें कोई शक नहीं कि उनकी प्रतिभा को लोगों ने पहचाना और उनकी अपनी जिन्दगी में पूरी कद्र हुई। वह उन भाग्यवानों में से थे, जिन्हें कि जिन्दगी में आदर मिला, और जिन्होंने सुन्दरता और कोमलता का—जिन्दगी की कड़ाइयों और रूखेपन के मुकाबिले में ज्यादा अनुभव किया। उनका रचनाओं में जिन्दगी के लिए प्रेम और प्रकृति की सुन्दरता के लिए एक उमंग मिलती है।

कालिदास की एक बड़ी कविता है "मेघदूत"। एक प्रेमी है, जिसे कि पकड़ कर अपनी प्रेयसी से अलग कर दिया गया है, बरसात के मौसम में, एक बादल से, अपनी गहरी चाह का सन्देश, उसके पास पहुँचाने के लिए कहलाया है। इस कविता की और कालिदास की, अमरीकन विद्वान राइडर ने जी खोल कर तारीफ की है। वह कविता के दो हिस्सों का हवाला देते हुए कहता है:—"पहले आधे में बाहरी प्रकृति का बयान है, लेकिन उसमें इन्सानी जज्बे पिरोये गए हैं, दूसरे आधे में इन्सानी दिल की तस्वीर है, लेकिन वह तस्वीर प्रकृति की सुन्दरता के चौखटे में मढ़ी हुई है। यह काम इतनी हुशियारी के साथ

किया गया है कि यह कहना मुश्किल हो जाता है कि कौन-सा आधा हिस्सा ज्यादा अच्छा है। जो लोग इस मुकम्मिल कविता को मूल में पाते हैं, उनमें से कुछ एक हिस्से को, कुछ दूसरे को ज्यादा पसन्द करते हैं। पाँचवीं सदी में कालिदास ने यह बात समझ ली थी, जिसे कि योरप ने उन्नीसवी सदी तक न समझी और जिसे कि वह अब भी एक अधूरे ढंग से समझ रहा है। यानी दुनिया आदमी के लिए नहीं बनी है, और यह कि वह अपना पूरा रुतबा तभी हासिल करता है जब कि वह उस जिन्दगी की शान और कीमत समझ लेता है, जो कि इन्सानी जिन्दगी से जुदा है। कालिदास ने इस हकीकत को पा लिया था, यह उसकी दिमागी ताकत का शानदार सबूत है। यह ऐसा गुण है कि जो ऊँचे दर्जे की कविता के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि बाहरी रूपरेखा की पूर्णता। कविता में प्रवाह कोई दुर्लभ बात नहीं, दिमागी समझ बूँझ भी बहुत असाधारण चीज नहीं, लेकिन दोनों का मेल जब से कि दुनिया शुरू हुई शायद आधी दर्जन से ज्यादा बार नहीं देखा गया। चूँकि कालिदास में यह मधुर मेल मौजूद था, इसलिए उनकी गिनती, ऐनाक्रिया और होरेस और शैली के पगंत में नहीं, बल्कि सोफाक्लीज और वर्जिल और मिल्टन की पंगत में है।"

सुप्रसिद्ध नाटककार भास ने भी संगीत को उत्कृष्ट बनाने में महान योग दिया—

इसी काल में दूसरे महान नाटककार भास भी हुए हैं। भास संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं। कालिदास ने स्वयं उनकी बड़ी प्रशंसा की है। भास का समय ३०० ई० के लगभग माना जाता है। उनके १३ नाटक प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें "दूत घटोत्कच", "दूत वाक्य", "उरु भंग", "बाल चरित" एवं "स्वप्न वासवदत्ता" अधिक प्रसिद्ध हैं। "स्वप्न वासवदत्ता" में कोशाम्बी के राजा उदयन तथा उज्जैन के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता की प्रणय कहानी का सजीव चित्रण है। भास के यह उच्चकोटि के नाटक भी इस युग की जनता बहुत पसन्द करती थी, इन नाटकों के प्रदर्शन के अवसर पर आम जनता की अपार भीड़ होती थी, इससे यह ज्ञात होता है कि सामान्य जनता की कला-प्रियता बड़ी उच्चकोटि की थी। साधारण जनता का संगीत ज्ञान भी उच्चकोटि का था, तभी तो वह इतनी उच्चकोटि की कृतियों की सुषमा का आनन्द ले सकने में सफल होती थी।

सुप्रसिद्ध नाटककार भास के सम्बन्ध में श्री नेहरूजी लिखते हैं—"अब यह यकीन किया जाने लगा है कि ईसा से कब्ल की तीसरी सदी में नियमित रूप से लिखे गए संस्कृत नाटक पूरी-पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुके थे, बल्कि कुछ विद्वानों

का ख्याल है कि यह बात ई० पू० पाँचवीं सदी में ही पैदा हो गई थी। जो नाटक मिलते हैं, उनमें और कब्ल के नाटककारों और नाटकों के हवाले अक्सर आते हैं, जिनका कि अभी तक पता नहीं चला था; ऐसे खोए हुए नाटककारों में एक भास था, जिसकी बाद के नाटककारों ने बड़ी तारीफ की है।"

नेहरूजी आगे अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तान की खोज" में लिखते हैं—"जहाँ तक पुराने हिन्दुस्तानी नाटकों के इतिहास की बात है, इन खोजों ने हमारे सामने एक नया ही दृश्य ला दिया है, और हो सकता है कि अगर और खोजे हों और नई रचनाएँ मिले तो हिन्दुस्तानी संस्कृति के इस मनोरंजक विकास पर और रोशनी पहुँचे, क्योंकि जैसा सिल्वान लेबी ने अपनी पुस्तक "लथियेम इण्डयान" (हिन्दुस्तानी रंगशाला) में लिखा है—"नाटक में उदय होती हुई सभ्यता की महत्ता अभिव्यक्ति होती है, यह असली जिन्दगी का बयान करता है। यह एक चमत्कारी रूप में, सारभूत तथ्यों को, गौण बातों से अलग करके, हमारे सामने एक प्रतीक के रूप में रखता है। हिन्दुस्तान की मौलिकता की उसकी नाट्यकला में पूरी-पूरी अभिव्यक्ति हुई है। इस कला में हिन्दुतान की रूढ़ियों, सिद्धान्तों और संस्थाओं का मिला-जुला सार पाया जाता है।"

इस काल में अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान् हुए—

'मृच्छकटिक" के रचयिता शूद्रक, "मुद्राराक्षस" के रचयिता विशाखदत्त, "किरा ताजुर्नीयम " के रचयिता भारवी इसी युग में हुए। शूद्रक भी महान नाटक कार थे। उन्होंने अनेक मौलिक कृतियाँ देश को प्रदान की। और इनके नाटक भी प्रायः संगीत प्रधान होते थे, क्योंकि यह सब, संगीत का जीवन के लिए यथार्थ महत्व समझते थे। इसीलिए इनके नाटकों में संगीत प्रधान रहा। इन नाटकों में संगीत के मौलिक तथ्यों की पूर्ण रक्षा की गई है। नाटकों एवं काव्यों में विपंची, परिवादनी, किन्नरी आदि वीणाओं का उल्लेख किया गया है। गुप्त-काल में शिल्प-कला की भी बड़ी उन्नति हुई। अंजता, अमरावती और सांची के स्तूपों में वस्तु कला विशारदों ने विविध प्रकार की वीणाओं के नमूने अंकित किए हैं। भास नाटककार ने भी अपने नाटकों में इन वीणाओं का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि इस काल में वीणा का प्रचलन खूब जोरों पर था।

शूद्रक के "मृच्छकटिक" का एक अनुवाद १९२४ में न्यूयार्क में रंगमंच पर खेला गया। "नेशन" पत्र के नाटकीय समालोचक, मिस्टर जोजेफ उडक्रच ने उसके बारे में यह लिखा था :—"अगर दर्शक को विशुद्ध कला नाटक का, जिसकी कि सिद्धान्तवादी लोग चर्चा करते रहते हैं, सच्चा नमूना कहीं देखने को मिल सकता

है, तो वह यहाँ पर मिलेगा और यही पर उसे पूरव के सच्चे ज्ञान पर विचार करने का मौका मिलेगा, जो कि गूढ़ सिद्धान्तों में नहीं रक्खा हुआ है, बल्कि एक विशेष कोमलता में है, जो कि परम्परागत ईसाई मत की कोमलता से, जिसे कि इब्रानी मत की कट्टर पवित्रता ने बिगाड़ रक्खा है, कहीं ज्यादा गहरी और सच्ची है............एक बिल्कुल गढ़ा हुआ नाटक है, लेकिन जो दिल पर असर डालता है, क्योंकि वह वास्तविकता का चित्रण नहीं करता, बल्कि खुद वास्तविक है...... इसका लिखने वाला जो भी रहा हो, और चाहे वह चौथी सदी में हुआ हो चाहे आठवीं में, वह एक भला और बुद्धिमान आदमी था, और उसकी बुद्धिमानी या भलमन-साहत उपदेशक के होठों से या तेज चलने वाले कलम से निकलने वाली नहीं, बल्कि दिल से उपजने वाली है। यौवन और प्रेम की नूतन सुन्दरता के लिये उसकी कोमल सहानुभूति ने, उसके शांत स्वभाव को, अपना पुट दिया है; और वह इतना प्रौढ़ हो चुका है कि यह समझे कि एक हल्की-फुल्की और गढ़न्त घटना चक्रों वाली कहानी भी कोमल मानवता और निश्चित भलाई का वाहन बन सकती है।.... ....इस तरह का नायक सिर्फ ऐसी सभ्यता पैदा कर सकता है जिसमें पायदारी आगई हो; जबकि किसी सभ्यता ने अपने सभी मामलों पर विचार कर लिया हो, तभी वह ऐसे शांत और सरल नतीजे पर पहुँच सकती है। मैकबैथ और ओथेलो, चाहे जितने बड़े और हिला देने वाले चरित्र हों, बर्बर नायक हैं, क्योंकि शेक्सपीयर का भावुक आवेग एक ऐसा आवेग है जिसे कि एक नई जगी हुई चेतना और बर्बर युग की बहुत-सी नैतिक धारणाओं के संघर्ष ने पैदा किया है। हमारे जमाने का यथार्थवादी नाटक भी इसी तरह की उलझनों का नतीजा है, लेकिन जब मसले स्थिर हो जाते हैं, जब कि दिमाग से किए गए फैसलों के जरिये आवेग शाँत हो जाते हैं तब रूप मात्र रह जाता है।..........यूनान और रोम को छोड़कर यूरोप में किसी पिछले जमाने में, हमें इससे ज्यादा सभ्य कृति नहीं मिल सकती।"

इन उद्धरणों से आप सहज ही में कल्पना कर सकते हैं कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में जो संस्कृत में नाटक रचे गए थे वे कितने उच्चकोटि के थे, और उनमें कितना व्यापक जीवन का संगीत, जीवन के गीत भरे हुए थे। नाटक संगीत के परे की वस्तु नहीं है। इस काल में संगीत का विकास नाटकों के रूप में हुआ। संगीत को समझने के लिये हमें संस्कृत का गहरा अध्ययन करना पड़ेगा क्योंकि जितनी भी कृतियाँ रची गई वह सब संस्कृत अथवा प्रकृति भाषा में ही पाई जाती हैं।

नेहरूजी महान नाटककार शूद्रक तथा उस वक्त की नाटकीय स्थिति के सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"कालिदास से शायद बहुत पहले एक और मशहूर नाटक रचा गया था शूद्रक का "मृच्छकटिक"। यह एक कोमल और एक हद तक कृत्रिम नाटक है, फिर भी इसमें कुछ ऐसी असलियत है कि उसका हम पर असर होता है और इससे हमें उस जमाने की तहजीब और विचारों की झांकी मिलती है। ४०० ई० के लगभग चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही जमाने में एक दूसरा मशहूर नाटक रचा गया, यह विशाखदत्त का "मुद्रा राक्षस" था। यह एक खालिस राजनीतिक नाटक है, जिसमें प्रेम का या किसी पौराणिक कथा का आधार नहीं किया गया है। इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने का हाल है, और उसका प्रधानमन्त्री चाणक्य, जिसने कि "अर्थशास्त्र" लिखा था इसका प्रधान पुरुष है। कुछ मानों में यह नाटक आज के जमाने पर बहुत मौजू आता है।"

"संस्कृत नाटक की धारा सदियों तक बहती रही लेकिन नवीं सदी के उपरान्त उसकी खूबियों में जाहिरा कमी आई। यह कमी और सिलसिले बार उतार हमें जिन्दगी के और कामों में भी दिखाई पड़ता है। यह समझाया गया है कि नाटकों का यह ह्रास कुछ अंशों में इस वजह से हो सकता है कि भारतीय अफगान और मुगल जमानों में इसे राज दरबार की सरपरस्ती नहीं हासिल हुई, और इस्लाम मजहम वालों ने कला के इस रूप यानी नाटकों को यों नहीं पसन्द किया कि इसका ताल्लुक कौमी मजहब से था, क्योंकि यह साहित्यिक नाटक हम उसके आम पसन्द पहलुओं को छोड़ देते हैं जो कि जारी रहे। ऐसा था कि ऊँचे वर्ग के लोगों के लिए लिखा गया था और उन्हीं की सरपरस्ती का इसे सहारा था। लेकिन इस दलील में ज्यादा दम नहीं अगर्चे यह मुमकिन है कि ऊपर की सियासी तब्दीलियों ने थोड़ा बहुत दूर का असर डाला हो। सच बात तो यह है कि संस्कृत नाटक का ह्रास इन सयासी तब्दीलियों से बहुत कब्ल दिखाई पड़ने लगता है। और, यह तब्दीलियाँ भी, कुछ सदियों तक सिर्फ उत्तरी हिन्दुस्तान में हुई और अगर इस नाटक में कोई दम बाकी रहा था तो वह दक्खिन में पनप सकता था। भारतीय अफगानों तुर्कों और मुगल शासकों का कारनामा—कुछ थोड़ी मुद्दतों को छोड़कर जब कि कट्टरपना गालिब आया है, यह रहा है कि उन्होंने हिन्दुस्तान की संस्कृति को यकीनी तौर पर बढ़ावा दिया है, और अक्सर उसमें नए रुख पैदा किए हैं और अपनी बातें जोड़ी हैं। हिन्दुस्तानी संगीत को, बड़े उत्साह से, ज्यों का त्यों मुसलमानी दरबारों में और अमीरों के यहाँ उठालिया गया है, और इसके कुछ सबसे बड़े उस्ताद मुसलमान हुए हैं। सहित्य और कविता को भी बढ़ावा मिला है और मशहूर हिन्दी कवियों में मुसलमान भी हैं। बीजापुर के सुलतान, इब्राहीम आदिल शाह ने हिन्दी में संगीत पर एक किताब लिखी है, हिदुस्तानी कविता और संगीत दोनों में ही हिन्दू देवी देवताओं के

जिक्र भरे पड़े हैं। लेकिन इन्हें कबूल किया गया, और पुराने रूपक और अलंकार चलते रहे। यह कहा जा सकता है कि मूर्तियों का बनाना छोड़कर, कला का कोई भी रूप नहीं है जिसे कि मुसलिम शासकों ने (कुछ अपवादों को छोड़कर) दबाने की कोई कोशिश की हो।

संस्कृत नाटक का ह्रास यों हुआ, उन दिनों में हिन्दुस्तान में, दूसरी दिशाओं में भी जवाल आया हुआ था, और रचना शक्ति घट रही थी। अफगानों और तुर्कों के दिल्ली में तख्तनशीन होने के बहुत पहले ही यह जवाल शुरू हो गया था। बाद में संस्कृत को अमीरों की इल्मी जबान की हैसियत से फारसी से मुकाबिला करना पड़ा। लेकिन एक साफ वजह यह मालूम पड़ती है कि संस्कृत नाटकों की जबान में और उस जमाने की रोजमर्रा की जबान में एक बढ़ती हुई खाई पैदा हो रही थी। १००० ई० तक बोली जाने वाली आम ज़बान, जिससे कि हमारी मौजूदा जबानें निकली है। अदबी शक्ल अख्तियार करने लग गई थी।

फिर भी इन सब बातों के बावजूद, संस्कृत नाटक तमाम मध्य युग में और हाल तक लिखे जाते रहे हैं, यह एक अचरज पैदा करने वाली बात है। सन् १८९२ में शेक्सपीयर के "मिडसमर नाइट ड्रीम" का संस्कृत भावानुवाद निकला, पुराने नाटकों की पाँडुलिपियाँ बराबर मिल रही हैं। इनकी एक सूची जोकि प्रोफेसर सिल्वान लेवी ने सन् १८९० में तैयार की थी, ३७७ नाटकों और १८९ नाटककारों के नाम देती हैं। एक और हाल की फहरिस्त में ६५० नाटकों के नाम दिये गये हैं।

पुराने नाटकों की (कालिदास और दूसरे के) भाषा मिली-जुली है यानी उसमें संस्कृत और एक या ज्यादा प्राकृतों का इस्तैमाल हुआ है, यह प्राकृतें संस्कृत की ही बोल चाल का रूप हैं। एक ही नाटक में पढ़े लिखे लोग संस्कृत बोलते हैं और साधारण अनपढ़ लोग, आमतौर से औरतें, प्राकृत बोलती हैं, हालांकि इसके अपवाद भी मिलेंगे। श्लोक या गीत, जिनकी बहुतायत है संस्कृत में हैं। इस मिली-जुली भाषा की वजह से शायद नाटक आम तमाशबीनों को ज्यादा मकबूल होता था। यह साहित्यिक भाषा और आम पसंद कला के अलग-अलग तकाजों के बीच का एक समझौता था। सिल्वान लेवी, इसका कुछ मानों में फ्रांसीसी दुखान्त नाटकों से मुकाबला करता है, जो अपने विषयों के चुनाव की वजह से आम लोगों से अलग जा पड़ा था, और जिसने असली जिन्दगी से मुड़कर, एक रस्मी समाज पैदा कर लिया था।

लेकिन इस ऊँचे दर्जे की साहित्यिक रंगशाला को छोड़कर, हमेशा एक आम लोगों की रंगशाला रही है, जिसके बुनियाद में हिन्दुस्तान के महाकाव्यों और पुराणों की कथाएँ होती थीं, और इन मजमूनों से देखने वाले वाकिफ़ हुआ करते थे। और उन्हें तमाशे से मतलब होता, नाटकीय तत्वों की रूपरेखा से नहीं। यह खेल लोगों की बोली में होते, इसलिए अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग बोलियाँ इस्तैमाल की जाती थीं, दूसरी तरफ संस्कृत नाटक ऐसे थे जिनका कि सार हिन्दुस्तान में चलन था, क्योंकि संस्कृत सारे हिन्दुस्तान की भाषा थी।

इसमें कोई शक नहीं कि यह संस्कृत नाटक खेले जाने के लिए लिखे जाते थे, क्योंकि इनमें तफ़सील से अभिनय संकेत दिए गए हैं और देखने वालों को विठाने के भी कायदे थे। कदीम यूनान की चलन के खिलाफ यहाँ नटियाँ खेल में हिस्सा लेती थीं। यूनानी और संस्कृत दोनों में प्रकृति के सम्बन्ध में एक सूक्ष्म चेतना मिलती है, एक ऐसा भाव मिलता है कि मनुष्य प्रकृति का अंग है। इनमें संगीत का जबरदस्त पुट है और कविता जिन्दगी का एक लाजिमी अंग जान पड़ती है, जिसमें कि भरपूर मानी है और महत्व है। यह अक्सर स्वर से पढ़ी जाती थी। यूनानी नाटकों को पढ़ते हुए बहुत से ऐसे रीति रिवाजों और विचार के तरीकों के हवाले आते हैं, जिनसे ख़याल यकायक पुराने हिन्दुस्तानी रीति रिवाजों पर जा पहुँचता है। यह सब होते हुए भी यूनानी नाटक संस्कृत नाटक से मूल में जुदा हैं।

यूनानी नाटक की खास जमीन "ट्रैजेडी" है यानी पाप की समस्या है। आदमी क्यों दुख उठाता है? दुनिया में पाप क्यों है? मज़हब और ईश्वर की पहेली है। आदमी कितना तरस के काबिल है जिसकी दो दिन की जिन्दगी है और जो शक्तिशाली भाग्य के खिलाफ अंधी और बिना मकसद की कोशिशों में लगा हुआ है।

यूनानी "ट्रैजेडी" के मुकाबले की जोरदार, और उस शान की कोई चीज संस्कृत में नहीं है। दरअसल यहाँ ट्रैजेडी (दुखान्त) जैसी कोई चीज है ही नहीं, क्योंकि इसकी मनाही रही है। इस तरह के बुनियादी सवालों पर विचार नहीं किया गया है, क्योंकि नाटककारों ने धार्मिक विश्वासों को जैसे वह प्रचलित थे, मान लिया है। इनमें पुनर्जन्म और कार्य कारण के सिद्धान्त हैं। बिना कारण के या आकस्मिक पाप पर विचार ही न हो सकता था, क्योंकि जो कुछ अब होता है वह पूर्वजन्म की किसी पहली घटना का लाजमी नतीजा है। अन्धे तरीके पर काम करने वाली, अंधी ताकतों की, जिसके खिलाफ़ आदमी लड़ता है, अगर्चे उसकी लड़ाइयों का कोई फल नहीं निकलता, यहाँ गुंजाइश ही नहीं है। फिलसूफ और विचारक, इन सीधी-

सादी व्याखाओं से सन्तुष्ट न होते थे, और वह बराबर इनके पीछे क्या रहस्य है, इसकी खोज में रहते थे, और आखिरी कारण और पूरी तफ़सील जानना चाहते थे। लेकिन जिन्दगी इन्हीं विश्वासों के सहारे चलती थी और नाटककार उनकी कुरेद नहीं किया करते थे। यह नाटक, और संस्कृत काव्य आमतौर पर साधारण हिन्दुस्तानी धारणा को मान कर चलते थे, और इस धारणा से विद्रोह के कोई ऐसे चिह्न नहीं हासिल होते हैं। नाटकों की रचना के बारे में कड़े नियम बने हुए थे और उन्हें तोड़ सकना आसान न होता था। फिर भी किस्मत के आगे दीनता से सिर नहीं झुकाया गया है। नायक हमेशा हिम्मत वाला आदमी होता है, जो कठिनाइयों का मुकाबला करता है। चाणक्य अवज्ञा के साथ 'मुद्राराक्षस' में कहता है कि "मूर्ख भाग्य के भरोसे रहते हैं" वह अपने ऊपर भरोसा करने के बजाए, मदद के लिए सितारों की तरफ देखते हैं। कुछ बनावट आजाती है, नायक हमेशा नायक बना रहता है, दुष्ट हमेशा दुष्टता के काम करता है, बीच का ताव भाव नहीं मिलता।

फिर भी जबरदस्त नाटकीय मौके आते हैं, दिल पर असर पैदा करने वाले दृश्य दिखाए गए हैं और जिन्दगी की एक पृष्ठभूमि है जोकि सपने की तस्वीरं की तरह जान पड़ती है, यानी जो अस्ल भी है, और बे बुनियाद भी, और इन सब की कवि की कल्पना शानदार भाषा में बुन कर रख देती है। ऐसा जान पड़ता है, चाहे दरअसल ऐसा न रहा हो—कि हिन्दुस्तान की जिन्दगी उस वक्त ज्यादा शान्तिमय ज्यादा पायदार थी, और मानों उसने जड़ों का पता लगा लिया था और अपने मसलों पर हल पा गई थी। यह जिन्दगी धीर-गम्भीर भाव से बहती जाती है, और तेज हवा के थपेड़ों और गुजरते हुए तूफान भी सिर्फ उसकी सतह को हिला जाते हैं। यूनानी ट्रेजेडी के खौफनाक तूफानों जैसी कोई चीज यहाँ नहीं है। लेकिन उसमें बड़ी मानवता है, एक सुन्दर सांमजस्य है और एक व्यवस्थित एकता है। सिल्वान लेवी ने लिखा है कि नाटक अब भी हिन्दुस्तानी प्रतिभा का सबसे अच्छा आविष्कार है।"

प्रोफेसर ए० बैरिडेल कीथ भी कहते हैं कि—"संस्कृत नाटक को यथार्थ में हिन्दुस्तानी काव्य की सबसे ऊँची उपज समझा जा सकता है, जिसमें कि हिन्दुस्तानी साहित्य के सावधान रचनाकारों की साहित्यिक कला की अंतिम कल्पना का निचोड़ आ गया है—दरअसल ब्राह्मण जिन्हें कि इस और दूसरे मामलों में बहुत बुरा-भला कहा गया है हिन्दुस्तान के दिमागी बड़प्पन के मूल में रहे हैं। जिस तरह से कि उसने हिन्दुस्तानी फिलसफा पेश किया, उसी तरह अपने दिमाग की एक दूसरी कोशिश से उसने नाटक के सूक्ष्म और प्रभावशाली रूप का विकास किया।"

नेहरूजी ने आगे लिखा है—"कदीम हिन्दुस्तानी ध्वनि पर बड़ा जोर देते थे और इसीलिए उनकी रचनाओं में, चाहे वह गद्य में हो या पद्य में, एक लय और संगीत का गुण मिलता है। शब्दों का ठीक-ठीक उच्चारण हो सके, इसकी बड़ी कोशिश होती थी, और इसके लिए नियम बनाए गए थे। इसकी और भी जरूरत यों पड़ी कि पुराने जमाने में शिक्षा जबानी होती थी, और सारी पुस्तकें कंठ करादी जाती थीं, और इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती थी। शब्दों की ध्वनि को महत्व देने का नतीजा यह हुआ कि मतलब और ध्वनि के मेल कराने की कोशिशें हुई। कभी-कभी बहुत सुन्दर मेल पैदा हुआ और कभी-कभी भद्दे-भद्दे और बनावटी सयोग भी बन पड़े। ई० एच० जान्सटन ने इसके बारे में लिखा है :—"हिन्दुस्तान के संस्कृत कवियों में ध्वनि के परिवर्तनों का जो एहसास है उसके बराबर की मिशाल दूसरे देशों के साहित्य में बहुत कम मिलेंगी, और उनके शब्द-विन्यास में बड़ा ही आनन्द आता है। लेकिन उनमें से कुछ ध्वनि और आशय को इस तरह से भी मिलाने की कोशिश करते हैं कि उससे कोई बारीकी नहीं पैदा होती, और उन्होंने थोड़े से व्यंजनों के सहारे और कभी एक ही व्यंजन के सहारे पद्य रचना करके तो बड़ा ही अनर्थ किया है।"

लेकिन वास्तव में ध्वनि से उच्चारण करने का मतलब क्या था, सिर्फ यही कि ताकि लोग संगीत की यथार्थता, और उसकी व्यापकता समझ सके। संस्कृत नाटक, अथवा काव्य जो कुछ भी इस जमाने में रचे गए, उन सब में संगीत प्रधान रहता था। वे काव्य भी संगीतमय होते थे। कविता का पाठ भी संगीतिक शैली में किया जाता था। काव्य और संगीत दो पृथक-पृथक धारायें नहीं थीं, बल्कि दोनों की धारा एक ही थी। इसीलिए इस युग के संगीत को समझने के लिए पहले आपको नाटकों और काव्यों को खोजना पड़ेगा, उनका अनुशीलन करना पड़ेगा, तभी आप भारतीय संगीत की सही पृष्ठभूमि से अवगत हो सकेंगे।

गणित और ज्योतिष के महान विद्वान आर्य भट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त इसी काल में हुए। गणित की पृष्ठभूमि पर ही संगीत का विकास क्रम ऊपर उठता है। स्वरों की गतियों का क्रम भी गणित के द्वारा ही आगे बढ़ता है। स्वरलिप का जन्म भी गणित के आधार पर किया गया। गणित ने संगीत का वैज्ञानिक रूप निखारने में बड़ा योग दिया। इसी युग में याज्ञवाल्क्य, नारद, कात्यायन एवं बृहस्पति की स्मृतियां रची गईं। इन स्मृतियों से भी संगीत की नैतिक पृष्ठ उज्ज्वल हुई।

गुप्त युग भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्ण युग है। इस युग में भारतीय संगीत का जितना विकास हुआ उतना शायद किसी भी युग में नहीं हुआ, ऐसा सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने भी कहा है।

गुप्तकाल के संगीत की एक विशेषता यह भी रही, कि उसका विकास संरक्षण योग्य विद्वानों द्वारा क्रमिक रूप से हुआ—

डाक्टर विलयोर्क वाना ने अपने इतिहास जिसका नाम है "The Light of Indian Music" में पृष्ठ १५ पर लिखा है—भारतीय संगीत का विकास जितना गुप्तकाल में हुआ, उतना और किसी युग में नहीं हुआ, और जितने इस काल में संगीत और अन्य कला के विद्वान हुए उतने और किसी युग में नहीं हुए। इसी युग में भारतीय संगीत योरपीय देशों को अपनी उच्च एवं गौरवमयी भारतीय परम्परा को लिए हुए पहुँचा जिसने योरप को भारत के निकट ला दिया। हम योरपीय लोगों ने समझा कि भारतीय लोगों की संस्कृति कितनो उच्च है। पहले हमारी राय कुछ और थी, किन्तु जब हमने भारतीय संगीत के दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का अन्वेपरण किया, तो हमें अनेक बहुमूल्य चीजें प्राप्त हुई, जिसने हमारी पूर्व धारणा को ही परिवर्तित कर दिया और जिसने गुप्तकाल के संगीत ऐश्वर्य की मनोरम झाँकी कराई। इस काल की सबसे बड़ी विशेपता यह रही कि जो भी राजा गद्दी पर बैठा वह संगीत मर्मज्ञ रहा, इसीलिए उन्होंने संगीत के प्रगति पूर्ण इतिहास में नवीन पृष्ठ जोड़े।"

गुप्तकाल के संगीत की एक विशेपता यह भी रही कि उसका विकास संरक्षण योग्य विद्वानों द्वारा क्रमिक रूप से हुआ। उसका विकास क्रम कहीं टूटने नहीं पाया। योग्य विद्वानों ने अपनी उच्च प्रतिभा के द्वारा उसके कलेवर को जितना भी सुन्दर बना सकते थे बनाया। इसी काल में सर्वप्रथम भारतीय संगीत का ज्ञान अति उत्तुंग उर्मिमालाओं से क्रीड़ायें करता हुआ, अरब सागर के विशाल वक्ष: स्थल को चीर कर अतितप्त बालुका पर अपने को तपाते हुए हजरत मुहम्मद के अनुयायिओं में फैला। संगीत विकास के लिए जो प्रयत्न इस काल में हुए, अगर उन सबका विश्लेषण करके प्रकाश डाला जाए तो एक पूरा ग्रन्थ ही बन जायगा। बहुत से प्रयत्नों पर अब भी आवरण पड़ा हुआ है, अब तक संगीत की खोज ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बहुत कम हो पाई, इसलिए भविष्य के गर्भ में अनेक सम्भावनाएँ प्रच्छन्न हैं।

गुप्त काल संगीत का स्वर्ण युग क्यों है ?

गुप्तकाल भारतीय संगीत का स्वर्ण युग क्यों है, इस पर बुलडोगइप्सा ने अपनी छोटी-सी पुस्तक "The essence of Indian Music" में लिखा है—"मैं

गुप्त काल को भारतीय संगीत का स्वर्ण युग क्यों मानता हूँ, वह सिर्फ इसलिए कि इस काल की साधारण जनता का साहित्य और कला को समझने का स्तर इतना उच्चकोटि का था कि वैसा उच्चकोटि का स्तर आज के प्रगतिशील एवं उच्च शिक्षित वर्ग में भी नहीं पाया जाता। वास्तव में उस वक्त की जनता का ज्ञान इतना परिष्कृत हो चुका था, इतना पुष्पित हो चुका था, कि जिसको देख कर आज हमें आश्चर्य करना पड़ता है। सामान्य जनता का इतना उच्चकोटि का ज्ञान हमें आज के योरप में भी देखने को नहीं मिलता, जो कि उस वक्त के भारत में था। आम जनता को विकास के इस प्रशस्त स्तर तक ले जाने के लिए अवश्य ही गुप्त काल में महान प्रयास किया गया होगा और यह प्रयास महान विद्वानों के द्वारा सरल बन गया होगा। गुप्त वंश का यह सबसे बड़ा सौभाग्य रहा कि उसके युग में सब विषयों के प्रकान्ड विद्वान हुए। जिनके योग्य संरक्षण में जनता विकास की ओर बढ़ती रही। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी रहा कि इस काल में जनता आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त रही। आम जनता को भी जीवन निर्वाह के लिए कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। हर चीज सुविधाजनक थी। किसी वस्तु की भी परेशानी नहीं थी। देश धन-धान्य पूर्ण था। सामान्य प्राणियों का जीवन सुख मय हो रहा था, इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को आत्म चिन्तन करने का सुअवसर मिल जाया करता था। इसलिए इस युग में संगीत, साहित्य की विशेष उन्नति हुई। और इसी लिए ही गुप्त काल स्वर्ण युग कहलाता है।"

इन सब तथ्यों के अध्ययन करने पर हम भी इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि वास्तव में गुप्त काल भारतीय संगीत के उत्कर्ष का प्रतीक है। भला इस स्पष्ट तथ्य से किसकी अमान्यता हो सकती है। परन्तु भारतीय संगीत के विकास का काफिला यहीं रुक नहीं गया वह निरन्तर आगे बढ़ता रहा, किसी युग में उसे पतन का मुख चूमना पड़ा, और किसी युग में उसे उत्कर्ष का देदीप्यमान आनन चूमने को मिला।

हर्षवर्धन-युग में संगीत

(६०६ ई०—६४७ ई०)

६०६ ई० में राज्यवर्द्धन का छोटा भाई हर्ष वर्धन गद्दी पर बैठा। हर्ष को अपने भाई की मृत्यु पर बहुत दुःख हुआ था, वह राजा नहीं बनना चाहता था, परन्तु मंत्रियों के बहुत समझाने-बुझाने पर वह सिंहासन पर बैठ गया। हर्ष ने उत्तरी भारत के राजाओं को हराने के पश्चात् भारत के बलभी राजा को ६३३ ई० में हराया, फिर उसने काठियावाड़ के राजाओं से कर वसूल किया, फिर उसने दक्षिणी भारत पर भी चढ़ाई की, नर्मदा नदी के उत्तर में उसकी धाक जम गई, परन्तु इसी नदी के दक्षिण में उसका सामना चालुक्य वंश के प्रतापी राजा पुलकेशिन द्वितीय ने सफलता पूर्वक किया, इसलिए हर्ष आगे नहीं बढ़ सका। हर्ष का साम्राज्य सिंध से आसाम तक और हिमालय पहाड़ से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। उत्तरी भारत में केवल पंजाब और राजपूताना उसके राज्य में शामिल नहीं थे। हर्ष की बहन राजश्री के कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए उसका राज्य भी हर्ष के साम्राज्य में शामिल हो गया और उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया।

हर्ष वर्धन स्वयं कला और साहित्य का प्रेमी था—

हर्ष जितना योग्य सेनापति था, उतना ही बड़ा वह कला और साहित्य प्रेमी था। हर्ष विद्वानों का आदर करता था, उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे। वह स्वयं भी अच्छा लेखक, नाटककार और संगीत प्रेमी था, उसने तीन नाटक लिखे थे, जिनकी विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की। इन नाटकों में हर्ष ने संगीत का बड़ा सुन्दर पुट दिया है। इन नाटकों के संगीत को देख कर यह अनुमान बड़ी आसानी से किया जा सकता है कि हर्ष का संगीत ज्ञान बड़ा उच्चकोटि का था, उसे राग रागनियों का परिचय था। वह अच्छा गाता भी था। नृत्य देखने का वह बड़ा शौकीन था, मिस्टर जालवीयर ने इस तथ्य की पुष्टि अपनी पुस्तक "भारत का प्राचीन संगीत" में की है।

महाकवि बाण भट्ट ने संगीत की पृष्ठ को उत्कृष्ट किया—

हर्ष के दरबार में बाणभट्ट महाकवि रहता था जोकि दरबारी कवि भी था, और जिसने हर्ष चरित नामक ग्रंथ की रचना की है। बाणभट्ट की कविता पूर्ण संगीत मयी होती थी। उसके रचे गीत उस काल में नारियाँ अपने आनन्द-प्रमोद के लिए गाया करती थीं, कई गीत उसके ऐसे भी थे जो नृत्य के साथ भी गाए जा सकते थे। बाणभट्ट के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती थी कि वे नाना प्रकार की ट्यूनों में गाये जा सकते थे। इनके गीतों में प्रायः जीवन के सभी अंगों पर प्रकाश डाला जाता था। वास्तव में उनके गीतों में जीवन छलकता था, "Really the life is full of in his Songs." says Bectrial वेकट्रायल का कथन है। कभी हर्ष भी बाणभट्ट के संगीतमय गीतों को गाया करता था। उसे गीत गाने में बड़ा आनन्द आता था। भाव गीत उसे विशेष रूप से पसन्द थे, वह गीतों को भावों की गहराइयों में खोजता था। जब उसका संगीतिक मूड होता, तो वह कई-कई घन्टे स्वर साधना में संलग्न रहता, और इसमें उसकी बहन राजश्री भी उसका साथ देती थी।

राजश्री को नाटक और संगीत से बड़ा प्रेम था—

राजश्री को भी नाटक और संगीत से विशेष प्रेम था। वह अपने भाई हर्ष से गाना सुना करती थी, और उन गीतों के गाने का स्वयं भी अभ्यास किया करती थी। नारी के उत्कर्ष का संगीत सुदृढ़ सम्बल वह मानती थी। वह अपने भाई के साथ नाटक भी देखा करती थी और कभी-कभी हर्ष को नाटक लिखने में सहायता भी दिया करती थी। उसकी कलात्मक सूझ बूझ बड़ी प्रशस्त थी। राजश्री को महिलाओं के विकास का भी बड़ा ध्यान रहता था, उसे इस बात का किंचितमात्र भी घमंड न था कि वह एक सम्राट की बहिन है, वह प्रत्येक नारी से चाहे वह कितनी ही साधारण क्यों न होती बात चीत करती, और उनकी मदद करती थी। उसने कई एक नारियों में संगीतिक चेतना भी जगाई। हर्ष स्वयं तो वीणा वादन में प्रवीण नहीं था, किन्तु वह वीणा सुनने का चाव रखता था। वह संगीत के समारोह भी अपने राज्य में जगह-जगह करवाता था, जिसमें अच्छे-अच्छे संगीतज्ञों को निमंत्रित किया जाता था। गुप्तकाल की भाँति ही इस काल में भी संगीत विकास का क्रम, बराबर चलता रहा। देश के अन्दर संगीत का फैलाव बराबर होता रहा। गुप्त काल की तरह इस काल में भी भारतीय संगीत विदेशों में गया।

इस काल में नाटकशालाओं का भी निर्माण हुआ—

इस काल में गुप्त काल की तरह अखिल भारतीय संगीत आयोजन भी हुआ करते थे, जिनमें सभी प्रान्तों के संगीतकार शामिल होते थे। हर्ष के समय में भी गुप्तकाल की तरह देश में नाटक शालायें जगह-जगह थीं और संगीत प्रदर्शन के लिए पृथक संगीत गृह भी थे। "नैषध चरित" में हर्ष ने कितने ही वीणाओं के नामों का उल्लेख किया है, जैसे—परिवादनी, विपंची, वल्लकी, घोषवती, वगैरह। वीणाओं का थोड़ा-थोड़ा परिचय भी दिया गया है। इस युग में दरअसल संगीत का प्रचार नाटकों के माध्यम से किया जाता था। यह युग मुख्यत: नाटक प्रधान युग रहा।

सर्वसाधारण लोग संगीत और वाद्यों में विशेष दिलचस्पी लेते, वे नाटक में अधिक रस न ले पाते थे, उनकी दिलचस्पी प्रधानतः संगीत में थी। इसीलिए इस युग के नाटकों में संगीत की प्रधानता रहती थी, और नृत्य तो स्थान-स्थान पर उनमें रहता था। कोई भी दृश्य नृत्य शून्य नहीं होता था, पर इस युग के नाटकों में जीवन की स्वाभाविकता की रक्षा नहीं की गई, वे कृत्रिमताओं से लाद दिए जाते थे, नाटक रचयिताओं का बहुत कम ध्यान वातावरण की स्वाभाविकता की ओर जाता था। जीवन की स्वाभाविक गति कैसी होती है, यह आपको इस युग के नाटकों में लेशमात्र भी न मिल सकेगी, पर हाँ शिल्पज्ञता के दृष्टिकोण से यह नाटक बहुत उच्चकोटि के होते थे। संगीत के दृष्टिकोण से भी इन नाटकों का बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है। मिस्टर अकलोरविन ने इस युग के नाटकों पर प्रकाश डालते हुए अपनी पुस्तक "The Ancient drama of India" में लिखा है—"हर्ष युग के नाटकों में हमें जीवन प्रवाह स्वाभाविक ढंग से प्राप्त नहीं होता, उस समय मानव जीवन की स्वाभाविकता पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। वे लोग अधिकतर नाटकों की कलात्मकता एवं सौन्दर्यात्मकता पर विशेष रूप से ध्यान देते थे।"

हर्ष स्वयं एक श्रेष्ठ नाटककार था—

हर्ष के समय में चीनी यात्री हुयेनसांग आया। वह ६२० ई० से ६४३ ई० तक भारतवर्ष में रहा। और उसने भारतवर्ष का काफी भ्रमण किया। उसने उस समय के भारतवासियों की दशा का वर्णन किया है। लेकिन उसने भारतीय संगीत के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, इसका मुख्य कारण यह है कि उसे संगीत से अनुराग नहीं था। वह बौद्ध भिक्षु था, उसने भारत के वर्णन में संगीत विकास की

ओर न्यूनतम ध्यान दिया। इसलिए हमें उसके वर्णन से संगीत का कोई स्पष्ट चित्र प्राप्त नहीं होता, लेकिन फिर भी उसके आधार पर तथा वाणभट्ट की पुस्तक "नैषध चरित्र" के आधार पर उस वक्त की स्थिति के बारे में विभिन्न पश्चमीय विद्वानों ने पृथक-पृथक अनुमान किया है। परन्तु उन अनुमानों की पृष्ठभूमि पूर्ण ऐतिहासिक है। प्रसिद्ध संगीतज्ञ अलकोजा ने अपनी पुस्तक "The description of Indian Music" में लिखा है—"हर्ष युग में हमें भारतीय संगीत का जो चित्र दीखता है वह नाटकों के माध्यमों द्वारा निर्माण हुआ, नाटकों के अतिरिक्त संगीत का स्वतंत्र अस्तित्व अधिक विकास पूर्ण नहीं था। हर्ष स्वयं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एवं समुद्रगुप्त के समान संगीतज्ञ एवं कवि नहीं था। और न उनके समान कला प्रेमी था, पर इसके विपरीत हमें एक दूसरा अभिमत भी मिलता है जिसको सेकनो जेस्टावो (Secno Jestavo) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The deep glance on Oriental music" में प्रगट किया है, वह इस प्रकार है—"हर्षवर्धन समुद्रगुप्त के समान ही संगीतज्ञ था, उसकी संगीत प्रतिभा की उड़ानें बड़ी सुन्दर थीं, उसके नाटकों में हमें उत्कृष्ट भारतीय संगीत मिलता है। उसने अपने काल में भारतीय संगीत के विकास के लिए अनेक प्रयत्न किए और इसीलिए इस काल का संगीत अपनी पूर्ण तरुणता पर पहुँच चुका था। उस संगीत पुष्प का सौरभ, ग्राम और नगर सभी जगह फैला हुआ था। झोंपड़ी में रहने वाले व्यक्तियों के हृदय भी संगीत प्रकाश से आलोकित हो रहे थे। ग्राम जनता भी नाचने गाने में विशेष दिलचस्पी लिया करती थी। वास्तव में हर्षवर्धन-युग भारतीय संगीत के इतिहास में एक उच्च स्थान रखता है।"

हर्ष विद्वानों एवं कलाकारों का बड़ा आदर करता था—

वाणभट्ट की दूसरी रचना "कादम्बरी" काव्य में भी संगीत का सजीव यौवन हमें देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ में आपको राग-रागनियों वाले गीत मिलेंगे। इस ग्रन्थ से हमें उस समय के कलात्मक विकास का पूर्ण पता लगता है। हर्ष के नाटक "नागानन्द", "प्रियदर्शिका" तथा "रत्नावली" विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों से भी हमें उस काल के संगीत विकास की स्थितियों के बारे में पता चलता है। हर्ष कलाकारों एवं विद्वानों का कितना आदर करता है इसका पता आपको इस तथ्य से ज्ञात हो जायगा कि उसने एक बार जयसेन नामक प्रकान्ड पण्डित को ८० गाँव जागीर दी, किन्तु जयसेन ने उसे स्वीकार न किया, भला एक कलाकार के लिए जागीर का क्या महत्व, इससे आपको यह भी ज्ञात हो जायगा कि उस समय के कलाकार कितने उच्चकोटि के चरित्र वाले होते थे, उनके सामने धन-

वैभव का कोई महत्व नहीं था, वे अपनी अद्वितीय कला पर ही गौरव करते थे। हरिदत्त नामक विद्वान से भी हर्ष विशेष प्रेम करता था। हरिदत्त को अपनी कला पर विशेष अधिकार था। उसने चीनी विद्वान को १०,००० स्वर्ण मुद्राएँ एवं ३०,००० रजत मुद्राएँ और १०० वस्त्र भेंट किए, जिन्हें ह्वानच्याँग ने स्वीकार नहीं किया। इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि हर्ष विद्वानों एवं कलाकारों का कितना गहरा आदर करता था। हर्ष स्वयं भी सुन्दर कलात्मक गीत लिखता था। उसके गीतों में मानव-हृदय की अभिव्यंजना पूर्ण रूप से रहती थी। और रहता था आत्मा का दिव्य निर्माल्य। बाणभट्ट ने उनके काव्य एवं कलात्मक शक्ति की प्रशंसा की है और गीत-गोविन्द के रचयिता जयदेव ने तो उन्हें भास तथा कालिदास के समकक्ष बताया है। कुछ विद्वानों की राय यह भी है कि रत्नावली, प्रियदर्शिका का लेखक हर्ष नहीं था बल्कि उसके दरबार का कोई दरबारी विद्वान था। खैर जो कुछ भी हो इतना तो निश्चय पूर्वक कहा ही जा सकता है कि हर्षवर्धन-युग में संगीत की स्थिति बड़ी विकासपूर्ण थी और हर्ष स्वयं काव्य और संगीत का पूर्ण मर्मज्ञ था।

हर्षवर्धन के सम्बन्ध में नेहरूजी अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तान की खोज" में लिखते हैं :—"राजा हर्ष भी, जिसने कि सातवीं सदी ईसवी के शुरू में एक नया साम्राज्य कायम किया, एक नाटककार था, और हमें उसके लिखे हुए तीन नाटक मिलते हैं। ७०० ई० के लगभग भवभूति हुआ है, जो कि संस्कृत साहित्य का एक और उज्ज्वल नक्षत्र था। उसका अनुवाद करना सहज नहीं, क्योंकि उसके नाटक की सुन्दरता उसकी भाषा में हैं, लेकिन वह हिन्दुस्तान में बहुत लोकप्रिय है, और सिर्फ कालिदास को उससे बड़ा समझा जाता है। विल्सन ने, जो कि ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में संस्कृत का प्रोफेसर था, इन दोनों के बारे में लिखा है कि :—"भव-भूति और कालिदास के श्लोकों से ज्यादा मधुर और सुन्दर और शानदार भाषा की कल्पना करना मुमकिन नहीं।"

महान संगीतज्ञ—मतंग

ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में मतंग लिखित "बृहद्देशीय" ग्रन्थ मिलता है। आपके समय के विषय में विद्वानों में मत भेद है, लेकिन अधिकतर विद्वान आपको छठी शताब्दी की समाप्ति और सातवीं का प्रारम्भिक काल का ही मानते हैं। मतंग ने ग्राम और मूर्छना शब्दों की विस्तृत परिभाषा दी है और गांधार ग्राम का उल्लेख किया है। समवादी स्वरों में ९ अथवा १३ श्रुतियों का अन्तर और विवादी स्वरों में २ श्रुतियों का अंतर मतंग को भी मान्य है। बृहद्देशीय ग्रन्थ में साम गायन के प्रारम्भिक तीन स्वरों के प्रयोग भी संकेत हैं। मतंग ने संगीत शास्त्र में ग्राम रागों का भी वर्णन कर "राग" शब्द का प्रयोग किया। मतंग ने लिखा है कि उसके समय

में सात जाति प्रकार प्रचलित थे, जिनमें से एक प्रकार राग जाति का भी था। राग जाति के विषय में मतंग ने लिखा है—

"स्वर वर्ण विशेपण ध्वनि भे देन वा पुनः ख्यते येन पः कश्चित् स राग सम्त सताम"।

इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन जाति गायन के लक्षण ही शनैः शनैः राग गायन में सम्मिलित हो गए। मतंग की राग जातियों के नाम इस प्रकार हैं— (१) टकी, (२) सावीरा, (३) मालव पंचम, (४) षंडव, (५) वट्ट राग, (६) हिंडोलक, (७) टक्क कौशिका, ये ही मतंग के मुख्य ग्राम राग कहे जाते हैं। जिनकी उत्पत्ति जातियों से हुई।

इस युग के संगीत में जनवादी दृष्टिकोण की प्रधानता थी—

विख्यात इतिहासकार राधा कुमुद मुकर्जी ने हर्ष के विषय में "Men And Thought in Aucient India" नामक पुस्तक में लिखा है—"हर्ष के चरित्र में समुद्रगुप्त तथा अशोक दोनों के गुणों का समन्वय था। समुद्रगुप्त की भाँति विभिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करके उन्होंने सम्राट का पद प्राप्त किया तथा देश की ऐतिहासिक एकता को पुनः स्थापित किया। उसके उपरान्त युद्ध को सदैव के लिए तिलांजलि देकर अशोक की भाँति अपनी सम्पूर्ण शक्ति को शान्ति के कार्यों में लगाया और देश की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में योग देकर उसके सांस्कृतिक व्यक्तित्व तथा महानता को विकसित किया।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संगीत के आन्तरिक सौन्दर्य "शान्ति" का यह बाद में महान उपासक बन गया था। संगीत ने उसके विचार-विश्व में जनवादी दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया था, इसीलिए इस युग के संगीत की वास्तविक धारा में जनवादी दृष्टिकोण की ही प्रधानता रही। और मिस्टर मुकर्जी के उल्लेख से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष के अन्दर समुद्रगुप्त की संगीतिक एवं कालात्मक सुषमा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई थी।

ह्वेनसांग की भेंट पुलकेशन द्वितीय से ६४१ ई० में नासिक नामक स्थान पर हुई थी, उसने चालुक्य नरेश तथा उसके राज्य का एक रोचक वर्णन छोड़ा है। पुलकेशन के विषय में वह लिखता है—"वह क्षत्रिय जाति का है, उसके विचार विस्तृत तथा गम्भीर हैं, उसकी सहानुभूति तथा सहायता का क्षेत्र व्यापक है। उसकी प्रजा पूर्ण भक्ति के साथ उसकी सेवा करती है।" पुलकेशी एक महान विजेता ही नहीं था, वह कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अपने शक्तिशाली पड़ोसियों से मैत्री-सम्बन्ध

स्थापित किया। ६२५ ई० में पूलकेशी ने ईरान के सम्राट खुसरो द्वितीय के दरबार में एक विशेष राजदूत भेजा। ईरान के सम्राट ने भी चालुक्य नरेश के दरबार में अपना राजदूत भेजकर इस मैत्री-सम्बन्ध को सुदृढ़ किया। अजन्ता की गुफाओं में एक चित्र है जिसमें चालुक्य नरेश द्वारा ईरान के राजदूत का जो स्वागत किया गया था उसका दृश्य है।

इस युग में ईरान से भारत का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध हुआ। भारतीय संगीत का "प्रकर्ष रूप" प्रथम बार ईरान में प्रवेश हुआ। हर्षवर्धन युग की यह एक महत्वपूर्ण घटना है। ईरानियों ने भारतीय संगीत को विशेष रूप से पसन्द किया। अनेक संगीत के ग्रंथ ईरानी भाषा में अनुवादित हुए। ईरानियों ने भारतीय संगीत की बड़ी सराहना की, इस तथ्य की पुष्टि सुप्रसिद्ध विद्वान आकवानिया ने "The Ancient music" नामक पुस्तक में (पृष्ठ २५ पर) की है।

इसी काल में भारतीय संगीत का प्रचार लंका, वर्मा, जावा, सुमात्रा में हुआ। इससे पूर्व के कालों में भी भारतीय संगीत इन देशों में पहुँच चुका था, इसीलिए इन देशों पर भारतीय संगीत की खूब गहरी छाप पड़ी। हर्ष की मृत्यु ४० वर्ष के दीर्घ शासन के पश्चात सन् ६४७ या ६४८ ई० में हो गई।

राजपूत काल में संगीत

(६४७ ई० से १००० ई० तक)

संगीत के वाह्य पृष्ठ पर अधिक ध्यान दिया गया—

राजपूत शब्द राजपुत्र से बना है। यह शब्द इस काल के राजाओं और क्षत्रियों के लिए प्रयोग होता है। ये राजपूत प्राचीन क्षत्रियों के वंशज थे। कुछ विद्वान कहते हैं कि ये हूण, शक इत्यादि विदेशी जातियों के वंशज थे जो धीरे-धीरे हिन्दू हो गए थे। परन्तु निश्चय रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कुछ भी हो इन राजपूतों के आपस में एक दूसरे से विवाह होते थे और उनके रीति-रिवाज एक जैसे थे। वे अपने को प्राचीन क्षत्रियों के वंशज मानते थे। विख्यात इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है—"जब हम राजपूत शब्द का प्रयोग किसी सामाजिक समूह के लिए करते हैं, तो उससे किसी जाति, वंश, परम्परा, अथवा रक्त सम्बन्ध का बोध नहीं होता। उसका अर्थ एक ऐसे जन समुदाय से है, जो युद्ध प्रिय है, और जो अपने को ऊँचे कुल का मानता है, तथा जिसे ब्राह्मणों द्वारा वही सम्मान प्राप्त है जो प्राचीन क्षत्रियों को था।" इस काल में भारत अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बट गया। एक सत्ता सम्पूर्ण भारत पर किसी भी राजपूत राजा की न रह सकी। यह राजपूत परस्पर वैमनस्य भी रखते थे। विदेशी आक्रमण का उन्होंने कभी मिलकर सामना नहीं किया, इसीलिए यह हारते थे। वास्तव में इनमें आपस में फूट बहुत थी। यह जाति युद्ध प्रिय होने के कारण कभी संगीत के आत्मिक सौन्दर्य को न समझ सकी। इसीलिए इनके जीवन में प्रेम की पावन धारा बहुत कम प्रवाहित हुई। उन्होंने कभी संगीत के अतल को स्पर्श करने का प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि इनको कभी लड़ने, झगड़ने से ही अवकाश नहीं मिलता था, परन्तु फिर भी इस काल में संगीत का वाह्य विकास अधिक हुआ। मौर्य और गुप्त काल में जो संगीत की स्थति थी, वह इस काल में न रह सकी, इस काल में संगीत अनेक वर्गों में बट गया, उसकी सार्वभौमुकता विनष्ट हो गई। अनेक वर्गों में विभक्त हो जाने से संगीत-विकास के अन्दर पृथकता आ गई। इन वर्गों के संगीत परस्पर एक दूसरे वर्ग के संगीत से मेल नहीं खाते थे, प्रत्येक वर्ग ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उसका विकास किया।

राजपूत रमणियाँ संगीत में बड़ी निपुण होती थीं—

राजपूतों की स्त्रियाँ बड़ी संगीत प्रिय होती थीं। नृत्य और गान से वे विशेष रूप से प्रेम करती थीं। इस युग में अनेक ऐसी नारियाँ हो गई हैं जो अद्वितीय वीर थीं, साहसी थीं और साथ ही साथ अपूर्व संगीतज्ञा थीं। वे चमकती तलवार उठाकर युद्ध क्षेत्र में अपने पति के साथ लड़ भी सकती थीं, और सुरीली आवाज से वीणा पर गा भी सकती थीं। दोनों शक्तियों का समन्वय उनके अन्दर बड़ी सुन्दरता के ढंग से हुआ था। राजपूत नारियाँ जितनी कोमल भाव रखती थीं, जितनी कला प्रेमिका होती थीं, उतनी ही युद्ध विद्या में सिद्धहस्त होती थीं। राजपूत काल में जौहर की प्रथा भी चालू थी, जब राजपूत नारियों के ऊपर कोई ऐसी आफत आ पड़ती थी कि जिसमें उनकी पवित्र इज्जत पर हमला होता था अथवा जब उनके पति लड़ाई में वीर गति प्राप्त करते थे, तो वे अपने पतियों के मर जाने के उपरान्त चिता की भयंकर लपटों में जल कर भस्म हो जाती थीं। इसी को जौहर कहते हैं। जब नारी जौहर में प्रवेश करने को जाती थी तो उस वक्त उनका नखसिख श्रंगार गा बजाकर किया जाता था, और जब वह अग्नि में प्रवेश करती, तो उस वक्त गीत गाये जाते थे, बाजे बजाए जाते थे। मतलब यह कि वे बड़ी प्रसन्नता से अग्नि प्रवेश करती थीं, उस वक्त भी संगीत उनके साथ होता। वास्तव में वे संगीत के माध्यम से ही अग्नि प्रवेश करती थीं। इसके अतिरिक्त राजपूत नारियों के जीवन पर संगीत की गहरी छाप है। वे अपने अवकाश के वक्त में भी गाया करती थीं, काम करते हुए भी गाना गाना उनको प्रिय था। कुँए से पानी भरते वक्त तो प्रायः वे गाया करती थीं। राजपूताने का पनघट संगीत की मधुर स्वर लहरियों से गूँज जाया करता था।

राजपूत बड़े संकीर्ण मस्तिष्क वाले होते थे—

अरब का प्रसिद्ध विद्वान अलबरुनी ग्यारहवीं शताब्दी में भारत में आया था, और उसने यहाँ के सम्बन्ध में लिखा है—"स्त्रियाँ सुशिक्षित होती थीं और सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थीं। वे संस्कृत लिख पढ़ सकती थीं। इसके अतिरिक्त नाच गान तथा चित्र-कला भी उन्हें सिखाई जाती थी। विधवा विवाह का निषेध था। जाति व्यवस्था जटिल थी। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का समाज में उच्च स्थान था। मूर्खता एक ऐसा रोग है जिसका कोई इलाज नहीं। हिन्दुओं का विश्वास है कि उनका जैसा देश, उनके जैसे राजा, धर्म, ज्ञान, विज्ञान और कला संसार में और कहीं नहीं है। वे घमन्डी हैं और उनमें मूर्खता पूर्ण अहंकार बहुत है वे जो कुछ जानते हैं, दूसरों को नहीं बतलाना चाहते। दूसरे जाति वालों और विशेष कर विदेशियों से वे अपने ज्ञान को छिपाने का बहुत प्रयत्न करते हैं। उनकी

धारणा है कि संसार में ऐसी कोई जाति नहीं जो ज्ञान विज्ञान में उनकी तुलना कर सके, यदि उनसे कोई कहे कि खुरासान अथवा फारस में भी विद्वान हैं, और उनके पास ज्ञान है तो वे उस व्यक्ति को अज्ञानी अथवा झूठा समझेंगे। उनके पूर्वज इतने संकीर्ण मस्तिष्क वाले नहीं थे जितने कि इस पीढ़ी के लोग।"

"घराने" की पृष्ठभूमि इस युग में पड़ चुकी थी—

अलबरुनी के वृतान्त से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि राजपूत नारियाँ संगीत में निपुण होती थीं, और वे उसे चाव से सीखती थीं। इस युग के लोगों का संकीर्ण दृष्टिकोण हो गया था ऐसा अलबरुनी लिखता है, यह तथ्य बहुत हद तक ठीक भी हो, क्योंकि संगीत के क्षेत्र में जो "घराने" का क्रम चला वह भी तो इसी संकीर्ण मनोवृति का परिचायक है। राजपूत काल में ही इसकी नींव सुदृढ़ हो गई थी। इस काल के संगीतकारों में यह प्रवृत्ति पाई जाती थी कि वे अपने संगीत ज्ञान को इतना छिपा कर रखते थे कि वे दूसरी जाति को और यहाँ तक कि अपनी ही जाति वालों को बताने के लिए तैयार न होते थे। और न वह उस ज्ञान के प्रकाश के लिए कोई पुस्तक ही लिखते थे। वे उसे अपने ही तक सीमित रखते थे, मगर कोई उनके पुत्र होता था, तो वे अपने ज्ञान को मरते वक्त उसे विरासत में दे जाते थे। और इस प्रकार का क्रम पीढ़ी दर पीढ़ी चला करता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि किसी संगीतज्ञ के कोई सन्तान नहीं होती थी, तो फिर उनका उच्चकोटि का ज्ञान उनके साथ ही कब्र में दफन हो जाया करता था अथवा चिता की लपटों में जल कर भस्म हो जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि देश सुन्दर से सुन्दर ज्ञान से महरूम रह जाता था, जिस अद्वितीय ज्ञान को प्राप्त करके देश सम्पन्न बन सकता था, उससे फिर वह वंचित रह जाता। दूसरे इस संकीर्ण मनोवृति से यह हानि हुई कि उस ज्ञान पुष्प के अपूर्व सौरभ से देश सुवासित न हो सका, जितना कि होना चाहिए था, उसकी सुषमा बिखर कर चारों ओर के वातावरण को सौन्दर्यात्मक न बना सकी। इस काल का यह सबसे बड़ा दुर्गुण रहा, जिसकी ओर अलबरुनी ने निर्देश किया है। इसी "घराने" की परिपाटी ने संगीत विकास को अवरुद्ध बना दिया। आखिर यह संकीर्ण मनोवृति कैसे आविर्भूत हुई, इसकी मुख्य पृष्ठभूमि कहाँ से प्रसूत हुई, यदि आप गहराई से इस काल के इतिहास का अनुशीलन करें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि हर्ष बर्धन युग के बाद देश के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे जिनमें परस्पर कोई एकसूत्रता नहीं रही थी। हर वर्ग या हर टुकड़ा अपने को महत्वशील समझता था। प्रत्येक टुकड़े के प्रधान या राजा दूसरे टुकड़े के प्रधान या राजा से प्रेम-भाव का प्रदर्शन न करता था, क्यों कि उनको इस बात की चिन्ता कतई न थी कि यदि एक वर्ग का कुछ नुकसान होता है तो वह नुकसान

सम्पूर्ण भारत का नुकसान है, जिस प्रकार शरीर के किसी अवयव की यदि हानि होती है तो वह हानि सम्पूर्ण शरीर की समझी जायगी, इस मूल तथ्य को राजपूत युग में भुला दिया गया, और उसी का यह परिणाम निकला कि लोगों के अन्दर संकीर्ण भावना का उदय होता गया, इस संकीर्ण भावना ने उनपर इतना अधिकार कर लिया था कि वे अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बड़ी से बड़ी लड़ाई करने की जोखिम उठा लिया करते थे। इस संकीर्णता ने ही राजपूत काल के संगीत को स्वस्थ वातावरण में पनपने नहीं दिया।

कलाकारों में इर्ष्या उत्पन्न हो चुकी थी, जिसने उनको ऊपर न उठने दिया—

विख्यात इतिहासकार अलचर्ड पोल ने भी अपनी पुस्तक "The Ancient Music of India" में लिखा है—"राजपूत काल का संगीत पूर्ण रूप से इसलिए प्रस्फुटित न हो सका कि इस काल के कलाकारों की मनोवृति बड़ी संकीर्ण एवं ईर्ष्या-पूर्ण थी। वे परस्पर ही एक दूसरे से इर्ष्या किया करते थे। एक कलाकार दूसरे कलाकार की उन्नति देख नहीं सकता था, वे एक दूसरे को नीचा दिखाने का अवसर खोजा करते थे। इस प्रकार उनकी शक्ति परस्पर विद्वेष में लगी रहती थी। वे अपनी शक्ति का इसी प्रकार अपव्यय बहुत करते थे। वे अपना समय कला की साधना में नहीं लगाते थे। जिसका परिणाम यह होता था, कि वे कला की देदीप्यमान मंजिल पर नहीं पहुँच पाते थे, और जो कलाकार कला की देदीप्यमान मंजिल पर पहुँच जाते थे, वे फिर इतने घमन्डी, अहंकारी हो जाते थे कि उनसे फिर देश को कोई नवीन प्रकाश नहीं मिल पाता था और वे उसी अहंकार के घने कुहरे में इतने दब जाते थे कि फिर उनको भी अपनी मुख्य मंजिल से नीचे गिरना पड़ता था।"

आत्मिक-सौन्दर्य का फैलाव न हो सका—

राजपूत काल को ऐसी ही संकीर्णता के गर्दो गुवार के वायुमन्डल में से अपना मार्ग बनाना पड़ा, इसलिए इस युग के संगीत में आपको आत्मिक सौन्दर्य की दिव्य आभा का दिग्दर्शन न होगा। लेकिन हाँ संगीत के शिल्पक स्तर को अवश्य ठीक किया गया, अनेक ऐसे कला विशेषज्ञ इस काल में पैदा हुए जिन्होंने संगीत के शिल्पक ज्ञान की अभिवृद्धि की, जिन्होंने कुछ नवीन अनुसन्धान भी किए, पर उनका फैलाव अधिक न हो सका। पुष्प खिला अवश्य किन्तु वह अपने अद्वितीय परिमल से विश्व को सुरभित न कर सका।

भवभूति विख्यात नाटकार ने संगीत विकास में बड़ा योग दिया—

इसी युग में सबसे अधिक प्रतिभाशाली नाटककार भवभूति हुए, जो कन्नोज के राजा यशोवर्धन के दरबार में रहते थे जिन्होंने "महावीर चरित" तथा "मालती

माधव" आदि लिखे। यह नाटक बहुत प्रसिद्ध हुए। इन नाटकों में संगीत की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर हो सकी। नाटकों का कलात्मक स्तर बड़ा ही उच्चकोटि का है। इस युग में भी ऐसे नाटक अधिक लिखे गए जिनमें संगीत की प्रधानता रहती थी। यह युग संगीतमय नाटकों का था। काव्यों में माघ का शिशुपालनवध, भर्तृहरि का "भट्टिकाव्य" तथा श्री हर्ष का "नैषधचरित" बहुत प्रसिद्ध हैं।

महान संगीतज्ञ जयदेव ने इस काल में "गीत गोविन्द" की रचना की—

गीत काव्य का सबसे बड़ा कवि जयदेव है जिसने बारहवीं शताब्दी में "गीत गोविन्द" की रचना की। इस काव्य का विषय राधा के प्रति कृष्ण का प्रेम, उसका वियोग तथा अन्तिम मिलन है। कवि ने इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक अपनी काव्य एवं संगीत प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। "गीत गोविन्द" पूर्ण संगीतमय है। इसका एक-एक पद संगीत से परिपूर्ण है। दसवीं शताब्दी में कन्नोज के राज-दरबार में "कर्पूरमंजरी" का रचयिता राजशेखर कवि रहता था। भारतीय साहित्य में इस नाटक की गणना उच्चकोटि के सुखान्त नाटकों में है। ११वीं शताब्दी में कृष्ण मिश्र ने वैष्णव धर्म की प्रशंसा में "प्रबोध चन्द्रोदय" नाम का नाटक लिखा। इस नाटक में भी संगीत की छटा हमें खूब देखने को मिलती है। कहानियों के द्वारा ज्ञान प्रसारित करने की भी इस युग में परिपाटी थी, इस सम्बन्ध में एक विशाल ग्रन्थ पंचतन्त्र लिखा गया जो बड़ा ही रोचक है। इसमें व्यवहारिक ज्ञान तथा नैतिक आचरण की शिक्षा देने वाली कई कथाएँ हैं, इस पुस्तक ने भी संगीत की कथात्मक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ किया।.

अनेक सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण हुआ—

विख्यात कवि कल्हण ने १२ वीं शताब्दी में "राजतरंगिणी" नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा। इसमें काश्मीर के राजाओं का वर्णन है। इस ग्रन्थ से काश्मीर की कलात्मक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य इसी काल में हुए। चिकित्सा शास्त्र पर भी ग्रंथ लिखने वालों में वाणभट्ट का नाम प्रसिद्ध है। उसने ८०० ई० के लगभग अपने ग्रंथ रचे। इस काल में धर्म शास्त्र का सबसे प्रसिद्ध लेखक विज्ञानेश्वर था। उसने धर्म शास्त्र पर एक भाष्य लिखा जो मिताक्षरा नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में जैनियों ने भी एक बड़े साहित्य का निर्माण किया। हरिभद्र नाम का एक प्रसिद्ध लेखक नवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ। उसने कई ग्रन्थ लिखे। बड़े-बड़े संगीतज्ञों के जीवन चरित्र भी लिखे गए। इन सब ग्रंथों के लिखने का उद्देश्य सिर्फ जनता की गिरती हुई नैतिकता को सम्भालने का था। आज जो कुछ हमें इस काल का नैतिक पूर्ण संगीत प्राप्त है, उसका श्रेय अधिकतर इन्हीं उच्चकोटि के ग्रंथों को

है, जिन्होंने उस काल के वातावरण को पवित्र बनाने में योगदान दिया। इन ग्रन्थों ने उस काल के वातावरण को बहुत स्वस्थ और सुन्दर बनाया, वरना तो संगीत जिस रूप में आज हमें इस युग का मिलता है, वह उस दशा में न मिलता। उसकी धारा ही दूसरी होती।

संगीत के राग रागनियों के चित्र बहुत मिलते हैं। इस समय के चित्रों से वीणा के भी अनेक प्रकारों का ज्ञान होता है। राजपूत कला प्रेमी थे, और वे कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय देते थे। यह युग भक्ति मार्ग का युग कहा जाता है। इस समय लोचन, राजा हरिपाल देव आदि संगीत के पंडित हो गए हैं। सोमनाथ पाटण (सौराष्ट्र) का ऐश्वर्य इस युग में बहुत था। सोमनाथ के मन्दिर में चौलादेवी नाम की नर्तकी वीणा के साथ गान करती थी। पृथ्वीराज चौहान भी प्रखर वीणा वादक था। मुसलमानों ने इस युग में भारत में प्रवेश किया। मोहम्मद गजनी, शाहब्बुदीन, गौरी आदि ईरानी बादशाहों ने भारत पर हमला किया था। राजपूत आपस में लड़ते थे। इस कलह का लाभ तुर्क और अफगानिस्तान के बादशाहों ने उठाया। उस समय से भारत की प्रसिद्ध संगीत संस्कृति का प्रयोग यवन संस्कृति के साथ होने लगा। राजस्थान का इतिहास भी कहता है कि विक्रम की पांचवी शताब्दी में ईरान के बादशाह बहेरामन गौर ने भारत में से १२०० गवैये नौकरी के लिए ईरान बुलाए थे। इससे भारत की संगीत संस्कृति कैसी उत्कृष्ट थी, इसका प्रमाण मिलता है। इन गायकों में, गायक, वादक और नर्त्तक सभी होने चाहिए। इस युग में वीणा का नवीन प्रकार मालूम नहीं होता। नाम में भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। पहले की तरह ही वीणा की स्थिति थी।

राजपूतों ने पारस्परिक विग्रह के कारण अपना विनाश मुसलमानों द्वारा करवाया, भारत में इस्लाम धर्म का झण्डा फहराने लगा। दिल्ली की गद्दी पर मुसलमान बादशाह बैठ चुके थे। संगीत के दृष्टिकोण से १२ वीं शताब्दी ठीक नहीं रही, क्योंकि इस काल में संगीत की दशा सुन्दर न रही। इस काल में मुहम्मद गौरी तथा अन्य मुसलिमों द्वारा हिन्दू राजाओं से युद्ध होता रहा, जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली, अतः संगीत प्रचार के मार्ग में भी बाधा पड़ना स्वाभाविक ही था।

इस काल में नृत्यों का विकास भी खूब हुआ—

विख्यात विद्वान अजमत ने "विश्व के इतिहास की डायरी" में लिखा है—"राजपूत जितने शूर वीर थे, उतने ही बड़े संगीत प्रेमी भी थे। वे संगीतकारों का आदर करना भली भाँति जानते थे। उनके राज-दरबार में अनेक संगीतज्ञों को आश्रय मिला करता था। उनकी छत्रछाया में अनेक कलाकार अपनी कला का

विकास करते थे। इस युग के नये कलाकारों का विकास राजाश्रय प्राप्त करने पर ही हो सका। इस युग का संगीत अधिकतर राजाश्रय के संरक्षण में ही उन्नति की मंजिल पर बढ़ सका। इस काल में नृत्यों का विकास भी खूब हुआ। नृत्यों के विकास में सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण का ध्यान रक्खा गया।"

जनवादी दृष्टिकोण का लोप हो चुका था—

राजपूत-काल के संगीत में एक सबसे बड़ा जबरदस्त अभाव जो हमें देखने को मिलता है वह यह है कि चूँकि इस काल में अधिकांश संगीत राजाश्रय में आगे बढ़ा, इसलिए उसमें हमें जन-साधारण की भावनाओं की सुषमा प्राप्त नहीं होती। उसमें हमें जनवादी दृष्टिकोण प्राप्त नहीं होता। इस काल का संगीत सामन्तशाही था, उसमें मानव की पवित्र आत्मा की चारुता मुखरित न हो पाई। उसमें मानवता के खुशनुमा प्रसून प्रस्फुटित न हो पाए। वह जन-सामान्य के जीवन से हटता गया, और इतना हटा कि उसमें हमें सर्वसाधारण के जजबात, उनकी प्रशस्त भावनाएँ लेशमात्र भी नहीं मिलते। सामन्तशाही जीवन का ही ऐश्वर्यशाली चित्रण उसमें मिलता है। श्रृंगार-पूर्ण संगीत का अधिक निर्माण हुआ। शास्त्रीय संगीत भी इस रोग से अपने को न बचा सका। शास्त्रीय संगीत में भी सस्ता शृंगार भर गया, जिससे संगीत अपनी नैतिकता के पवित्र स्तर से गिरता गया। संगीत की नैतिक मर्यादा का ह्रास जितना इस युग में हुआ, उतना शायद और किसी युग में नहीं हो पाया, सिर्फ शुंग काल में अवश्य ह्रास हुआ था, किन्तु वह ह्रास इतना दयनीय नहीं था।

राजाश्रय से जहाँ एक ओर चन्द संगीतज्ञों के जीवन-निर्वाह का प्रश्न हल हुआ, वहाँ दूसरी ओर उससे सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि भारतीय संगीत सर्व-साधारण के जीवन से पूर्ण रूप से हट गया, जिसके कारण उसमें मानव जीवन के संघर्ष, उनकी आवश्यकतायें, उनके जीवन के अभावों का उसमें दिग्दर्शन न हो सका। और इस प्रकार इस युग की जनता सामन्तशाही के संगीत को पसन्द न करने लगी। सामान्य लोग अलग अपने लिए संगीत का निर्माण करने में संलग्न होगए। इस प्रकार सामान्य जनता ने सर्वप्रथम भारतीय संगीत की पृष्ठ में एक नवीन क्रान्ति की, यानी उसने अपने लिए लोक संगीत का अधिक निर्माण किया।

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग राजपूत-काल में ही उत्तर भारत का संगीत और दक्षिण भारत के संगीत की विभिन्न धारायें हो गई, और दोनों की धारायें पृथक-पृथक बहने लगी। धारायें एक दूसरे से क्यों पृथक हुई, इसका मुख्य कारण यह था कि ग्यारहवीं शताब्दी में पठानों के आगमन से भारतीय संगीत में एक विशेष

परिवर्तन होने लगा। मुसलमानों का प्रभाव भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि पर गहरा पड़ता गया, दक्षिण भारत इन आक्रमणों से बचा रहा, इसलिए उसकी संस्कृति भी सुरक्षित रही।

इसी काल के अन्दर "नारदीय शिक्षा" नामक एक संगीत ग्रन्थ नारद का लिखा हुआ मिलता है। यहाँ पर पाठकों को यह बता देना उचित समझते हैं कि यह नारद वे नहीं हैं जो कि देवर्षि नारद के नाम से प्रसिद्ध थे, वरन यह अपने समय के दूसरे ही नारद हैं, जोकि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इस ग्रन्थ में सामवेदीय स्वरों का विशेष महत्व देते हुए ७ ग्रामों का वर्णन किया गया है, जिसके नाम इस प्रकार हैं— (१) षाडव, (२) पंचम, (३) मध्यम, (४) षड़ज ग्राम, (५) साधारिता, (६) कैशिक-मध्यम एवं (७) मध्यम ग्राम।

"नारदी शिक्षा" में तत्कालीन संगीत शास्त्र का विस्तृत परिचय मिलता है। यहाँ वैदिक और लौकिक इन दो प्रकार के संगीतों की, दो विभिन्न धाराओं का स्पष्ट रूप में उल्लेख हुआ है। प्रथम कान्डिका के द्वितीय श्लोक में नारद ने आर्चिक गाथिक, सामिक, प्रभृति सात वैदिक स्वरों का उल्लेख किया है और उनका वर्णन भी किया है। ये गान भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों के प्रसंग में व्यवहृत होते थे, यह बात नारद के "यज्ञसु प्रयुज्यते" शब्दों से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त सामप्राति-साख्यकार ने लिखा है :—

> "एतेर्भवेस्तु गायन्ति सर्वाः शाखाः पृथक-पृथक
> पुञ्चस्वेव तु गायन्ति भूमिष्ठाति स्वरेषु तु
> सामानि षटसु चान्यानि सप्तसु द्वैतु कोथुमाः।"

अर्थात साम गान भिन्न-भिन्न शाखा भेदों में गाया जाता था। नारद ने भी अपने ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख किया है।

> "कठकालाव प्रवत्तेषु तैतिरीया ह्वरकेषु च
> ऋग्वेद सामवेद च वक्तव्याः प्रथमः स्वरः।"

अर्थात सामग, तैतिरीय, ऋक, साम् प्रभृति वेदों के अनुगामी भिन्न-भिन्न वैदिक स्वरों का प्रयोग करके गान गाते थे। नारद ने अपनी पुस्तक में सात "मार्गी" और सात देशी स्वरों का उल्लेख किया है। तीन "ग्रामों" के सम्बन्ध में भी आपने लिखा है—

> "षड़ज मध्यम गांधारोस्त्रयो ग्रामा प्रकीतिता:"

इत्यादि इसके बाद नारद ने अपने ग्रन्थ में "मूर्च्छनाओं" का भी परिचय दिया है। देवता, पितृ तथा गन्धर्व भेद के अनुसार इन मूर्च्छनाओं के नाम इस प्रकार

दिये गए हैं—नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा, बला। पितृगण के अनुसार इनके नाम हैं—आप्यायनी, विश्वभृता चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और वर्हती।"

राजपूत युग में दशहरा तथा दीपावली त्यौहार बड़े ठाट बाट एवं शान शौकत से मनाया जाता था। दशहरे के अवसर पर नारियाँ गाती बजाती हुई बाहर निकलती थीं और वे नगर के जुलूस में शामिल होती थीं। दशहरे के अवसर पर "रामलीला नृत्य" का भी प्रदर्शन किया जाता था। राम के पावन चरित्र को नृत्य की पृष्ठ पर उतारा जाता था। यह सम्पूर्ण नृत्य कई भागों में विभक्त होता था। इस कथात्मक नृत्य को सर्वसाधारण जनता खूब मन लगाकर देखती थी। इसी प्रकार दीपावली के सुन्दर त्यौहारों को राजपूत लोग बड़े कलात्मक ढंग से मनाते थे। सम्पूर्ण राजस्थान में दीपों के उज्ज्वल प्रकाश में "प्रकाश नृत्य" प्रस्तुत किया जाता था। "प्रकाश नृत्य", यह दीपावली का मुख्य नृत्य था। यह भावात्मक नृत्य था।

विजयादशमी के शुभ अवसर पर दुर्गा की पूजा गा-बजाकर होती थी। देवी पर बलि चढ़ाने की भी प्रथा थी। बलि चढ़ाते वक्त गाना बजाना होता था और बड़ी खुशी मनाई जाती थी।

मन्दिरों में भी उत्सव बड़े धूम-धाम से मनाये जाते थे। इस युग में (temple music) मन्दिर संगीत का पर्याप्त मात्रा में विकास हुआ।

"मुसलिम-प्रवेश-युग" में संगीत

(१००० ई० से १२६० ई० तक)

लड़खड़ाता युग—

इस काल में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण निरन्तर होते रहे। इन आक्रमणों से भारत अपनी रक्षा न कर सका, क्योंकि इस युग में भारत की शाशन व्यवस्था अनेक राजपूत राजाओं के हाथों में थी, और वे पर्याप्त मात्रा में शक्ति शाली नहीं थे, और परस्पर एक दूसरे से वैमनस्य भी रखते थे जिसके कारण वे संगठित शक्ति से मुसलमान बादशाहों का सामना न कर सके। और अन्त में उनकी हार हुई। वास्तव में भारत का यह युग बड़ा डावाँडोल रहा, हर चीज अव्यवस्थित थी, फिर संगीत ही कैसे सुव्यवस्थिति रह सकता था। मानव जीवन में स्थिरता न थी। लोगों के जीवन परेशानियों एवं कष्टों से परिपूर्ण हो रहे थे, वे कुछ भी अभिनव कल्पना करने के योग्य नहीं थे, उनके मस्तिष्क अचेतन बनने जा रहे थे। उनके जीवन के इर्द-गिर्द जड़ता के झाड़ झंकाड़ उग आए थे। आध्यात्मिक विकास एकदम समाप्त-सा होगया था। मुसलिम संस्कृति ने मानव-जीवन में प्रवेश कर लिया था और भारतीय लोगों के सामने दो संस्कृतियाँ उपस्थित होगई थीं। वे दोनों संस्कृतियों के बीच में से गुजर रहे थे। वे निश्चय न कर पाए कि नवीन संस्कृति को जिसने बाहर से प्रवेश किया है, उसको अपनाया जाए अथवा नहीं, और कुछ लोगों ने न अपनाने का निश्चय भी कर लिया था, किन्तु उनकी आवाज को मुसलिम शासकों ने दाब दिया। अनेक व्यक्ति मुसलिम शाशकों के चमकदार प्रलोभनों से अपने नैतिक चरित्र से गिर गए थे, उस नैतिक चरित्र से जिसके लिए सदैव से भारत को गौरव रहा है। छोटे-छोटे प्रलोभनों में इस काल के लोग फसने लगे, और अपने चरित्र की पावन मर्यादा को तोड़ने लगे। उनके सामने चरित्र की एहमीयत कुछ भी न रही। वे चन्द चाँदी के टुकड़ों पर अपने ईमान तक को वेचने लगे। ऐसे डगमगाते युग में देश गुजर रहा था। संगीत पतन के मार्ग पर प्रवेश हो चुका था। शृंगारिक वातावरण, भोग-विलास प्रधान वायुमन्डल, जो एकदम बाहर से आया था, भारतीय संगीत में समाविष्ट होने लगा, जिससे भारतीय संगीत का रूप विकृत होने लगा, उसकी पवित्रता खतम होने लगी। देश में अज्ञानता का कुहरा बिखरने लगा था, अनेक

बुराइयाँ एवं दुर्गुणों का विस्तार होना प्रारम्भ होगया था, जोकि मुसलिम संसर्ग से भारतियों के अन्दर पैदा होगए थे, और उन दुर्गुणों एवं नैतिक पतन के मध्य में से भारतीय संगीत को अपना रास्ता बनाना पड़ा।

संगीत अपनी भारतीयता को अक्षुण्ण न रख सका—

संगीत अपनी भारतीयता को अक्षुण्ण न रख सका। इसके सम्बन्ध में कैप्टन डे महोदय अपने "Music of Southern India" के पृष्ठ तीन पर कहते हैं—"भारतीय संगीत का सबसे समृद्धिशाली युग मुसलमानों की विजय के पूर्व स्थानीय राजाओं का काल ही रहा। मुसलमानों के आगमन के साथ ही संगीत पतनोन्मुख होगया और यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है कि उसका अस्तित्व आज तक बना रहा।" संगीत निर्माता भातखन्डे अपनी पुस्तक "A Short Historical Survey of the Music of Upper India" में लिखते हैं—"हम उस एकमात्र साधन से जिसके द्वारा उस समय के संगीत की स्थिति का स्वरूप हम जान सकते थे, वंचित रह जाते हैं, क्योंकि उस काल का कोई भी संगीत ग्रन्थ आज नहीं है" कैप्टन डे दक्षिणी संगीत के बारे में कहते हैं—"दक्षिणी भारत में आन्तरिक हलचल बहुत कम हुई और उत्तरी प्रान्तों एवं दक्खन से उस पर हिन्दू शासन अधिक काल तक रहा, जिसके फल स्वरूप उत्तर में वास्तविक कला के लुप्त हो जाने के बहुत समय बाद तक भी दक्षिण में संगीतिक विज्ञान की सुरक्षा एवं क्रमोन्नति हुई।" श्रीभातखन्डे जी अपनी पुस्तक में आगे लिखते हैं—"यह केवल सत्य ही नहीं है कि हम उत्तर वालों ने संगीतिक विज्ञान के सभी प्राचीन ग्रन्थों को खोदिया, वरन हम इतना भी नहीं कह सकते कि हमने अपने किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ की रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया है। इस उक्ति के विरोध में हम यह कह सकते हैं कि आज भी १२ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ जयदेव के कुछ प्रबन्ध उपलब्ध हुए हैं। मैं यह अस्वीकार नहीं करता कि हमने इनकी रक्षा की, परन्तु जब हम विश्व में अपने आपको प्राचीनतम सांगीतिक राष्ट्र कहने का दम भरते हैं तो क्या केवल यही पर्याप्त है? इसके उपरान्त यह प्रश्न भी उठता है कि क्या हम जयदेव के प्रबन्धों में से किसी एक को भी उसके मूलराग और ताल पर गाते हैं, इस विषय पर प्राच्य देशीय महान पंडित सर विलियम जोन्स की यह उक्तियाँ बड़ी कौतुहल पूर्ण हैं—"जब मैंने सर्व प्रथम जयदेव के गीत पढ़े, जिन प्रबन्धों के साथ उसके गाने की प्राचीन रीति भी लिपिबद्ध है, मुझे बड़ी आशा थी कि मैं उनके मूल संगीत को प्राप्त कर सकूँगा, किन्तु दक्षिण के पंडितों ने उनकी जानकारी के लिए पश्चिम के पंडितों की ओर इशारा किया और पश्चिम के ब्राह्मणों ने मुझे

उत्तर के ब्राह्मणों की ओर भेजना चाहा। नेपाल और काश्मीर के ब्राह्मणों ने मुझे बताया कि उनके पास प्राचीन संगीत नहीं है, पर उनका अनुमान है कि "गीत गोविन्द" का संगीत यदि कहीं होगा तो दक्षिण के प्रान्तों में से किसी एक में ही होगा, जहाँ कवि ने जन्म ग्रहण किया था। क्या यह अत्यन्त हास्यास्पद नहीं है जब कि जयदेव का दक्षिण से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और जब उनका जन्म एवं विकास बंगाल की वीरभूमि में हुआ।"

"When I first read the songs of Jayadeva, who has prefixed to each of them the name of the mode in which it was anciently sung, I had hopes of procuring the original music, but the pandits of the south referred me to those of the west and the Brahmins of the west would have sent me to those of the north, while they, I mean those of Kashmir and Nepal, declared that they had no ancient" music but imagined that the notes of the "Gita-govind" must exist, if anywhere, in one of the southern provinces where the poet was born, from all this I collect, that the art which flourished in India many Centuries ago, has faded for want of culture, though some scanty remnants of it may, perhaps, be preserved in the pastoral roundelays of mathura on the loves and sports of the Indian Apollo."

मुसलमान विजेताओं ने अपनी संकीर्ण मनोवृत्तियों का परिचय दिया—

मुसलिम प्रवेश काल में मुसलिम राजाओं ने भारतीय संगीत एवं अन्य भारतीय संस्कृति की पुस्तकों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। उन्होंने भारतीय साहित्य को मनमाना नष्ट किया, और भारतीय लोग उन अनुपम ग्रंथों की रक्षा न कर सके, इस दृष्टिकोण से यह काल भारतीय संगीत के लिए महान दुर्भाग्य पूर्ण रहा, क्योंकि इसी काल में भारतियों की अपनी अमूल्य संचित संगीत कला की सामग्री नष्ट की गई, यदि वह साहित्यिक सामग्री हम सुरक्षित रख पाते तो हमारे लिए कितनी गौरव की बात थी, और फिर भारतीय संगीत की रूपरेखा किसी और ही ढंग की होती। इससे मालूम पड़ता है कि यह मुसलिम बादशाह, जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया, कला और साहित्य के प्रति कितना संकीर्ण एवं तंग दिली ख्याल रखते थे।

ऐतिहासिकों का भी यही कहना है कि मुसलमान विजय के आरम्भ के दिनों में विजयी के द्वारा संगीत की बड़ी दुर्गत हुई। कैप्टन विलर्ड ने अपनी "A

Treatise on the Music of Hindustan'' के पृष्ठ १०६ पर लिखा है—''हिन्दुस्तान पर मुसलमान राजाओं की विजय से वहाँ के संगीत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल आरम्भ होता है। इसी समय से शुद्ध रूप से हिन्दू कहलाने वाली सभी कलाओं और विद्वानों के पतन का श्री गणेश हुआ, क्यों कि मुसलमान विद्या के कोई बड़े संरक्षक नहीं थे, और उनमें से जो अधिक कट्टर थे, वे केवल बड़े मूर्तिभजंक ही नहीं बल्कि देश की प्रगति को अवरुद्ध करने वाले हुए, एक बार फिर संगीत शास्त्र की प्रगति रुक गई और शीघ्रता से उसका पतन होने लगा। यद्यपि मोहम्मदशाह के समय तक राजाओं एवं दरबारियों के मनोरंजनार्थ संगीत का प्रचलन रहा। उसके शासन के उपरान्त का इतिहास भयानक दृश्यों एवं भीषण घटनाओं से परिपूर्ण है। स्वरों के क्रम से सम्बन्धित तीव्र गामी और नश्वर विज्ञान का अभ्यास तब तक स्थाई नहीं हो सकता, जब तक कि उसे जीवित रखने के शास्त्र का ज्ञान उपलब्ध न हो, या कागज पर उसे लिपिबद्ध करने का कोई साधन आविष्कृत न हो सके, परिणामस्वरूप उसका अन्त कलाकार के साथ ही हो जाता है।

कैप्टन विलर्ड की इस उक्ति पर भातखन्डे जी कहते हैं—''विद्वान लेखक की इन उक्तियों से हमें बिल्कुल आश्चर्यन्वित होने की आवश्यकता नहीं है। केवल भारतवर्ष ही नहीं, जहाँ मुसलमान आक्रमण कारियों ने संगीत के प्रति अपनी निर्ममता से कुख्याति प्राप्त की। फारस में मुसलमानों की विजय के बाद फारसी संगीत के इतिहास में भी हम ऐसी ही परिस्थितियों का प्रतिविम्ब देखते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब मुसलमानों ने फारस को जीता, अव्बख्श के बेटे साद ने मुहम्मद के बाद के दूसरे खलीफा ओमर को लिखा कि फारसी संगीत के कुछ ग्रन्थों को उसके पास भेजने की अनुमति दी जावे। ओमर का सीधा उत्तर यही था उन्हें पानी में फेंक दो, क्यों कि वे धर्म के लिए उपयोगी नहीं है। सब पुस्तकों को जलाकर इस आज्ञा का पालन इतनी पूर्णता से हुआ कि फारसी भाषा में हील इमाली ''Heela Imali नामक केवल एक ही संगीत ग्रंथ बच रहा। इस ग्रंथ का उल्लेख मिस्टर फ्रेजर रचित नादिर शाह के इतिहास में दिए हुए सूचीपत्र में दिया हुआ है। हम सब जानते हैं कि फारसियों की बड़ी पुरानी सभ्यता थी, और एक सभ्य राष्ट्र होने के नाते मुसलमानों की विजय के पूर्व साँतवीं शताब्दी में उनकी एक परिष्कृत एवं व्यवस्थिति संगीत पद्धति भी थी।''

जब मुलमानों ने फारस को जीता, तो उन्होंने वहाँ क्या किया, इस सम्बन्ध में एक यूरोपियन विद्वान लिखता है—''Glutted with Victory no sooner had the Arabs Conquered Persia and established a Mohomedan dynasty, than they sought to destroy

every vestige of the greatness of her ancient insitutions. The practice of any but the Mohomedan religion was forbidden, and the Parsees who refused to abandon the. ancient system of their ancestors were driven to the plains of Kernan and Hindustan, and have been wanderers even since. The Koran was to be the book of books all other learning being deemed useless to the faith of Islam, and it was decreed that all her Sacred records her codes of law, the literature of the ancient Magi and the rich store of works on the arts and sciences then extant should be committed to the flames. This ruthless act was duly carried into effect, and thus perished in a brief hour the results of the labour of successive generations collected during a period of three thousand years."

भारतीय संगीत की पवित्रता और उसके आत्मिक सौन्दर्य को नष्ट करने के प्रयत्न किए गए—

इन ऐतिहासिक उद्धरणों से आप जान सकेंगे कि मुसलिम-प्रवेश-युग भारतीय संगीत के लिए कितना दुर्भाग्य पूर्ण युग रहा। मुसलिम राजाओं ने बड़े-बड़े प्रलोभन देकर अनेक ग्रन्थ भारतीय विद्वानों से ऐसे लिखवाए जिनमें मुसलिम संस्कृति एवं सभ्यता की प्रशंसा की गई थी, ताकि उन ग्रन्थों को पढ़ कर भारतीय लोगों की अभिरुचि मुसलिम संस्कृति की ओर आकर्षित हो। और हुआ भी ऐसा ही, अनेक हिन्दुओं ने अपने धर्म तक छोड़ दिए, और वे मुसलिम हो गए, मुसलिम होने पर उन्हें ऊँचे-ऊँचे पद दे दिये जाते थे, ऐसे परिवर्तित धर्म वाले व्यक्ति फिर मुसलिम संस्कृति एवं संगीत की प्रशंसा करने लगते, और वे जोर देने लगते कि भारतीय संगीत का रूप परिवर्तित किया जाए, मुसलिम कलाकारों के सहयोग से, और इस प्रकार भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति की जावे—परन्तु इस क्रान्ति के नाम पर भारतीय संगीत की पवित्रता एवं उसके प्राचीन सौन्दर्य को नष्ट कर दिया गया, उसके स्वाभाविक वैदिक रूप को विकृत कर दिया गया। इस तथ्य की पुष्टि सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिवोलो जीन ने अपनी पुस्तक "The Historical survey of Indian Music" में पृष्ठ १५० पर की है।

मिस्टर पीवाल्य आजी ने इसी मत का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तक "The International Values of Indian Music" में लिखा है—"मुसलिम प्रवेश काल भारतीय संगीत के लिए महान अभिषाप बन गया। इस

काल में भारतीय संगीत को एकदम कुचल दिया गया, उसकी देदीप्य-मान रोशनी को पूर्ण रूप से बुझा दिया गया, उसकी जलती हुई मशाल को एक दम गुल कर दिया। विजयी मुसलिम राजाओं ने भारतीय संगीतज्ञों का बिल्कुल सम्मान नहीं किया, वे अपने साथ ही कुछ कलाकारों को लाए थे, उन्हीं का वे दरबार में सम्मान करते थे। उन्होंने भारतीय संगीत के अद्वितीय साहित्य को जड़मूल में नष्ट कर दिया, इससे भारतीय संगीत जिधर जाना चाहता था उधर न जा सका, उसका मार्ग-परिवर्तन हो गया। उसकी पहुँच की मंजिल ही बदल गई। अब उसकी मंजिल दूसरी हो गई, और दूसरे रास्ते हो गए, जिन पर कि भारतीय संगीत को चलना था। विश्व के इतिहास में सबसे क्रूर कार्य इन विजित मुसलिम राजाओं ने किया। पर हम इस तथ्य को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि सभी मुसलिम राजा ऐसे ही संकीर्ण दृष्टिकोण के थे, लेकिन अधिकांश मुसलिम राजाओं ने, जिन्होंने प्रथम भारत में प्रवेश किया भारतीय साहित्य को नष्ट-भ्रष्ट किया, और देश की दौलत को बड़ी बुरी तरह से लूटा, देश के वैभव को अपनी ठोकर से नष्ट किया।"

भारतीय संगीत ने इस जबरदस्त टक्कर को सहन कर लिया—

जिस गति से भारतीय संगीत विकास क्षितिज की ओर अग्रसर हो रहा था, अगर उसके मार्ग में मुसलिम प्रवेश युग न आता तो फिर आज विश्व में भारतीय संगीत के गौरव की सुषमा अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होती। लेकिन फिर भी भारतीय संगीत ने इस जबरदस्त टक्कर को सहन कर लिया। इस जबरदस्त भूचाल में वह इतना रसातल को नहीं चला गया कि जिसमें वह अपना रूप और सौन्दर्य को ही खो बैठता, उसका अस्तित्व स्थिर रहा, उसकी नींव प्राचीनता की पृष्ठभूमि से एक दम उखड़ नहीं गई, बल्कि कुछ न कुछ उस पर आधारित रही, जिससे उसकी भारतीयता की पावन ज्योति एक दम मुसलिम संगीत में विलुप्त न हो पाई, मुसलिम संगीत के सतह के ऊपर भारतीय संगीत की स्वर्णिम ज्योति आलोकित रही, उसकी आत्मिक रोशनी प्रज्वलित रही, और उसी रोशनी की शक्ति से वह आज तक आगे विकास पथ पर बढ़ता रहा, लेकिन हाँ उसका वैदिक सौन्दर्य अवश्य नष्ट हो गया।

खिलजी युग में संगीत

(१२६०-१३२० ई०)

अलाउद्दीन फीरोज खिलजी १६ जुलाई सन् १२६६ ई० में सिंहासन पर बैठा। वह बड़ा महत्वाकांक्षी बादशाह था। उसने मुहम्मद साहब की तरह स्वयं एक नया धर्म चलाने और देशों को जीतकर मैसोडोनिया के सिकन्दर महान की तरह विश्व-विजयी होने की इच्छा की। लेकिन उसका यह स्वप्न पूरा न हो सका। अलाउद्दीन ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने अधिकार में कर लेने के बाद दक्षिण विजय की ओर ध्यान दिया। विंध्याचल पर्वत, गहरी खाइयाँ, सघन जंगल और नदियों से अलग किए हुए दक्षिणी प्रदेशों पर चढ़ाई करने वाला यह पहला ही मुसलमान बादशाह था।

अलाउद्दीन खिलजी बड़ा ही संगीत प्रेमी था—

वह एक महत्वाकांक्षी वीर योद्धा ही नहीं था, लेकिन वह बड़ा संगीत-प्रेमी था। उसने संगीत-प्रचार एवं प्रसार में बड़ा योग दिया। उसके ही दरबार में फारसी कवि और संगीतज्ञ अमीर खुसरो ने समृद्धि पाई। अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत पर अपनी अमिट छाप लगादी है। उसने ही सर्वप्रथम भारतीय संगीत में कव्वाली रीति को प्रविष्ट किया। साथ ही साथ कई प्रकार के आधुनिक राग "लिलफ", "साजगिरी", "सरपरदा" आदि को प्रचलित करने का श्रेय उसे ही प्राप्त हैं। उसकी विलक्षण प्रतिभा की कई दिलचस्प कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से एक का कुछ ऐतिहासिक महत्व भी है, जो उसके और दक्षिणी संगीतज्ञ गोपाल नायक के संगीतिक प्रतियोगिता एवं नायक की हार से सम्बन्धित है। अब हमें सर्व प्रथम यह देखना है कि गोपाल नायक अमीर खुसरो का समकालीन था अथवा नहीं तथा वह दिल्ली तक अमीर खुसरो के साथ प्रतियोगिता के लिए गया था या नहीं। वास्तव में आज सच्चे ऐतिहासिक ग्रन्थों की कमी है, अकाट्य प्रमाणों के अभाव से इन प्रश्नों का उचित ऐतिहासिक हल निकालना बड़ा ही कठिन है, परन्तु जो उपलब्ध ऐतिहासिक घटनाएँ आज हमारे सामने हैं, उन पर ही सावधानी से विचार करके एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचना है। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में

(सन् १४२५ के लगभग) विजयनगर के राजा देवराज के दरबार में लक्ष्मीधर पण्डित के पुत्र प्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं विद्वान कल्लिनाथ रहते थे । कल्लिनाथ ने शार्गदेव के "संगीत रत्नाकर" पर एक विशद टीका लिखी है । अपनी टीका के तालाध्याय में कुडुक्क ताल का वर्णन करते हुए कल्लिनाथ गोपाल नायक का इस प्रकार उल्लेख करते हैं :—

"कुडुक्कतालस्तु गोपालनायकेन
रागकदवैरेबगुत्तवद प्रयुक्तः ।"
(पृष्ठ ४३३ "संगीत रत्नाकर")

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कल्लिनाथ के समय गोपाल नायक बड़ा यशस्वी हो चुका था तथा संगीतिक समस्याओं के हल करने में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में माना जाता था । यदि इसे सत्य मान लिया जाए तो गोपाल नायक कल्लिनाथ के लगभग एक शताब्दी पूर्व विद्यमान था, तो यह अनुमान करना कि वह १४ वीं शताब्दी के आरम्भ में ही कभी प्रसिद्ध हुआ होगा कोई अनुचित नहीं है, और इस प्रकार सुलतान अलाउद्दीन तथा उसके दरबारी संगीतज्ञ अमीर खुसरो दोनों का समकालीन रहा होगा । लेकिन अभी इस तथ्य पर और ऐतिहासिक रूप से निश्चय करना है कि गोपाल नायक दिल्ली गया था अथवा नहीं । इसके लिए हमारे पास यह निम्नलिखित विश्वस्त विवरण है, जिससे इस तथ्य पर हल्का-सा प्रकाश पड़ता है ।

"उस काल के मुसलमान ऐतिहासिकों ने लिखा है कि ढाका पर सन् १२९४ में अलाउद्दीन का आक्रमण हुआ तथा सन् १३१० ई० में मुगल सेनापति मलिक काफूर के द्वारा दक्षिण की विजय का कार्य पूरा हुआ, उस समय संगीत की इतनी उन्नति अवस्था थी कि सब संगीतज्ञों और उनके हिन्दू गुरुओं को शाही सेना के साथ उत्तर में लाकर बसाया गया ।" "History of Universal Music" नामक पुस्तक में पृष्ठ ५४ पर राजा सर एस० एम० टाकुर" ने लिखा है ।

दक्षिण भारत में संगीत की प्रगति बराबर चलती रही—

कर्नल पी० टी० फ्रेन्च ने रायल आइरिश एकेडेमी के सामने पढे हुए "The Indian Musical Instruments" में भी यही कहा है—"आज भी कई संस्कृत, तेलगु, कन्नड और तामिल के संगीत ग्रन्थ विद्यमान हैं । उत्तर के संगीत का विकास अवरुद्ध होने के बहुत दिन बाद तक भी दक्षिण भारत में संगीत की सुरक्षा और वृद्धि होती रही । उस काल के मुसलमान ऐतिहासिकों ने लिखा है कि जब सन्

१२९४ में दक्खन पर बादशाह अलाउद्दीन का आक्रमण हुआ तथा उसके कुछ वर्षों बाद दक्षिण की विजय मुगल सेनापति मलिककफूर के द्वारा पूरी हुई, उस समय उत्तर भारत से वहाँ संगीत का पेशा इतना अधिक प्रगतिशील था कि नारी और पुरुष दोनों वर्गों के गायकों, संगीतज्ञों तथा उनके ब्राह्मण शिक्षकों की शाही सेना के साथ उत्तर भारत में लाकर बसाया गया।'' मलिककाफूर ने दक्षिण पर लगभग सन् १३१० ई० में आक्रमण किया तथा देवगिरि के यादव वंश को विध्वंस किया। इससे और अधिक पुष्टिकारी ऐतिहासिक प्रमाण हमारे पास नहीं है, इन्हीं के आधारों पर हमें निर्णय करना होगा, यदि किसी यादव दरबार से उसका सम्बन्ध रहा जो असम्भव नहीं है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि वह दक्षिण के उन विद्वान संगीतज्ञों के साथ था जो बादशाह अलाउद्दीन की शाही सेना के साथ दिल्ली गए थे। मिस्टर मिनरोल ने भी इसी तथ्य की पुष्टि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Indian Music and Culture" में पृष्ठ ३० पर की है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गोपाल नायक का सम्पर्क यादव दरबार से अवश्य था। इसी तथ्य की पुष्टि गनडारो ईवाल ने अपनी पुस्तक "Light of Indian Music" में पृष्ठ ३२ पर की है।

गोपाल नायक और अमीर खुसरो की संगीत प्रतियोगिता—

अमीर खुसरो और गोपाल नायक के बीच जो संगीत द्वन्द हुआ उसके बारे में कैप्टन विलर्ड लिखते हैं :—

"ऐसा कहा जाता है कि जब गोपाल दिल्ली के दरबार में आया तो उसने उस श्रेणी का गान किया, जिसे 'गीत' कहते हैं। उसके समान योग्य संगीतज्ञ के शक्तिशाली तथा सुमधुर कंठ के योग से उस शैली का सौन्दर्य निखर उठा। इस पर बादशाह ने अमीर खुसरो को अपने सिंहासन के नीचे छिप कर रहने का आदेश दिया, जहाँ से अदृश्य रूप में रह कर वह उस संगीतज्ञ को सुन सके। खुसरो ने उसकी शैली को याद रखने का प्रयत्न किया और एक दिन गोपाल नायक को आश्चर्यचकित करता हुआ उस शैली की नकल से उसने कव्वाली एवं तराना गाया। इस प्रकार शठता पूर्वक उसे प्राप्त सम्मान के एक अंश से बंचित कर दिया।''

(पृष्ठ १६० Treatise on the Music of Hindustan)

दरअसल इतने बड़े काल की अवधि के उपरान्त इस पर कोई अधिक प्रामाणिक अथवा विश्वासनीय तथ्य प्राप्त करना असम्भव है। पर इस द्वन्द की कथा इतनी अधिक लोक प्रसिद्ध हो गई है कि हम उसे कोरी कल्पना कह कर टाल नहीं सकते।

१३ वीं तथा १४ वीं शताब्दी के विशेष कर देवगिरि तथा उसके यादव शाशकों के काल के संगीत की स्थिति पर कुछ कहते हुए हम उपलब्ध संगीतिक

प्रमाणों में से उस श्रेष्ठतम ग्रन्थ को नहीं छोड़ सकते जो पिछले ६०० वर्षों से संगीत विद्वनों के हृदय में श्रद्धा एवं आश्चर्य का स्फुरण करता रहा है। हम यहाँ पं० शार्ंग-देव कृत "संगीत रत्नाकर" का उल्लेख कर रहे हैं, जो कि १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया था। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का विवे-चन भली प्रकार किया गया है। दक्षिणी और उत्तरी संगीत विद्वान इस ग्रन्थ को संगीत का आधार ग्रन्थ मानते हैं। आधुनिक ग्रन्थों में भी "संगीत रत्नाकर" के अनेक उद्धरण पाठकों ने देखे होंगे। शार्ंगदेव ने इस ग्रन्थ में मतंग से अधिक विवरण अवश्य दिया है, किन्तु सिद्धान्तिक रूप से मत लगभग एक-सा है।

विख्यात संगीतज्ञ शार्ंगदेव ने संगीत निर्माण में महान योग दिया—

शार्ंगदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है, यह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव वंशीय राजा के दरबारी संगीतज्ञ थे।

इस ग्रन्थ का काल निश्चित करना बड़ा सहज हो जाता है, क्योंकि ग्रन्थकार ने प्रारम्भिक श्लोकों में ही अपने पूर्व पुरुषों और संरक्षकों का इस प्रकार वर्णन किया है :—

"अस्ति स्वस्तिगृहं वंशः श्रीमान्काश्मीर संभवः।
ऋषेर्वर्षगणाज्जातः कीर्तिक्षालितदिङ्मुखः ॥
यज्वभिर्धर्मधीधुर्यैर्वेदसागरपारगैः।
यो द्विजेंद्रैरलंचक्रे ब्रह्मभिर्भृगतैरिव ॥
तत्राभूद्भास्करप्रख्यो भास्करस्तेजसां निधिः।
अलंकर्तुं दक्षिणाशां यश्चक्रे दक्षिणायनम् ॥
तस्याभूत्तनयः प्रभूतविनयः श्रीसोढलः प्रौढ़धी।
येन श्रीकरणप्रवृद्धविभवं भू वल्लभं भिल्लमम् ॥
आराध्याखिललोकशोकशमनी कीर्तिः समासादिता।
जैत्रे जैत्रपदं न्यधायि महती श्रीसिंघणे श्रीरपि ॥

इन श्लोकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शार्ंगदेव के दादा मूलतः काश्मीर के रहने वाले थे और कुछ कारणों से बाद में दक्षिण की ओर आकर दक्खन में बस गए। ऐसा प्रतीत होता है कि भास्कर पंडित के पुत्र सोढल, भिल्लम और सिंघन नाम के राजाओं की दास वृत्ति करते थे। डा० सर आर० जी० भंडारकर ने अपने "Early History of the Deccan" में देवगिरि के यादव-वंशी परवर्ती राजाओं का उल्लेख किया है—"जिनमें भिल्लम (सन् ११८७-११९१) और सिंघन

(सन् १२१०-१२१७) हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके काल से हम यह निश्चित कर सकते हैं कि शार्ंगदेव के दादा भास्कर किस समय देवगिरि पहुँचे। शार्ंगदेव ने अपने से पूर्व संगीत पर होने वाले निम्नलिखित साक्ष्यों का उल्लेख किया है :—

"सदाशिवः शिवा ब्रह्मा भरतः कश्यपो मुनिः ।
मतंगो याष्टिको दुर्गाशक्तिः शार्दूलकोहलौ ।।
"विशाखिलो दन्तिलश्च कम्बलोऽश्वतरस्तथा ।
वायुर्विश्वावसू रंभार्जुन नारदतुंबराः ।।
आंजनेयो मातृगुप्तो रावणो नन्दिकेश्वरः ।
स्वातिगुणो विंदुराजः क्षेत्रराजश्च राहलः ।।
रुद्रटो नान्यभूपालो भोजभूवल्लभस्तथा
परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपतिः
व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकाः
भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपराः
अन्ये च वहवः पूर्वे ये संगीतविशारदाः
अगाध बोधमंथेन तेषां मतपयोनिधिम् ।।
निर्मथ्य श्रीशार्ंगदेवः सारोद्धारमिमं व्यधात् ।।"

ऐसा नहीं मानना चाहिए कि इसमें नामांकित सभी यथार्थ में संगीत ग्रन्थकार थे और पं० शार्ंगदेव की उनके ग्रन्थों तक पहुँच थी, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पंडित जी के समय बहुत से ग्रन्थ विद्यमान रहे होंगे, जिनसे उन्होंने अपनी सामग्री का चयन किया। विंसेन्ट स्मिथ (Vincent Smith) कृत "Early History of India" में हमें भोज सोमेश्वर और परमर्दी का समय मिल जाता है, जो क्रमशः सन् १०५३, ११८३ और १२०८ हैं इससे यह मालूम होता है कि उपर्युक्त राजा सचमुच शार्ंगदेव के पूर्वज थे। डा० एच० एच० विल्सन ने अपने "Theatre of the Hindus" के प्रथम खन्ड में पृष्ठ २२ (तृतीय संस्करण) में लिखा है—

"संगीत रत्नाकर" नाट्य साहित्य से कहीं अधिक गायन और नृत्य का विवेचन करता है। साथ ही नाट्याभिनय और भावपूर्ण अंग विक्षेप के सम्बन्ध में भी उसमें कुछ विचित्र सूचनायें हैं। वह दक्षिण में अर्थ प्राप्ति के लिए गए हुए काश्मीरी पंडित भास्कर के पौत्र सोढल के पुत्र शार्ंगदेव की रचना है। उनके पौत्र को सिंघलदेव नाम के एक राजा ने आश्रय दिया था; पर किस समय और कहाँ उसकी कोई

सूचना वेद हमें नहीं देते । यह स्पष्ट है कि उसने १२ वीं और १५ वीं शताब्दियों के बीच में ही लिखा, क्योंकि इस विज्ञान में होने वाले पूर्ववर्ती पंडितों में उन्होंने भोज का उल्लेख किया है ; साथ ही उनके ग्रन्थ पर विजय नगर के राजा प्रतापदेव। सन् १४५६-७७, की इच्छा से कल्लिनाथ ने एक आलोचना लिखी ।''

इन ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट हो गया है कि शार्गदेव कृत ''संगीत रत्ना कर'' १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया है ।

''संगीत रत्नाकर'' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना गया—

संगीत निर्माता भातखण्डे जी ''संगीत रत्नाकर'' के सम्बन्ध में लिखते है—''मैं समझता हूँ ''संगीत रत्नाकर'' १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया । यद्यपि आज यह ग्रन्थ हमारे प्रामाणिक संगीत ग्रंथों में प्रथम एवं प्रमुख माना जाता है, फिर भी ध्यान रखना चाहिए कि देश के किसी भाग में भी इसका संगीत स्पष्ट समझा नहीं जाता है । निस्सन्देह यह दोनों उक्तियाँ विरोधी दीख पड़ती हैं, परन्तु यह सत्य है कि भारत में वर्तमान कालीन जो विद्वान हैं उनमें से एक भी ''रत्नाकर'' में वर्णित रागों को विस्तृत रूप से समझने में समर्थ न हो सके । 'रत्नाकर' को उत्तरी अथवा दक्षिणी, किस संगीत प्रणाली के प्रामाणिक ग्रन्थों में माना जाए ? इस प्रश्न का अब तक कोई सन्तोष जनक हल प्रस्तुत नहीं हो सका है । कुछ विद्वान इसे उत्तरी ग्रन्थों में मानने की ओर झुकते से दिखाई देते हैं, और दुस्साहस पूर्वक यहां तक दावा कर बैठते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीत की वर्तमान पद्धति शार्गदेव की पद्धति से अधिक दूर नहीं है ; पर यहाँ यह कहना ही पड़ता है कि उनके पास अपने दावों के पक्ष में कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं है । दूसरी ओर दक्षिण के पंडित ''रत्नाकर'' के पारिभाषिक तत्व और रागों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि यह निश्चित रूप से दक्षिणी ग्रन्थ है । वे इस तथ्य की ओर भी हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं कि पिछली पांच शताब्दियों के उनके संस्कृत ग्रन्थकारों ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थों में ''रत्नाकर'' को उद्धृत किया है । चाहे वह ठीक हो अथवा त्रुटि पूर्ण । उन्होंने अपने संगीत तथा ग्रन्थ के रागों की तुलना तक कर डाली है उनके इसमें निस्सन्देह कुछ बल है । पर यह कहना ही पड़ता है कि दक्षिणी ग्रन्थकारों ने भी ''रत्नाकर'' के संगीत का स्पष्ट अनुसरण किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता । मैं यह समझता हूँ कि यह अप्रासंगिक न होगा यदि मैं बतलाऊँ कि किस प्रकार दक्षिण ग्रन्थकारों ने शार्गदेव के रत्नाकर का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है । पंडित रामामात्य अपने ''स्वर मेल कलानिधि'' में कहते हैं—

"एते षड्जादयः सप्त स्वराः शुद्धाः प्रकीर्तिता ।
विकृताश्चैव सप्तैवेत्येवं सर्वे चतुर्दश ।।
ननु रत्नाकरे शार्ंगदेवेन विकृताः स्वराः ।
द्वादशोक्ताः कथं, तेतु सप्तैव कथितास्त्वया ।।
सत्यं लक्षणतो भेदो द्वादशानामपीष्यते ।
शुद्धेभ्यस्तत्र भेदस्तु सप्तानामेव लक्षितः ।।

× × ×

"शुद्ध सप्तस्वरैर्युक्तो मुखारीमेलको भवेत् ।
अस्मिन्मेले मुखारी च ग्रामरागाश्च केचन ।।
संमतः शुद्ध इत्येष शार्ंगदेवविपश्चितः ।
शुद्धौ च षड्जरिषभौ शुद्धाश्च मपधास्तथा ।।
गांधारोऽतरसंज्ञश्च कांकलाख्य निषादकः ।
एयावत्स्वरसंयुक्तो हिजूजीमेलकोभवेत् ।।
हिजूज्याद्या भवंत्यत्र ग्रामरागाश्च केचन ।
इत्येष शार्ंगदेवस्य संमतो मार्गवेदिनः ।।

रामामात्य ने अपने ग्रन्थ की रचना तिथि इस प्रकार दी है :—

शाके नेत्रधराधराब्धिधरणीगरायेऽथ साधारणे ।
वर्षे श्रावणमासि निर्मलतरे पक्षे दशम्यां तिथौ ।।
रामामात्यविनिर्मिते स्वरतते संगीतरत्नकरात् ।
सौऽयं मेल कलानिधिर्मतिमतामाकल्पमाकल्पताम् ।।"

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ की रचना तिथि शाके १४७२ अर्थात् सन् १५४६ की श्रावण शुक्ला दशमी है । मुझे बड़ौदा के केन्द्रीय पुस्तकालय में इसकी एक हस्तलिखित प्रति मिली है ।

पुस्तकालय सूची में सम्पादक द्वारा एक टिप्पणी जोड़ी गई है, जो इस प्रकार है—

"ग्रन्थ २–३२ सम्वत १६२८, जो श्रीरंग के राजा रामराजा के लिए टोडरमल तिम्मामात्य के पुत्र रामामात्य के द्वारा लिखा गया ।" उसी सम्पादक ने क्रमश: "पारिजात" "रत्नाकर" "राग विबोध" का समय सन् १२१०–४७, १५ वीं शताब्दी और सन् १६०६ निर्धारित किया है । व्यक्तिगत रूप से सम्पादक की इन तिथियों को मैं विश्वसनीय नहीं मानता ।

दक्षिण के ग्रन्थकारों ने इस प्रकार अपने ग्रन्थों को "रत्नाकर" तक सम्बन्धित करने का जो प्रयत्न किया इस पर और अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। यद्यपि "रत्नाकर" के नाम और ख्याति से सब परिचित हैं फिर भी ग्रन्थ के रहस्यों को समझने की उचित चेष्टा कहीं नहीं हुई। हमारे उत्तरी पेशेदारों में से कोई भी ग्रन्थ के विषय वस्तु को समझते हैं, ऐसा प्रतीत नहीं होता, पिछली शताब्दी में ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद की एक या दो चेष्टायें हुई, पर अनुवादकों ने शार्ंगदेव के शुद्ध सप्तक तक को भी समझा हो ऐसा मालूम नहीं होता, और इसी लिए शार्ंगदेव के संगीत का अनुसरण करने में वे अनुवादक पूर्णतया असमर्थ रहे।

"संगीत रत्नाकर" अद्वितीय ग्रन्थ ने भारतीय कलाकारों को एक नवीन रोशनी प्रदान की—

भातखन्डे जी आगे लिखते हैं—"मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि जब तक शार्ंगदेव कृत "रत्नाकर" के पूर्ववर्त्ती कुछ ग्रन्थ प्राप्त न हो सकेंगे, इस ग्रन्थ के समाधान की सभी चेष्टाएँ निरर्थक होंगी। अब तक "रत्नाकर" के पूर्ववर्त्ती काल का केवल एक ही ग्रन्थ मुझे प्राप्त हो सका है जो शार्ंगदेव के दो पूर्वज दंतिल और कोहल कृत "दंतिल कोहल्यम" है। इस नाम की एक हस्तलिखित प्रति तंजौर की "पैलेस लाइब्रेरी" में रखी हुई है। यह छोटी-सी रचना नृत्यकला पर है। निस्सन्देह "रत्नाकर" हमारे संगीत की ऐतिहासिक शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है, इसीलिए हमने इस पर इतना गहरा प्रकाश डाला है। यह ऐतिहासिक प्रकाश अवश्य ही शार्ंगदेव और उनकी कृति "रत्नाकर" पर पड़े हुए आवरण को हटा सकेगा।"

अमीर खुसरो द्वारा सितार वाद्य का जन्म—

इस काल की सबसे महत्व पूर्ण घटना "सितार" वाद्य का जन्म होना है। अमीर खुसरो ने भारतीय वाद्यों में एक जबरदस्त क्रान्ति कर डाली। खुसरो को दक्षिणी वीणा पसन्द नहीं आई, उसमें चार तार होते थे। उसने उसकी जगह तीन तार किए, तारों का क्रम उलट दिया और चल परदे लगा दिए। इसके अतिरिक्त द्रुतलय में बजाना सहज करने के लिए, इसकी गतें स्थिर की, और उन्हें ताल में निबद्ध किया। इससे वीणा की अपेक्षा यह वाद्य अधिक लोकप्रिय होगया। इस वाद्य में तीन तार लगाने से उसने सहतार (सितार) फारसी नाम रक्खा। फारसी में सह का अर्थ है तीन, इस प्रकार उस तीन तार वाले वाद्य 'सहतार' का रूप बदलते-बदलते आज सितार बन गया। अतएव अमीर खुसरो, प्रचलित वर्तमान सितार के

जन्मदाता माने जाते हैं परन्तु हम "गुप्त काल" के अध्याय में यह प्रामाणित भी कर चुके हैं कि 'सितार' के जन्मदाता सम्राट समुद्रगुप्त था। खैर जो कुछ भी हो अमीर खुसरो ने वीणा के वाह्य स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। यह तो मानना ही पड़ेगा।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ और कवि अमीर खुसरो, जिसने भारतीय संगीत में एक नवीन मोड़ दिया—

इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो ने विभिन्न विषयों पर बहुत से ग्रन्थ भी लिखे थे जिनमें से संगीत विषय पर लिखी हुई कई फारसी पुस्तक भी हैं, किन्तु यह आजकल अप्राप्य हैं। उन्होंने ही "खालक़बारी" जैसी प्रसिद्ध हिन्दी फारसी, और अरबी का कोष (Dictionary) पुस्तक पद्यमय बनाई। अमीर खुसरो ने गायन की नवीन प्रणाली को जन्म दिया जिसे कव्वाली कहते हैं। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र को नवीन-मार्गों का निर्देश करके अमीर खुसरो लगभग ७२ वर्ष की आयु में अर्थात् सन् १३२५ ई० के लगभग दिल्ली में स्वर्गवासी होगया। लेकिन उसने जो भारतीय संगीत के क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया वह कभी भारतीय संगीत के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता।

श्रीनेहरू जी अमीर खुसरो के सम्बन्ध में लिखते हैं—"इन लिखने वालों में सबसे मशहूर खुशरो था, जोकि एक तुर्क था, और जिसका घराना उत्तर प्रदेश में दो तीन पीढ़ियों से बस गया था। यह चौदहवीं सदो में हुआ और इसने कई अफगान सुलतानों के जमाने देखे थे। फारसी का तो यह चोटी का शायर था, वह संस्कृत भी जानता था। वह बहुत बड़ा संगीतज्ञ भी था, और हिन्दुस्तानी संगीत में उसने कई नई बातें पैदा की। यह भी कहा जाता है कि हिन्दुस्तान का आम पसन्द वाद्ययंत्र सितार उसी की ईजाद की हुई चीज है। उसने बहुत से मजबूनों पर लिखा है और खासतौर पर हिन्दुस्तान की तारीफ की है, और यह बताया है कि किन-किन बातों में हिन्दुस्तान बढ़ा हुआ है। इनमें मजहब, फिलसफा, तर्क शास्त्र, भाषा, और व्याकरण (संस्कृत) संगीत, गणित, विज्ञान और आम का फल बताए गए हैं।

लेकिन हिन्दुस्तान में खासतौर पर उसकी शौहरत की वजह उसके आम पसन्द गीत हैं, जिन्हें कि उसने लोगों की आम जबान हिन्दी में लिखा है। उसने साहित्यिक माध्यम न चुनकर बड़ी अक्लमन्दी की, क्योंकि उसे मुट्ठीभर लोग ही समझ पाते, उसने गाँव वालों की जबान ही नहीं इस्तेमाल की, बल्कि उनके रीति-रिवाज और रहन-सहन के ढंग का भी बयान किया। उसने जुदा-जुदा ऋतुओं के

गीत लिखे हैं, और हिन्दुस्तान की पुरानी शास्त्रीय परम्परा के बमूजिब हर एक ऋतु के लिए अलावा राग और बोल हैं, उसने जिन्दगी के विविध पहलुओं पर गीत रचे हैं, दुल्हन के आने पर, प्रेमी के वियोग पर, वर्षा ऋतु पर, जबकि जली हुई धरती से नई जिन्दगी फूट निकलती है। यह गीत अब भी दूर-दूर गाए जाते हैं और हम इन्हें उत्तरी और मध्य हिन्दुस्तान के किसी गांव या शहर में सुन सकते हैं। खासतौर पर तब, जबकि वर्षा ऋतु आती है और हर एक गाँव में आम और पीपल की शाखों पर बड़े-बड़े झूले पड़ते हैं और गांव के सभी लड़के-लड़कियाँ उसे मनाने के लिए इकट्ठा होते हैं।

अमीर खुसरो ने बहुत सी पहेलियाँ भी रची हैं, जोकि बच्चों और बड़ों दोनों में ही बहुत चलती हैं। अपनी जिन्दगी में ही खुसरो गीतों और पहेलियों के लिए मशहूर होगया था। उसकी यह शोहरत बढ़ती ही रही है और मैं कहीं भी ऐसी मिसाल नहीं पाता कि छः सौ साल पहले जो गीत लिखे गए हों, वह अब भी आम पसन्द हो और अब भी लफजों की फेर-फार बगैर, ज्यों के त्यों गाए जाते हों।"

प्रसिद्ध इतिहासकार राजा सुरेन्द्रमोहन टैगौर ने अपनी पुस्तक "Universal History of Music" में इस काल के संगीत के सम्बन्ध में थोड़ा-सा प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार है—"The Mohomedans as a ruling nation came in contact with the people of India for the first time in the IIth century, and since then a change has been worked into the music system of the country. The Mohomedans did not encourage the theory of the art, but they patronized practical musicians and were themselves instrumental in composing and introducing several styles of songs or divising new forms of musical instruments. It is related by Mohomedan Historians of the period that when Dacca was invadad by Allaudin in 1294 and the Conquest of the south of India was completed (1310) by his Mogul general Mailk Kafer. Music was in such a flourishing condition, that all the musicians and their Hidu preceptors were taken with the armies, and settled in the North. It is said that the celebrated Persian poet and musician Amir khosru came to India during the rule of

Allaudin and defeated in a contest the musician of the south Nayak Gopal, who had come to Delhi with a view to challenge the musicians of the court. Amir khosru is reported to have given the Name of "Satar" to the Tritantri Vina of the classic days."

खिलजी युग में संगीत के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, और भारतीय संगीत को एक नवीन वातावरण में से होंकर चलना पड़ा।

इसी शताब्दी में मुसलमान फकीर निजामउद्दीन औलिया हो गया है, जो संगीत का बड़ा प्रेमी था, और जिसने संगीत प्रचार में बडा योग दिया।

तुगलक-युग में संगीत

(सन् १३२०–१४१२ ई०)

तुगलक वंश का गयासुद्दीन तुगलक प्रथम सुलतान था। इसका समय (१३२०–२५ ई०) तक रहा। जब यह गद्दी पर बैठा तब साम्राज्य बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो रहा था। उसकी सम्पूर्ण शक्ति अपनी शाशन व्यवस्था ठीक करने में लगी। गयासुद्दीन तुगलक को संगीत से कोई विशेष रुचि न थी, और फिर इसको इतना समय भी नहीं मिलता था कि वह संगीत तथा अन्य कलाओं के विकास पर ध्यान दे सकता। अतएव इसके समय में भारतीय संगीत की गति धीमी पड़ गई। खिलजी युग में जिस तेज गति से संगीत का उठान हुआ था, वह इस गयासुद्दीन के समय में स्थिर न रह सका।

मुहम्मद तुगलक संगीत प्रेमी था और विद्वानों का आदर करता था—

गयासुद्दीन तुगलक के बाद उसका बेटा मुहम्मद तुगलक दिल्ली की गद्दी पर बैठा (१३२५–५१ ई०)। मुहम्मद तुगलक संगीत प्रेमी था, बड़ा विद्वान था, और वह कलाओं के विकास में दिलचस्पी लेता था। इसके समय में संगीत का विकास हुआ किन्तु खिलजी युग की तहर नहीं, परन्तु फिर भी गयासुद्दीन के समय से संगीत की हालत काफी सुधर गई थी। मुहम्मद तुगलक विद्वानों एवं कलाकारों का आदर करता था। इसका साम्राज्य सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैला हुआ था और दक्षिण में द्वार-समुद्र तक तथा पूर्व में बंगाल से पश्चिम में सिन्ध तक विस्तृत था। राज्य २३ सूबों में विभक्त था। इन तेइस सूबों के कलाकार कभी एक साथ मिल नहीं पाते थे क्योंकि राज्य की ओर से कोई भी ऐसा प्रयत्न नहीं हुआ। हाँ, प्रान्तीय संगीत समारोह तो बराबर चला करते थे, जिनमें संगीत प्रदर्शन के अतिरिक्त संगीत विषय पर विवेचन भी हुआ करता था। इन सम्मेलनों में मुसलमान और हिन्दू सब एक साथ मिलकर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। कला के क्षेत्र में जातीयता की भावना पैदा न हो पाती थी। धार्मिक उभार भी कला के क्षेत्र में ऊँचा न उठ पाता था। हिन्दू-मुसलिम कलाकार सभी मिलकर एक साथ कला के विकास में योग दान करते थे।

भारतीय नारियों का संगीत विकास एकदम रुक गया—

इस काल में संगीत को राजाश्रय न मिल सका, लेकिन फिर भी दरबारी आयोजनों में संगीत का क्रम चला करता था। मुसलिम नारियाँ भी संगीत प्रिय होती थीं। लेकिन वे सार्वजनिक संगीत समारोहों में भाग न ले पाती थीं, क्योंकि परदे की प्रथा भारतवर्ष में प्रारम्भ हो गई थी। मुसलमानों के आगमन से ही परदे का प्रवेश भारत में हुआ। इस प्रथा ने भारतीय नारियों की स्वतन्त्रता में रुकावट डाली, और अब हिन्दू नारियाँ भी मुसलिम नारियों की तरह घर की चार दीवारी में बन्द हो गईं। अब वे किसी भी सार्वजनिक उत्सव में भाग न ले पाती थीं। वे शिक्षा भी ग्रहण न कर पाती थीं। अतएव इस काल में भारतीय नारियों का संगीत विकास एक दम रुक गया। नारियों को संगीत शिक्षा देना कोई आवश्यक न समझा गया पर जन साधारण में संगीत का दौड़ बराबर चलता रहा। नृत्य और गायन में आम जनता अधिक दिलचस्पी लिया करती थी।

नगर और ग्राम के संगीत में अन्तर पड़ चुका था—

विख्यात इतिहासकार केल डास्टी ने अपनी पुस्तक The Indian music of Muslim Period" के ५० पृष्ठ पर लिखा है—"तुगलक काल में संगीत का विकास बहुत ही न्यून मात्रा में हुआ। संगीत की कोई नवीन धारा का जन्म इस काल में नहीं हुआ, और न कोई इस काल में महान संगीतज्ञ ही हुआ। लेकिन भारतीय जनता का जीवन पूर्ण संगीत मय हो रहा था, पर नारियाँ अवश्य संगीत से उदासीन-सी मालूम पड़ती थीं। पर्दा का आवरण नारियों पर पड़ जाने से उनकी प्रवृत्तियों का विकास खत्म-सा हो गया था। उनकी सारी चहल-पहल घर की दीवालों के अन्दर सीमित करदी गई थी। नाटकों का रिवाज आम जनता में था। अधिकतर धार्मिक नाटक खेले जाते थे, जोकि संगीत प्रधान हुआ करते थे। ग्रामीण वातावरण भी संगीत से दूर नहीं था, पर उनका संगीत नागरिक संगीत से पृथक था। नगर निवासी ग्रामीण संगीत में आनन्द नहीं लेते थे, और न ग्रामीण लोग नगर के संगीत को पसन्द करते थे, इस प्रकार सर्व-प्रथम इस काल में नगर और ग्राम के संगीत के मध्य में एक दीवाल-सी बनती जा रही थी।"

इस काल में उत्तरी अफ्रीका का एक यात्री इब्नबतूता सन् १३३३ ई० में भारत में आया था। उसने भारत भ्रमण का सुन्दर विवरण लिखा है, जिसमें उसने

इस समय की कलात्मक स्थिति का भी चित्रण किया है। इब्नबतूता ने भी यह स्वीकार किया है कि इस क़ाल में भारतीय संगीत की स्थिति सुन्दर नहीं थी, वह कहता है कि संगीत को संकीर्णता की सुदृढ़ दीवालों में कैद कर दिया गया था, इससे उसकी दशा पानी के उस गड्ढे के समान हो गई थी, जिसमें कोई वहाव नहीं रहता और न उसमें बाहर से पानी आने का कोई स्रोत रहता है, फिर उस पानी की क्या दशा होगी, कुछ काल के बाद उसमें सड़ाइद पैदा हो जायगी। बस यही हालत भारतीय संगीत की थी।

लोदी-काल में संगीत

(सन् १४१४–१५२६ ई०)

लोदी वंश में तीन सुलतान हुए। पहला बहलोल लोदी, दूसरा सिकन्दर लोदी, और तीसरा इब्राहीम लोदी।

इस काल में भारतीय संगीत ने पुनः करवट ली—

इस काल में भारतीय संगीत ने पुनः करवट ली। तुगलक काल में संगीत की स्थिति गिरगई थी, वह इस काल में सुधरने लगी। जनता में काफी उत्साह संगीत की ओर पाया जाता था। अनेक मुसलिम कलाकार पैदा हुए, और उन्होंने पूरे जोश के साथ संगीत के विशाल क्षेत्र में कार्य किया। अनेक हिन्दू कलाकारों ने भी इस महान कार्य में मुसलिम कलाकारों से सहयोग किया।

भारतीय संगीत के यथार्थ रूप की रक्षा की गई—

इस काल में इस बात पर वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ था कि भारतीय संगीत के रूप को कैसा बनाया जाए। हिन्दू कलाकार अब इस पक्ष में नहीं थे कि भारतीय संगीत की अन्तर पृष्ठ को और अधिक बिगाड़ा जाए। वे उसकी प्राचीनता स्थिर रखना चाहते थे। मुसलिम संगीत का आर्य संगीत पर इतना दबाव न पड़ जाए कि जिससे आर्य संगीत का यथार्थ एवं आत्मिक सौन्दर्य ही नष्ट हो जाए, इसलिए वे संगीत का विकास तो चाहते थे, लेकिन उस विकास के नाम पर संगीत के उस पावन रूप को विकृत न किया जाए, उसके मौलिक सिद्धान्तों का गला न घोंटा जाए। मतलब यह कि वे और अधिक "आर्य संगीत" पर मुसलिम संगीत का गहरा रंग चढ़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे। पर मुसलिम कलाकार तो इस प्रयत्न में थे कि वे जो अरब से संगीत की पद्धति लाए थे, उसको ही भारतीय वातावरण में ढाला जाए, ताकि उनकी प्रधानता शासन में बनी रहे, और उनका मान-सम्मान बराबर स्थिर रहे। बहुत कुछ तो उन्होंने भारतीय संगीत में परिवर्तन कर दिया था। बस यही विषय वाद-विवाद का था, और अन्त में यही निर्णय हुआ कि भारतीय संगीत के यथार्थ रूप की रक्षा की जायगी। लेकिन इस क्षेत्र में जो सुस्ती आगई है, उसको हटाया जाए। उसके सही दृष्टिकोण को देश के सामने रक्खा जाए। अतएव अनेक ऐसी संस्थाएँ बनी, जिन्होंने भातरीय संगीत

की पवित्र आवाज को बुलन्द किया। इन संस्थाओं के लोगों का कार्य यह होता था कि यह गाँव-गाँव, नगर-नगर घूम-घूम कर संगीत की स्थिति का निरीक्षण करते और उसके विकास का साधन जुटाते।

इस युग में ख्याल, कव्वाली और ठुमरी का प्रचलन खूब जोरों पर था—

कव्वाली, गजल, ख्याल, ठुमरी आदि देश के अन्दर खूब प्रचलित होगए थे, यहाँ तक कि गाँव वाले भी कव्वाली गाते हुए देखे जाते थे। नारियाँ भी कव्वाली गाती थीं। "समूह गान" का रिवाज इस युग में बढ़ा। ख्याल भी गाए जाते थे। नवीन नृत्यों का निर्माण हुआ, जिनमें अनेक अरबी, ईरानी रोमान्टिक कथाएँ गूँथदी गई थीं। यह रोमान्टिक नृत्य आम जनता में खूब चलते थे, इनको हिन्दू लोगों ने भी दिल खोल कर अपनाया। नृत्यों के निर्माण में ईरानी और अरबी वातावरण को भी प्रस्तुत किया जाता था। यह हिन्दुओं के लिए कौतूहल की चीज होती थी, पर वे इस खुशनुमा वातावरण को पसन्द बहुत करते थे। इसी प्रकार नाटकों के कथानक भी रचे गए। वे कथानक भी अरबी और ईरानी वातावरणों से भरे रहते थे और इन नाटकों में संगीत की भरमार रहती। दरबारी लोग भी संगीत-प्रिय थे। सिकन्दर लोदी विशेष रूप से भारतीय संगीत का प्रेमी था। वह भारतीय संगीत को समझने का प्रयत्न भी करता था, ऐसा कैप्टन टर्नाहुल्स ने अपनी पुस्तक "My Survey of Indian music-Instruments" में पृष्ठ ४० पर लिखा है। पर कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि वह संगीत का ज्ञान नहीं रखता था, इन विद्वानों में प्रमुख हैं मिस्टर गार्ली ओविन्स, जिन्होंने एक पुस्तक लिखी है "Indian music" इसमें उन्होंने पृष्ठ ४५ पर लिखा है—"सिकन्दर लोदी को संगीत ज्ञान कुछ भी नहीं था, लेकिन वैसे वह योग्य शाशक था। विद्वानों का आदर करता था, और उसके शासन काल में भारतीय संगीत की उन्नति हुई। गजल और ख्याल अधिक बने।" खैर जो कुछ भी हो इतना तो कहा ही जा सकता है कि लोदी काल में संगीत का विकास हुआ, और इस क्षेत्र में अनेक नवीन कलाकार पैदा हुए, जिन्होंने संगीत के पथ को प्रशस्त बनाया, और जिन्होंने संगीत विषय पर नवीन दृष्टिकोण से पुस्तकें भी लिखी।

मुगल काल के प्रथम चरण में संगीत
(सन् १५२५ से १५५६ ई०)

बाबर गाने में प्रवीण था—

इस काल का प्रारम्भ बाबर से होता है और समाप्ति हुमायूँ की मृत्यु पर होती है। बाबर स्वयं बड़ा संगीतज्ञ था। उसने अनेक गीत गाने के लिखवाये थे। उसने बड़ी भावुकता के साथ हिरात के दरबार के गायकों के नाम तथा उनके कौशल का वर्णन किया है। बाबर को संगीतज्ञों से प्रेम भी था, और समय-समय पर वह गाने सुनता था। गायकों को नई सूझ-बूझ भी दिया करता था। बाबर को इतिहासकारों ने केवल प्रभावशाली योद्धा बताया है, किन्तु उन्होंने उसके कोमल पहलू को नहीं देखा।

बाबर संगीत की महान शक्ति का कायल था—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार गमाल आस्वानी ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "भारत के प्राचीन संगीत की खोज" में लिखा हैं—"बाबर जहाँ एक वीर योद्धा था, वहाँ उसके साथ ही साथ वह एक संगीतज्ञ भी था। वह गाने में प्रवीण था, और गायकों का सम्मान करता था, जब उसने भारत पर आक्रमण किया था तो वह अपने साथ संगीतज्ञों को भी लाया था। पानीपत की लड़ाई में उसका युद्ध-संगीत बड़ा प्रभावशाली था। यह भारतीय युद्ध-संगीत से पृथक था, उसकी अपनी अपूर्वता थी। श्रेष्ठ गाने वालों को पुरस्कार भी दिया करता था। उसका ऐसा विश्वास था कि संगीत में एक महान शक्ति है, इसके द्वारा मानव का हृदय सहज ही में परिवर्तित हो सकता है। इसीलिए वह बड़ा संगीत प्रेमी अपने जीवन पर्यन्त रहा। बाबर के काल में नृत्य की भी उन्नति हुई, परन्तु बाबर को भारतीय नृत्य पसन्द नहीं थे, वे उसकी समझ में नहीं आते थे, और इतना उसे अवकाश नहीं मिला कि वह भारतीय नृत्यों को निकट से अध्ययन करता। वैसे वह अरेबियन, तुर्की नृत्यों को बहुत पसन्द करता था।"

ख्याल, कव्वाली, गजल आदि गायन शैलियाँ प्रचलित हो चली थीं—

बाबर काल में भारतीय संगीत का विकास रुक नहीं गया, बल्कि उसकी गति तेज ही हुई।

"ख्याल" और "कव्वाली" का प्रचलन अधिक रहा । गजल का भी प्रयोग इस काल में होता था । देश के अन्दर कव्वाली का फैलाव खूब हो चुका था । बाबर के काल में संगीत की आध्यात्मिक शक्ति का भी विकास हुआ और साथ ही साथ शृंगारिक रचनायें अधिक प्रचलित हुईं । जो सैनिक हारे-थके अपने विश्राम केन्द्रों पर आते थे, उनके सामने यही शृंगारिक गाने गाये जाते थे, उन्हीं से वे मनोरंजन किया करते थे । वे सैनिक कोई ऐसी चीज सुनना पसन्द नहीं करते थे, जिससे उनके स्नायुओं पर अधिक बल पड़े । वे अपने मस्तिष्क को संगीत की गहराइयों में उलझाना नहीं चाहते थे । उनको संगीत का ऐसा "डोज" दिया जाता था कि जिससे उनकी सारी थकावट पल भर में दूर हो जाए । अतएव इस काल में संगीत के आन्तरिक सौन्दर्य का विकास रुका रहा, पर इसका मतलब यह नहीं कि इस काल में संगीत की प्रगति मन्द रही । ऐसी बात नहीं है । संगीत प्रगति के मुख्य पथ पर बराबर बढ़ता ही रहा, सिर्फ अपने एक रूप को छोड़ता हुआ । इस काल में सामान्य वर्ग में संगीत के उत्सव भी हुआ करते थे ।

भारतीय संगीत अनेक विदेशी रूपों को आत्मसात करता रहा—

भारतीय संगीत पर तुर्कों का भी प्रभाव पड़ा, लेकिन वह प्रभाव बहुत हल्का रहा जिसको कि भारतीय संगीत ने आत्मसात कर लिया । भारतीय संगीत की यह एक विशेषता रही कि वह अनेक विदेशी रूपों को अपने अन्दर जज्ब करता रहा, और अपना रूप ही सर्वोपरि रखता रहा । तभी तो अरेबियन विद्वान जाइयाली ने लिखा है—"भारतीय संगीत ठीक उस सागर के समान है, जिसमें चारों ओर की सब नदियाँ मिलती हैं, और फिर भी सागर अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता, वह अपनी स्वाभाविक स्थिति, स्वाभाविक सौन्दर्य को अक्षुण्ण रखता है । भारतीय संगीत ने अपनी मौलिक मर्यादा को कभी तिलाजंलि नहीं दी, हालाँकि उस पर अनेक रंग चढ़ाये गए, कई तरह की पोलिश की गई, कई साँचों में ढाला गया, परन्तु फिर भी भारतीय संगीत अपनी भारतीयता के उज्ज्वल सौन्दर्य को न छोड़ सका ।"

"संगीत-रत्नाकर" की टीका विस्तृत रूप से लिखी गई—

इसी काल में महान संगीतज्ञ विजय नगर के दरबार में पं० कल्लिनाथ रहते थे । इन्होंने शार्गदेव कृत "संगीत-रत्नाकर" की टीका विस्तृत रूप से लिखी । यह टीका यद्यपि संस्कृत भाषा में ही थी, तथापि उसके द्वारा अनेक संगीत शास्त्रकारों ने यथोचित लाभ उठाया । इस टीका से भारतीय संगीत को बहुत नवीन शक्ति मिली, इससे उसका शास्त्रीय संगीत निखर गया ।

इस काल में ख्याल-गायकी का अधिक प्रचार हुआ—

पन्द्रहवीं शताब्दी में (१४५८–१४९९ ई०) जौनपुर के बादशाह सुलतान हुसेन शर्की संगीत कला के अत्यन्त प्रेमी थे। इन्होंने ख्याल गायकी का आविस्कार किया तथा अनेक नवीन रागों की रचना की। जैसे जौनपुरी तोड़ी. सिन्धु भैरवी, रसूल तोड़ी, १२ प्रकार के श्याम, जौनपुरी, सिन्दूरा इत्यादि।

पर कुछ विद्वानों की यह राय है कि सुलतान हुसेन ने ख्याल का आविष्कार नहीं किया, बल्कि वह ख्याल गायकी का बड़ा प्रेमी था, इसलिए इसके समय में ख्याल का भारत में अधिक प्रचार हुआ। श्री भातखण्डेजी की भी यही राय है, वह लिखते हैं—"हमारी सम्मति में यह मानना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता कि अमुक व्यक्ति ने ख्याल उत्पन्न करके उसका प्रचार किया। ख्याल की तरह का गाना पहले से ही समाज में प्रचलित चला आरहा था। परन्तु वह समाज में सामान्य न था। आगे चलकर सुलतान हुसेन ने इस गाने को पसन्द किया। उसने गायकों को प्रोत्साहित किया तथा इसलिए उसका प्रचार अधिक हो गया। यही सर्वमान्य होना चाहिए।"

लेकिन कैप्टन विलर्ड अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर लिखते हैं—"In the khyal the subject generally is love tale, and the person supposed to utter it is a female. The style is extremely graceful, and replete with studied elegance and embellishments. it is chiefly in the language spoken in the district of khyrabad, and consists of two tooks. Sooltan Hoosain shurquee of jaunpore is the inventor of this class of song." इस प्रकार कैप्टन विलर्ड ने भी ख्याल का जन्मदाता सुलतान-हुसेन शर्की को माना है। खैर जो कुछ भी हो इतना तो निश्चयात्मक रूप से कहा ही जाता है कि इस काल में ख्याल का प्रचार जोरों पर था।

इसी काल में उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा—

इसी समय अर्थात् (१४८५–१५३३ ई०) के बीच उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा भजन कीर्तन के रूप में संगीत का जगह-जगह उपयोग होने लगा, साथ ही साथ बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवद्भक्तों ने संकीर्तन का प्रचार किया। इन कीर्तनों के द्वारा भारतीय संगीत की आत्मिक सुषुमा पर्याप्त मात्रा में ऊपर उभर आई और भारतीय संगीत की आध्यात्मिक पृष्ठ-सुदृढ़ हुई। आप प्रश्न कर सकते हैं कि भक्तों का सम्बन्ध संगीत से किस प्रकार हुआ? धर्म में यह

शक्ति कब से आई ? इसका उत्तर इसमें सन्निहित है कि वैष्णवों ने संगीत को अपने रस का एक माध्यम बना लिया, क्योंकि उनके पास अपने ब्रह्म तक पहुँचने का यही एक साधन था। शुद्धाद्वैतवाद में रस, ब्रह्म का एक आवश्यक गुण है। वैष्णव पुस्तकों के कुछ उदाहरण द्वारा इसकी पुष्टि हो जायगी।

(१) विष्णु धर्म में भगवान कहते हैं—

"रागेन कृष्यते चेतो गन्धर्वाभिमुखं यदि ।
ममि बुद्धिं समास्थाय गायेथ मम सत्कथा ।।"

(२) हरि भक्त सुद्योदम में—

"यो गाययतीपमनिशं भुवि भक्त उच्चैः
सद्राक समस्त जन पायः भिदे डलमेकः ।।
दीपेप्व सत्स्वादी ननु प्रति गेह मन्तध्वन्तिं ।
क्मित्र विलसत्य भले द्य नाथे ।।"
यदानन्द कलं गायन भक्तः पुराया श्रुवर्षाति ।
तत्सर्वतीर्थं सलिल स्नांन स्वमल शोधनम ।।"

चैतन्य महाप्रभु ने भारतीय संगीत को महान शक्ति प्रदान की—

कहने का मतलब यही है कि भक्ति से संगीत को शक्ति प्राप्त होती रहती है। कीर्तन भजन के द्वारा संगीत का आत्मिक सौन्दर्य प्रफुटित होता रहता है। चैतन्य महाप्रभु ने भारतीय संगीत को महान शक्ति प्रदान की। उनके संगीत से अनेक सामान्य व्यक्ति भी, जो संगीत से प्रेम नहीं रखते थे वे भी सगींत प्रेमी बन गए। इस प्रकार उन्होंने संगीत का दायरा विस्तृत किया। इस काल में जहाँ एक ओर भारतीय संगीत का वह अंग जिसको मुसलिम शाशक अधिक पसन्द करते थे विकसित हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर उसका शुद्ध भारतीय रूप भी विकास की ओर उन्मुख हो रहा था। चूँकि इस काल में अनेक भक्त हुए इसलिए संगीत के तात्विक रूप के विकास में भी योग मिलता रहा। विख्यात इतिहासकार डामो अपनी पुस्तक "music and men" में पृष्ठ ३५ पर लिखता है—"मुगल काल के प्रथम चरण में बल्कि उससे पहले से ही भारतीय संगीत विकसित हो रहा था। इस काल में हमें भारतीय संगीत के दोनों रूप साथ साथ विकसित होते हुए मिलते हैं। एक ओर तो चैतन्य महाप्रभु अपने संगीतिक कीर्तनों द्वारा भारत की सामान्य जनता को संगीत की ओर आकर्षित कर रहे थे, और दूसरी ओर ख्याल और कव्वालियों के द्वारा एक नवीन प्रकार का संगीत मुखरित हो रहा था। वास्तव में मुगल काल का प्रथम चरण संगीत के दृष्टिकोण से बड़ा महत्वपूर्ण काल रहा है। इस काल में अनेक संगीत रत्न पैदा हुए, जिन्होंने

संगीत की अनेक प्रकार से सेवा की। शास्त्रकार भी पैदा हुए, जिन्होंने संगीत के शास्त्रीय रूप को मजबूत बनाया। इस प्रकार संगीत के अन्दर, बीच के समय में जो गिरावट, तथा लड़खड़ाहट आ गई थी वह इस काल में थमकर सुस्थिति होने लगी।"

कर्नाटकी संगीत का विकास भी होता रहा—

सन् १५५० ई० के लगभग कर्नाटकी संगीत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्वर मेल कलानिधि" श्री रामामात्य द्वारा लिखा गया। जिसमें बहुत से रागों का वर्णन दिया गया है। यद्धपि उत्तर भारत को संगीत पद्धति से इस ग्रन्थ का सीधा सम्बन्ध नहीं है तथापि इसका अध्ययन संगीत जिज्ञासिओं के लिए अब भी आवश्यक समझा जाता है। इस ग्रन्थ ने दक्षिणी संगोत को विकास पथ पर आगे बढ़ाया। इस प्रकार इस काल में जहाँ उत्तरी भारत का संगीत विकसित हो रहा था, वहाँ दक्षिणी भारत का भी संगीत षुष्प प्रस्फुटित हो रहा था। दक्षिण में भी इस काल में अनेक भक्त हुए, जिन्होंने गायन शैली को अपना ईश्वर उपासना का शक्तिशाली माध्यम बनाया।

कर्नाटकी संगीत अपनी प्राचीन सुषमा को प्रस्फुटित कर रहा था—

दक्षिण का संगीत इस काल में भी अपनी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रहा। वहाँ ख्याल और कव्वाली का दब दबा न रहा। वे लोग तो भारतीय संगीत की प्राचीन परिपाटी को इस काल में भी पकड़े रहे। सुप्रसिद्ध विद्वान मोलोगिन ने "The History of Daccan's music" नामक अपनी पुस्तक के ५५ पृष्ठ पर लिखा है—"मुगल काल के प्रथम चरण में दक्खिन का संगीत अपनी पुरानी सुषमा के देदीप्यमान गौरव को विकसित कर रहा था, जब कि उत्तर भारत के विशाल प्रांगण में विदेशी संगीत से मिश्रत भारतीय संगीत अपनी विचित्र आभा विकीर्ण कर रहा था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि मुगल काल के प्रथम चरण में सम्पूर्ण भारत में संगीत की हलचल हो रही थी। वह हलचल कहीं कव्वाली, ख्याल आदि के रूप में मिलती, और कहीं कीर्तन, भजन और गीतों के रूप में प्राप्त होती। पर संगीत की ज्योतिस्ना की स्निग्ध आभा भारत पटल पर बिखर रही थी, इसमें सन्देह नहीं।"

इस काल के अन्दर बाबर के पूर्व काल का थोड़ा-सा हिस्सा आजाता है, क्योंकि उनके कार्य-कलापों का प्रभाव इस काल तक बराबर पड़ता रहा।

संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि भी सुदृढ़ हुई—

बाबर के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा। यह स्वभावतः विचारशील था। उसके चरित्र पर सूफी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। अनेक सूफी सन्तों की तरह

वह भी गान को ईश्वरी प्रार्थनाओं का एक आवश्यकीय अंग समझता था। हुमायूँ के काल में अनेक सूफी भक्त हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत को विकसित किया। उनका अपना ढंग था, अपनी एक नवीन शैली थी। किन्तु उनके संगीत से भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ हुई। यह सूफी सन्त आम जनता में भी जाते थे और यह अपने विचारों का प्रचार प्रायः संगीत के माध्यम से ही करते थे, जिसका प्रभाव सर्वसाधारण व्यक्तियों पर बड़ी शीघ्रता से पड़ जाता था। प्रसिद्ध विद्वान अलकरोजी लिखता है--"हुमायूँ के समय में सूफियों का बड़ा जोर रहा, यह मानव जीवन की सुन्दर बातें जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। इनका विचारों का प्रस्तुतीकरण का ढंग बड़ा आकर्षक पूर्ण होता था, और बड़ा ही संगीतमय होता था। यह जो बात, जो सिद्धान्त कहते थे वह गाने की मीठी ध्वनों में उड़कर मानव हृदय पर नगीने की तरह जड़ जाती थी।"

("प्रेम और संगीत" नामक पुस्तक के १५ पृष्ठ पर देखिये)

हुमायूँ भारतीय संगीत का बड़ा प्रशंसक एवं प्रेमी था--

हुमायूँ स्वयं भी संगीतज्ञों का बड़ा आदर करता। उसको वे गाने पसन्द आते थे जिनमें जीवन की दार्शनिक बातों का विश्लेषण किया जाता था, जिनमें आत्मा और परमात्मा का दिव्य रूप पर प्रकाश डाला जाता था, और जिनमें मानवता के उत्कर्ष का सितारा बुलन्द किया जाता था, तथा जिनमें मानव प्रेम के असीम सौन्दर्य का निरूपण किया जाता था। वह एकाग्र होकर संगीत को सुना करता था, और सुनते-सुनते उसकी गहराई में भी डूब जाता था। इस तथ्य की पुष्टि रूमानी ने अपनी पुस्तक "तास्केइल" में की है। कहते हैं जब हुमायूँ अधिक संकट पूर्ण रहने लगा, तो फिर वह उन संकट पूर्ण दिनों में संगीत सुनकर अपनी निराशा और मायूसी को कम किया करता था। अलवरोदी ने अपने ग्रन्थ "ताज-के-हिन्द" में लिखा है—"हुमायूँ ने संगीत को संकट कालीन अवस्था में भी नहीं छोड़ा। उसे संगीत बड़ा प्रिय था। उसका विश्वास था कि संगीत से मानव जीवन में एक नवीन रोशनी आती है, एक नूतन उत्साह भरता है, और इसीलिए वह मरते दम तक संगीत का महान उपासक बना रहा। यदि उसे अवकाश मिलता तो वह अवश्य संगीत के क्षेत्र में कोई महान कार्य करता।"

इस काल में भजनों और गीतों का बड़ा बोलबाला रहा—

मुगल काल के प्रथम चरण में भजनों का प्रादर्भाव हो चुका था। वास्तव में भजनों की ओर आम जनता का प्रेम भक्तों द्वारा ही पैदा किया हुआ था। इसीलिए इस काल में नवीन-नवीन भजन भी निर्मित हुए। ईश्वर के दिव्यरूप को भजनों की लड़ी में गूँथ दिया गया। इन भजनों के द्वारा जहाँ एक ओर संगीत का प्रचार हुआ

वहाँ दूसरी ओर ईश्वरी ज्ञान भी आम जनता में फैला। इसका परिणाम यह हुआ कि इस काल में मानवों का नैतिक चरित्र भी पर्याप्त मात्रा में ऊपर उठा। नैतिक चरित्र के उठने से संगीत को एक नवीन शक्ति मिली। संगीत की साधना भी होने लगी। मानव जीवन सुन्दर और स्वस्थ बन गया। बीच के काल में मानवों के जीवन पर जो अनैतिकता का गर्दो गुबार छा गया था वह इस काल में हटने लगा।

संगीत के द्वारा आम जनता की रुहानी ताकत भी सुदृढ़ की गई—

आलामा इस्की ने "किवाले हुल" नामक पुस्तक में लिखा है—"मुगल काल के प्रथम चरण में जहाँ हमें भारतीय संगीत का उठान दीखता है, वहाँ दूसरी ओर आम जनता की रुहानी ताकत भी काफी सुदृढ़ दीखती है। सामान्य लोगों के जीवन नैतिक रूप से काफी उन्नति बन चुके थे, और यह सब सूफियों एवं भक्तों, धर्म प्रेमियों के संगीतमय प्रवचनों के द्वारा हुआ। वास्तव में यह काल भारतीय संगीत के जमाल का था। संगीत का हुस्न अपने जमाल पर रोशन था।"

मुगल काल के द्वितीय चरण में संगीत

(सन् १५५६–१७०७ ई०)

राजा मानसिंह वर्तमान ध्रुपद शैली के प्रवर्त्तक माने गए हैं—

ग्वालियर का संगीतिक उत्कर्ष (१४८६–१५१६) भी मुगल काल के द्वितीय-चरण के अन्तर्गत आता है, यह उत्कर्ष काल अकबर बादशाह के सिंहासन पर बैठने से पूर्व ही आविर्भूत हो जाता है, अतएव इस पर पहले विचार कर लिया जाए। ग्वालियर के संगीत उत्कर्ष के अग्रणी स्वयं ग्वालियर के राजा मानसिंह थे। ऐसा माना जाता है कि वे ही वर्तमान ध्रुपद शैली के प्रवर्त्तक हैं। कैप्टन विलर्ड ने (Capt., willard) अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ८८ पर लिखा है—"This may properly be considered as the heroic song of Hindustan. The subject is requently the recital of some of the memo rable actions of their heroes, or other didactic theme. It also engrosses love matters, as well as trifling and frivolous subjects. The style is very masculine and almost entirely devoid of studied ornamental flourishes. Manly negligence and ease seem to pervade the whole, and the few turns that are allowed are always short and peculiar. This sort of composition has its origin from the time of Raja Mansingh of Gwalior, who is considered as the father of Dhrupad Singers. The Dhrupad has four Tooks or Strains, the first is called Sthul, sthaee or Bedha, the 2nd untara, the 3rd ubhog, and the last Bhog. Others term the last two Abhog." कैप्टन विलर्ड साहब ने भी राजा मानसिंह को ही ध्रुपद शैली का प्रवर्त्तक माना है।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नायक बक्सू ने संगीत विकास में महान योग दिया—

राजा सर एस० एम० ठाकुर ने अपनी पुस्तक "Hindu Music from various Authors" के पृष्ठ २१३ पर लिखा है :—

"ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय का आरम्भ राजा मान तोमर के समय से होता है। उन्हीं के शाशन काल में प्रसिद्ध नायक बक्सू रहते थे। जिनका सुमधुर संगीत तानसेन के बाद ही अपना महत्व रखता है। बक्सू मान के पुत्र राजा विक्रमाजीत के दरबार में भी रहे, पर विक्रमाजीत के सिंहासन छूटने के बाद वे कलिंजर के राजा किरत के यहाँ चले गए। तदुपरान्त उन्होंने गुजरात जाना स्वीकार किया, जहाँ वे सुल्तान बहादुर (१५२६-३६) के दरबार में रहे। इस्लाम शाह भी संगीत के एक संरक्षक थे। उनके रामदास और महापतर नामक दो प्रधान गायक थे। दोनों ने बाद में अकबर की नौकरी की (आइने अकबरी प्रथम खंड के H. Blochmann's अनुवाद से उद्धृत) कैप्टन विलर्ड अपने "Treatise of Hindustan" के पृष्ठ १०७ पर लिखते हैं—"नायकों में सबसे प्रसिद्ध दक्खिन निवासी गोपाल हुए, जिन्होंने अलाउद्दीन के शासन काल में समृद्धि पाई। दिल्ली के अमीर खुसरो, जौनपुर के सुलतानहुसैन शर्की, ध्रुपद के प्रवर्त्तक, ग्वालियर के राजा मानसिंह, बैजू और भोनू, पाँडवी, बक्सू और लोहंग उनके सम सामयिक थे। ग्वालियर के राजा मानसिंह के समय में जुरजू, भगवान, ढोंढ़ी और डालू का उल्लेख भी मिलता है।"

सर डब्ल्यू आँसले ने अपने "Anecdotes of Indian Music" में कहा है—"संगीत पर ग्वालियर के राजा मानसिंह की आज्ञा से संकलित किए हुए "मान कुतूहल" का अनुवाद फकरउल्ला द्वारा "राग दर्पण" नाम से हुआ।" (ठाकुर कृति "Hindu Music from various authors" पृष्ठ १६७ पर) मैंने स्वयं "मान कुतूहल" नाम के एक ग्रन्थ के बारे में सुना है और मेरा यह विश्वास है कि वह फारसी में फकरउल्ला की एक मौलिक रचना है। राजा मानसिंह स्वयं भी बड़ा संगीतज्ञ था। उसने भारतीय संगीत के विकास के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया।

राजा मानसिंह उत्पीड़न काल में गद्दी पर बैठा था, परन्तु फिर भी उसने संगीत कला के विकास में अपना अमूल्य सहयोग दिया—

हिन्दी के विख्यात उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास 'मृगनयनी' में राजा मानसिंह तोमर एवं उसकी रानी मृगनयनी के बारे में उपन्यास की भूमिका में लिखा है—"मानसिंह तोमर १४८६ ई० से १५१६ ई० तक ग्वालियर का राजा रहा। फरिस्ता के इतिहास लेखक ने मानसिंह को वीर और योग्य शाशक बतलाया है। अनेक इतिहास लेखकों ने मानसिंह के राज्य काल को तोमर शाशन का

स्वर्ण युग (Golden Age of Tomar Rule) कहा है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं के प्रारम्भ को राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का कराल, कठोर और काला युग कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। उत्तर में सिकन्दर लोदी और उसके सहयोगियों के परस्पर युद्ध तथा दोनों द्वारा घोर जन पीड़न, राजस्थान में राणा कुम्भा का अपने बेटे के ही हाथ से विष द्वारा बध और उसके उपरान्त वहाँ की आराजकता, गुजरात में महमूद बधर्रा के अगणित विजय और रक्तपात, मालवा में गयासुद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन की अत्याचार-प्रियता और अय्याशी, दक्षिण में बहमनी सल्तनत और विजयनगर राज्य के युद्ध और बहमनी सल्तनत का पाँच सल्तनतों में बिखर जाना, जौनपुर बिहार और बंगाल में पठान सरदारों की निरन्तर नोच-खसोट और इन सब के लगभग बीच में ग्वालियर। ग्वालियर पर सिकन्दर लोदी के पिता बहलोल ने आक्रमण किए, फिर सिकन्दर ने ग्वालियर का कचूमर निकालने में कसर नहीं लगाई। सिकन्दर ग्वालियर पर पाँच बार वेग के साथ आया। पाँचों बार उसको मानसिंह के सामने से लोट जाना पड़ा। उसके दरबारी इतिहास लेखकों, अखबार नवीसों ने लिखा है कि मान-सिंह ने प्रत्येक बार सोना-चाँदी देने का वादा, करके उसे नहीं टाला। आश्चर्य है सिकन्दर सरीखा कठोर योधा मान भी लेता था। अन्त में सिकन्दर को १५०४ में आगरे का निर्माण इसी मानसिंह तोमर को पराजित करने के लिए करना पड़ा, इसके पहले आगरा एक नगण्य-सा स्थान था। तो भी सिकन्दर सफल नहीं पाया। ग्वालियर पर घेरा डाल कर नरवर पर चढ़ाई करदी। नरवर ग्वालियर राज्य में था। उस पर दावा राजसिंह कछवाहा का था। राजसिंह ने सिकन्दर का साथ दिया। तो भी नर-वाले ११ महिने तक लगातार युद्ध में छाती अड़ाये रहे। जब खाने को घास और पेड़ों की छाल तक अलभ्य हो गई, तब उन लोगों ने आत्म समर्पण किया। फिर सिकन्दर ने मन की जलन को नरवर स्थिति मन्दिरों और मूर्तियों पर निकाली—वह ६ महिने इसी उद्देश्य से नरवर में रहा।

ऐसे युग में, इतने संकटों में मानसिंह हुआ, और उसने तथा उसकी रानी मृगनयनी ने जो कुछ किया उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे सामने है। ग्वालियर किले के भीतर "मान मन्दिर" और "गूजरी महल" हिन्दू वस्तु कला के अत्यन्त सुन्दर और मोहक प्रतीक हैं तथा ध्रुपद और धमार की गायकी तथा ग्वालियर का विद्यापीठ जिसके शिष्य तानसेन थे, आज भी भारत भर में प्रसिद्ध हैं। जिसको मुगल वास्तु और स्थापत्य कला कहते हैं, वह क्या मानसिंह के ग्वालियर शिल्पियों की देन नहीं है? महाकवि टैगौर ने ताजमहल को "काल के गाल का आँसू" कहा है। यदि मैं (जिसको कविता पर अंशमात्र का भी दावा नहीं है) मान-मन्दिर और गूजरी महल

को काल के होठों की मुस्कान कहूँ तो महाकवि टैगौर के उस वाक्य का एक प्रकार से समर्थन ही करूँगा। गूजरी रानी मृगनयनी के साथ मानसिंह का विवाह स० १४९२ के लगभग हुआ होगा। मान-मन्दिर और गूजरी महल की सृजन की कल्पना को मृगनयनी से प्रेरणा मिली होगी। बैजनाथ नायक (बैजू बावरा) मानसिंह मृगनयनी के गायक थे। गूजरी-टोड़ी, मंगल गूजरी इत्यादि राग इसी मृगनयनी के नाम पर बने हैं।

मृगनयनी गूजर कुल की थी। राई गाँव की दरिद्र किसान कन्या। शारीरिक बल और परम सौन्दर्य के लिए वह ब्याह के पहले ही प्रसिद्ध हो गई थी।''

राजामानसिंह के समय का हमने ऊपर ऐतिहासिक उथल-पुथल का चित्रण प्रस्तुत किया है, जिससे परिचित होना संगीत के इतिहास का अनुसन्धान करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को आवश्यक है।

सबसे अधिक प्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू बावरा राजा मानसिंह के दरबार में रहता था—

राजा मानसिंह ने ऐसी राष्ट्र की उथल-पुथल के मध्य में भी भारतीय संगीत का विकास किया। वह संगीतज्ञों का बड़ा सम्मान करता था, और उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ भी रहते थे। सबसे अधिक प्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू बावरा रहता था, बैजू बावरा के सम्बन्ध में हमें ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलते हैं। अधिकतर उसके जीवन सम्बन्धी घटनाएँ किवदन्तियों पर आधारित हैं। संगीत के महान ग्रन्थ "राग कल्पद्रुम" में तानसेन और बैजू के अनेक ध्रुपद संकलित हैं। कहते हैं कि बैजू के सहयोग से ही राजा मानसिंह ने ध्रुपद शैली का परिष्कार और प्रचार किया। एक किवदन्ती के अनुसार बैजू और तानसेन दोनों स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इस प्रकार वे दोनों गुरुभाई और समकालीन एवं सम-वयस्क भी थे। एक अन्य किवदन्ती यह है कि अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त तानसेन का अभिमान दूर करने के लिए बालक बैजू ने स्वामी हरिदास से संगीत की शिक्षा प्राप्त कर, तानसेन से गायन प्रतियोगिता की और उन्हें परास्त किया। इस प्रकार बैजू तानसेन से वय में छोटे सिद्ध होते हैं। इन विभिन्न किवदंतियों में से बैजू का प्रामाणिक जीवन-वृत्त संकलित कर लेना अत्यन्त कठिन है। बैजू नायक के सम्बन्ध में वृन्दावनलालजी अपने उपन्यास में लिखते हैं—"चन्देरी का किला नगर के ऊपर उत्तर से पूर्व की ओर घूम कर जाने वाली एक ऊँची पहाड़ी पर था। चन्देरी का सूबेदार इसी में रहता था, नीचे बसा हुआ नगर सघन था। यहीं एक बड़े भवन में राजसिंह रहा करता था। उसके पड़ोस में एक गायक था जिसके गले की मधुरता और वीणा पर उंगलियों की चतुराई विख्यात होगई थी। वह राजसिंह को अपना गायन और वीणा का वादन कभी-कभी सुनाया

करता था। दोनों में मैत्री थी। गायक को उससे यदाकदा कुछ सहायता मिल जाती थी। सूबेदार गायन-वादन का शौकीन नहीं था, फिर भी कभी-कभी थोड़ा बहुत दे देता था। गायक का नाम बैजनाथ था। जाति का ब्राह्मण था। गायन-वादन के अभ्यास बढ़ाने में उसको दिन-रात भूख-प्यास, अवसर और कुअवसर की परवाह नहीं रहती थी। नगर में उसको बैंजू कहते थे। बैजू के घर के सामने एक चित्रकार की लड़की रहती थी। वह चित्रकारी से बढ़कर संगीत कला में निपुण थी। वर्ण-संकर होने के कारण उसका युवावस्था प्राप्त हो जाने पर भी विवाह नहीं हुआ था, परन्तु चित्रकारी में उसकी विशेष रुचि थी। राजसिंह के भवन पर जब बैजू गाता था, तो यह लड़की तम्बूरे का साथ देती थी और बीच-बीच में अपने कंठ से उसकी लय की साधना करती थी। इस लड़की का नाम कला था।''

कहते हैं कि बैजू बावरा का कला नाम की लड़की से प्रेम हो गया था—

कहते हैं कि बैजू और कला दोनों ही ग्वालियर राजा मानसिंह के दरबार में पहुँचे थे। और फिर दोनों ही वहाँ रहने लगे। इन दोनों में परस्पर प्रेम भी हो गया था, उसी प्रेम के वशीभूत होकर वह बावरा बना, परन्तु इस घटना का हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। बैजू मृगनयनी को गायन सिखाता था। और उसने रानी को संगीत में प्रवीण कर दिया था। राजा मानसिंह सार्वजनिक संगीत समा-रोह भी किया करता था, जिसमें बाहर के कलाकार भी भाग लिया करते थे और वह स्वयं भी इन उत्सवों में भाग लेता था। इन उत्सवों के सम्बन्ध में श्री भातखण्डेजी ने लिखा है—"रागदर्पण" में ऐसा उल्लेख मिलता है, जिसमें एक विराट संगीत अधिवेशन राजा मानसिंह ने करवाया था जिसमें अनेक संगीतज्ञ एकत्रित हुए थे। इस प्रकार यह ग्रन्थ "रागदर्पण" बड़ा कौतूहलपूर्ण है।

बैजू बावरा के सम्बन्ध में फ्रांसीसी गार्साद तासी ने लिखा है—"बैजू बावरा उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं, जो छः या सात-सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे। उनका संगीतज्ञों और गवैयों में मान है, और उन्होंने लोकप्रिय गीत लिखे हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६१)।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि श्री भातखण्डेजी ने अपनी पुस्तक "ए शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे आफ दी म्यूजिक आफ अपर इण्डिया" में जहाँ बीसों अज्ञात प्राचीन संगीतज्ञों का खोजपूर्ण विवरण दिया है, वहाँ उन्होंने बैजू का कोई उल्लेख नहीं किया, हालांकि उन्होंने उसी काल के अन्य ध्रुपद गायकी स्वामी हरिदास, बक्सू, बाबा रामदास, तानसेन आदि का नामोल्लेख किया है।

"आइने अकबरी" में हमें बैजू का नामोल्लेख तक नहीं मिलता—

अबुल फजल कृत "आइने अकबरी" में मानसिंह तोमर के गायकों में बैजू बावरा का नामोल्लेख नहीं हुआ है। उसने नायक बक्सू, मच्छू और मानू जैसे विख्यात गायकों के नाम लिखे हैं। अबुल फजल के मतानुसार इन्हीं की सहायता से मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली का परिष्कार किया था। अबुल फजल ने नायक बक्सू के गायन की बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि वह अपनी गायन कला में तानसेन के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध है। नायक बक्सू राजा मान के पुत्र विक्रमाजीत के दरबार में भी था। जब उसका राज्य छिन गया, तब वह कलिंजर के प्रसिद्ध गायक राजा कीरत के आश्रय में चला गया। वहाँ से उसे गुजरात के सुलतान बहादुर (शाशन काल स० १५८३ से स० १५९३) ने अपने दरबार में बुला लिया। (आइने अकबरी के अंग्रेजी संस्करण कर्नल एच० एच० जरेंट द्वारा अनुवादित और यदुनाथ सरकार द्वारा संशोधित एवं सम्पादित जिल्द १ पृष्ठ ६८० की टिप्पणी।)

वास्तव में अबुल फजल द्वारा बैजू का उल्लेख न होना कम आश्चर्य की बात नहीं है। यदि बैजू मानसिंह तोमर का समकालीन था, तो उसके दरबारी गायकों का उल्लेख करते समय अबुल फजल ने जिन प्रशंसात्मक शब्दों में बक्सू का कथन किया है, तो क्या वह बैजू के सम्बन्ध में चन्द शब्द भी न लिख सकता था। इससे दो बातों का अनुमान होता है, पहली यह कि मानसिंह तोमर के समय से अकबर के समय तक बैजू नाम का कोई प्रसिद्ध गायक हुआ ही नहीं, और दूसरी यह कि तानसेन के महत्व को सर्वोपरि बनाये रखने के लिए अबुल फजल ने बैजू की जान-बूझ कर उपेक्षा की।

सुप्रसिद्ध विद्वान क्लोडविन ने अपनी पुस्तक "The Historical Notes of Indian music" में पृष्ठ संख्या १७८ पर लिखा है—"आइने अकबरी" में हमें बैजू गायक का नाम नहीं मिलता, जबकि उसका नाम भारतीय संगीत के क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय हो रहा है, और जबकि उसके संगीतिक जीवन के बारे में जनश्रुतियाँ एव किवदन्तियाँ अधिक विस्तार पूर्णक उसका जीवन प्रस्तुत करती हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है, लेकिन जब हम उस वक्त के सम्पूर्ण वातावरण का ऐतिहासिक रूप से अध्ययन करते हैं, तो यह अनुमान बड़ी सुगमता से किया जा सकता है कि अबुल फजल ने अवश्य ही बैजू के साथ अन्याय किया। बैजू स्वाभिमानी कलाकार था, उसके तानसेन के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे, अतएव अबुल फजल ने तानसेन को प्रसन्न रखने के लिए उसने "अयने अकबरी" में बैजू का नाम तक उड़ा दिया। उस वक्त का वातावरण इर्ष्या एवं स्पर्धा से परिपूर्ण हो रहा था। बैजू भी इर्ष्या का शिकार बना।"

बैजू गायक अवश्य ही राजा मानसिंह तोमर का समकालीन था––

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डीजिक (Deegike) ने "The out line of Indian music" नामक ग्रन्थ में पृष्ठ २०० पर लिखा है––"बैजू अवश्य ही राजा मानसिंह तोमर का समकालीन था, और वह उसके दरबार का प्रसिद्ध गायक भी रहा, जनश्रुतियाँ भी व्यर्थ में ही नहीं बन जाया करतीं, उनका भी कुछ न कुछ आधार होता है, इन जनश्रुतियों एवं किवदन्तियों के गर्भ से भी अनेक बार ऐतिहासिक पृष्ठ निकले हैं। हाँ, यह हो सकता है कि इनमें बात को बढ़ा चढ़ाकर कहाँ जाता है, लेकिन इतिहास लेखक की तो सूझ बड़ी पैनी होती है, उसे बढ़ी-चढ़ी हुई बात में से यथार्थता निकाल लेनी चाहिए। खोज करने वाले के लिए कोई मुश्किल कार्य नहीं। जो इतिहास लेखक देश की किवदन्तियों को उपेक्षणीय कर देते हैं, वे तथ्य की वास्तविकता को ग्रहण नहीं कर पाते। भारतीय लोगों की बैजू के प्रति जो असीम श्रद्धा एवं भक्ति है वह व्यर्थ नहीं हो सकती, उसका अवश्य मूल्यवान आधार है, यह दूसरी बात है कि हम उस मूल्यवान आधार को अभी तक पकड़ न पाए हो।"

एक और प्रसिद्ध इतिहासकार वुभत्व किल्लड़ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "भारतीय संगीत के स्वर्णिम पृष्ठ" के १६५ पृष्ठ पर लिखा है :—

बैजूनाथ गायक राजा मानसिंह तोमर के समकालीन थे, वे अपने दरबार के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय गायक थे। वीणा-वादन पर उनका अच्छा अधिकार था। कुछ विद्वानों की राय है कि बैजू राजा मानसिंह के सामयिक नहीं थे। पर मैं इस तथ्य को नहीं मानता, क्योंकि राजा मानसिंह ने जो ध्रुपद शैली का आविष्कार किया, उसमें बैजू जैसे महान गायक का ही अवश्य हाथ होना चाहिए, चूँकि मानसिंह के दरबार में बैजू को छोड़कर अन्य कोई गायक ऐसा नहीं था जो ध्रुपद शैली को जन्म दे पाता। इस उच्च गायन शैली को अवश्य ही कोई उच्च प्रतिभाशाली कलाकार ही आविष्कृत कर सकता है। इसके अतिरिक्त ग्वालियर में जो संगीत का इतना ऐश्वर्यशाली उत्कर्ष विकसित हुआ, उसकी पृष्ठभूमि में अवश्य ही बैजू जैसे महान गायक का हाथ होना चाहिए। इन सब तथ्यों के विश्लेषण से हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि बैजू राजा मानसिंह का समकालीन था, परन्तु "आइने अकबरी" जैसी उस समय की अद्वितीय पुस्तक में क्यों उसका उल्लेख नहीं हुआ, इस पर विचार करना है। "आइने अकबरी" का लेखक अबुल फजल ने तानसेन को खूब बढ़ावा दिया है, और चूँकि वह अकबर के दरवार का एक रत्न था, उसकी ख्याति भी चारों ओर बिखर रही थी। तानसेन ने अपनी ख्याति को अक्षुण्ण रखने के लिए अबुल फजल पर जोर

डाला होगा कि वह अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक में बैजू का नाम उल्लेख न करे। अबुल फजल के तानसेन से निकट के सम्बन्ध होने के कारण उसने तानसेन की बात को मान लिया होगा। ऐसा प्रायः होता ही रहता है। तो बहुत सम्भव हो सकता है कि इसीलिए "आइने अकबरी" में अबुल फजल ने बैजू का नामोल्लेख न किया हो। जो कुछ भी हो बैजू एक सुप्रसिद्ध गायक था, मानसिंह तोमर के दरबार का देदीप्यमान रत्न।"

भारतीय संगीत में बैजू गायक का कार्य स्तुत्य है—

फ्रान्सीसी इतिहासकार फाइनो जीम ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "Indian music & its Historical Developments" में लिखा है :—

"भारतीय संगीत में बैजू गायक का कार्य स्तुत्य है। वह राजा मानसिंह के काल का जज्वल्यमान रत्न है। ग्वालियर की पृष्ठभूमि को संगीतमय बनाने में बैजू का क्रियात्मक हाथ रहा। बैजू के स्वभाव में एक बात थी कि वह प्रोपेगन्डा एवं ख्याति की चमक से बहुत दूर रहता था। उसकी प्रकृत्ति बड़ी सरल और सादा थी। वह तानसेन की तरह अभिमानी कलाकार नहीं था, और चूँकि उसका प्रेम अपनी प्रेयसी कला के प्रति इतना गहरा था, कि वह उसी के पीछे बावरा तक हो गया। उसने अपने को उसके पीछे मिटा दिया, उसकी सारी शक्ति जो कि संगीत विकास में लगनी चाहिए थी वह "कला" के प्रति लग गई। जब वह बावरा हो गया था, तो लोगों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इतिहास लेखक उसकी ओर से उदासीन से हो गए, परन्तु आम जनता के हृदय में तो उसने घर कर लिया था, भला वह कैसे भूल सकती थी, और आज हम बैजू बावरा का नाम भारतीय संगीत की पृष्ठ में जोड़ते हैं, वह सब उसी आम जनता का असीम प्रेम के परिणाम स्वरूप ही, वरना तो इतिहास लेखकों ने तो उसके प्रति जो रुख अपनाया उससे तो वह कभी का खत्म होगया था। आज वह इतिहास की दृष्टि में शून्य है, किन्तु मानव दृष्टि की सजीव पृष्ठ पर वह आज भी प्राणवानता का स्फूर्तिपूर्ण सन्देश लिए हुए है, भारतीय संगीत की सुषमा को मुखरित कर रहा है।"

बक्सू ही बैजू हो—

यदि हम बैजू के सम्बन्ध में विदेशी लेखकों के तथ्यों की उपेक्षा करदे, और बैजू के सम्बन्ध में अबुल फजल की नीयत में सन्देह न करें, तो यह अनुमान होता है कि कदाचित् बैजू ही बक्सू हो। "आइने अकबरी" में मानसिंह तोमर को प्रशंसनीय गायक लिखा गया है। बैजू हिन्दू थे। वह हिन्दू देवी देवताओं का अत्यन्त उपासक था। जैसा कि उनके अनेक ध्रुपदों से पता चलता है। इसके विरुद्ध बक्सू अपने

नाम से मुसलमान जान पड़ता है। तब क्या जीवन भर संगीत साधना करने पर बैजू अपनी प्रौढ़ावस्था में उसी प्रकार मुसलमान बनकर बक्सू बन गए जिस प्रकार तन्नू मिश्र तानसेन हो गए थे। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमारे पास कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। लेकिन डा० अडनोर ने अपने विचार ठीक इसी प्रकार के अपनी पुस्तक "The apex of Indian Music" में लिखा है। यदि यह विचार सत्य हैं तो फिर उसके काल का निर्णय ऐतिहासिक रूप से हो जाता है।

कप्तान विलर्ड ने अपने ग्रन्थ "ट्रीटाइज ऑफ हिन्दुस्तान" में मानसिंह तोमर ध्रुपद गायन शैली का प्रवर्तक बतलाते हुए उसके समकालीन कतिपय प्रसिद्ध संगीतज्ञों का भी नामोल्लेख किया है, उसमें बैजू और बक्सू को पृथक-पृथक व्यक्ति बतलाए जाते हैं। यद्यपि दोनों को राजा मानसिंह का समकालीन स्वीकार किया है। कैप्टन विलर्ड का अंग्रेजी उल्लेख पिछले पृष्ठों में दे चुके हैं। खैर जो कुछ भी हो बैजू के अस्तित्व को मानना ही पड़ेगा, हम उन लोकप्रिय किवदन्तियों के सत्य को उपेक्षणीय नहीं कर सकते, जैसा कि अनेक विदेशी विद्वानों ने भी कहा है।

ग्वालियर की आम जनता के अन्दर भी इस काल में बड़ी जाग्रति थी—

ग्वालियर की आम जनता के अन्दर भी इस काल में बड़ी जाग्रति थी। घर-घर में संगीत की स्वर लहरियाँ झन्कृत हो रही थीं। उच्चकोटि के संगीत की पावन झाँकी हमें ग्वालियर में मिलती। अनेक नारियाँ भी संगीत प्रिय थीं, और गाने-बजाने में भी प्रवीण थीं। सार्वजनिक समारोहों में भी महाराष्ट्रीय नारियाँ खुलकर भाग लेती थीं। संगीत पर वाद-विवाद से कभी-कभी नवीन चीज की उत्पत्ति हो जाया करती थी। संगीतज्ञों में परस्पर प्रतियोगिता भी चला करती थी।

इस काल में दक्षिण भारत में भी गाने की नवीन-नवीन शैलियाँ प्रचलित हो रही थीं—

जिस वक्त महाराष्ट्र में संगीत का सुन्दर जागरण हो रहा था, उस वक्त दक्षिण की ओर भी जाग्रति हो रही थी। वहाँ भी भक्ति का दौड़ चल रहा था। कीर्तन द्वारा संगीत का प्रचार था। वीणा का उपयोग दक्षिण में, आम जनता में भी पाया जाता था। कर्नाटक, मलयालम आदि प्रान्तों में अनेक संगीत के पण्डित हुए जिन्होंने संगीत पर प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की। दक्षिण वाले अब भी अपने संगीत की पावनता एवं उसकी आन्तरिक सौन्दर्य की सजीवता को अक्षुण्ण रक्खे हुए थे।

दक्षिण के कलाकार नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरे—

इस काल में दक्षिण भारत में गाने की नवीन-नवीन शैलियों में पूर्ण भारतीयता का प्रतिपादन किया जाता था, जबकि उत्तर भारत वाले अपने संगीत की पवित्रता को स्थिर न रख सके। उत्तर भारत के अनेक कलाकर शाशकीय प्रलोभनों में पड़कर अपने धर्म तक को बदल चुके थे, उन्होंने अपने ईमान को बेचा, धर्म को बेचा, और अपनी कला को बेचा। यह हाल था उत्तर भारत के कलाकारों की नैतिकता का, पर इसके विपरीत दक्षिण वाले अपनी पवित्रता की उज्ज्वल मर्यादा पर डटे हुए थे। उनके ऊपर भी आक्रमण हुए, किन्तु उन्होंने अपनी रुहानी ताकत को खत्म नहीं किया था। वे आचार से भ्रष्ट नहीं हुए थे। इस दृष्टिकोण से भारतीय संगीत के इतिहास में दक्षिण वम्लों का उच्च गौरवपूर्ण स्थान है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अमालीउल को भी अपनी सुन्दर पुस्तक "जमाले मौसकी" में लिखना पड़ा—"जब हम उत्तर भारत और दक्षिण भारत के कलाकारों के नैतिक उत्कर्ष पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि दक्षिण के कलाकार नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरे। उन्होंने फकीर होकर के भी, भूखों रहकर भी, और अनेक परेशानियाँ उठाकर भी अपनी कला की रक्षा की, इसके विपरीत उत्तर भारत के कलाकारों का चरित्र लड़खड़ाता रहा, वे संयमी नहीं होते थे। वे थोड़े से ही प्रलोभन पर डिंग जाते थे। और यही कारण है कि उत्तर भारत के संगीत पर विदेशियों का अधिक गहरा प्रभाव पड़ा। वे गिरते गए अपने उच्च चरित्र से, अपनी उच्च कला से, अपने उच्च धर्म से, और अपने उच्च जीवन पृष्ठ से।"

इस काल में मुसलमान शासकों ने सहधर्मियों को ही कला के क्षेत्र में अधिक प्रोत्साहन दिया—

श्री भातखन्डे जी अपनी पुस्तक "A Short Historical Survey of the music of upper India" में पृष्ठ २५ पर लिखते हैं—"अकबर के काल में हिन्दुस्तानी संगीत की स्थिति में हम आश्चर्यजनक परिवर्तन पाते हैं। मैं चाहूँगा कि आप कला की उन्नति और उसके विज्ञान की उन्नति जिस पर वह आधारित है, दोनों का अन्तर समझ लें। इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि भारत में मुसलमान विजेताओं के आगमन के साथ ही शुद्ध रूप से हिन्दू कहलाने वाली सभी कलाओं का पतन आरम्भ हुआ। हम सहज ही में समझ सकते हैं कि विजेतागण न विद्या के प्रेमी थे और न उसके संरक्षक ही। उस अस्थिर काल में संगीत के विज्ञान या शास्त्र के अध्ययन का अभाव होना अवश्यम्भावी था और वही हुआ भी। उसका अभ्यास यद्यपि अल्पाधिक प्रमाण में मुहम्मदशाह के काल तक होता रहा जो

औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में से एक था; पर हम सभी जानते हैं कि अभ्यास का मुख्य आधार शास्त्र हैं और जब शास्त्र का अन्त होता है, तब यद्यपि अभ्यास किसी प्रकार जीवित और प्रचलित रहता है, फिर भी अन्तिम अवस्था में उसमें अव्यवस्था और गड़बड़ो अवश्य उत्पन्न हो जाती है। उत्तरी भारत में बिल्कुल यही बात हुई, ऐसा प्रतीत होता है। मुसलमान शासकों ने स्वाभावतः अपने ही सह-धर्मियों को दरबार में संगीतज्ञों के पद पर नियुक्त किया; और अपने प्रभु की इच्छा पूर्ति के बहाने प्रचलित मतावलम्बी संस्कृत ग्रन्थ पर मन माना अत्याचार किया। हमसे कहा जाता है कि उस काल के कई प्रथम श्रेणी के हिन्दू विद्वानों में आतंक फैला दिया गया अथवा संगीत शास्त्र में पहले के समान दिलचस्पी लेने से उन्हें रोक दिया गया। मैं नहीं समझता कि कोई इसे अस्वीकार कर सकेगा कि अकबर के समान उदार सम्राट के दरबार में भी अधिकांश संगीतज्ञ मुसलमान थे। "आइने अकबरी" में दिए हुए अकबर के प्रधान संगीतज्ञों की सूची पर यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें मालूम होगा कि छत्तीस नामों में से हिन्दू चार या पाँच से अधिक नहीं हैं। अब यहाँ एक बड़ा विचित्र प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सचमुच विदेशियों के हाथों पड़कर संगीत की अधोगति हुई। व्यक्तिगत रूप से मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ जो कि निस्संकोच होकर विदेशी स्पर्श को एक अप्रशमित दुर्भाग्य मानते हैं। क्या हमसे बार बार नहीं कहा जाता है कि दक्षिण-वासियों ने काफी हद तक उस कलंक से अपने आपको बचा कर रखा, जिससे हम उत्तरवासी कलंकित हैं। अपनी प्राचीन परम्परा को उन्होंने पूर्णतया संभाल कर रक्खा है। यदि उनका यह दावा ठीक हो तो आज का उनका संगीत ही असंदिग्ध रूप से आदिम व्यवस्था के उत्तरी प्राचीन संगीत का स्वरूप होगा।"

भारतीय संगीत की दो धारायें स्पष्ट हो गई थीं—

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० कलर्ट इप्सन ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "Historical research of Indian Music" में पृष्ठ ११२ पर लिखा है—"जब हम इस काल के भारतीय संगीत पर दृष्टि डालते हैं तो दो स्पँष्ट धारायें हमारे सामने आजाती हैं। पहली धारा वह जो कि उत्तरी भारत में मुसलिम संस्कृति की पृष्ठ पर बह रही थी, और दूसरी धारा दक्षिण प्रान्त में अपने प्राचीन रूप को लिए हुए प्रवाहित हो रही थी। दोनों धाराओं में महान व्यवधान पड़ चुका था। दक्षिणी संगीत में जहाँ हमें प्राचीन भारत का उज्ज्वल एवं पावन रूप अपनी स्वाभाविक स्थिति में दीखता है, वहाँ उत्तरी भारत के संगीत में हमें मुसलिम संस्कृति का गहरा प्रभाव स्पष्ट झलकता है। वास्तव में दक्षिण भारतीय संगीत अपने उच्च परम्परा

के गौरव को बड़े शान से विकसित कर रहा था। दक्षिण भारत के लोग अपनी संस्कृति को बड़े सम्भाल कर रख रहे थे, उनका चरित्र बड़ा उच्चकोटि का था। उनके अन्दर धार्मिक रूप गहरा था, इसलिए इस काल के दक्षिणी संगीत पर गहरी धार्मिकता चढ़ी हुई थी।"

इसी काल में दक्षिण भारत में देवदासी की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी—

कहते हैं कि इसी काल में देवदासी की प्रथा भी दक्षिण के मन्दिरों में प्रारम्भ होगई थी। इन देवदासियों को ब्याह से वंचित रखा जाता था। इनकी अमूल्य सेवायें भगवान को समर्पित करदी जाती थीं, और वे जीवन भर ब्रह्मचारिणी रह कर भगवान को अपने अलौकिक नृत्य और गाने से रिझाती रहती थीं। दरअसल इन देवदासियों ने दक्षिण के संगीत विकास में बड़ा योग दिया। उनका त्यागमय एवं संयमी जीवन ने दक्षिण भारतीय संगीत में एक ऐसी रुह फूँकदी कि जिसने वहाँ के संगीत को विकास की प्रथम पंक्ति में कर दिया। श्री भातखण्डेजी अपनी पुस्तक "A Short Historical Survey of the music of upper India" में लिखते हैं—"मैं इसे अस्वीकार नहीं करूँगा कि उत्तरी संगीत में उस समय कुछ अति आवश्यक परिवर्तन हुए और विदेशी प्रभाव से हमारे संगीत को पर्याप्त लाभ हुआ।"

विदेशी प्रभाव से भारतीय संगीत समृद्धि हुआ—

मौलाना आजाद ने लिखा है—"मध्य युग में ईरानी तथा भारतीय पद्धतियों को मिलाकर संगीत की एक ऐसी पद्धति बनायी गई थी जिसमें दोनों की खूबियाँ शामिल थीं। जब मुसलमान भारत में आए तो ईरानी संगीत पद्धति पूरी तरह विकसित थी, परन्तु मुसलमानों को भारतीय संगीत की विशेष खूवियों को पहचानने में अधिक समय नहीं लगा। उन्होंने न केवल उसको अपनाया, बल्कि ईरानी परम्परा के तत्वों को शामिल कर इसे समृद्धि किया।

संगीत के क्षेत्र के बराबर भारत की मिली-जुलो संस्कृति का और कोई अच्छा उदाहरण नहीं हो सकता। लगभग १ हजार वर्ष से हिन्दुओं और मुसलमानों के सहयोग से संगीत ऐसी पूर्णता को पहुँच गया था, जिसकी विश्व में तुलना नहीं की जासकती।"

भारतीय संगीत का एक नवीन रूप सामने आया—

प्रसिद्ध विद्वान् वन्डारे प्रम्दा ने अपनी पुस्तक "The New out look of Indian Culture" के वीसवें पृष्ठ पर लिखा है—"यह हमें मानना पड़ेगा कि मुसलिम संस्कृति से मिलकर भारतीय संगीत का सौन्दर्य समृद्धिशाली होकर उसमें

एक ऐसी मन्त्रमुग्धक अपूर्वता आगई कि जिससे भारतीय संगीत की आकर्षण-शक्ति की अभिवृद्धि होगई। दरअसल उत्तर भारत के संगीत में ईरानी, अरबी के मिश्रित प्रभाव से एक ऐसा लावण्य प्रतिभासित होने लगा कि जो उसके विकास का मुख्य साधन रहा। दक्षिण भारत का संगीत इस अपूर्व लावण्य से वंचित रहा, अतएव उसमें उत्तर भारतीय संगीत के समान सुरभित वातावरण प्रस्तुत न हो सका। मुसलिम संस्कृति ने भारतीय संगीत की एक ऐसी नवीन पृष्ठ का निर्माण किया जिसने भारतीय संगीत को अधिक लोकप्रिय बना दिया।"

अनेक विद्वानों का मत है कि मुसलिम काल में भारतीय संगीत ने अपनी दीप्त-आभा विनष्ट नहीं की, अपितु उसको बढ़ाया ही। हाँ, हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि मुसलमान काल भारतीय संगीत की अभिवृद्धि में महान सहायक बना। इस तथ्य से हम उपेक्षणीय नहीं हो सकते।

महान सन्त संगीतज्ञ स्वामी हरिदास ने भारतीय संगीत को समृद्धि बनाने में बड़ा योग दिया—

अकबर के काल में प्रसिद्ध हिन्दू सन्त और संगीतज्ञ हरिदास स्वामी पवित्र यमुना नदी के किनारे वृन्दाबन में रहते थे। चाहे हम उनके अलौकिक एवं चमत्कारिक प्रभाव पर कही गई कहानियों पर विश्वास भले ही न करें किन्तु हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वह उस समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। वह स्वयं तानसेन के गुरू थे, इसी से आप अनुमान कर सकते हैं उनकी कला की श्रेष्टता का। हरिदास स्वामी ने तानसेन को कैसे अपना शिष्य बनाया, इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि एक बार हरिदास स्वामी अपनी शिष्य मन्डली के साथ बालक तानसेन के बाग में से होकर गुजरे। इस बाग की बालक तन्ना (बचपन का नाम) रखवाली किया करता था, और उसमें आवाजों की हूबहू नकल करने की अद्वितीय प्रतिभा थी। किसी भी पशु-पक्षी की आवाज की वह स्वाभाविक प्रतिलिप उतार लिया करता था। उसको शेर की बोली बोलकर अपने बाग की रखवाली करने में बड़ा मजा उसे मिला करता था, हाँ तो जब स्वामी जी अपने दल-बल के साथ उस बाग में पहुँचे, तो बालक तन्ना ने एक पेड़ की आड़ में छिप कर शेर की दहाड़ लगाई। डर के मारे सब लोगों के दम फूल गए। स्वामी जी को उस स्थान पर शेर रहने का विश्वास नहीं हुआ और तुरन्त खोज की। दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक के इस कौतुक पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज भी बालक से सुनी तो मुग्ध हो गए और उसके पिताजी से बालक को संगीत शिक्षा देने के लिए मांग कर अपने साथ

ही वृन्दावन लेगए। गुरु कृपा से १० वर्ष की अवधि में ही बालक तन्ना धुरन्धर गायक बन गया, और फिर उसका नाम प्रदीप्त होगया।

स्वामी हरिदास सारस्वत ब्राह्मण थे। आप बचपन से ही साधु प्रकृति के थे। स्वामी जो के शिष्यों के नाम "नाद विनोद" में इस प्रकार पाए जाते हैं:—

(१) बैजू, (२) गोपाललाल, (३) मदनलाल (४) रामदास (५) दिवाकर पंडित (६) सोमनाथ पंडित (७) तन्ना मिश्र (८) राजासौरसैन। कहा जाता है कि उपरोक्त शिष्यों में से प्रथम चारशिष्य दिल्ली चले गए तथा सोम पंडित, राजा सौर सैन पंजाब की ओर चले गए और तानसेन रीवाँ चले गए। स्वामी जी के इन शिष्यों ने भी असंख्य नये ध्रुपद-धमार त्रिवट, तराने, राग मालाएँ, चतुरंग तथा नवीन रागों की रचनाएँ की। इन संगीताचार्यों के शिष्य वर्ग के द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में भारतीय संगीत का ठोस प्रचार हुआ। संगीत-सम्राट तानसेन ने पहले बुन्देलखन्ड के रीवां राज्य में फिर अकबर के साम्राज्य में स्वामी जी के संगीत का पवित्र सन्देश सुनाया। उस संगीत से अकबर बादशाह इतना प्रभावित हुआ था कि उसे सुनने के लिए उसे वृन्दावन आकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होना पड़ा। इसका हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, हमने यहाँ इसका उल्लेख जनश्रुति के आधार पर कर दिया है, और न इसके सम्बन्ध में हमें विदेशी इतिहासकारों की पुस्तकों में कुछ मिलता है। हो सकता है कि हरिदास स्वामी के संगीत को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उनके शिष्यों ने बाद में अकबर की बात जोड़ दी हो, पर इतना तो निश्चित ही है कि स्वामी जी संगीत के एक महान कलाकार थे। मद्रास प्रान्त को छोड़कर शेष समस्त भारत में जो शास्त्र युक्त गायन आज प्रचलित हैं उसका श्रेय स्वामी जी और उनके शिष्य वर्ग को ही है। "संगीत कल्पद्रुम" ग्रन्थ में बहुत सी पुरानी चीजों का संकलन मिलता है, जिनमें बहुत सी चीजें स्वामी जी की रची हुई मालूम होती हैं। ९५ वर्ष की आयु में स्वामी जी का देहान्त होगया। उन्होंने इस काल के अन्दर जो भारतीय संगीत की सेवा की वह अभूतपूर्व है, एवं उन्होंने भारतीय संगीत की पृष्ठ पर्याप्त मात्रा में ऊपर उठा दी थी।

अकबर के दरबार का महान रत्न तानसेन ने भारतीय संगीत के अभिवृद्धि के लिए महान प्रयत्न किए, जो कि इतिहास में सदैव अमर रहेंगे। बादशाह अकबर जब सिंहासनारूढ़ हुए, इन दिनों तानसेन का सौभाग्य सूर्य चमक उठा। रीवाँ नरेश राजाराम और अकबर का प्रगाढ़ दोस्ताना था। अतः महाराज ने तानसेन जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर की भेंट कर दिया। सन् १५५६ ई० में तानसेन अकबर के

दरबार में दिल्ली आगए थे। बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तानसेन को उसने अपने नव रत्नों में सम्मिलित कर लिया।

विख्यात संगीतज्ञ तानसेन ने भारतीय संगीत को अपनी अपूर्व प्रतिभा से समृद्धिशाली बनाया—

यह तानसेन का शौर्यकाल था। बादशाह का अटूट स्नेह और कला का यथेष्ट सम्मान पाकर तानसेन की कीर्ति पताका उन्मुक्त होकर लहराने लगी। अकबर तानसेन के संगीत का गुलाम बन गया। कला पारखी अकबर तानसेन की संगीत माधुरी में डूब गया। बादशाह पर तानसेन का ऐसा गहरा रंग देखकर दूसरे दरबारी गवैये जलने लगे थे। वे तानसेन को नीचा दिखाने की फिक्र में रहने लगे। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा प्रचलित है, वह चूँकि इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि हम उसे किवदन्ती के नाम पर छोड़ नहीं सकते। उससे हमें उस वक्त के गायकों की इर्ष्या भाव की यथार्थ तस्वीर मिल जाती है। वह इस प्रकार है—एक दिन तमाम दरबारी गायकों ने तानसेन के विनाश की योजना बना ही डाली। वह सब लोग बादशाह के पास पहुँच कर कहने लगे कि हुजूर हमें तानसेन से "दीपक" राग सुनवाया जाय और आप भी सुने। इस राग को ठीक-ठीक तानसेन के अतिरिक्त और कोई नहीं गा सकता। बादशाह राजी हो गए। तानसेन ने प्रथम बादशाह से विनय किया कि दीपक राग से अनिष्टकारी वातावरण प्रस्तुत हो जायगा, इसलिए उसका गाना ठीक नहीं रहेगा। पर बादशाह न माने। उन्होंने जिद्द की, जिसके परिणामस्वरूप तानसेन को दीपक राग गाना पड़ा। राग जैसे ही शुरू हुआ कि गर्मी बढ़ी, और शनैः शनैः वायु मण्डल अग्निमय हो गया। सुनने वाले अपने-अपने प्राण बचाने को इधर-उधर छिप गए, किन्तु तानसेन का शरीर अग्नि की ज्वालामयी लपटों से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे, वहाँ उनकी लड़की तथा एक गुरू भगिनी ने मेघ-राग गाकर उसके जीवन की रक्षा की। इस घटना के कई मास पश्चात तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ। अकबर भी अपनी गलती पर बहुत पछताया।

इस काल में संगीत की अनेक चमत्कारी घटनाएँ हुई—

इस काल में संगीत की अनेक चमत्कारी घटनाएँ हुई, जैसे जंगली पशुओं को बुलाने, रोगियों को स्वस्थ करने, पानी बरसाने आदि। हालाँकि इन घटनाओं के सम्बन्ध में हमें कोई ठोस ऐतिहासिक तथ्य नहीं उपलब्ध हुए हैं। लेकिन फिर भी इनका जिक्र अनेक विदेशी इतिहासकारों ने किया है, और उन्होंने भारतीय संगीत की चमत्कारी शक्ति को स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध विद्वान आरसन ली ने "A Short account of Indian Music" नामक ग्रन्थ में लिखा है—"मुगल दरबार का तानसेन

बड़ा चमत्कारी गायक था, उसने "दीपक राग" गाकर अकबर बादशाह को आश्चर्य सागर में डुबो दिया था। इस राग के गाने पर अग्नि प्रज्वलित हो उठती थी। इसी प्रकार वह वीणा वादन से मृगों को बुला लिया करता था। उसकी चमत्कारी प्रतिभा पर हम सन्देह नहीं कर सकते, क्यों कि भारतीय संगीत में वह अपूर्व शक्ति है कि जिसके सही प्रदर्शन पर यह सब चमत्कारिक कार्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसी प्रकार का चमत्कारिक प्रभाव हमें ग्रीक के संगीत में मिलता है। लेकिन भारतीय संगीत में ग्रीक संगीत से पूर्व ही यह चमत्कारिक प्रभाव आविर्भूत हो चुका था।"

बहुत सम्भव है कि भारतीय संगीत मुगल काल में अपना चमत्कारिक प्रभाव रखता हो, इस सम्बन्ध में बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं।

तन्ना मिश्र से तानसेन कैसे हो गया—

तन्ना मिश्र से तानसेन कैसे हो गया इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि मृत्यु से पूर्व तानसेन के पिता मुकन्दराम पाँडे ने उपदेश दिया था कि "तुम्हारा जन्म मुहम्मद गौस नामक फीकर की कृपा से हुआ हैं इसलिए तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार उसी फकीर का है। अपनी जिन्दगी में उस फकीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना।" पिता का उपदेश मानकर तानसेन मुहम्मद गौस फकीर के पास आगए। फ़कीर साहब ने तानसेन को अपना उत्तराधिकारी बना कर अपना अतुल वैभव आदि सब कुछ उन्हें सौंप दिया और फिर तन्ना मिश्र से वह तानसेन हो गया। थोड़े दिनों बाद वह ग्वालियर भी गया, वहाँ उसकी भेंट राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी मृगनयनी से हुई। रानी मृगनयनी भी बड़ी मधुर एवं विदुषी गायिका थी। वह तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुई। कहते हैं कि मृगनयनी ने अपने संगीत मन्दिर में शिक्षा पाने वाली हुसेनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लड़की से उसका विवाह कर दिया। तानसेन के चार पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम सुरतसेन, तरंगसेन, शरतसेन और विलास खाँ तथा पुत्री का नाम सरस्वती रक्खा गया। तानसेन की सारी सन्तान संगीत कला का संस्कार लेकर पैदा हुई और आगे चलकर ये सब महान कलाकार हुए।

ग्वालियर में मुहम्मद गौस रहते थे, उन्हीं के पास तानसेन को जाना पड़ा था। इस प्रकार ग्वालियर के संगीत विकास में तानसेन का भी प्रमुख हाथ रहा। भारतीय संगीत विकास में तानसेन का प्रशंसनीय कार्य रहा। ध्रुपद शैली की रचना तानसेन ने भी की है, और आजकल आपके रचे हुए अनेक ध्रुपद पाए जाते हैं। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार किया, जिनमें दरबारी कान्हरा, मियां की सारंग, मियां की मल्हार इत्यादि।

श्री भातखन्डेजी तानसेन के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"अकबर बादशाह के पास तानसेन नामक प्रसिद्ध गायक था। वह उत्तम गायक था, अतः उसकी रचना शक्ति भी अद्भुत थी। उसने अनेक चमत्कार पूर्ण ध्रुपदें बनाई हैं। परन्तु हमारे यहाँ स्वरलिपि न होने से उसके गीतों का अधिकाँश भाग नष्ट हो गया ? इसी प्रकार, उसके रचे हुए जो गीत आजकल प्राप्य हैं, उनमें भी स्वरों और शब्दों का रूपान्तर हो गया है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसके रचे हुए असली गीत अब प्राप्त हो ही नहीं सकते।"

भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि भी पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई-

यह शताब्दी संगीत और भक्ति काव्य के लिए भी विशेष रूप से प्रसिद्ध रही। इस शताब्दी में भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठ भी पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई। अकबर के काल में जहाँ एक ओर "ख्याल" का प्रचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच रहा था, वहाँ दूसरी ओर ध्रुपद गायकी भी अपनी पराकाष्ठा को पहुंच रही थी। वास्तव में देखा जाय तो ध्रुपद का ही विकृत रूप ख्याल है।

ध्रुपद को ही इस काल में "ख्याल" में परिवर्तित किया गया—

ख्याल के सम्बन्ध में विद्वान लेखक नलिन कुमार गंगोली लिखते हैं "Classical song Dhrupad was trasformed into kheyal on entrance into the Mogul court. As in kheyal, no change occurred of the Sargam (musical notes) of our classical song" गंगोली साहब का कहना यही है कि ध्रुपद को ही "ख्याल" में परिवर्तित किया गया। लेकिन ख्याल के सरगम वही हैं जो कि ध्रुपद के हैं।" इसलिए हम कह सकते हैं, ख्याल के आविष्कार में कोई नवीन कल्पना नहीं है।

राजा सुरेन्द्रमोहन टैगौर ने अपनी पुस्तक "Universal History of music" में लिखा है–"During the reign of the Mogul Emperor Akbar (1550–1605), music made considerable progress and received substantial encouragement. It was in his court that the famous musician Tansen (pupil of the Venerable Haridas Swami) flourished. Tansen who was formerly in the service of Raja Ram, is said to have received from him one crore of Tankas as present. The Emperor

is mentioned in the "Aini Akberi" as being excessively fond of music and having a perfect knowledge of its principles.

His court teemed with musicians of various nationalities, Hindus, Iranis, Turanis, Kashmiris both men and women. The musicians were divided into three classes, Gayandas Singers, Khvanandas Chanters, and Sajandas players. The principal Singers came from Gwalior, Mashad Tabriz and Kashmir. The schools in Kashmir had been founded by Irani and Turani musicians under the patronage of Zainul Adin, King of Kashmir. The Gwalior school dated from the time of Raja Man Tunwar in whose court as well as in that of his son Vikramajit, the famous Nayak Baksu lived. When Vikramajit lost his throne, Baksu went to Raja of Kalinjar. Shortly after-wards he accepted a situation in the court of Sultan Bahadur (1526—1536) at Guzrat.

Ramdas and Mahapatar, both of whom had been with Islem Shah at Lucknow, were among the court musicians of Akbar. The number of the principal court musicians named in "Aini-Akbari" is 36 and included Tansen, Tantaring (His son) Baz Bahadur (Ruler of Malwa and inventer of the style of singing known as Baj-Khani) Birmandal Khan (player on the Sarmandal) and Quaism.

The songs of Vidyapati (who adorned the court of Shiwa Sinhas of Tirhut, Bihar in the 14 Centuary) were in Vogue in the time of Akbar. It was also in this reign that Mira Bai the wife of a Rana of Udaipur, and celebrated Songstress and composer of Hymns flourished. The Emperor had opportunities of listening to her excellent-vocal performances. The blind poet and musician Surdas who is said to have composed 1,25,000. Vishnupadas lived also in this reign. Surdas was the son of Ramdas who has already been mentioned as one of the musician of Akabar's court."

सुप्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ सूरदास जी ने संगीत विकास में क्रियात्मक योग दिया—

इस काल के सबसे प्रमुख संगीतज्ञ और कवि सूरदास हुए हैं। इनका जन्म स० १५३५ वैशाख शुक्ल ५ मंगलवार को हुआ। इस सम्बन्ध में अभी कुछ समय तक सन्देह था, किन्तु अब नई शोधों से इसमें कोई अनिश्चितता नहीं रही। सूरदास का जन्म-स्थान सीही ग्राँम है। चौरासी वैष्णवन की बार्ता, के "भाव प्रकाश" में हरिरायजी ने सीही के सम्बन्ध में लिखा है—"दिल्ली के पास चारकोस उरे में एक सीही ग्राम है जहां परीक्षत के बेटा जनमेजय ने सर्पयज्ञ किया था।" यह सीही बल्लभगढ़ स्टेशन के निकट आज भी विद्यमान है। इस सीही के वातावरण में ही सूरदास का बचपन बीता। सूरदास जी को चौरासी वैष्णवन की वार्ता में एवं उनके सम्प्रदाय में जन्मांध माना गया है, किन्तु उनके काव्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि वे जन्मांध नहीं हो सकते। उन्होंने रागों के भेदों और प्रकाश का जो वर्णन किया है, वह इतना यथार्थ है कि जन्मांध उसकी कल्पना नहीं कर सकता। अन्धे मनुष्य रंग का भेद नहीं कर सकते। फलतः सूरदास बाद में अन्धे हुए होंगे। कितने ही कारणों से इन्हें अपना घर छोड़ना पड़ा। वह वहाँ से चलकर घूमते हुए आगरा-मथुरा के यमुना किनारे गौघाट पर आकर रुके। वह आधुनिक रुनकता के पास है। यहीं इन्होंने अपना निवास बनाया। यहीं गौघाट पर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने इन्हें अपने मार्ग में दीक्षित किया। बल्लभाचार्य जी इन्हें अपने साथ लेगए, और गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के [illegible] प्रमुख कीर्तिनियाँ इन्हें बना दिया गया।

सूरदास जी का "सूर सागर" तो अत्यन्त प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों के मत में सूरदास ने केवल "सूर सागर" ही लिखा। किन्तु उनके नाम से लगभग २६, २७ ग्रन्थ मिलते हैं। इनमें से अधिकांश रचनाएँ तो ऐसी हैं, जिनमें विविध विषयों के पदों को "सूर सागर" में से संकलित कर लिया गया है, तथा उन्हें पृथक-पृथक विषयानुकूल ग्रन्थों का रूप दे दिया गया है। जैसे "गौवर्धन लीला", "भवर गीत", "विनय", "दृष्टिकूट" के पद आदि।

सूर के संगीत में हमें कला की शिलपज्ञता का पूरा चित्र मिलता है—

सूरदास के पदों का कलेवर कुछ-कुछ ध्रुपदों के समान लगता है और उनमें ध्रुपदों के समान ही काव्य व संगीत का समुचित समिश्रण मिलता है। किन्तु सूर की गायन शैली ध्रुपद शैली ही थी, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सूर के पदों में टेक का भी अस्तित्व है। हाँ, ख्याल की अपेक्षा उसकी शैली ध्रुपद के अधिक निकट थी। वास्तव में सूर की शैली में ध्रुपद कुछ विशेषताओं के साथ-साथ भजन

एवं संकीर्तन की शैलियों के अंगों का भी समावेश हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि सूरदास सर्वप्रथम भक्त थे, फिर गायक थे और साथ ही कवि भी थे। संगीतज्ञ के रूप में सूरदास को समझने के लिए हमें उन्हें भक्त गायक एवं कवि इन तीनों दृष्टियों के साथ एक साथ देखना होगा, भक्त और कवि होने के कारण सूर की दृष्टि संगीत के काव्य-निरपेक्ष के रूप की ओर स्वभावतः कम गई। इसीसे सूर की संगीत साधना में हमें संगीत के मोक्ष पद स्वरूप के दर्शन भी होते हैं। भक्त कालीन पद साहित्य के निर्माताओं में मीरा और सूर सर्वोपरि हैं, और संगीत के दृष्टिकोण से तो इन्हें निर्विवाद रूप से अप्रतिभ स्वीकार किया जा सकता है। सूर ने अस्सी के लगभग रागों का प्रयोग किया है। सूर के रागों की प्रभाविकता भी लगभग सिद्ध हो चुकी है।

सूरदास जी ने अपने काव्य में रागों का निर्वाह बड़े सुन्दर ढंग से किया है—

सूर की संगीत साधना में हमें एक निश्चित व्यवस्था मिलती है। वे वल्लभाचार्य के आदेश से अपने संगीत का प्रस्फुटित श्रीनाथजी के मन्दिर में भगवान के सम्मुख करने लगे थे, और यह कार्यक्रम दिन भर चला करता था। जिसके परिणाम स्वरूप एक तो प्रातः काल से सांयकाल तक के प्रत्येक समय के लिए अनुकूल राग-रागनियों में गाने का उन्हें अवसर मिला और दूसरे श्रीकृष्ण की अनेक प्रकार की लीलाओं के गान का अवसर मिलने से उन्हें विविध भावों और अवसरों के अनुकूल विविध रसों वाले रागों के प्रयोग का भी अवसर मिला। साथ ही साथ उस समय वृन्दावन संगीत साधना का प्रमुख केन्द्र भी था, जहाँ हरिदास स्वामी प्रभृति उच्च संगीतज्ञों का निवास था। अतएव स्वाभाविक था कि सूरदास भी वहाँ के संगीतमय वातावरण में सुविधा जनक परिस्थितितों के कारण सयंमित रूप से भारतीय संगीत का एक उच्चतम रूप प्रस्तुत करते थे।

सूरदास ने ही सर्वप्रथम संगीत का सम्बन्ध जीवन से जोड़ा। इनके गीतों में जीवन का सौन्दर्य उभर कर मानव सृष्टि को मोहित करने लगा। अब तक संगीत और जीवन में जो एक प्रकार की दूरी थी उसको बड़ी प्रगलभता से सूरदास जी ने खत्म किया। मानव जीवन संगीत से ओत-प्रोत हो गया। सूर के संगीत में वैदिक काल के संगीत की अद्वितीय सुषमा प्रस्फुटित हो रही थी। शांत, श्रृंगार, वात्सल्य, करुणा, भक्ति, वीर आदि रसों के चारु पदों की उन्होंने उन्हीं के अनुकुल बाँधा, जिससे उनका प्रभाव-क्षेत्र की सुषमा की अभिवृद्धि हो गई। सूर के समय के अनेक प्रचलित राग आज अप्रचलित हो गए हैं, और अनेक प्रचलित राग आज प्रचलित हो गए हैं। जैसे पहले शुद्ध विलावल राग अत्यधिक आम जनता में प्रचलित था, किन्तु आज वही

अत्यधिक अप्रचलित है। सूरदास ने "सूर सागर" के अधिकांश पदों पर रागों के नाम दिए हैं, और इन राग शीर्षकों के चुनाव में एक आश्चर्यजनक निश्चित व्याख्या जान पड़ती है। यह व्यवस्था अवसर, समय और भाव इन तीनों की दृष्टि से प्राप्त होती है। प्रातःकाल की लीलाओं का वर्णन जहाँ सूर ने किया है, तो उनको उन्होंने प्रातः गेय रागों में ही गाया है, तथा इसी प्रकार साँयकालीन लीलाओं को उन्होंने साँय काल में गाया जाने वाले रागों में प्रस्तुत किया है, सूर के अनुसार विलावल, भैरव, भैरवी, रामकली, ललित, जैतश्री, टोड़ी, नट, तथा सारंग प्रभृति राग निश्चित रूप से दिन के समय के राग हैं। और कल्याण, कैदारौ, विहागरौ एवं कन्हरौ आदि राग रात्रि गेय हैं। वास्तव में समय का ध्यान रखकर ही सूर ने अपने पदों की रचना की। यह भी उनके संगीतज्ञ होने का सजीव प्रमाण है। कुछ विद्वान सूर को संगीतज्ञ की कोटि में नहीं लेते, पर वास्तव में सूर एक सफल संगीतज्ञ थे आज इस तथ्य को अनेक पश्चमीय विद्वान मान गए हैं।

सूरदास जी ने रागों के विस्तार में भावों की उपेक्षा नहीं करदी—

सूरदासजी ने रागों के विस्तार में भावों की उपेक्षा नहीं करदी, उन्होंने इसका भी अपने गीतों में बड़ी सूक्ष्मता से निर्वाह किया है। भाव और राग का बड़े सुन्दर ढंग से उन्होंने सामंजस्य किया है। अनेक राग तो ऐसे हैं कि जो एक से अधिक रसों की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त हो सकते हैं, लेकिन कुछ राग विशेष भावों एवं रसों की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे सूर ने मारु और गुन्ड मल्हार रागों का प्रयोग अधिकतर वीर रस के पदों में ही किया है। उन्होंने भक्ति, उपासना, प्रर्थना और विनय के पदों का प्रायः विलावल, धनाश्री आदि रागों में गाया है। इतना सुन्दर सूर को रागों का ज्ञान था, फिर भला वह कैसे संगीतज्ञ नहीं हो सकते ? इससे अच्छा और क्या उनके संगीतज्ञ होने का प्रमाण दिया जाए।

आम जनता ने सूर के पदों को मुक्त हृदय से अपनाया—

तालों के सम्बन्ध में भी सूरदासजी की जानकारी पर्याप्त थी। उनके पदों से स्वतः तालों का संकेत मिल जाता है। सूर ने विशेष रूप से त्रिताल, कहरवा, दादरा, चौताला तथा रूपक तालों का उपयोग किया है। रागों, तालों एवं भावों के नियमों के पालन के अतिरिक्त सूर ने पदों की रचना इस प्रकार की जिससे उनमें संगीत के सभी आवश्यक तत्वों का समावेश स्वभावतः हो जाता है। माधुर्य गुण के अनुकूल वर्णों का उपयोग गीत आदि की सफल व्यवस्था तथा ह्रस्थ तथा दीर्घ वर्णों की समुचित संयुक्त योजना में सभी हमारे सूर के पदों में है। इन्हीं कारण सूर के पदों में

गेमत्व की प्रधानता हो गई है। ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं की समुचित सुन्दर योजना के कारण ही सूर की पंक्तियाँ बोलतानों के रूप में विस्तार सम्भव हो जाता है तथा गायन के सौन्दर्य की भी अभिवृद्धि हो जाती है। वास्तव में सूर ने संगीत को लौकिक साधनाओं का सफल माध्यम बनाया।

अकबर के काल में सूरदास के पद आम जनता में खूब प्रचलित हो गए थे, इन पदों में सूर ने भारतीय संगीत की उच्चता एवं पावनता को भी कहीं नहीं गिरने दिया। आम जनता ने सूर के पदों को मुक्त हृदय से अपनाया। भारतीय संगीत के इतिहास में सूरदास का नाम सदैव अमर रहेगा। उन्होंने मुगल-काल के अन्दर भारतीय संगीत के पावन सौन्दर्य की रक्षा की, इसीलिए वह इतिहास में अमर हो गए।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा मीरा, जिसने आम जनता के हृदय को संगीत और काव्य के द्वारा जीता—

मीरा—सूरदास के बाद मीरा का नम्बर आता है। भारतीय संगीत के इतिहास में पुरुष गायकों और वादकों की तो किसी युग में कोई कमी नहीं रही। भरत, नारद, मतंग, जयदेव, शार्गदेव, हरिदास, बैजू, तानसेन नायक गोपाल, अमृतसेन अनेक प्राचीन तथा मध्यकालीन संगीतज्ञों के नाम लिए जा सकते हैं। किन्तु इतनी लम्बी शताब्दियों के बीच में हमें उच्चकोटि की नारी संगीतज्ञों में दो-चार नाम भी नहीं मिलते, यह एक आश्चार्यजनक बात है। इतिहास के अन्वेषण से ऐसा मालूम पड़ता है कि प्राचीन युग में नारियों के अन्दर संगीत-चेतना पूर्ण रूप से रहीं, और वे उच्चतम साधना में भी संलग्न रहीं, परन्तु उनके नामों के उल्लेख की ओर शास्त्रकारों का ध्यान न गया हो। भारतीय संगीत के इतिहास में ऐसे अनेक युग आ चुके हैं जिनमें नारियों ने संगीत की उच्चतम साधना की है, पर साधना करने वालियों का हमें नाम का पता नहीं चलता। यही उस युग का दुर्भाग्य रहा। शास्त्र कारों की उपेक्षा के कारण भारतीय संगीत के इतिहास की कितनी बड़ी हानि हुई, इसकी सहज में कल्पना नहीं हो सकती। इतने बड़े इतिहास के बीच हमें सौभाग्य से दो नारियों के नाम मिलते हैं, जोकि उच्चकोटि की संगीत साधिका थीं, एक थी, तानसेन की पुत्री वादन में सिद्धहस्त थी, दूसरी थी मीराबाई जो गायन और नृत्य में निपुण थीं। इन दोनों के कारण ही भारतीय नारियों का मस्तक भारतीय संगीत के इतिहास में ऊँचा उठा है।

जोधपुर राज्य के संस्थापक राव जोधा जी के पुत्र राव दादूजी के चौथे पुत्र रत्नसिंह को मेड़ता की ओर से १२ गाँव निर्वाहार्थ मिले हुए थे। उन्हीं में से

एक कुड़की था। कुछ विद्वानों का मत है कि इस गाँव का नाम चौकड़ी है। इसी गाँव में मीरा का जन्म हुआ था। मीरा ने स्वयं लिखा है "मेड़तिया घर जन्म लियो है मीरा नाम कहायो।"

ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर और जनश्रुति से मीरा का जन्म सं० १५५५ में विशेष मान्य ठहरता है। वाल्यावस्था में ही मीरा की माँ की मृत्यु हो चुकी थी। इन्हें वचपन से ही कृष्ण में भक्ति हो गई थी। किसी साधू से इन्होंने कृष्ण की एक प्रतिमा वाल्यकाल में ही मचल कर ले ली थी, और उसे यह अपनी ससुराल भी ले गई थी। मीरा का विवाह १८ वर्ष की अवस्था में हुआ था। लगभग १५७३ सम्वत् में हुआ। मीरा का विवाह राणासांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। मीरा में भक्ति के बीज पहले ही जम चुके थे, ससुराल में पति के पास वे और अंकुरित एवं पल्लवित होने लगे, किन्तु मीरा को पति का सौभाग्य अधिक समय तक नहीं मिला। सम्वत् १५८० के लगभग भोजराज का स्वर्गवास हो गया। मीरा विधवा हो गई। इस घटना से उनका मन संसार से विरक्त हो गया, और वे कृष्ण की भक्ति में और भी अधिक तन्मय हो गई। मीरा को भक्ति से च्युत करने के लिए तत्कालीन राणा ने कई चेष्टाएँ कीं। मीरा को विष का प्याला पिलाया, साँप भेजा, जिनका उल्लेख मीरा ने स्वयं किया है—

"विष को प्यालो राणा जी भेज्यो, द्यो मेड़तणी ने प्याय।
कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविंद री गाय।।"

× × × ×

"साँप पिटारा राणा भेज्यो मीरा हाथ दिया जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गयी पाय।।"

किन्तु मीरा तनिक भी विचलित नहीं हुई। वह अपने पावन पथ पर बराबर बढ़ती रही। बल्कि ज्यों-ज्यों उनकी परीक्षा ली गई, त्यों-त्यों उनका प्रेम कृष्ण के प्रति और भी खिलता गया, और वह कृष्ण की सच्ची उपासिका बन गई।

मीरा की गणना कुशल संगीतज्ञा के रूप में की जाती है। मीरा गायिका है। उनकी समस्त रचना में गीतों के अथवा पदों के रूप में ही उनके हृदय का द्विव्य निर्माल्य अवतरित हुआ है। इस युग में पद-प्रणाली का विशेष प्राबल्य था।

मीरा के गीतों में भागवत गाथा-ज्ञान का बोझा नहीं मिलता तथा नागरिकता, रसिकता का भी अत्यन्त अभाव हो गया है। उनके गीतों में यथार्थ

प्रचीतिता ,मिलती है। जिसमें सहज लोकवृत्ति, सहज हृदयोदगार, जिनमें कहीं भी विषय एवं कटु भावों का चित्रण नहीं हुआ है। झांझ, करताल व एकतारा के रूप में वाद्य प्रयोग और नृत्य के साथ गायन करते हुए, संगीत के तीनों अङ्गों की सफल समन्वित साधना करने का तो पूर्ण श्रेय मीरा बाई को है। संगीत कला का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति में है। इस कथन का सर्वोत्तम प्रमाण हमें मीरा की गहरी साधना में मिला है। जिस प्रकार स्वान्तः सुखाय काव्य की रचना करने से वास्तविक उच्चकोटि के काव्य का जन्म होता है, ठीक उसी प्रकार स्वान्तः सुखाय गायन वादन तथा नृत्य करने से जो राग या स्वर लिपियाँ, हाव-भाव एवं मुद्राएँ स्वाभाविक रूप से आविर्भूत हो जाती हैं वे ही आत्मिक कला की अमरनिधि होती हैं। मीरा का लक्ष्य केवल एक था, और वह था अपने प्रियतम कृष्ण को रिझाकर उन्हें प्राप्त करना। वे प्रियतम के लिए गाती, नाचती थी। उनकी समस्त चेष्टाएँ एकमात्र उसके लिये थी। यह साधना भी सचेष्ट नहीं रह गई थी। उनका स्वभाव ही उस प्रकार का बन गया था।

मीरा के भजन और गीत जन-सामान्य के आनन्द का केन्द्र विन्दु बन गए थे—

मीराबाई एक भक्त थी और उनकी भक्ति का प्रधान माध्यम था संकीर्तन-भजन। कवि-कर्म उनका लक्ष्य न था। हृदय की गहराइयों में पहुँच कर उन्हें जो अनुभूतियाँ प्राप्त हुई वे हार्दिक उदगार बन कवितामयी पुष्पों में सौरभ बनकर मुखरित हो उठते थे, तथा भावोद्रेक में आत्म निवेदन के लिए उन कविताओं को वे स्वाभाविक रूप से गायन और नृत्य के समन्वित रूप में प्रगट करती थी। भावों की चरम अभिव्यक्ति, चरम उत्कर्ष के साथ एक मात्र गीत काव्य में ही संभव है। सीधे सरल हृदय से प्रस्फुटित हुए शब्द गीतिमत्ता की विशेषता के साथ ही हृदय को स्पर्श करने की क्षमता रखते हैं। इसलिए छन्दों के आडम्बर से विहीन वे पद गेय होते हैं। और उन्हें गाकर काव्यकार अथवा संगीतकार अपने व्याकुल हृदय की शान्त करता है। ज़नसामान्य ने इन गीतों में विशेष रस लिया। मीरा के भजन और गीत जन-सामान्य के आनन्द का केन्द्र विन्दु बन गए।

मीरा के गीतों में हमें मानव हृदय का निर्माल्य सुन्दरतम रूप में मिलता है—

मीरा बाई ने काव्य के शास्त्र का अध्ययन नहीं किया था, क्योंकि उनका लक्ष्य ही भिन्न था, इससे उनके गेय पद अत्यन्त उच्चकोटि के बन पड़े,। गेयत्व की दृष्टि से वे अद्वितीय हैं। मीराबाई के गीत उस युग में सर्वसाधारण समाज में गाये जाते थे। उनके गीतों से संगीत की भावना का प्रसार तो हुआ ही, परन्तु साथ ही साथ पावन प्रेम का भी मानव हृदय में विस्तार हुआ। शुद्ध प्रेम में कितनी महान शक्ति

होती है, इसका हमें मीरा ने दिग्दर्शन कराया। मीरा के सामने गीत-काव्य सम्बन्धी जो मुख्य आदर्श था वह महान संगीतज्ञ जयदेव के "गीत गोविन्द" का था, क्योंकि "गीत-गोविन्द" के पद अवश्य राजस्थान में गाये जाते थे। महाराणा कुम्भ ने उस पर टीका भी लिखी थी। फिर मीरा तो जन्म से ही भक्ति व संगीत की प्रेमिका थी। उन्होंने सर्वप्रथम मेड़ता में ही काव्य और संगीत आदि की शिक्षा पाई थी। और उनकी ससुराल मेवाड़ (चित्तौड़) का राजवंश भी इन सब कलाओं में बढ़ा चढ़ा था, जिससे मीरा को ससुराल में भी काव्य और संगीत की साधना को आगे बढ़ाने का अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ। उन पदों को नाचते हुए गाकर इष्टदेव के प्रति आत्म-समर्पण करना ही उनका लक्ष्य था। ससुराल और मैका छोड़ने पर मीराबाई विशेष रूप से वृन्दावन रही। उस युग में संगीत के दो ही प्रधान केन्द्र स्थान थे, ग्वालियर और वृन्दावन। चैतन्य महाप्रभु तथा उनके शिष्य वर्ग के द्वारा वृन्दावन में संगीत की संकीर्तन प्रणाली का भी अत्यधिक प्रसार व विकास हुआ। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि संगीत के इतने बड़े केन्द्र वृन्दावन में रहकर मीरा को उच्चकोटि की संगीत-कला का परिचय और ज्ञान प्राप्त हुआ। वृन्दावन के उपरान्त वह गुजरात चली गईं, वहीं उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया। राजस्थान और गुजरात के लोकगीत, लोकसंगीत की दृष्टि से उच्चकोटि के सिद्ध हुए हैं। संगीत में रुचि रखने वाली मीरा को उन लोक धुनों का ज्ञान अवश्य रहा होगा। इसीलिए उनकी गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग-रागनियों तथा लोकगीतों की धुनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है। इसी से उनके पदों में हमें लगभग ६० राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है। उन्होंने राजस्थानी, ब्रज एवं गुजराती तीनों भाषाओं में पद-रचना की, इसीलिए उनके अनेक पदों में मिश्रण भाषा मिलती है।

मीरा के संगीत ने सैकड़ों भारतीय नारियों को पथ-भ्रष्ट होने से बचा लिया—

गुजरात में गरबा गीत गाने की विशेष प्रथा रही है। मीरा ने भी उस प्रकार के अनेक गीत बनाए। उन्हें गरबी कहा गया, क्योंकि वे पद स्त्री की भाषा में इष्टदेव के प्रति पति को सम्बोधन करके बनाये गये थे। उनके वे पद गुजरात में विशेषरूप से प्रसिद्ध हुए। घर-घर में गरवी गाये जाने लगीं, और इस प्रकार मीरा का संगीत गुजरात के अन्दर भी विशेष लोकप्रिय हो गया। उन्होंने गुजरात की जनता को भगवान कृष्ण का पावन सन्देश सुनाया, जिसको सुनकर गुजराती वर्ग ने अपनी अचेतना की नींद को तोड़ दिया। मीरा का संगीत गुजराती सँगीत में भी उच्चस्थान रखता है। मीरा के संगीत से भारतीय नारियों का एक लाभ यह हुआ कि जो नारियां मुसलिम प्रभाव में जा रही थीं, वे रुक गईं, वे फिर मीरा के प्रभावशाली

गीतों को सुनकर अपना विचार बदल दिया करती थीं, इस प्रकार मीरा के संगीत सैकड़ों नारियों को पथ-भ्रष्ट होने से बचा लिया, और जो नारियों के अन्दर अचेतनता का घना कुहरा इस युग में जमने लगा था। वह फिर मीरा के गीतों के सजीव प्रकाश से दूर भागने लगा। नारी की आत्मा को बड़े सजीव ढंग से मीरा ने स्पर्श किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अकबर के काल में भारतीय नारियों के अन्दर नारत्व की उच्च गौरव गरिमा जाग्रत हुई, और साथ ही साथ उन्होंने भारतीय संगीत के शुद्ध रूप को अपनाना अपना पावन कर्तव्य समझा। वास्तव में मीरा अकबर के युग की एक जाज्वल्यमान संगीत-रत्न है, और उनका नाम भारतीय संगीत के इतिहास में सदैव उच्च स्थान पर रहेगा।

कबीर के संगीत को समझने के लिए पहले आपको कबीर की विचारधारा, उसके जीवन की पृष्ठ पूर्ण रूप से समझ लेना। ताकि आप कबीर के संगीत का का सही दृष्टिकोण सुगमता से समझ सकें—

कबीर—अकबर के काल की तीसरी देदीप्यमान ज्योति कबीर हैं, इन्होंने भी अपनी साखियों द्वारा भारतीय संगीत की अतुल सेवा की है। कबीर का जन्म काशी में हुआ था। कबीर ने स्वयं कहा है—"काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताए" उनके शिष्य धर्म दास ने भी काशी को ही कबीर साहब का जन्म स्थान माना है—"प्रगट भये काशी में दास कहाइया" पर कुछ विद्वानों का मत है कि यह पंक्ति प्रामाणिक पोथी में नहीं पाई है। उनके 'मगहर' में जन्म लेने सम्बन्धी एक प्रमाण "रागु राम कली" "पहले दरसन मगहर पायो, पुनि काशी बसे आई" में मिलता है। साथ में मरने के समय में भी मगहर लौट आना भी जन्म स्थान के प्रति स्वाभाविक प्रेम का ही प्रभाव है। अतएव डा० रामकुमार वर्मा उनका मगहर में ही पैदा होना अथवा मरना मानते हैं। उनके परिवार के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चियात्मक निर्णय नहीं हो पाया है। "लोई" नामक स्त्री के विषय में अनेक साधुओं में मतभेद है। कोई इसे स्त्री मानते हैं, और कोई शिष्या मानते हैं। उनका कथन है कि वह उनकी निस्पृह भावना से प्रवाहित होकर उनके साथ रहने लग गई थी, किन्तु 'बूढ़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल" के अनुसार यह तो निर्विबाद सिद्ध है कि उनका "पारिवारिक जीवन स्त्री पुत्र पूर्ण था। वह इससे सन्तुष्ट रहे या नहीं यह विषयान्तर प्रश्न है।

अन्य अनेक कवियों की भाँति कबीर के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में भी यद्यपि अभी तक कोई सर्व सम्मत निश्चित मत स्थिर नहीं हो पाया, फिर भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त छान बीन हो चुकी है। कबीरजी ने अपने व्यक्तिगत निर्देशों में किसी तिथि

या संवत का निर्देश नहीं किया है। यह ठीक है उनका जन्म ऐसे जुलहा परिवार में हुआ और पले थे, जिसमें सन्त जीवन की सब सुविधाएँ प्राप्त थी। कवीर ने अपने पिता को गुसांई कहा है क्योंकि बनारस और उसके आस पास ही गुसांई "दसनामी" भेद से ही उपासना करते थे। कबीर के पिता भी मुसलमानी संस्कारों के साथ ही साथ शिवोपासक योगियों के संस्कार से दीक्षित जुलहा जाति में थे। उन योगियों पर उस समय नाच संप्रदाय का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है। साथ ही साथ अन्तसाक्ष्य इस बात का भी प्रमाण उपस्थित करता है कि कबीर के पिता जुलाहों की जाति के होने पर भी योगियों की साधनाओं के अनन्य भक्त थे। कबीर के सम्बन्ध में एक किवदन्ती भी प्रचलित है कि वह विधवा ब्राह्मण के पुत्र थे। उसने लोक-लज्जा वश उन्हें "लहर तारा तालाब" के समीप फेंक दिया था। उसे नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति ले गये थे। पर हमें इस विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं। उनका लहर तारा के कमल छत्र पर उतर शयन करना भी धार्मिक भावना की अत्युक्ति का ही एक स्वरूप है, न कि सत्य पर अवलम्वित।

कबीर के पदों में हमें रागों का वर्णन मिलता है, और साथ ही साथ संगीत विस्तार में इनके पदों ने बड़ा योग दिया—

कबीर दास के गुरु स्वामी रामानन्द माने जाते हैं। इन्होंने गुरु को बहुत महत्व और आदर का स्थान दिया है। कबीर के पदों में हमें २४ रागों का वर्णन मिलता है। वे गेयत्व की पूर्ण अभिव्यक्ति रखते हैं। कबीर के पदों ने जीवन को वेदान्तमय बना दिया। जीवन के रहस्य को मानव वर्ग के सम्मुख स्पष्ट किया। कबीर के संगीत ने जीवन की यथार्थता को स्पष्ट किया। उनके पदों से भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि मजबूत हुई। उस काल में मानव जीवन पर जो असंयमता एवं उछृंखलता का मोटा आवरण पड़ा हुआ था, वह उनके गीतों से नष्ट-भ्रष्ट हुआ। मानव जीवन को सुन्दर और उच्च बनाने में कबीर के संगीत ने बड़ा योग दिया। लेकिन यहाँ हमें यह मानना पड़ेगा कि वह कवि पहले थे और बाद को संगीतज्ञ। इनके पद आम जनता के पद थे। जो जनता अशिक्षित थी, उसने कबीर के पदों को खूब गाया। जो जनता शिक्षित थी उसने भी इनके पदों को गा गाकर रस लिया। मतलब यह कि कबीर ने अकबर के काल के संगीत के फैलाव में जवरदस्त योग दिया।

कबीर के संगीत ने जीवन की यथार्थता को स्पष्ट किया—

सामान्य मनुष्यों के जीवन में इन्होंने एक नवीन चेतना की स्वर्णिमा भर दी। कबीर ने जीवन के इस तत्व को गाया, कि "परमतत्व" सत्य है, और सत्य ही निर्गुण और सगुण दोनों से परे है। वह इन दोनों में भी है। "गुण में निर्गुण,

निर्गुण में गुण है।" यह घट-घट में ऐसे ही व्याप्त है, जैसे पुष्पों में सुगन्ध। वह एक है। इस "परमतत्व" को प्राप्त करना ही सन्त का परम ध्येय रहा। इसे वह योग द्वारा पा सकता है। योग की क्रियाओं में कबीरदास को विश्वास है, किन्तु साथ ही वे "सुरति योग" का निर्देश करते हैं। मन को बाहर जाने से रोक कर अन्तर्मुख कर दिया जाए, तो निर्मल जीव उस "परमतत्व" से साक्षात्कार कर सकता है। इस प्रकार की साक्षात्कार की प्रवृत्ति "सुरति" है, इसमें जीव बाहरी कलुषों से मुक्त होकर अपने निर्मल स्वरूप में व्याप्त "परमतत्व" का प्रकाश देखता है, और इस अनुभूति में तन्मय होने की स्थिति को "सहज समाधि" कहते हैं इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर उनका जीवन-संगीत आधारित है। इसी दार्शनिक तत्व को उन्होंने अपनी साखियों तथा पदों में गाया है। वास्तव में यह सन्त कबीर ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम दार्शनिक शास्त्र जैसे कठिन विषय को सामान्य जीवन में अपनी सरल भाषा एवं संगीतमय गीतों द्वारा उतार दिया।

कबीर ने भारतीय संगीत की दार्शनिक-पृष्ठ-भूमि को मजबूत किया—

कबीर से पूर्व सामान्य लोगों का जीवन दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं था। कबीर की गणना हम संगीतज्ञ के रूप में करते हैं, क्योंकि उनके पदों से भारतीय संगीत को बड़ी शक्ति मिली है, और वे पद आम जनता की जबान पर चढ़ जाते हैं, और आम जनता उनको बड़े प्रेम से गाती है। अब तो उनके नाम पर एक पंथ ही पृथक बन गया है। जो कबीर पन्थी, पंथ कहलाता है। वास्तव में कबीर ने जहाँ मानव जीवन की बुन्ध को दूर किया, वहाँ इसके साथ-साथ उन्होंने सामाजिक सुधार भी किया। वह देव पूजा, अवतारवाद, मूर्ति पूजा, मन्दिर-मसजिद, माला तिलक-छाप, गेरुये वस्त्र, मूड़ मुड़ाना तथा अन्य बाहरी बातों का कटुतापूर्वक विरोध करते रहे, साथ ही साथ आचरण की सौम्यता की नीति भी बताते रहे। दूसरी ओर वे आध्यात्मक सत्य का प्रतिपादन भी करते हैं, उसको प्राप्त करने के मार्ग का भी निर्देशन करते हैं, और उनकी ऐसी अभिव्यक्तियों में "परमतत्व" के साक्षात्कार की मनोहर झाँकी भी प्रस्तुत हो जाती है। ऐसे स्थलों पर ही कबीर में रहस्यवाद फूट निकलता है। कबीर ने जीवन के इस रहस्यवाद को खूब गाया। यदि कबीर के पद सरल और संगीतमय न होते, तो जीवन का यह रहस्यवाद मानव जीवन में न उतर सकता था। कठोर वस्तु को भी कबीर ने संगीत की मधुरिमा के प्याले में मानव को पिलाने में वह पूर्ण सफल रहे। तभी तो सुप्रसिद्ध विद्वान ओसाली मिलडस्टन को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Internal light of Kabir" में पृष्ठ २२ पर लिखना पड़ा—"अकबर काल में सन्त कबीर ने संगीत के क्षेत्र का गर्दा-गुबार खत्म

कर दिया था। मानव अपने आचरण की पवित्रता से हटते जारहे थे, नारियों के चरित्र का मूल्य लोगों की दृष्टि में कुछ भी नहीं रह गया था। सरे बाजार नारियों का निकलना मुश्किल हो गया था। लोग अनैतिकता की आँधी में तिनके की तरह उड़े जारहे थे। भौतिक चमक की एहमीयत उन लोगों के जीवन में दिन व दिन बढ़ रही थी। आध्यात्मक अलभ्यता को लोगों ने भुला दिया था। ऐसे डगमगाते समय में कबीर ने मानव जीवन का यथार्थ सौन्दर्य प्रस्तुत किया। भारतीय संगीत की नौका जो डगमगा रही थी, उसको कबीर ने अपनी दार्शनिकता की पतवार देकर किनारे पर लगाया। संगीत में जो अश्लील गीत बनने लगे थे, वे सब कबीर के पदों के सामने प्रभाव शून्य होने लगे। वास्तव में कबीर ने संगीत की शिल्पज्ञता के क्षेत्र में कोई कार्य नहीं किया, लेकिन संगीत के भाव-पक्ष को उत्कृष्ट बनाने में उन्होंने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। डगमगाते हुए समाज को सुस्थिर करने में कबीर के पदों ने बड़ा कार्य किया।"

भारतीय संगीत के इतिहास में कबीर का स्थान भी अन्य संगीतज्ञों के समान ही उच्चकोटि का है।

तुलसीदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में कितने ही मत हैं :—

(१) इनका जन्म संवत् १५५४ में हुआ। (मानस मयंक तथा मूल-गोसाई चरित्र)

(२) १५८३ संवत् (शिवसिंह सरोज)

(३) १५८९ (तुलसी साहिब तथा ग्रियर्सन)

(४) १६०० संवत् (विल्सन)

इन सब में १५८९ सं० अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। संवत् १५८९ में भादो सुदी ११ मंगलवार को इनका जन्म हुआ। जन्म स्थान का प्रश्न इधर पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। एक पक्ष राजापुर को इनका जन्म स्थान मानता है, और दूसरा सोरों को। सोरों में इधर बहुत सामग्री प्राप्त हुई है, जिससे तुलसीदासजी के जीवन पर बहुत प्रकाश पड़ता है। राजापुर के पक्ष के समर्थक कुछ कम युक्तियों से सोरों की सामग्री को संदिग्ध मानते हैं। जन्म कहीं भी हुआ हो, किन्तु इतना सुनिश्चित है कि राजापुर में उनका निवास अवश्य रहा।

ये ब्राह्मण थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। बचपन में सम्भवतः उत्पन्न होते ही, इन्हें

अपने माता-पिता से पृथक हो जाना पड़ा। क्यों हो जाना पड़ा, इसका कोई विश्वास-नीय कथन नहीं मिलता। कबितावली में तुलसीदासजी ने स्वयं लिखा है :—

"जायौ कुल मंगन बधावना बजायो सुनि,
भयौ परिताप पाप जननी जनक को।"

इससे प्रतीत होता है कि इनके माता-पिता बहुत दरिद्र थे। जब यह बालक ही थे तो इनके गुरु ने इन्हें अपने पास रख लिया। गुरु का नाम अनिश्चित है। "बंदो गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि" में "नरहरि" नाम प्रतीत होता है। अन्य नाम जो विद्वानों ने सुझाए हैं, वे प्रामाणिक नहीं ठहरते। यदि सोरों की सामग्री पर विश्वास किया जाये तो इनके गुरु सोरों-निवासी "नरसिंह चौधरी" ठहरेंगे, यहाँ इन्हें राम कथा सुनने को मिली।

तुलसीदास जी को सर्व प्रथम दिव्य प्रकाश अपनी पत्नी रत्ना से मिला

अपने गुरु के साथ गोस्वामी जी काशी में पंच गंगा घाट पर स्वामी रामानन्द जी के स्थान पर रहने लगे। परम विद्वान शेष सनातन जी ने इन्हें वेद शास्त्रों में प्रवीण कर दिया। १५ वर्ष अध्ययन करके तुलसीदासजी राजापुर गए। इनका विवाह एक भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण की कन्या रत्ना से हो गया। यह अपनी पत्नी से अत्यन्त प्रेम करने लगे। एक बार जब वह मायके चली गई तो यह भी अनेक मार्ग के कष्ट झेलते हुए उसके पास पहुँचे। पत्नी को क्षोभ हुआ। उसने कहा—

"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहों मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मँह होति न तौ भव भीति॥"

यह बात तुलसीदास जी के लग गई। वे काशी जाकर विरक्त हो गए। सं० १५९० में घर छोड़कर काशी गए, फिर अयोध्या जा कर चार महिने रहे। इन्होंने कैलाश और मानसरोवर तक की यात्रा की। विभिन्न तीर्थों पर गए। अन्त में चित्र-कूट में जाकर बहुत दिनों तक रहे। इसके बाद सं० १६३१ में अयोध्या जाकर इन्होंने "रामचरित मानस" आरम्भ किया। यह दो वर्ष सात महिने में समाप्त हुआ। तुलसी दास जी, रहीम, महाराजा मानसिंह, नाभा जी, मधुसूदन सारस्वती के परिचित और स्नेही थे। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

"सम्वत सोरह से असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यों शरीर॥"

पर बाबा बैनी माधव दास के अनुसार, इस प्रकार है—

"श्रवण कृष्णा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।"

तुलसीदास जी महान कवि थे, लेकिन उनका काव्य पूर्ण संगीतमय है—

तुलसीदासजी जितने सफल कवि और भक्त थे उतने ही सफल संगीतज्ञ भी थे। अकबर के काल में उन्होंने एक नवीन दृष्टि दी, नवीन भाव दिये, और नवीन कल्पना प्रदान की। इनके समय में मानवता त्रस्त हो रही थी, नारियाँ अधोगति को जा रही थीं, मानवता खण्ड खण्ड हो चुकी थी। ऐसे ही समय में तुलसीदास ने देश को उज्ज्वल प्रकाश दिया। उनकी "रामचरित मानस" पूर्ण संगीतमय है। जिस वक्त चौपाइयाँ विभिन्न स्वर लहरियों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं तो फिर बड़ा हृदय-ग्राही वातावरण निर्मित हो जाता है। इन चौपाइयों को जितने आनन्द और तन्मयता से शिक्षित-वर्ग गाता है। उतने ही आनन्द से अशिक्षित-वर्ग भी गाता है। दोनों वर्गों को समान आनन्द प्राप्त होता है, यही इस "रामचरित मानस" की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने "रामचरित मानस" में संगीत का पुट देकर राम के उज्ज्वल एवं पावन चरित्र की विभिन्न धाराओं को घर घर पहुँचा दिया। राम का पावन एवं दिव्य आदर्श जन सामान्य के जीवनों में भी साकार हो उठा। तुलसीदासजी ने गाँव-गाँव, नगर-नगर घूँम कर राम के अनुपम सन्देश का प्रचार एवं प्रसार किया।

तुलसीदासजी ने संगीत के उत्कर्ष में जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भुला नहीं दिया—

चरित्र को उज्ज्वल बनाने से मनुष्य में कितनी अपार शक्ति आ जाती है, इसका दिग्दर्शन उन्होंने "राम चरितमानस" के द्वारा लोगों को कराया। इन्होंने अपने संगीत को जीवन से पृथक नहीं रक्खा। इन्होंने अपने काव्य में संगीत के रागों का उपयोग किया है। परन्तु इन्होंने संगीत के उत्कर्ष में जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भुला नहीं दिया। उस लक्ष्य को तो यह संगीत की सजीव पृष्ठ समझते थे। जीवन की पावनता ही संगीत की पावनता है, और संगीत की पावनता ही जीवन की पावनता है। दोनों की आत्मा एक दूसरे में गुँथी हुई है, इनको पृथक पृथक नहीं किया जा सकता। ऐसा तुलसीदासजी का विश्वास था। तभी तो उन्होंते जीवन के सौरभ को विस्तार करने के लिये संगीत को माध्यम बनाया। संगीत और जीवन को वह दो दृष्टि से नहीं देखते थे। वे दोनों का एक ही अर्थ समझते थे, इसीलिए उन्होंने संगीत के विकास के लिए पृथक प्रयास नहीं किया। दोनों को साथ लेकर वे विकास पथ पर आगे बढ़े हैं। उनका तो वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन के अन्धकार को

नष्ट करना था। संगीत प्रकाश है, और इस प्रकाश की रम्य किरणों को उन्होंने सुन्दर शब्दों की पृष्ठ पर प्रस्तुत करके विश्व के रंगमंच पर फैलाया। तुलसीदासजी का संगीत ऐसा था कि जिसके अपनाने से संगीत की ओर लोगों को गहरा चाव बढ़ता था, और साथ ही साथ जीवन की कालिमा भी विनष्ट होती जाती थी, और जीवन के अन्दर निर्माल्य की अलभ्य रश्मियाँ प्रस्फुटित हो उठती थीं। ऐसा था उनका संगीत। उस संगीत में जीवन था, आत्मिक-सौन्दर्य था, और थी भावनाओं की उत्कृष्टता। उस संगीत में आपको ऐसा वातावरण प्राप्त होगा कि जिसमें ग्रहण करने से जीवन "सत्यम् शिवम सुन्दरम" बन जाता है।

संगीतज्ञ और कवि दोनों की अन्तर ज्योति एक ही है—

तुलसीदास जी संगीत और काव्य को पृथक पृथक नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि दोनों के समन्वित रूप से ही जीवन की धुन्ध विनष्ट हो सकती है। वे इस तथ्य को खूब अच्छी तरह ससझते थे कि, जब संगीत की स्वर लहरियों की टेड़ी मेड़ी उड़ानों में शब्दों की सुषमा बिखर जाती है, उस वक्त उसमें एक अपूर्व शक्ति पैदा हो जाती है। इसीलिए उन्होंने अपने काव्य को संगीत से दूर नहीं रक्खा, वे संगीतज्ञ और कवि दोनों का पृथक अस्तित्व नहीं समझते थे। दोनों की ज्योति एक ही है, दोनों का उद्देश्य एक ही है, और दोनों को ही मानव जीवन का परिष्कार करना है, फिर क्यों न दोनों एक मार्ग पर चलकर शीघ्र अपनी मंजिल पर पहुँचे। इसीलिए उन्होंने इसी रम्य लक्ष्य को अपनाया। यदि तुलसीदासजी कोरे कवि होते, संगीतज्ञ न होते, तो फिर उनकी कविता इतनी लोकप्रिय न बन पाती और न वह मानव जीवन का इतना विस्तृत परिष्कार ही कर पाते।

सुप्रसिद्ध विद्वान् सर आइजिन विंग ने "The Song of Tulsidas" नामक ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है—"तुलसीदास का काव्य क्यों इतना मानव मात्र में लोकप्रिय हुआ, जब हम इस तथ्य का विश्लेषण करते हैं तो हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि उनके काव्य की नींव संगीत की पावन पृष्ठ पर सुदृढ़ता से रक्खी हुई है। उनके ग्रन्थों में जहाँ हमें एक ओर काव्य का अद्वितीय सौन्दर्य प्राप्त होता है, वहाँ दूसरी ओर संगीत का उत्कृष्ट रूप भी मिलता है। उनके शब्द शब्द में संगीत की मधुरिमा बिखर गई है, हम उस मधुरिमा को उनके काव्य से पृथक नहीं कर सकते।

विदेशी विद्वानों की दृष्टि में तुलसीदासजी—

योरुपियन इतिहासकार थोमस आस्टन ने अपनी सुन्दर पुस्तक "The History of Mogul's Age" में पृष्ठ ५५ पर लिखा है—मुगल पीरयड में

तुलसीदासजी सूर्य के समान चमकते हैं। उनकी कृतियों में हमें काव्य और संगीत दोनों का आनन्द मिलता है। काव्य का रंग संगीत पर चढ़ा हुआ है, और संगीत का रंग काव्य पर चढ़ा हुआ है, और यह दोनों रंग इतने सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से एक दूसरे में समन्वित हो गए हैं कि जिसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। तुलसीदास के काव्य में हमें मानव जीवन की गहराइयाँ मिलती हैं, और मिलती हैं मानव लक्ष्य की उत्कृष्टता। उनके काव्य ने मानवता का स्तर काफी ऊँचा उठा दिया था। प्रसुप्त मानव को उन्होंने झकझोर करके जगा दिया था। उनकी नींद इतनी गहरी हो चुकी थी कि यदि तुलसी का संगीतमय काव्य प्रस्तुत न होता तो न मालूम मानवता का क्या रूप होता।"

सुप्रसिद्ध रूसी लेखिका कुमारी नियोन्धा कुन्चो का कथन है—"तुलसीदासजी की रचनाओं में हमें मानव जीवन के विभिन्न यथार्थवादी एवं प्रशस्त दृष्टिकोणों का सजीव चित्रण मिलता है। जीवन के एक एक तथ्य को उन्होंने बड़े चातुर्य के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है। वास्तव में वह एक महान कवि ही नहीं बल्कि एक महान युग-दृष्टा भी थे। राजनीति के वह महान पंडित थे। नारी जीवन की गहराइयों में जितना यह महान कवि प्रवेश कर पाया है, उतना आज तक शायद ही किसी कवि ने प्रवेश किया हो। नारी के आत्म-सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप हमें तुलसीदासजी की अनिर्वचनीय कृतियों में उपलब्ध होता है। मानव जीवन को उन्होंने पूर्ण संगीतमय बना दिया है। उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह पूर्ण संगीतमय है। उनके सुन्दर काव्य की नींव संगीत पर रक्खी है। मैं समझती हूँ कि अकबर के काल में जितना संगीत का प्रचार इस महान कवि ने किया होगा, उतना शायद तानसेन भी न कर पाया होगा, क्योंकि इस महान कवि की दृष्टि में संगीत और काव्य का एक ही रूप था। इसी एक रूप की दीप्त आभा फैलाने में वह पूर्ण सफल हुए।" (What I received from Tulsidas नामक लेख से)

भारतीय संगीत की आत्मिक पृष्ठ को स्फूर्तिमय बनाने में "तुलसी-काव्य" ने महान योग दिया—

सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान श्री किलजेडीन ने "Tulsidas & his literature" नामक ग्रन्थ में लिखा है—"भारत के इस महान सन्त और विचारक ने हमें जीवन का सुलझा हुआ दृष्टिकोण प्रदान किया है। तुलसीदासजी की रामायण को हम मानव जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों की सुन्दरतम एलबम कह सकते हैं। इस एलबम में आपको मानव जीवन को समझने के लिये सब कुछ मिलेगा। हमें इस महान

सन्त के उत्कृष्ट विचारों और नवीन सूझों के सामने नतमस्तक हो जाना पड़ता है। एक-एक चौपाई में उन्होंने जीवन का वह गूढ़ रहस्य भर दिया है, जिसको समझने के लिए हमें वर्षों काव्य एवं साहित्य की साधना करनी पड़ेगी। भारतीय नारी का जितना पवित्र, उत्कृष्ट एवं प्रगतिशील रूप हमें, इस महान कवि की स्वर्णिम कृतियों में मिलता है, उतना हमें विश्व की अन्य कृतियों में नहीं मिलता। मानव जीवन के इस महान द्रष्टा ने नारी जीवन के समस्त अङ्गों पर प्रकाश डाला है, और वह प्रकाश ऐसा है जो सदैव युग-युग के घने अंधकार को विनष्ट करता रहेगा, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके प्रकाश डालने का ढंग पूर्ण संगीतमय है, इसलिए वह गहन विषय इतना मधुरिमा से प्लावित हो गया है कि वह जीवन की प्रत्येक तह में स्वाभाविक ढंग से प्रविष्ट हो जाता है। दरअसल उनके काव्य का आविर्भाव संगीत की विशाल पृष्ठभूमि पर हुआ है। आपको संगीत का पूरा-पूरा सात्विक आनन्द उनकी रचनाओं में मिलेगा। तुलसीदासजी का जन्म मुगल-काल में हुआ था, और उस समय सामाजिक स्थिति को संगीतमय बनाने में इस महान कवि का विशेष हाथ रहा। अकबर के दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे, किन्तु उनसे भारतीय संगीत की आत्मिक पुष्टि उतनी उत्कृष्ट नहीं हुई थी जितनी कि इस महान कवि की कृतियों से हुई।"

तुलसीदासजी की रामायण आज अनेक देशों की भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है, और लगभग सभी देश आपकी उत्कृष्ट रचना रामायण से प्रभावित हो चुके हैं। जहाँ आपको साहित्य के विशद क्षेत्र में स्मरण किया जायगा, वहाँ उसके साथ साथ भारतीय संगीत के विशाल क्षेत्र में भी स्मरण किया जाता रहेगा। आपको भारतीय संगीत के इतिहास में वही उच्च स्थान प्राप्त है, जोकि आपको हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्राप्त है।

पंडित पुन्डरीक विट्ठल ने भारतीय संगीत को विकास-पथ पर अग्रसर करने में क्रियात्मक कदम उठाए—

बादशाह अकबर के समय में भारतीय संगीत उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच चुका था। १५९९ ई० के लगभग संगीत के एक कर्नाटकी पंडित पुन्डरीक विट्ठल द्वारा लिखित संगीत के चार ग्रन्थ मिले हैं—(१) सद्रागचन्द्रोदय, (२) राग माला, (२) राग मंजरी, (४) नर्तन निर्णय। यह चारों पुस्तकें बीकानेर लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। श्री भातखन्डेजी ने इनके सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है—"मेरे आश्चर्य की अत्यधिक वृद्धि हुई जब मैंने "सद्रागचन्द्रोदय" के अनुक्रम में निम्न छन्द पढ़ा—

"वंश, फारकि भूपते : सुसरलो भूभारधारक्षमः
श्री मत्सद् गुणिदानि शूर विमलक्ष्मा पाल शाखाबिभृत्।

विख्यातो भुवि यत्र काव्यरसिकाः सत्कीर्तिवल्लश्रिता ।
श्चित्रं संचरतीति विश्वमखिलं के वर्ण्यतीहतत् ।।
तत्राभूद हूमद्खांननृपतिर्वीराधि वीरेश्वर—
स्त्वौदार्थादिगुणैः समस्तवसुधाधीशैः सदा राजितः
दृप्यच्छत्रु गणेषु च प्रविल सत्संग्राम शक्रस्तथा ।
संहर्ताऽविरतं दरिद्रतमसो भूमराडला खंडल ।।३।।
तज्जातस्ताजरवानो नरपतितिलकः फारकी वै जयंतो
यंता शूरे श्वराणामरि सुभट घटाटोप जीमूतवातः ।।
जातस्तातः प्रजानां भरणवितरणस्थापना ज्ञाकरेभ्यो
नित्यं दानोर्मिलोलैः सकल गुणनिधी राजते राजसिंधु ।।४।।
तज्जः श्री बुरहानखान चतुरः कामानुकारी वरः
संगीतादि कला प्रपूर्णविमलः साहित्य तेजोमयः
दारिद्रयांवतमश्च यश्च गुणिनां हंताह्यु दारैः करै
भूमौ फारिक भूपती शतिलकश्चन्द्रश्चिरं राजते ।।५।।
(देखिये पृष्ठ ३)

इस प्रकार मैंने खोज निकाला कि पंडित पुन्डरीक विट्ठल फारुकी वंश के अहमद खाँ के पौत्र ताज खाँ के बेटे बुरहाम खाँ के पास नियुक्त थे। निम्नलिखित अपूर्ण छन्द से यह भी प्रतीत होता है कि उपर्युक्त तीनों खान देश के शासक थे—

"श्री मद्दक्षिणादिङ मुखस्य तिलके (श्रीखा) निदेशे शुभे
नित्यं भोगवतीत भोगिवसती रम्या सुपर्वादिभिः ।
अस्ति स्वस्तिकरी नरेन्द्रनगरी त्वानंदवल्लीति या
तत्र श्रीबुरहानखान नृपतिः संगीत माकर्णयत् ।।
(देखिये पृष्ठ ४)

मिस्टर स्टेनली लेन पूले (Mr. Stanley Lane poole) अपने ग्रन्थ "The Mohamedan Dynasties" के पृष्ठ ३१२ पर खानदेश के प्राचीन इतिहास के बारे में लिखते हैं :—

"खानदेश की राजधानी बुरहानपुर को अकबर ने सन् १५६२ में जीता और उसके राजा को अपने आधीन किया, पर सन् १५९९ के अन्त तक जब तक छः महिनों के घेरे के बाद असीरगढ़ का पतन न हुआ खानदेश मुगल साम्राज्य में पूर्णतया सम्मिलित न हो सका। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुन्डरीक खानदेश के फारुकी बुरहान खाँ के दरबार में उस समय अवश्य रहते थे जब दिल्ली पर अकबर का

आधिपत्य था। यह असम्भव नहीं कि जब खानदेश सन् १५९९ में अकबर की शक्ति का शिकार बना, तब पुण्डरीक से दिल्ली चलने का अनुरोध किया गया हो। यह भी हो सकता है कि वे स्वयं ही दिल्ली चले गए हों। पुण्डरीक ने अवश्य ही उन चार ग्रन्थों की रचना की है जिनका उल्लेख किया गया है। प्रथम ग्रन्थ "सदागचन्द्रोदय" के अन्त में पुण्डरीक ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

"श्रीकर्णाटजातीय पुण्डरीक विट्ठल विरचिते
सद्रागचन्द्रोदये इ–इ"।

(देखिये पृष्ठ २८)

यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पुण्डरीक एक महान कवि और विख्यात संगीतज्ञ हुए। उनके राग लक्षण सचमुच बड़े सुन्दर शब्दों में सजे हुए हैं। ऐसा भी आभासित होता है कि उनके काल में उत्तरी भारत का संगीत अव्यवस्थित हो रहा था और उनके संरक्षक राजा बुरहानखाँ ने उसे फिर से व्यवस्थित रूप देने की आज्ञा दी थी। पुण्डरीक लिखते हैं :—

"संत्यस्मिन् बहुधा विरोधगतयो लक्ष्ये चलक्ष्मोदिते
जानंतीह सुलक्ष्मपक्षविगति केचित्परे लौकिकीम्
तत्कुर्वंतु सुलक्ष्म लक्ष्यसहितं रागप्रकाशं बुधा
इत्युक्ते बुरहानखाननृपतौ विद्वत्सभामंडले।"

(देखिये पृष्ठ ४)

श्री भातखन्डेजी ने आगे लिखा है—"पुन्डरीक को अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करने का अत्यन्त दुष्कर कार्य करना पड़ा और उन्होंने अपना कर्तव्य "रत्नाकर" के रचयिता शार्ंगदेव के इस उत्कृष्ट सिद्धान्त के आधार पर किया :—

"लक्ष्य प्रधानं खलु शास्त्रमेतन्निः शंकदेवोऽपि तदेव वष्टि।
यल्लक्ष्म लक्ष्यप्रतिबंधकं स्यात्तदन्यथा नेयमिति ब्रुवाणः॥"

"चन्द्रोदय" में पुन्डरीक के कुटुम्ब के निवास स्थान पर निम्न तथ्य हैं :—

"कर्णाटे शैवगंगाभिधनगनिकटे सातनूर्वाह्वियो यो
ग्रामस्तत्रा ग्रजन्मप्रवरसुनिकराजा मदन्योऽस्ति वंशः"
"तत्र श्री विट्ठलार्योऽभवदमितयशास्तग्दुणाख्यातु तस्यै
तत्सूनो रागचंद्रोदय इति च भजन् कैरवाणां मुदेऽस्तु"

(देखिये पृष्ठ २८)

यदि हम "चन्द्रोदय" में वर्णित कवि के रागों की परीक्षा करें तो यह अवश्य अनुभव करेंगे कि उनमें से कई दक्षिणी ग्रन्थों में मिलते हैं। "चन्द्रोदय" जिस शुद्ध सप्तक पर आधारित है उसे मुखारी कहते हैं, जो दक्षिणी संगीतज्ञों के आधुनिक कानकाँगी सप्तक से मिलता है। पुण्डरीक ने "राग माला" में लोक प्रसिद्ध और परम्परागत पद्धति से भारतीय रागों का राग-रागिनी और पुत्र रागों में वर्गीकरण किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि उनका विभाजन अधिक तर्कपूर्ण और बुद्धिगामी तथ्यों पर आधारित है। उनके छः राग इस प्रकार हैं :—

"शुद्ध भैरव हिंदोलो देशिकारस्ततः परम्।
श्री रागः शुद्ध नाटश्च नट्टनारायणवच पट।।"

"पुण्डरीक के यह दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। राग माला से यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकार उत्तर भारत के संगीत और संगीतज्ञों से सम्भवतः दिल्ली या आगरा के काव्यकारों से परिचित थे। मैं समझता हूँ कि पुन्डरीक ने इस ग्रन्थ की रचना सम्राट की आज्ञा से अथवा उसके बिना ही उत्तर भारत में आने के बाद की हो।"

पुण्डरीक को उत्तर भारतीय संगीत पर भी पूर्ण अधिकार था। उन्होंने उत्तर भारत के संगीत-परिष्कार में बड़ा योग दिया।

संगीत उत्सवों का भी प्रचलन था—

अकबर अपने दरबार में संगीत-उत्सव भी किया करता था, जिनमें दरबारी संगीतज्ञों के अतिरिक्त बाहर के संगीतज्ञ भी शामिल हुआ करते थे। उसकी संगीत में गहरी दिलचस्पी थी। अकबर के काल में जितना हमें संगीत का भव्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है, उतना वैदिक काल और गुप्त काल को छोड़कर किसी भी काल में नहीं हुआ। इस काल की नारियाँ भी संगीत-आयोजनों में भाग लेती थीं। नारियों के अन्दर गीत और भजन का प्रचलन अधिक हो गया था। नारियों ने अपने जीवन को नाना-रूपों में गीतमय बना लिया था। बच्चे के जन्म होंने से लेकर उसके विवाह तक संगीत का एक सुखद वातावरण निर्मित कर दिया जाता था। समय-समय के लिये नारियों ने अनेक प्रकार के गीत और भजन बना रक्खे थे, जिनमें वे अपने जीवन के चढ़ाव-उतारों का चित्रण बड़ी स्वाभाविकता से किया करती थीं। नृत्यों को भी उन्होंने सजीव गीतों से गूँथ दिया था। वास्तव में मुगल-काल की नारियों में संगीत के लिए एक विशेष अनुराग, एक विशेष चाव पाया जाता था। इस काल के संगीत में नारियों के व्यक्तित्व एवं चरित्र

का प्रस्फुटन बड़ी कलात्मक एवं प्राणमय ढंग से हुआ है। मुस्कराहट और आंसू का समिश्रण-चित्र आपको इस युग के नारी-संगीत में मिलेगा। नारी के गीतों में उर्दू भाषा के शब्द बहुत कम आपाए थे, लेकिन जिन गीतों को पुरुष वर्ग गाते थे, वे उर्दू भाषा के शब्दों से लदे रहते थे। परन्तु पुरुष वर्ग के अन्दर भी एक वर्ग ऐसा था जो सात्विक संगीत को ही अपनाता था। मीरा तुलसी और सूर के पद, चौपाइयाँ आम जनता में खूब प्रचलित हो गये थे। प्रत्येक व्यक्ति की जबान पर मीरा के गीत होते, तुलसी की चौपाइयाँ होती और सूर के पद मुखरित होते थे। कबीर की साखियाँ अपना चटक रंग मानव-जीवन पर बिखेर देती थीं।

आम जनता में सितार वाद्य का प्रचलन हो रहा था—

सितार का उपयोग वीणा के स्थान पर होने लगा था, लेकिन फिर भी वीणा का अस्तित्व एकदम खत्म नहीं हुआ था। उच्च वर्ग की कुछ नारियाँ अब भी वीणा का ही उपयोग करती थीं। मृदंग के स्थान पर तबले का प्रयोग होने लगा था। बड़ी-बड़ी मजलिशों में भी तबला का ही प्रयोग किया जाता था। मंजीरा का भी चलन हो गया था। अनेक नारियाँ सितार-वादन में प्रवीण हो गई थीं। ख्यालों का मध्यम श्रेणी के लोगों में अधिक प्रचार था। परन्तु उच्च वर्ग के समाज में तो ध्रुपद शैली के गीत ही गाये जाते थे। सुप्रसिद्ध अरबी विद्वान इजमउद्दीन ने "ताहिले माहील" में लिखा है—"अकबर के काल में भारतीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। संगीतज्ञों का समाज में बड़ा मान सम्मान किया जाता था। उनको पुरस्कार भी राज्य की ओर से दिये जाते थे और हर व्यक्ति संगीत का प्रेमी था। मुसलिम जनता से अधिक हिन्दू जनता संगीत-प्रिय थी। हिन्दुओं का संगीत मुसलिम संगीत से कहीं उत्कृष्ट था। उनमें जो रुहानी सुषमा थी, वही उसकी उच्चता का प्रतीक थी। मुसलिम संगीतज्ञ से हिन्दू संगीतज्ञ अधिक साधना प्रिय होते थे। वे संगीत की साधना एक तपस्वी की तरह ही करते थे। वे संगीत को मोक्ष का मुख्य साधन समझते थे। लेकिन इसके विपरीत मुसलिम लोगों ने अपने जीवन में संगीत को इतनी गहराई से नहीं उतारा था। उन्होंने संगीत की मनोरंजन की सीमा से आगे की सीमा नहीं देखी थी, ऐसा मालूम पड़ता है, तभी तो इस युग में किसी भी मुसलिम संगीतज्ञ ने मानव वर्ग को आध्यात्मिक सौन्दर्य भेंट नहीं किया, इसके विपरीत हिन्दुओं में अनेक विद्वानों ने समाज को आध्यात्मिक सौन्दर्य प्रदान किया जैसे कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि। इनकी रुहानी सुन्दरता में संगीत की सुषमा की अभिव्यक्ति पूर्ण शक्ति के साथ की जाती थी।"

संगीत की दृष्टि से अकबर का काल स्वर्ण युग कह सकते हैं—

विख्यात इतिहासकार आर्वोजोर्ज ने अपनी पुस्तक "The Science of Indian music" में पृष्ठ ४० पर लिखा है—"भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर का काल स्वर्ण युग कह सकते हैं, क्योंकि इस काल में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियों का विकास सुचारु ढंग से हुआ। अनेक संगीतज्ञ जैसे तानसेन, बैजू बावरा, नायक बक्सू, कबीर, तुलसी, मीरा और सूर आदि पैदा हुए, जिन्होंने अपनी गौरवशाली कृतियों से इस काल को समृद्धिशाली बनाया। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि भारतीय संगीत का फैलाव देश के कोने-कोने में हुआ और इसके साथ भारतीय संगीत का स्तर भी गिरने नहीं पाया। संगीत की जो पवित्रता, जो उज्ज्वलता थी वह स्थिर रही। संगीत के शिल्पक एवं आत्मिक तथा कलात्मक ज्ञान की अभिवृद्धि अपनी पराकाष्ठा की प्रशस्त सीमा को स्पर्श कर रही थी, अतएव हम कह सकते हैं कि यह युग भारतीय संगीत का स्वर्ण युग था।"

अकबर बड़ा संगीतज्ञ था और उसे अन्य कलाओं से भी प्रेम था—

अकबर के काल का जैसुइट पादरी ने वर्णन करते हुए लिखा है—"अकबर बड़ा कला प्रेमी था। वह चित्र-कला तथा संगीत का बड़ा शौकीन था। वह अपने दरबार में इन कलाओं के विशेषज्ञों को रखता था। उसे कलाओं पर चर्चा करने में आनन्द प्राप्त होता था। उसकी कला की अभिरुचि बड़ी परिष्कृत थी। मनोविनोद तथा जीवन विकास के लिए संगीत का प्रयोग करता था। संगीत उसके लिए सिर्फ विलास का एकमात्र उपकरण नहीं था, बल्कि वह इसको रुहानी विकास के लिए एक शक्तिशाली सम्बल समझता था। धार्मिक संगीत को वह बहुत पसंद करता था। वह धर्म का प्रचार संगीत के द्वारा करना श्रेयस्कर समझता था। संगीत उसके लिए धर्म के समान ही एक पवित्र एवं दिव्य उपकरण था। इसलिए ही इस काल के संगीत ने धर्म को पवित्र और सुन्दर बनाने में पूर्ण योग दिया। अकबर की मृत्यु १६०५ ई० में हुई। इस प्रकार उसने ५० वर्ष तक देश पर शासन किया।"

जहाँगीर (१६०५–१६२७)

बादशाह जहाँगीर नृत्य और गाने का बड़ा शौकीन था—

जहाँगीर—अकबर की मृत्यु के उपरान्त उसका बेटा जहाँगीर २० अक्टूबर सन् १६०५ ई० में गद्दी पर बैठा। वह एक सुन्दर युवा पुरुष था। उसका कद लम्बा, रंग गोरा और आँखें तेज और चमकीली थीं। उसके आकर्षक शिष्टाचार स्पष्ट स्वभाव तथा वाकपटुता के कारण सब लोग उससे मिलकर प्रसन्न होते थे।

जहाँगीर अपने पिता के समान ही कला और साहित्य का अनुरागी था। कलाओं में वह विशेष रूप से संगीत को सबसे अधिक प्रेम करता था। प्रेम ही नहीं करता था, बल्कि वह संगीत का जानकार भी था। सितार सुनने का वह बहुत शौकीन था। शृंगारिक चीजें उसे विशेष प्रिय थीं। संगीत में वह शृंगार रस को अधिक पसन्द करता था। अतएव उसके काल में शृंगारिक संगीत का अधिक निर्माण हुआ। वह उन कलाकारों को पुरस्कार भी देता था, जो अधिक से अधिक सुन्दर शृंगार रस के गीत लिखते थे। गीतकारों को वह प्रेम करता था। अनेक गीत रचयिता भी उसके दरबार में रहते थे। नृत्य कला को भी वह अधिक पसंद करता था। नृत्य और गाना उसके जीवन का विशेष अंग था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार वर्नी जीम्स "The Discription of the Mogul Period" नामक ग्रन्थ में लिखता है—"जहाँगीर बादशाह बड़ा शौकीन तबियत का व्यक्ति था। उसके दरबार में एक से एक सुन्दर नर्त्तकाएँ और गायक रहते थे। संगीत ही उसका जीवन था। वह संगीत में इतना डूब जाता था कि फिर उसे खाने-पीने की सुध-बुध कुछ भी नहीं रहती थी। वास्तव में संगीत के परे उसका कुछ भी स्फूर्तिपूर्ण जीवन नहीं था। अगर हम यह कहें कि संगीत ही उसको जीवन का एकमात्र प्रकाश था, तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। दरअसल वह बड़ा जिन्दादिल एवं कला उपासक बादशाह था। उसके विचार बड़े उदार एवं स्नेहपूर्ण थे। वह शान्ति का महान उपासक था, वह शान्ति को दिल से चाहता था। दुनिया में वह अगर सबसे अधिक किसी वस्तु को प्यार करता था, तो वह वस्तु शान्ति और संगीत थी। लेकिन फिर भी जहाँगीर को युद्ध करना पड़ा अपनी विवेक की आवाज के विरुद्ध।"

नूरजहाँ सुन्दर कवित्री और गाने में बड़ी निपुण थी—

जहाँगीर के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना उसका नूरजहाँ से विवाह होना है। नूरजहाँ का बचपन का नाम मिहरुन्निसा था। वह मिर्जा गयास की बेटी थी। मिर्जा गयास तेहरान का रहने वाला था और नौकरी की तलाश में भारत में आया था। यहाँ अकबर ने उसे नौकरी दी और थोड़े ही दिनों में वह और उसके बेटे राज्य में ऊँचे पदों पर पहुँच गए। नूरजहाँ जब सयानी हुई तो, उसका विवाह अली-कुली इस्तालजू के साथ हो गया। अलीकुली को शेर अफगान की उपाधि मिली, और वर्दवान में एक जागीर दी गई। बंगाल इन दिनों राजद्रोह का केन्द्र हो रहा था। शेर अफगान पर भी राजद्रोह का सन्देह किया गया। बादशाह ने बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन को उसे गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। कुतुबुद्दीन ने शेर अफगान के साथ कुछ अशिष्टता का व्यवहार किया, जिससे वह बड़ा क्रोधित हुआ और दोनों

आपस में लड़कर मर गये। मिहरुन्निसा दरबार में भेज दी गई और मार्च सन् १६११ ई० में उसके साथ जहाँगीर का विवाह हो गया। अब वह बादशाह की प्रधान बेगम बन गई और उसे नूरमहल तथा नूरजहाँ की उपाधियाँ मिली। नूरजहाँ फारसी साहित्य पर अपना पूर्ण अधिकार रखती थी। वह कविता भी करती थी। उसकी कविता बड़ी संगीतमय होती थी। उन कविताओं में गेयत्व की आभा अधिक रहती थी। नूरजहाँ प्रायः अपने गीतों को गाया करती थी। उसकी आवाज बड़ी मधुर एवं आकर्षक थी। जब वह गाती थी, तो एक सुन्दर वातावरण निर्मित हो जाता था, वह जहाँगीर को प्रसन्न करने के लिए वह प्रायः स्वयं ही गाया करती थी, क्योंकि वह जानती थी कि उसके गाने से जहाँगीर को आराम मिलता है। वास्तव में नूरजहाँ को संगीत कला से बड़ा प्रेम था। कहते हैं कि उसे नृत्य कला से भी प्रेम था, लेकिन उसने नृत्य पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया था। पर फिर भी उसे नृत्य देखना विशेष प्रिय था।

नूरजहाँ की कविताओं में जीवन-सौन्दर्य प्रस्फुटित होता था—

विख्यात इतिहासकार अर्नेल गीस ने अपने ग्रन्थ "The outline of Indian Music & its physics" के पृष्ठ १८० पर लिखा है—"नूरजहाँ संगीत की बड़ी प्रेमिका थी। संध्या के समय वह प्राय: कविता लिखती थी, और उसको गाती थी। गुनगुना कर लिखने की उसकी आदत थी। उसकी कविताओं में जीवन की गहराई पाई जाती थी तथा जीवन का सौन्दर्य भी उनमें प्रस्फुटित होता था, वह स्वयं सौन्दर्य की रानी थी। कहते हैं कि उस युग में नूरजहाँ से खूबसूरत अन्य कोई नारी नहीं थी। उसका सौन्दर्य पूर्ण संगीतमय था। संगीत ने उसके वाह्य सौन्दर्य की चमक को ठीक वैसे ही बढ़ा दिया था जैसे कि ज्योतिस्ना की दीप्त आभा में रंग-विरंगे पुष्पों की सुषमा बढ़ जाती है। उसका स्वभाव बड़ा विनयशील था, वह सुन्दर चीजों को विशेष पसन्द करती थी। प्रातःकाल उद्यान में घूमते वक्त उसे गाना बहुत प्रिय लगता था। वह एकान्त में गाया करती थी। जब वह गाती थी, तो उसकी मधुर स्वर लहरी आकाश में गूँज जाती थी। जहाँगीर को नूरजहाँ से संगीत में बड़ी सहायता मिली। नूरजहाँ ने जहाँगीर की संगीत प्रिय मनोवृत्ति को बेहद पसन्द किया था, इनके दाम्पत्यि जीवन की नींव वास्तव में संगीत की विशाल पृष्ठभूमि पर ही रक्खी हुई थी।"

दरबारी संगीत को भी नूरजहाँ तथा जहाँगीर दोनों मिल कर सुनते थे। इस युग में सितार वादन की प्रगति हुई—

दरबारी संगीत को नूरजहाँ तथा जहाँगीर दोनों मिलकर सुनते थे। इस युग में सितार वादन की प्रगति हुई। नूरजहाँ एक कुशल शासिका थी। उसने नई-

नई तरह की पोशाकें निकाली और महल को सजाने के लिए नये-नये ढंग बतलाए। जहाँगीर बादशाह उसके पूर्ण अधिकार में था। जिस वक्त वह संगीत सुनती थी, तो घण्टों संगीत के रस में डूबी रहती थी, और जिस वक्त प्रशासन का कार्य करती थी, उस वक्त भी वह बड़ी लग्न से घन्टों उसमें उलझी रहती थी, जब तक कि वह कार्य पूर्ण न हो जाता था तब तक वह उठती न थी। वह जो भी कार्य करती थी वह बड़ी तन्मयता के साथ करती थी। जहाँगीर ने राज्य का सारा काम नूरजहाँ पर ही डाल दिया था।

जहाँगीर को गज़लें लिखने में बड़ा आनन्द मिलता था—

जहाँगीर को फारसी साहित्य पर पूर्ण अधिकार था। वह गज़लें लिखता था, वे गज़लें अधिकतर प्रेम रस से परिपूर्ण रहती थीं। जब कोई गज़ल वह पूरी करता था तो उसे फिर वह नूरजहाँ को सुनाता था, और जब नूरजहाँ इसको पसन्द कर लेती थी तो फिर वह उसको खूब गाता था। अपनी गज़ल को नूरहजाँ से भी गवाता था। कसीदे भी लिखता था। तुर्की वह खूब बोलता था।

हिन्दी गीतों को भी जहाँगीर पसन्द करता था—

हिन्दी गीतों से भी वह बड़ा प्रेम करता था। कभी कभी वह हिन्दी गीतों को सुना करता था, और उसके भावों की गहराई में उतरने की कोशिश करता था। प्राकृतिक सौन्दर्य का वह अनन्य उपासक था। उसने अपनी आत्म कथा में जीव-जन्तुओं तथा फूल पत्तों का वर्णन एक वैज्ञानिक की तरह किया है। चित्रकला से भी उसे विशेष प्रेम था और एक अनुभवी कलाविद की तरह वह चित्रों के गुणों की विवेचना करता था और इसी प्रकार वह संगीत पर भी विवेचन करता था। कला की आलोचना करना उसको प्रिय लगती थी। उसकी लिखी हुई आत्म-कथा "तुजुक जहाँगीरी" उसके जीवन का अलभ्य इतिहास है। इस काल में जहाँ उर्दू साहित्य द्वारा भारतीय संगीत का विकास हुआ, वहाँ दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के माध्यम से भी संगीत विकसित किया गया। कई एक मुसलिम कलाकारों ने हिन्दी को लेकर आर्य संगीत को विकास पूर्ण बनाया, और इसी प्रकार कई हिन्दुओं ने भी उर्दू तथा फारसी को सीखकर उसमें संगीतमय रचना की। इस प्रकार इस काल के अन्दर अकबर के काल के समान ही हिन्दू मुसलिम संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता रहा। इस प्रकार जहाँगीर काल के अन्दर कलाओं द्वारा संस्कृति के सौन्दर्य को निखारा गया चित्र-कला के द्वारा संगीत को प्रस्तर मूर्तियों में उतारा गया। संगीत को सजीव बनाने में जहाँगीर युग का विशेष हाथ रहा, और उसने भारतीय संगीत को विकास की भव्य मंजिल पर पहुँचाने के लिए प्रत्येक प्रयत्न किया।

एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ राग-विबोध—

"राग-विबोध" की रचना के सम्बन्ध में ग्रन्थकार पं० सोमनाथ ने तिथि निम्न आर्यों दी है—

"कुदहनतिथि गणितशके सौम्याब्दस्येपमासि शुचिपक्षे ।
सोमेऽग्नितिथौ रविभेऽ करोदमुं, गौवगलि: सोमः ।।"

श्री भातखण्डेजी ने उनके बारे में लिखाहै—"सोमनाथ एक दक्षिणी ग्रंथकार के रूप में मान्य हो चुके हैं। ग्रंथकार स्वयं उत्तरी भारत के संगीत से प्रभावित थे। "राग-विबोध" में उन्होंने उत्तर और दक्षिण दोनों पद्धतियों के स्वर नामों का प्रयोग किया है। उन्हें "राग तरंगिणी" की कोई प्रति मिली थी अथवा नहीं यह कहना सम्भव नहीं, क्योंकि अपने ग्रंथ में उन्होंने हनुमान, मतङ्ग, निःशंक और कल्लिनाथ का ही उल्लेख अपने पूर्व संगीतज्ञों के रूप में किया है। स्वरों का तीव्रतर और तीव्रतम नाम-करण और "मेल" के समानार्थी शब्द "थाट" का उपयोग भी यह प्रामाणित करता है कि वे उत्तर भारत के संगीत से प्रभावित थे। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे उत्तर-भारत में अधिक दिनों तक रहे हो, क्योंकि उनके 'स्वराध्याय" का सावधानी से विवेचन करने पर यह मालूम होता है कि उन्होंने उत्तरी पद्धति के कुछ कलात्मक तथ्यों को गलत समझा है। उन्होंने जिस रीति से वीणा के बारह पदों की स्थापना की है, यह भी पूर्णतया सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती।

इस काल में संगीत के अनेक महान आचार्य हुए—

जहाँगीर के दरबार में विलासखाँ, छत्तरखाँ, खुर्रम दाद, मक्खू, परवेज दाद और हमजान प्रसिद्ध गवैये थे। इसी शासन-काल में दक्षिण भारत के राजमुन्द्री स्थान निवासी पंडित सोमनाथ ने संगीत का ग्रंथ "राग विबोध" लिखा। इसका रचना-काल ग्रंथकार ने स्वयं शाके १५३१ (अर्थात् १६१०, आश्वनि तृतीया बताया है)। इसमें उन्होंने अनेक वीणाओं का वर्णन किया है तथा रागों का जन्म जनक पद्धति से वर्गीकरण किया है। जहाँगीर के समय में ही भारतीय संगीत पद्धति पर १६२५ ई० में "संगीत दर्पण" नामक ग्रन्थ का निर्माण पं० दामोदर ने किया। इसमें "संगीत रत्नाकर" के भी बहुत से श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। राग-रागनियों के "ध्यान" शीर्षक में जो देवरूप इसमें उपस्थित किए हैं। वे अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक हैं। इसमें स्वराध्याय तथा रागाध्याय का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। सर विलियम जोन्स की पुस्तक "The musical modes of the Hindus" द्वारा यह भी पता चलता है कि "संगीत दर्पण" का फारसी अनुवाद भी हो चुका है। इसके गुजराती तथा हिन्दी अनुवाद भी वर्तमान काल में हो गए हैं। इससे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का आभास अच्छी तरह से मिल जाता है। सुप्रसिद्ध

कवि तुलसीदासजी की मृत्यु भी इनके ही काल में हुई थी। हमारे पास इस समय ऐसा कोई विश्वासनीय प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दामोदर पंडित ने कहाँ रहकर समृद्धि पाई। सर विलियम जोन्स ने "The musical modes of the Hindus" में उल्लेख किया है कि "संगीत दर्पण" का फारसी अनुवाद १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के पूर्व ही हो चुका था। मिस्टर जोन्स ने लिखा है—"कई संस्कृत ग्रन्थकारों ने अंकगणित एवं रेखा गणित को ज्योतिषियों के लिये छोड़दिया है और संगीत कला को कल्पना तथा भावनाओं के आनन्द तक सीमित कर दिया है। बंगाल के विद्वान एकमत होकर, दामोदर को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु मुझे अभी तक उनकी कोई अच्छी रचना नहीं मिल सकी है तथा बनारस से प्राप्त "नारायण" से ही मुझे पूर्ण सन्तोष हो गया है, जिसमें बार-बार दामोदर उद्धृत किए गए हैं। आजिमशाह के शासन काल में परिश्रमी तथा योग्य मिर्जा खाँ ने फारसी ग्रन्थ 'तोफे तुलहिन्द' (भारतवर्ष से भेंट) की रचना की, जिसमें हिन्दू साहित्य की सब शाखाओं का सूक्ष्म विवरण हुआ है। उनके कथानुसार उन्होंने कुछ प्रामाणित संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर जिनमें "रागार्णव" "रागदर्पण" एवं "सभाविनोद" उल्लेखनीय हैं। संगीत पर अपना विस्तृत निबन्ध प्रस्तुत किया। "संगीत दर्पण" जिसका उल्लेख उन्होंने अपने प्रामाणित ग्रन्थों में किया है, फारसी में अनुवादित हुआ। दामोदर पंडित ने अपने "रागाध्याय" के एक स्थान पर प्रामाणिक रूप से कल्लिनाथ का मत उद्धृत किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि "संगीत दर्पण" १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद लिखा गया। चाहे सत्रहवीं शताब्दी में "संगीत दर्पण" में कई गुण रहे हों और उसका प्रचार भी रहा हो, पर इस समय यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि शार्ंगदेव के "संगीत रत्नाकर" के समान ही जिसमें से दामोदर ने मुक्त हस्त होकर अपने स्वराध्याय के लिये पूरी सामग्री नकल करली है, यह ग्रन्थ भी दुर्बोध एवं रहस्य पूर्ण होगया है। मेरा यह कहना गलत न होगा कि पश्चिम भारत के रहने वाले इस ग्रन्थ को अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखते, पर इसके लिए स्वयं पंडित दामोदर ही उत्तरदायी हैं। उन्होंने शार्ंगदेव का स्वराध्याय ज्यों का त्यों ले लिया है तथा किसी अज्ञात ग्रन्थकार का रागाध्याय भी उसके साथ जोड़ दिया है। अपने इस अस्वाभाविक एवं असंवद्ध कार्य का कोई स्पष्टीकरण उन्होंने नहीं किया।" (श्री भातखण्डे की "A Short Historical Survey of the music of upper India" से)।

राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर ने अपने ग्रन्थ "Universal History of music" में लिखा है—"The following singers are named as belonging to the reign of Jehangir (1605-27) Jehangirabad, Chatra khan, Parwizdad, Khurramdad, Makhu,

Hamjan, It was in the reign of this emperor that Tulsidas died. Tulsidas was a popular composer of hymns regarding Ram & Sita."

गजल प्रणय विषयक कविता है, जिन रागों में टप्पें होते हैं बहुधा उन्हीं रागों में ये गजलें भी होती हैं—

गजल तथा रेखता के विषय में willard साहब लिखते हैं—"These are in the Urdu and Persian languages and differ from each other, according to some, merely in the subject they treat of. The gazal has for its theme a description of the beauties of the beloved object, minutely enumerated, such as the green beard, moles, ringlets, size, shape & C. as well as his cruelties and indifference and the pain endured by the lover, whilst in the Rekta he eulogizes the beauty of the beloved in general terms and evinces his own intention of persevering in his love, and bearing with all the difficulties to which he might be exposed in the accomplishment of his desires. They consist mostly of from five to ten or a dozen couplets."

प्रसिद्ध इतिहासकार बनर्जी भी विलर्ड साहब के मत का ही मान्यता प्रगट करते हुए लिखते हैं—"गजल शब्द अरबी भाषा का है। "गजल" प्रणय विषयक कविता है। जिन रागों में टप्पे होते हैं, बहुधा उन्हीं रागों में ये गीत भी होते हैं। हमारे देश में फारसी तथा उर्दू इन भाषाओं में गजलें होती हैं। मुसलमान लोगों के, ये खास स्वदेशी गीत माने जाते हैं, तथा यह समझा जाता है कि इन्हें वे अपने देश से भारत में लाए हैं। गजल गीतों में अनेक चरण होते हैं। रेखता, रुबाई इत्यादि अन्य गीत फारसी और उर्दू भाषा में होते हैं, उन्हें भी बहुत कुछ इसी के समान समझना चाहिए। परन्तु उनमें शब्दार्थ भिन्न होता है। ये जो मुख्य गीत कहे गए हैं, इनके अतिरिक्त सोहला, कजरी, लावनी, चैती जिगर इत्यादि भारत के क्षुद्र गीत हैं। परन्तु इनका वर्णन नहीं मिलता।"

जहाँगीर के समय गजल, रेखता मुख्य रूप से आम जनता ने गाए—

जहाँगीर के समय में गजल, रेख़ता मुख्य रूप से आम जनता में गाये जाते थे। इस युग में इन चीजों का अधिक निर्माण हुआ। हिन्दू-मुसलिम दोनों वर्ग के कलाकार ही गजलों और रेखताओं को गाते थे। कुछ नारियाँ भी गजलों को गाती थीं, विशेष रूप से मुसलिम नारियाँ। पर गजलों के साथ-साथ भजनों का प्रचलन भी खूब रहा। हिन्दू स्त्रियाँ ही भजन नहीं गाती थीं, बल्कि इस युग में मुसलिम स्त्रियाँ भी भजन बड़े चाव

से गाती थीं। जहाँगीर को भजन अधिक प्रिय थे, वह उनको साधू सन्तों से सुनता था, और उनका मतलब भी समझने का प्रयास करता था। जहाँगीर ने कभी हिन्दू मुसलिम कलाकारों में भेद-भाव का वर्ताव नहीं किया। उसने अपने दरबार में सभी धर्मावलम्बी कलाकारों का समय-समय पर आदर किया। उसका विश्वास था कि कला के पवित्र क्षेत्र में किसी भी जाति का कोई वर्गीकरण नहीं चल सकता, और इसी दृष्टिकोण से उसने अपने शाशन में कार्य किया। संगीत प्रतियोगिता भी बराबर चला करती थी।

इस काल में जो संगीत निर्माण हुआ उसमें भारतीयता का विशेष पुट रहा—

जहाँगीर के समय में इस बात का प्रयत्न किया गया कि भारतीय संगीत की धारा भारतीय संस्कृति के विपरीत न चली जाए अतएव इस काल में जो संगीत निर्माण हुआ उसकी पृष्ठ में भारतीयता का विशेष पुट रहा। जहाँगीर भी ऐसी गजलों को पसन्द करता था जिनमें भारतीय वातावरण का सजीव चित्रण किया जाता था, जिनमें भारतीय प्रकृति का अद्वितीय सौन्दर्य की रमणीय झांकी कराई जाती थी। जहाँगीर ने भी अकबर के समान ही भारतीयता तथा मानवता की ओर विशेष ध्यान दिया। इसीलिए उसने संगीत की नैतिकता को नहीं गिरने दिया। जहाँगीर भारतीय संगीत का ऐसा रूप भी चाहता था कि जिसमें अरबी संगीत को लेकर भारतीय संगीत के श्रेष्ठ सिद्धान्तों में समन्वित कर दिया जाए, और फिर जो नया रूप निर्मित हो, उसमें भारतीय सौन्दर्य सर्वोपरि हो। वह समन्वित पद्धति को चाहता अवश्य था किन्तु भारतीय सौन्दर्य का मजार बनाकर नहीं, बल्कि उसको प्रधानता देते हुए। अतएव इस के काल में जो समन्वित संगीत निर्मित हुआ उसमें भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धान्तों की हत्या नहीं की गई।

संगीत ने हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों को मिलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया—

यह काल भी अकबर के काल के समान ही संगीत के दृष्टिकोण से बड़ा ही सुन्दर रहा। मुसलमान और हिन्दू दोनों वर्गों को संगीत ने एक स्तर पर मिला दिया था। दरअसल संगीत ने दोनों को मिलाने में बड़ा कार्य किया, साम्प्रदायिक भावनाओं को विनष्ट करने में इस काल के संगीत ने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। लोगों के संकीर्ण दिमागों को प्रशस्त बनाया। कला के द्वारा लोगों के जीवन सुन्दर और सबल बन चुके थे। वे एक दूसरे की आत्मा को पहिचान ने का प्रयत्न करते थे। समाज के अन्दर मानव प्रेम था। इसी प्रेम के पावन वातावरण में इन्सान ने एक नवीन करवट ली, ऐसी करवट कि जिससे मानवों का जीवन स्तर कला के शिखर पर बहुत ऊँचा चढ़ गया।

शाहजहाँ (१६२८–१६५८ ई०)

शाहजहाँ एक श्रेष्ठ गायक था—

जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसका बेटा शाहजहाँ सन् १६२८ ई० में गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ भी जहाँगीर के समान ही संगीत का बड़ा प्रेमी था। वह संगीतज्ञों का बड़ा आदर करता था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहते थे, जैसे दैरंगखाँ, लालखाँ, रामदास महाट्टेर तथा जगन्नाथ आदि। शाहजहाँ स्वयं भी एक अच्छा गायक था। उसका स्वर बड़ा मधुर एवं हृदयग्राही था। वह गीत उर्दू में लिखा करता था। भाषा बड़ी सरल होती। कहते हैं कि शाहजहाँ सितार बजाने में भी प्रवीण था। वह गायन और वादन दोनों में ही दक्ष था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार कैप्टन ओस्तवाल ने अपने ग्रन्थ "The Study of Indian music" में पृष्ठ १०४ पर लिखा है—"शाहज़हाँ का गाना बड़ा ही जान डालने वाला होता था, उसके गाने में बड़ी शक्ति थी। जो भी सुनता वही उसके शानदार व्यक्तित्व का मुरीद बन जाता। दरअसल उसका संगीतमय व्यक्तित्व था। वह सितार भी सुन्दर बजाता था। उसके काल में संगीत का जितना विकास हुआ, उतना जहाँगीर काल में नहीं हो पाया था। वास्तव में शाहजहाँ की सौन्दर्यमयी दृष्टि थी, और उस सौन्दर्यमयी दृष्टि में संगीत की मधुरता पूर्ण रूप से परिलक्षित हो रही थी। वह संगीत सम्मेलन भी किया करता था, और समय-समय पर संगीत प्रतियोगितायें भी वह करता था। जिसमें वह पुरस्कार भी भेंट किया करता था। शाहजहाँ को जहाँ उर्दू शायरी से प्रेम था, वहाँ इसके साथ-साथ उसे हिन्दी कविता से भी प्रेम रहा। वह हिन्दी के गीतों, भजनों ध्रुपद शैली में गाये हुए गीतों को उसी चाव से सुनता था कि जिस चाव से वह ख्याल तथा कव्वाली सुनता था। दरबारी संगीत समारोह में इस बात का पूर्ण रूप से ध्यान रक्खा जाता था कि हिन्दू संगीतज्ञों की उपेक्षा न होने पाए। उनको उसी सम्मान के साथ शाही समारोहों में बुलाया जाता था, जिसमें कि मुसलमान कलाकारों को। उसने अपने दृष्टिकोण में कभी किसी भी प्रकार के भेद-भाव की नीति का उपयोग नहीं किया।"

शाहजहाँ संगीतज्ञों का बड़ा आदर करता था—

शाहजहाँ गायकों का इतना आदर करता था कि उसने एक बार दरबारी-गायक दैरंगखाँ और लालखाँ को चाँदी से तुलवाकर प्रत्येक को ४५००) से पुरस्कृत किया गया था। "आइने अकबरी" में लिखा है कि जगन्नाथ को सम्राट ने कविराज की उपाधि दी थी। दैरंगखाँ और लालखाँ को "गुण समुद्र" की उपाधि मिली थी। लालखाँ तानसेन के पुत्र विलासखाँ के जामाता थे। ऐसा कहा जाता है। इससे आप

शाहजहाँ की कला-प्रियता की कल्पना कर सकते हैं। शाहजहाँ अपनी पत्नी मुमताज-महल से बड़ा प्यार करता था। उसने अनेक गीत मुमताजमहल पर ही लिखे थे, जिनमें उसके अद्वितीय सौन्दर्य की प्रशंसा की जाती थी, जिसमें उसको हुश्न की देवी के नाम से सम्बोधित किया गया था। जब बादशाह का गीत लिखने का मूड न बनता था, तो वह मुमताजमहल को अपने सामने बिठला लेता था, उसको देखते हुए वह गीत लिख दिया करता था, और वे उसके गीत बड़े पुरअसर होते थे। उनकी प्रेरणात्मक शक्ति अपरिमित रहती थीं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार गमाल अजयी ने अपने ग्रन्थ "ताहिश सौफानी" में इस अभिमत की पुष्टि की है। वास्तव में शाहजहाँ ने भारतीय-संगीत के विकास के लिए महान प्रयत्न किए। वह चाहता था कि भारतीय संगीत जन-जीवन की प्राणदायक शक्ति बन जाए।

इस युग में ध्रुपद शैली का खूब प्रचार रहा—

शाहजहाँ के काल में भारतीय संगीत का विकास द्रुतगति से होता रहा। ध्रुपद शैली का प्रचार खूब रहा। गुजरात और महाराष्ट्र के नृत्यों का विकास होता रहा। वे नृत्य पूर्ण रूप से भारतीय पृष्ठभूमि को लिए हुए थे। उनमें मुसलिम संस्कृति का नामोनिशान न था। कुछ संगीतज्ञ विद्वान अब भी ऐसे थे जोकि अपनी पवित्र संस्कृति की गौरवमयी परम्परा को छोड़ना नहीं चाहते थे। अब तक उन्होंने अपना प्रयास बराबर जारी रक्खा। ऐसे प्रकार के विद्वानों ने भारतीय संगीत की धार्मिकता तथा उसकी पवित्रता एवं दिव्यता को नष्ट न होने दिया। शाहजहाँ को भी इस प्रकार के धार्मिक संगीत से बड़ा प्रेम था। वह ऐसे संगीतज्ञों को अपने दरबार में बुलाकर उनका सम्मान करता था और उनके गीत सुनता था।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार राजा सुरेन्द्र मोहन टैगौर ने "Universal History of Music" नामक ग्रन्थ में शाहजहाँ के काल का वर्णन इस प्रकार किया है–During shah Jehans reign (1628–58) the following musicians lived, Jagannath, Dirang Khan, and Lalkhan (Gurhsamudra). Lalkhan was son in law to Bilas son of Tansen. Jagannath and Dirang Khan were weighed in silver and received each Rs. 4500."

शाहजहाँ के काल में संगीत की शिल्पज्ञता का भी विकास हुआ—

शाहजहाँ के काल में संगीत की शिल्पज्ञता का भी विकास हुआ। मुसलिम कलाकारों ने परसियन और अरबी ध्वनों को मिश्रण करके उसको भारतीय रूप में प्रस्तुत किया। इस रूप को हिन्दू कलाकारों ने भी खूब दिल खोलकर अपनाया

हिन्दू विद्वानों ने रूढ़िवाद को नहीं छोड़ा। वे संगीत की पवित्रता एवं धार्मिकता का विशेष ध्यान रखते थे। इस काल के अन्दर संगीत की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में ही रही। उन्होंने धर्म और संगीत को पूर्ण रूप से समन्वित कर दिया था। संगीत की प्राचीन उज्ज्वलता को स्थिर करने में इस काल में बराबर प्रयत्न जारी रहा।

कैप्टन डे ने अपनी पुस्तक "The music and musical Instruments of Southern India" में लिखा है—"The higher branches of the musical profession were formerly confined to either Brahmins or to men of very high caste. Music being of Divine origin was regarded as sacred, and it was considered impious for any but men of the sacred caste to wish to acquire any knowledge of its principles. It was and still is called the fifth Veda. Hence the ancient Brahmins of the country would have excommunicated any of their number who would have so far presumed as to betray the sacred writings to any but the elect, whose mouths only were esteemed sufficiently holy to utter words so sacred. Indeed it was the knowledge of which they were possessed that was the chief cause of the reverence and adoration paid to the Brahamins of old, and which gave them the power and influence they prized so much. It was thus that the ancient musicians sang their own compositions. In later years music became a distinct trade, especially under Mussalman rulers, and passed into the hands of the lower orders and the unlearned, and to this cause operating through a long succession of years the differences between the Hindustani and Karnatik systems must be in a great measure attributed."

अर्थात्—संगीत का उच्चवर्गीय सम्बन्ध ब्राह्मणों से था, उच्च जाति के लोगों से, क्योंकि संगीत को दिव्य माना गया है, अतएव इसका आधारभूत तथ्य पवित्रता थी। संगीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानव को पवित्र और संयमी होना नितान्त आवश्यक था। ऐसे पवित्र ज्ञान के संकलन को पाँचवां वेद कहा गया, और आज भी संगीत शास्त्र को पाँचवां वेद माना जाता है। प्राचीन ब्राह्मणों ने इसीलिए संगीत ज्ञान को उच्चवर्ग में सीमित रक्खा, जो पवित्रता तथा दिव्यता के स्रोत माने जाते थे। संगीतिक मन्त्रों का उच्चारण यही ब्राह्मण करते थे। यही कारण था कि

प्राचीन काल में ब्राह्मणों के प्रति सर्वसाधारण की इतनी श्रद्धा और प्रेम था। वे उनको उच्च दृष्टिकोण से देखते थे। कलाकारों में संगीत ने पेशा का रूप ग्रहण कर लिया। विशेष रूप से मुसलिम युग में संगीत कला के रूप को छोड़कर पेशे के क्षेत्र में जा चुका था। अतएव संगीत उच्चवर्ग से निकलकर निम्न जातियों में प्रचलित हो चुका था। मुसलिम काल में संगीत सीखने के लिए किसी जाति विशेष पर प्रतिबन्ध नहीं था। अतएव अशिक्षित वर्ग के क्षेत्र में संगीत जा पड़ा, और इसी कारण ने उत्तर भारतीय संगीत तथा कर्नाटकी संगीत की पद्धतियों में भेदों को और भी अधिक स्पष्ट किया।"

भारतीय संगीत का फैलाव इस युग में उच्चवर्ग से हटकर निम्न और मध्यम वर्गों में पहुँच चुका था—

शाहजहाँ के काल में संगीत पर अशिक्षित वर्ग का अधिक आधिपत्य हो गया था। इल काल में ऐसे संगीतज्ञ अधिक थे जिनका शास्त्र का ज्ञान शून्य था, जिनकी शिक्षा कोई विशेष नहीं थी। अनेक संगीतज्ञ ऐसे भी थे जिनको लिखना-पढ़ना कुछ भी नहीं आता था, पर फिर भी वे संगीत के महान आचार्य समझे जाते थे। अधिकतर ऐसे अशिक्षित संगीतज्ञ मुसलमानों में ही होते थे। शाहजहाँ के काल में ब्राह्मणों का प्रभुत्व संगीत पर नाममात्र को रह गया था, वैसे तो मुसलिम काल के शुरू से ही यह हाल था, परन्तु शाहजहाँ के काल में ब्राह्मण अधिक कमजोर पड़ गए थे। प्रसिद्ध अरबी विद्वान सुलेमान जिवेरा ने अपनी पुस्तक "हिन्द का राजनैतिक इतिहास" में लिखा है—"जब हम शाहजहाँ के काल पर दृष्टि डालते हैं तो हमें पता चलता है कि भारतीय संगीत का फैलाव तो इस युग में अधिक हुआ, लेकिन फैलाव क्षेत्र उच्चवर्ग से हट कर निम्न और मध्यम वर्गों में पहुँच चुका था, जो कि पूर्ण रूप से अशिक्षित थे। अतएव उनसे संगीत की पवित्रता की रक्षा न हो सकी, क्योंकि वे कला की पवित्रता का मूल्याँकन न कर सके। उनका राग रागनियों का ज्ञान भी बड़ा शिथिल था। वे लोग तो बस गले की मधुरता पर विशेष रूप से अधिक ध्यान देते थे। उन्होंने संगीत की शुद्धता की उपेक्षा करदी थी, जिसको कि प्राचीन काल से ब्राह्मण लोग सुरक्षित रखते आरहे थे। भारतीय संगीत का कलात्मक रूप धूमिल पड़ता जा रहा था, क्योंकि इस काल में संगीत को पूर्ण रूप से पेशे के रूप में उपलब्ध कर लिया गया था। एक वर्ग ऐसा बन गया था जोकि सिर्फ संगीत के द्वारा ही अपना पेट भरता था, और उस वर्ग को समाज उपेक्षणीय दृष्टि से देखता था।"

इस काल में संगीत गणिकाओं के हाथ में चला गया था—

वास्तव में शाहजहाँ के काल में नृत्य और गायन गणिकाओं के हाथ में पूर्ण रूप से चला गया था। संगीत की निम्नता की नींव इस युग में पड़ गई थी। इस काल में संगीतज्ञ की प्रतिष्ठा उतनी उच्च एवं देदीप्यमान न रही थी जितनी कि प्राचीन काल के युगों में थी, बल्कि अकबर बादशाह के काल से भी इस काल में संगीतज्ञों का समाज में नैतिक स्तर गिर चुका था, हाँलाकि उसकी नींव अकबर-काल में ही पड़ चुकी थी।

चरित्र और कला का घनिष्ट सम्बन्ध जो प्राचीन काल से चला आ रहा था, वह विश्रृंखल हो चुका था—

इस काल के संगीतज्ञों का चरित्रक पतन हो चुका था। चरित्र और कला का घनिष्ट सम्बन्ध जोकि प्राचीन काल से चला आ रहा था, वह विश्रृंखल हो चुका था, इस काल के लोगों का विश्वास था कि कला का चरित्र से क्या रिश्ता ? वे कला को चरित्र से पृथक समझते थे। वे समझते थे कि कलाकार बिना चरित्र की उज्ज्वलता के भी कला के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। इसलिए इस युग के कलाकारों का जीवन प्रायः अनैतिक हुआ करता था। वे संयमी नहीं होते थे। साधना का महत्व भी घटता जा रहा था। कलाकार कला की साधना से हट कर विलासी बनते जा रहे थे। कलाकारों का जीवन दार्शनिक पृष्ठभूमि से हटकर विलासिता के खन्डहर में गिर चुका था। शराब का प्रचलन भी कलाकारों के बीच में आवश्यकता से अधिक होगया था। अधिकतर मुसलिम कलाकार शराबी हुआ करते थे। वे शराब के नशे में गाते थे, यहाँ तक कि नर्त्तकियाँ भी शराब पीने लग गई थीं। दरबार में जो नाच-गाने का प्रदर्शन किया करते थे, वे प्रायः शराब पीकर ही करते थे। इस तथ्य की पुष्टि विख्यात इतिहासकार कीसे आइम ने अपनी पुस्तक "The Indian music & its flow" में की है।

अनेक धार्मिक वर्ग बन गए थे—

इसके विपरीत कुछ हिन्दू कलाकार ऐसे भी थे जो भारतीय संगीत के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे थे, पर वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए। मन्दिरों में जो संगीत चलता था, वह भी अपनी पवित्रता अक्षुण्ण न रख सका, क्यों कि मन्दिरों के पुजारी भोग विलास में लिप्त रहने लगे थे। वे छोटे-छोटे प्रलोभनों में आजाते थे। वे अपने चरित्र की उज्ज्वलता को चन्द चाँदी के टुकड़ों पर बेच दिया करते थे, इसलिए मन्दिरों में अशुद्ध संगीत का प्रचलन हो गया था। मन्दिरों में नृत्य और गायन बराबर चला करते थे। भजनों का स्थान गजलों ने लेलिया था।

लोग भगवान के सामने भी गजल सुनना पसन्द करने लग गए थे। गजलों में भगवान की प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन हुआ करता था।

इस काल में अनेक धार्मिक वर्ग बन गए थे। जिनमें भारतीय संगीत का पवित्र रूप नहीं मिलता था। इन धार्मिक वर्गों में एक दूसरे वर्ग को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति पैदा हो चुकी थी। शाहजहाँ ने कभी भारतीय संगीत की पवित्रता पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि से अवगत नहीं था। अरबी संगीत की पृष्ठभूमि मानव जीवन की पवित्रता पर नहीं थी। अरबी संगीत का एक मात्र उद्देश्य मानव की थकावट को दूर करना था, उसको मनोरंजन प्रदान करना था। शाहजहाँ संगीत के इसी उद्देश्य को समझता था, इसीलिए उसने भारतीय संगीत को भी इसी उद्देश्य के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया।

इस काल में जहाँ भारतीय संगीत के शिल्पक सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई वहां उसके आत्मिक सौन्दर्य का ह्रास हुआ—

इस काल में जहाँ भारतीय संगीत के शिल्पक सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई, वहाँ उसके आत्मिक सौन्दर्य का ह्रास हुआ। लेकिन एक अंग्रेज विद्वान ने शाहजहाँ के काल को संगीत के दृष्टि से सुन्दर और श्रेष्ठ माना है—सुप्रसिद्ध विद्वान ओलीवर याइजा ने अपनी "The Diary of the Universal Music" में लिखा है—"इस काल में भारतीय संगीत को नवीन साँचे में ढाला गया, उसमें नवीन-नवीन रागों का निर्माण किया गया। अनेक गतियाँ निकाली गईं, अनेक ऐसी ध्वनों का निर्माण किया गया जिनमें अरबी ईरानी, टियूनों का विशेष पुट दिया गया था, इससे भारतीय संगीत का सौन्दर्य अद्वितीय हो गया था, उसमें एक मन मोहक चमक पैदा हो गई थी। इस लिए हम कह सकते हैं कि यह काल संगीत के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ और सुन्दर था।" पर यह तो निश्चित ही है कि इस काल में भारतीय संगीत की आत्मिक पृष्ठ का विकास किंचितमात्र भी न हुआ।

शाहजहाँ पर मार्मिक गीतों का प्रभाव बहुत गहरा पड़ता था—

प्रसिद्ध यात्री मिनक्सी लिखता है—"शाहजहाँ संगीतमय स्वांग को अधिक पसन्द करता था। एक बार बादशाह को खबर लगी कि कुछ लोग अजीव स्वांग करने वाले दरबार में आए हैं, और वे अपना खेल बादशाह को दिखाना चाहते हैं। शाहजहाँ को ऐसी बातें बहुत प्रिय थी, इसलिए उन्हें हाजिर होने की आज्ञा दी गई। इन खेल दिखाने वालों ने रियासत गुजरात की बद इन्तजामी का खेल दिखाया। वहाँ के अत्याचारों को उन्होंने गीतों में रचकर गाया। उन गीतों को सुनकर बादशाह को बड़ा

विस्मय हुआ, और उनका उस पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने पूछा कि, "क्या संसार में कोई ऐसा भी अत्याचारी हो सकता है जो ऐसे भयंकर काम करे।" इस पर उन तमाम सौदागरों ने जो भेष बदले हुए थे जमीन को चूमा और कहने लगे—"जहाँपनाह से यह बात छिपी न रहे कि जो कुछ हमने खेल के तौर पर हुजूर का दिल बहलाने के लिए दिखाया है वह वास्तव में गुजरात की सच्ची घटना है, और वहाँ का अधिकारी ही इन अत्याचारों का कर्ता है। इससे पहले हुजूर के सम्मुख हमारी फरियाद नहीं पहुँच सकी। इसलिए हमने इस तरह अपना दुःख हुजूर तक पहुँचाने का उपाय किया।" इसका परिणाम यह हुआ कि उस दुष्ट अत्याचारी को उचित दण्ड दिया गया।" इस घटना से यह कल्पना आसानी से लगायी जा सकती है कि शाहजहाँ संगीत से कितना शीघ्र प्रवाहित हो जाया करता था, और सर्वसाधारण जनता इस बात को अच्छी तरह से जानती थी कि बादशाह के सामने यदि अपने दुःखों की कहानी को संगीत के रूप में प्रस्तुत की जाये तो उसका प्रभाव उस पर अधिक पड़ेगा। अतएव लोग शाहजहाँ के सामने अपनी राम कहानी संगीत के माध्यम से ही पहुँचाया करते थे, और इस प्रकार उनके दुःखों का अन्त हो जाया करता था। संगीत के द्वारा जो बात बादशाह के सामने प्रस्तुत की जाती थी, उसको वह बड़ी आसानी से समझ जाया करता था।

नर्त्तक और नर्त्तकाएँ बड़ी खुशहाल होती थीं—

प्रसिद्ध यात्री टामसरो ने लिखा है—"बड़े-बड़े नगरों में, जैसे दिल्ली, आगरा, लखनऊ, बनारस, लाहौर आदि में नाचने वालियाँ विशाल गृहों में रहा करती थीं। इनके मकान कई मंजिल के हुआ करते थे। ये नाचनेवालियाँ, नाच-गाकर आम लोगों के दिलों को प्रफुल्लित किया करती थीं। इनके गृहों पर संध्या के ६ बजे से भीड़ होना शुरू हो जाया करती थी। और रात के दो बजे तक खूब चहल-पहल रहा करती थी। उनके गृहों पर सरकारी पदाधिकारी तथा उच्च वर्ग के लोग भी जाया करते थे। यह औरतें अपना पेट नाच गा कर ही भरती थीं। यह नाचनेवालियाँ बड़ी मालदार भी हुआ करती थीं। पेशेदार औरतों के अतिरिक्त सामान्य लोग भी गान-विद्या में निपुण होते थे। शाहजहाँ के काल में पूर्वी भारत में "अचल" नाम से एक वृहत मेला लगता था। यह मेला पूर्ण संगीतमय होता था। इसमें दूर दूर के संगीतज्ञ एकत्रित हुआ करते थे, नाटक भी खेले जाते थे। आम जनता इस मेले में खूब आनन्द लिया करती थी। तीन चार दिनों तक यह मेला चला करता था।"

इस काल में कई एक हिन्दी के कवि भी हुए जिन्होंने, "गीति काव्य" की अभिवृद्धि की—

शाहजहाँ के काल में कई एक हिन्दी के कवि भी हुए, जिन्होंने अपने सुन्दर काव्य से संगीत के "गीति काव्य" को सजाया। कवि सुन्दर ने ब्रज भाषा में "सुन्दर शृंगार" लिखा। यह काव्य पूर्ण संगीतमय था। सुन्दर के गीत खूब गाये जाते थे। प्रसिद्ध कवि केशव, बिहारी आदि भी इसी काल में हुए, इन सबने अपनी कविता से संगीत साहित्य को उत्कृष्ट बनाया। हाँलाकि इन कवियों को राजाश्रय प्राप्त नहीं था, किन्तु फिर भी इन्होंने बड़ी लग्न से संगीत पृष्ठ को पूर्ण काव्यात्मक बनाया। केशव के "कवि प्रिया" "रसिक प्रिया" अधिक प्रसिद्ध हैं। फारसी भाषा दरबारी भाषा थी, किन्तु फिर भी हिन्दी का विकास बराबर होता रहा। फारसी के सम्पर्क में आकर हिन्दी का रूप और भी अधिक निखर गया।

शाहजहाँ की दिनचर्या—

सौभाग्य की बात है कि फारसी के सामयिक इतिहासों में मुगल बादशाहों की दिनचर्या का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उनसे अच्छी तरह मालूम होता है कि वे लोग अपना समय किस तरह बिताते थे। उदाहरण के लिए शाहजहाँ की दिनचर्या इस प्रकार थी :—

४ बजे	प्रातःकाल—	सोकर उठना, नमाज और कुरान शरीफ पढ़ना।
६–४५	,,	झरोखे में बैठना, हाथियों की लड़ाई देखना, रिसाले का मुआइना करना।
७–४०	,,	दीवाने आम में दरबार।
६–४०	सुबह	दीवाने खास में दरवार।
११–३०	,,	शाहबुर्ज में गुप्त परामर्श।
१२	दोपहर	हरम में भोजन, शयन और दीन-दुखी स्त्रियों को दान।
४–३०	शाम	दीवाने आम में बैठना, शाम को नमाज।
६–३०	,,	दीवाने खास में शाम की बैठक।
८	रात	शाहबुर्ज में गुप्त परामर्श।
८–३०	,,	हरम में गाना बजाना।
१०	,,	किताबें सुनना।
१०–३०	,,	से ४ बजे सुबह तक सोना।

दीवाने खास में शाम की बैठक—

इस समय दीवानखाना तरह-तरह के झाड़-फानूसों के प्रकाश से जगमगा उठता था। यहाँ बादशाह अपने मुसाहिबों के साथ कोई दो घन्टे रहते थे। पहले राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी काम होता था, फिर मन बहलाव की ठहरती थी। गाना-बजाना शुरू होजाता था। स्वयं बादशाह भी कभी-कभी गाते बजाते थे। फारसी इतिहास लेखकों का कथन है कि शाहजहाँ बड़े ही प्रवीण गायक थे। उनका मधुर और मनोहर गान जादू का असर रखता था। संसार त्यागी और पवित्र स्वभाव के बड़े-बड़े योगी और सूफी तक उसे सुनकर अपने को भूल जाते थे।

अन्तःपुर में गाना बजाना—

साढ़े आठ बजे वे अन्तःपुर लौट जाते थे, और कोई दो तीन घन्टे स्त्रियों का गाना सुनते थे। तब वे विस्तर पर जाते और पड़े-पड़े किताबें सुनते थे। परदे के दूसरी तरफ पढ़ने वाले बैठ कर यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें, पैगम्बरों या साधु संतों के चरित अथवा पुराने बादशाहों के इतिहास, संगीत सम्बन्धी पुस्तकें जो-जोर से पढ़ते थे। इनमें से तैमूर का जीवन-चरित एवं बावर का आत्म-चरित शाहजहाँ को बहुत पसन्द था। दस बजे के करीब, फिर वे एक सुन्दर गाना सुनते-सुनते सो जाते थे और ६ घन्टे तक बराबर सोते रहते थे। उनको बिना गाना सुने हुए नींद नहीं आती थी। साढ़े नौ बजे के लगभग जो गाना शुरू होता था, वह खास तौर से बादशाह को सुलाने के लिए ही गाया जाता था। उसकी गाने वाली अपनी कला में बड़ी प्रवीण थी। उसको शाहजहाँ बड़ा स्नेह रखते थे। मुमताज महल भी गाने सुनने में बादशाह का साथ देती थी। कभी-कभी मुमताज भी बादशाह को प्रसन्न करने के लिए गाती थी। मुमताज का गाना बादशाह को विशेष प्रिय था। बादशाह ने एक बार मुमताज से कहा था कि "तुम कोई मुझसे सुन्दर पुरस्कार माँग लो, जो कुछ तुम माँगोगी, वही मैं तुमको दूँगा।" मुमताज हँसकर कहती—"मुझे कुछ नहीं चाहिए, बस आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिए सब कुछ हैं" लेकिन बादशाह ने अधिक जोर दिया कि तुमको मुझसे पुरस्कार माँगना ही पड़ेगा, तो फिर मुमताज ने माँगा—"अच्छा आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं, तो फिर मेरे "जीवन-संगीत" को मेरे मरने के बाद अमर कर देना, ताकि दुनिया जान सके कि जीवन में संगीत की यथार्थता कितनी है।" शाहजहाँ ने वही किया, मुमताज महल की इच्छा की पूर्ति "ताजमहल" निर्मित करके की—वास्तव में आगरे का ताजमहल मुमताज महल के और शाहजहाँ के संगीतमय जीवन का अमर स्मारक है। ताज का संगीतिक सौन्दर्य बड़ा ही सजीव है। सोने से पूर्व कभी-कभी गाने के साथ-साथ नृत्य का भी प्रोग्राम होता था।

कत्थक नृत्य

इस काल में कत्थक नृत्य का जन्म हो चुका था। कत्थक नृत्य की पृष्ठभूमि "अद्वैतवाद" पर रक्खी हुई है। कुछ विद्वानों का कथन है कि यह नृत्य प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, मुगल काल की देन नहीं है, हाँ मुगल काल में इस नृत्य में कुछ परिष्कार हुआ। परन्तु वास्तव में इसका जन्म गुप्त काल में ही हो चुका था। "भरतनाट्यम" शिव धर्म पर आधारित है, जबकि कत्थक नृत्य अद्वैतवाद के "SOHAM" सोहम की एकरूपता की मधुरिमा पर। कत्थक नृत्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान नलिन कुमार गाँगोली का कथन है :—"From History we find that from 2nd to 12th century A. D., there was a great influence of the Vaishnava doctrine in Northern India and during this period there existed a sort of dance named as "Krishna dance" of which different poses are to be seen in paintings and temple walls. In fact, the Moghuls began to invade this country at this time (12th Century) and there after founded Moghul Empire. Next we find the 'Krishna dance' taking place in the Moghul Darbar. Just as our classical song Dhrupad was transformed into "Kheyal" on entrance into the Moghul court and our "Mridang" became "Tabla," so also this dance changed its outward vestment and a few features and took more ornamental form. As in "Kheyal' no change occurred of the "Sargam" (musical notes) of our classical song, so also no basic change was introduced in this dance, many a decoration was made, only to develop it, and not for the sake of change. But inspite of efforts to quit the different emotions made their appear ance from time to time as envisaged in "Kaliya Daman" through Krishna Tandab, holding "Giri goverdhan" the breaking of Krishna's promise in "Kurukshetra" etc. There are numerous such other examples. Do not all these prove conclusively that this dance was decorated and doveloped during the Moghul regime, and at least some what stripped of original structure ? This dance was definitely originated long before the Moghul period."

अर्थात् मिस्टर गंगोलीजी का कहना है कि "कत्थक नृत्य" मुगल युग के प्रारम्भ होने के बहुत पूर्व ही भारत में "कृष्ण नृत्य" के रूप में विद्यमान था, और यह नृत्य

मुगल काल में पहुँच कर वैसे ही परिवर्तित हो गया, जैसे कि हमारा शास्त्रीय गान ध्रुपद ख्याल में तथा मृदंग वाद्य "तबला" में परिवर्तित हो गए थे। यह परिवर्तन बाहरी अंगों पर था, उसके मौलिक रूप पर इसका प्रभाव नहीं हो पाया था। जो कुछ भी इस नृत्य के सम्बन्ध में विकास हुआ, वह इस दृष्टिकोण से हुआ ताकि नृत्य का विकसित रूप आकर्षक बन जाए, न कि उसके बुनियादी पृष्ठभूमि को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए। वास्तव में कत्थक नृत्य मुगल काल की देन नहीं है।"

खैर जो कुछ भी हो इस युग में कत्थक नृत्य का खूब प्रचार था। सर्व-साधारण लोग भी इस नृत्य में आनन्द लिया करते थे।

औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०)

औरंगजेब संगीत का कट्टर शत्रु था—

सन् १६५८ ई० में औरंगजेब गद्दी पर बैठा। उसने अबुल मुजफ्फर मुईनुद्दीन मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर बादशाह गाजी की उपाधि धारण की। गायकों ने बड़े सुन्दर ढंग से गान करके बादशाह का यशोगान किया। औरंगजेब को संगीत से सख्त घृणा थी। मुगल काल में यही एक ऐसा बादशाह था जोकि संगीत से नफरत करता था। इसके सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरंजक कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार बतलाई जाती है। एक बार सब संगीतज्ञों ने मिलकर औरंगजेब से तंग आकर संगीत का जनाजा निकाला, जब यह जनाजा महल के पास से होकर गुजरा तो बादशाह ने पूछा कि यह क्या शोरगुल है, तो उसे बताया गया कि संगीत का जनाजा निकल रहा है, अब ये कलाकार संगीत को दफनाने जा रहे हैं। उसीके शौक में ये रो रहे हैं, तब बादशाह ने तत्काल ही उत्तर दिया कि इनसे कह दो कि संगीत को इतना गहरा दफनाया जाए कि फिर कभी यह कब्र में से निकल कर अपना सिर न उठा सके। इससे आप समझ सकते हैं कि वह कितना संगीत का कट्टर विरोधी था। वास्तव में वह संगीत को मनुष्य के चरित्र के बिगाड़ने का एकमात्र साधन समझता था। इसलिए उसने अपने समस्त दरबारी गायकों को बरखास्त कर दिया। दरअसल इस काल में जो संगीत का रूप था, वह मानव को पतन की ओर उन्मुख करने वाला था। शाहजहाँ के काल में ही, बल्कि उससे पूर्व ही संगीत अपनी पवित्रता खो चुका था।

औरंगजेब संगीत को चरित्र के उत्थान का सम्बल नहीं समझता था—

औरंगजेब के सामने भारतीय संगीत की उत्कृष्टता नहीं थी, उसके सामने तो अरबी संगीत का ज्ञान था। उसी के बल पर उसने संगीत को घृणास्पद समझा। यदि उसको भारतीय संगीत की पवित्रता एवं उत्कृष्टता का ज्ञान कराया जाता तो

शायद उसके विचार अवश्य बदल जाते। किन्तु ऐसा न हो सका। हिन्दू कलाकारों को तो कभी मौका ही नहीं मिलता था कि वे अपनी कला बादशाह के सामने प्रदर्शित कर सके, और फिर औरंगजेब को कौन समझा सकता था, जिसने अपने बाप शाहजहाँ तक को कैद में डाल रक्खा था। वह पक्का मुसलमान था। श्रीभातखन्डेजी ने अपनी पुस्तक "A Short Historical Survey of the music of upper India" में इसी अभिमत की पुष्टि करते हुए लिखा है—"'"मुसलमान पैगम्बरों के आदर्श पर औरंगजेब ने संगीत और नृत्य को नष्ट करने की पूरी ताकत से कोशिश की। उसे संगीत से अत्यन्त घृणा थी, और इसीलिए उसने संगीत का आरोप शीघ्र ही शैतान पर कर दिया। औरंगजेब की इस कठोरता से संगीतज्ञ असन्तुष्ट होगए, और शान्ति रक्षा के लिए संगीत के अनुष्ठान बन्द कर दिए गए। सम्राट इस कला का अन्त करने पर तुले हुए थे और वैसे ही निर्मम आदेशों का प्रचार हुआ। संगीतज्ञों के जलसों पर नगर रक्षकों के आक्रमण हुए तथा उनके वाद्ययंत्र जला दिए गए। एक शुक्रवार को जब औरंगजेब मसजिद जा रहे थे, उन्होंने संगीतज्ञों की एक बड़ी भीड़ देखी, जो साथ में एक ठठरी लिए वायु को अपने क्रदन तथा आर्तनादों से विदीर्ण करती हुई चली जा रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों वे किसी बड़े राजा की शव-यात्रा में जा रहे हों। जब सम्राट ने इस प्रदर्शन का कारण जानना चाहा, तो उससे कहा गया कि यह संगीत की शव यात्रा है जिसकी हत्या उनकी आज्ञा से हुई और इसीलिए उसके सब पुत्र रो रहे हैं। औरंगजेब ने कहा—"मैं उनके कर्तव्य ज्ञान की प्रशंसा करता हूँ। उसे इतनी गहराई में गाड़ दो कि उसकी आवाज फिर कभी न सुनाई दे सके" संगीत का ऐसा कट्टर विरोधी औरंगजेब बादशाह था। वह संगीत को फूटी आँख भी देखना पसन्द नहीं करता था। उसका यह पूर्ण विश्वास था कि संगीत चरित्र का दिवाला निकालने में सबसे अधिक सहायक सम्बल है। संगीत के द्वारा मानव हैवान तक बन जाता है। संगीत मानव को पशु बना डालता है, उसको धर्म से पृथक कर देता है। मानव फिर कर्तव्यशील नहीं रहता। इसी विश्वास से पूर्ण प्रवाहित होकर उसने भारतीय संगीत के प्रति इतना कड़ा रुख अख्तियार कर लिया था।

इसी अभिमत की पुष्टि करते हुए कैप्टनडे साहब लिखते हैं:—

"The Emperor Aurangzib abolished the court musicians. Blochman, in his translation of the "Ain-i-Akbari" quotes a curious story from the historian Khan-Khana as to what occured when this order was given. The court musicians brought a bier in front of the window

where the Emperor used to show himself daily to the people, and wailed so loud as to attract Aurangzib's attention. He came to the window and asked what is meant. They replied that "melody" was dead, and that they were taking him to the graveyard. The Emperor replied, "very well, make the grave deep, so that neither Voice nor Echo may issue from it."

औरंगजेब का संगीत के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण क्यों ?

डाक्टर वर्नल टाइड ने अपनी "Universal Music Diary" में लिखा है :—"यदि औरंगजेब भारतीय संगीत के यथार्थ पहलू को समझ जाता तो वह कदापि भारतीय संगीत के प्रति इतना कड़ा कदम न उठा पाता। उसका यह दुर्भाग्य रहा कि उसने कभी भारतीय संगीत को समझने का प्रयास नहीं किया। संगीत का जो रूप देश में प्रचलित हो रहा था, उसीको उसने भारत का वास्तविक संगीत समझा, और वह प्रचलित संगीत पूर्णरूपेण अनैतिक था। मनुष्य को मनुष्यता से गिराने वाला था। उसमें पवित्रता नाम की कोई झलक नहीं थी, धार्मिकता नाम का कोई भी बन्धन उस पर नहीं था। औरंगजेब को कभी भारत के धार्मिक संगीत को सुनने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ। शाहजहाँ के काल में भी उसने धार्मिक संगीत नहीं सुना। अतएव उसके दिमाग में संगीत की बड़ी संकीर्ण तस्वीर अंकित थी। और वह इन्सानों को चरित्रहीन देखना पसन्द नहीं करता था। वह इन्सान को बहुत ऊपर उठा हुआ देखना चाहता था। यदि उसको यह मालूम हो जाता कि संगीत के माध्यम से इन्सान रुहानी ताकत को बुलन्द कर सकता है, संगीत के द्वारा इन्सान अपने जजबातों में रुहानी रोशनी भर सकता है। और संगीत के द्वारा मानव अन्धकार के गर्त से निकल कर प्रकाश के जगमगाते संसार में प्रविष्ट हो सकता हैं, तथा संगीत के द्वारा मानव सच्चा धर्मावलम्बी बन सकता है, तो वह फिर संगीत को बहुत पसन्द करता। पर अफसोस वह इस प्रशस्त स्थिति से अवगत न हो सका, इसलिए उसने संगीत के प्रति अपना संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया। इससे देश को बड़ा नुकसान पहुँचा। औरंगजेब ने अपने जीवन में यह महान भूल की, जिसको उसने जीवन के अन्तिम दिनों में समझा हो। बादशाह बड़ा सादा तबियत का व्यक्ति था। वह विलासिता से दूर रहने वाला था। चूँकि संगीत उस समय पूर्ण विलासमय हो रहा था इसलिए उसे इससे घृणा होगई। वह जीवन में कोई भी घिनोनी वस्तु प्रविष्ट करने का पक्षपाती नहीं था।"

इस काल में संगीत का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ "संगीत पारिजात" लिखा गया--

सम्राट ने संगीतज्ञों को यह समझाने की भी कोशिश की कि वे गलत रास्ते पर हैं, और जो सुधर गए उन्हें पेनशन देकर सम्मानित किया गया। बहुत से कलाकार संगीत को छोड़ चुके थे, संगीत के छोड़ने वाले व्यक्तियों को बादशाह बहुत अधिक पुरस्कार प्रदान करता। परन्तु फिर भी संगीत की प्रगति बिल्कुल ही अवरुद्ध नहीं होगई थी। इस काल में संगीत का सब से महत्वपूर्ण ग्रन्थ "संगीत पारिजात" लिखा गया, जिसके रचयिता थे पण्डित अहोबल। यह लगभग सन् १६५० ई० में लिखा गया। पण्डित अहोबल ने सर्वप्रथम वीणा के बनने वाले तार की लम्बाई पर भिन्न-भिन्न नाप से अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना की। अहोबल का शुद्ध थाट भी लोचन की भाँति आजकल प्रचलित काफी थाट के समान था। "पारिजात" का फारसी अनुवाद १७७४ ई० में श्री दीनानाथ द्वारा हुआ। इस ग्रन्थ का निश्चित काल निर्णय नहीं हो चुका है, पर कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि यह लगभग २३७ वर्ष पहले रचा गया। सर ओसले ने अपने "Oriental Collections" के प्रथम खण्ड में लिखा है—"संगीत पारिजात" का फारसी अनुवाद वासुदेव के पुत्र दीनानाथ के द्वारा सन् १७२४ में हुआ। पं० भावभट्ट ने भी जिन्होंने लगभग २०० वर्ष पूर्व समृद्धि पाई "संगीत पारिजात" से उद्धरण लिए हैं, अहोबल ने २९ विकृत स्वरों के नाम दिए हैं, पर रागों की व्याख्या में, उन्होंने कई स्वरों को त्याग दिया है। जैसा "पारिजात-रागाध्याय" के अन्त में दिए हुए निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है।

"पूर्व कोमल तीव्रैश्च तथा तीव्रतरेण च
अतितीव्रतमेनैव सर्वे रागा उदीरिताः।
रिंच पूर्वं तथा तीव्रं तीव्रतरं च गस्वरम्
तीव्रतमं तया गं च मं च तीव्रस्वरं तथा ॥
गंच तीव्रतमं धंच पूर्वाख्यं तीव्र संज्ञितम्।
तीव्रतरं निषादं च तीव्रतमं च निस्वरम् ॥
इत्येतांश्च दश त्यक्त्वा रागलक्षणभीरितम्।
द्वादशभिर्विकाराद्यैः शुद्धैश्च सप्तभिः स्वरैः ॥
एतैः कृत्वा प्रसिद्धा ये त एवात्र प्रकीर्तिता।"

(श्लोक ४९३-४९७)

इन श्लोकों से इस प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है कि पंडित अहोबल ने अपने राग लक्षणों में कुल कितने स्वरों का प्रयोग किया। ऐसा प्रतीत होता है कि पंडितजी ने कुल १६ स्वरों के द्वारा अपने रागों का वर्णन किया है, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं। इन श्लोकों का अर्थ निम्न पंक्तियों के आधार पर होगा—

"ऋषभ : शुद्ध एवासौ पूर्णगांधार ईष्यते।
गांधारः शुद्धएवासौ रिस्तीव्रतर ईष्यते ॥
अतितीव्रतमो गः स्यान्मध्यमः शुद्ध एवं हि।
धैवतः शुद्ध एवासौ निषादः पूर्वसज्ञकः
निषादः शुद्ध एवासौ धस्तीव्रतर ईष्यते।
एवं स्यात् सर्वयंत्रेषु स्वरस्थानस्य लक्षणम् ॥

(श्लोक ३२४–३२६)

उन दिनों में एक ही स्वर के लिए दो या उससे अधिक नामों का उपयोग प्रचलित था। उपर्युक्त श्लोकों से विकृत स्वरों की संख्या घट कर केवल सात रह जाती है और जब कोमल ग और कोमल नि को भी हम छोड़ देते हैं, जिनका वर्णन राग वर्णन में अहोवल ने कहीं नहीं किया, तब यह मालूम हो जाता है कि "संगीत पारिजात" में वर्णित १२२ रागों के गाने बजाने के लिए पंडितजी ने १२ से अधिक स्वरों का उपयोग नहीं किया। अहोबल ही प्रथम संगीतज्ञ थे, जिन्होंने स्पष्ट अपने १२ स्वरों को वीणा के बोल तार की लम्बाई के आधार पर निश्चित करने की आवश्यकता को समझा। "संगीत-पारिजात" से हमें भारतीय संगीत की उत्कृष्ट झांकी मिलती है। "संगीत पारिजात" का शुद्ध सप्तक हमारा वर्तमान "काफी राग" है जो दक्षिण के खरहर प्रिय राग से मिलता है। आज कल भी एक विस्मय पूर्ण प्रश्न है कि सोमनाथ ने मृदुपंचम स्वर नाम कहाँ से प्राप्त किया। उनके पास शार्गदेव कृत "रत्नाकर" की प्रति थी, और यह सम्भव है कि उन्होंने उस ग्रन्थ में दिए हुए तीसरे प्रकार की सैंधवी की परिभाषा से लिया हो। परिभाषा इस प्रकार है—

"मालवे कैशिकेप्यस्ति सैंधवी मृदुपंचमा ॥
समन्द्रा निगमैर्युक्ता षड्जन्यासंग्रहांशिका।
प्रयोज्या सर्वभावेषु श्री सोढ़लसुतोदिता ॥

(रागाध्याय खंड २ पृष्ठ २२३ "रत्नाकर")

श्री भातखन्डेजी अपने ग्रन्थ "उत्तर भारतीय संगीत के इतिहास" में लिखते हैं—"कुछ विद्वानों का सन्देह है कि अहोबल की इस जटिलता का कारण पर्याप्त अंश तक सोमनाथ का "राग विवोध" ग्रन्थ है, क्योंकि उसके ही आधार पर उन्होंने अपनी और दक्षिणी ग्रन्थकारों की परिभाषाओं में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की । इसे कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि यह दोनों ग्रन्थकार संस्कृत के महान पंडित थे। और हमारा यह अनुमान है कि ये उत्कृष्ट संगीतज्ञ भी थे। इन ग्रन्थों को हम उस प्रवृत्ति के उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं जो उस समय उत्तर और दक्षिण की पद्धतियों में अच्छे संगीतिक सम्पर्कों की स्थापना के लिए होरही थी।"

वास्तव में पंडित अहोवल भारतीय संगीत के लिए एक मार्ग चिन्ह हैं—

हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वास्तव में पंडित अहोबल भारतीय संगीत के लिए एक मार्ग चिन्ह हैं। संगीत के विशाल क्षेत्र में आपकी अलभ्य सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। उनकी दिख लाई हुई उज्ज्वल रोशनी से भारतीय संगीत में जो धुन्ध छागई थी, वह विनष्ट हो गई।

"संगीत पारिजात" के पश्चात हृदय नरायण देव ने "हृदय कौतिक" और "हृदय प्रकाश" दो ग्रन्थ लिखे, जिनमें अहोबल का अनुकरण करते हुए १२ स्वर स्थान वीणा के तार पर समझाए हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह शुद्ध रूप से उत्तरी ग्रन्थ है, और इसका शुद्ध सप्तक "रागतरंगिणी" के सदृश्य है। यह दोनों ग्रन्थ बीकानेर के राष्ट्रीय पुस्तकालय में सुरक्षित रक्खे हुए हैं।

औरगंजेब के शासन काल के सम्बन्ध में राजा सुरेन्द्र मोहन टैगौर ने "Universal History of music" नामक ग्रन्थ में लिखा है—Aurangzeb who succeeded shahjahan to the throne of Delhi and occupied it from 1658–1707 abolished the Court Singers and musicians. During the years the ten successors of Aurrangzed ruled in Delhi (1707—18 7) music continued to be cultivated but not with the vigour it had attained in the preceding reigns."

औरंगजेब काल में भावभट्ट एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हो गए हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत को पुष्पित करने में महान योग दिया—

संगीत विद्वान पं० भावभट्ट ने संगीत के ३ ग्रन्थ (१६७४-१७०६ ई०) के लगभग, लिखे (१) अनूप विलास, (२) अनुपांकुश, (३) अनूप संगीत रत्नाकर। भावभट्ट दक्षिण पद्धति के लेखक थे। इनका शुद्ध थाट "मुखारी" है। २० मेल

(थाटों) में इन्होंने सब रागों का विभाजन किया है। यह राजा अनूपसिंह के दरबार में थे। "अनूप संगीत रत्नाकर" में भावभट्ट ने अपनी वंशावली इस प्रकार दी है।

"कृष्णात्रगोत्रसंभूतं कुलमांभीरदेशजं ।
पुरं धवलमित्याहुः प्रपिता तानभट्टकः ।।
पिता जनार्दनः साक्षाज्जनार्दन इवापरः ।
मातुः स्वप्नभवे नाम भावेत्युक्तं स्वपूर्वजैः ।।"

"अनुपांकुश" में "रागाध्याय के अन्त में वे लिखते हैं :—

इतिश्रीमद्राठोडकुलदिनकरमहाराजाधि
राजश्रीकर्णसिंहात्मजजयश्रीविराजमान—
चतुःसमुद्रमुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालन
चतुरवदान्यातातिशयनिर्जितचिंतामणिस्व—
प्रतापतापितारिवर्गधर्मावतारश्रीमहाराजा—
धिराजश्रीमदनूपसिंहप्रमोदितश्रीमहीम—
हेंद्रमौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरण—
कमलश्रीसाहिजहाँसभामंडलमंडनसंगीतराजज—
नार्दनभट्टांगजानुष्टुपचक्रवर्तिसंगीतराजभा—
वभट्टविरचितः श्रीसंगीतानुपांकुश ग्रन्थः समाप्तः ।।

इन उद्धरणों से हमें मालूम हो जाता है कि भावभट्ट के पिता का नाम जनार्दन भट्ट था, जिन्होंने सम्राट शाहजहाँ के दरबार में रहकर समृद्धि पाई। ऐसा भी ज्ञात होता है कि उन्होंने सम्राट से "संगीत राज" की उपाधि उपलब्ध की। भावभट्ट के पूर्वज आभीर प्रान्त के (राजपूताना और मालवा की पूर्व दिशा में) धावलपुर में रहते थे। स्वयं भावभट्ट कर्णसिंह के पुत्र राजा अनूपसिंह के दरबार में रहते थे। और उन्हें भी सम्भवतः "सङ्गीत राज" "अनुष्टुप चक्रवर्ती" प्रभृति कई उपाधियाँ मिली थी। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या शाहजहाँ के समकालीन संगीत कुशल जगन्नाथ जिन्हें सम्राट से "कविराज" की उपाधि मिली भावभट्ट के पिता थे ? शायद रहे हो। हम जानते हैं कि शाहजहाँ की मृत्यु के बाद का काल संगीत की उन्नति के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त था, और यह सम्भव है कि जनार्दन भट्ट अथवा उनके भावभट्ट बीकानेर चले गए हो तथा उन्होंने अनूपसिंह का आश्रय लिया हो। इतिहास से हमें मालूम होता है कि उस समय कुछ राजाओं में बड़ी शक्ति थी तथा उन्होंने औरङ्गजेब से आतंकग्रस्त कई पण्डितों और कलाकारों को आश्रय

दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि भावभट्ट एक अच्छे संस्कृत विद्वान् एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। उनका परिवार मूलतः किसी दक्षिणी परिवार से सम्बन्धित था और बाद में उनके वंशज आकर उत्तर भारत में बस गए थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ "अनूप संगीत रत्नाकर" में निम्नलिखित उल्लेख किया है :—(१) संगीत रत्नाकर, (२) संगीत दर्पण, (३) स्वरमेल कलानिधि, (४) राग विबोध, (५) संगीत कल्प वृक्ष, (६) राग तत्व विबोध, (७) राग कौतुक, (८) सङ्गीतोपनिषद्, (९) नृत्य निर्णय, (१०) सद्राग चन्द्रोदय, (११) राग मंजरी, (१२) संगीत पारिजाति, (१३) हृदय प्रकाश, (१४) राग माला।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ बीकानेर की "पैलिस लाइब्रेरी" में रक्खे हुए हैं। स्वयं भावभट्ट के "अनूप संगीत रत्नाकर" "अनूप विलास" और "अनूपांकुश" से यह प्रामाणित होता है कि वे भी शार्ङ्गदेव कृत "रत्नाकर" के संगीत को स्पष्ट समझने में असमर्थ रहे। उन्होंने भी यहाँ वहाँ "रत्नाकर" के श्लोकों को उद्धृत कर दिया है और अपने पाठकों पर ही सामर्थ्यानुसार उनका अर्थ समझने का भार सौंप दिया है। जैसा मैंने पहले ही कहा देश के सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने "रत्नाकर" का उपयोग इसी प्रकार किया है। रत्नाकर का एक भी राग ऐसा नहीं जिसे सफलतापूर्वक किसी ग्रन्थकार ने समझाया हो, और आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रत्येक ने उनके ग्रन्थ को सर्वाधिक आदर की दृष्टि से देखा। "अनूप सङ्गीत रत्नाकर" में उन्होंने वर्णित रागों का निम्नलिखित बीस मेल या थाटों में वर्गीकरण किया है :—(१) तोडी, (२) गौरी, (३) वराटी, (४) केदार, (५) शुद्ध नाट, (६) मालव कौशिक, (७) श्री, (८) हमीर, (९) अहीरी, (१०) कल्याण, (११) देशाक्षी, (१२) देशकार, (१३) सारङ्ग, (१४) कर्नाट, (१५) कामोद, (१६) हिजाज, (१७) नाद रामक्री, (१८) हिंडोल, (१९) मुखारी, (२०) सोम।

उनका 'मुखारी' सप्तक दक्षिणी सङ्गीतज्ञों के वर्तमान शुद्ध सप्तक के अनुरूप है। हमारे आज के सङ्गीत विद्वानों के लिये भावभट्ट के ग्रन्थ बड़े सुविधाजनक सिद्ध होंगे, क्योंकि उनके कई राग लक्षण आज भी उपयोगी हैं। भावभट्ट ने रागों का जिस प्रकार वर्गीकरण किया है और जिस शुद्ध सप्तक पर उन्हें आधारित किया है, उससे प्रामाणित होता है कि उनका सम्बन्ध किसी दक्षिणी प्राचीन परिवार से था। उनके ग्रन्थों का महत्व इसलिए और भी अधिक बढ़ जाता है कि उनमें उत्तरी भारत के पतनोन्मुख संगीत को व्यवस्थित करने की चेष्टा हुई। जिस रीति से पंडितजी ने उत्तरी राग लक्षणों को ग्रहण करके उनपर दक्षिणी ग्रन्थकारों के समान शास्त्रीय महत्व का आरोप किया, वह सचमुच उनकी निपुणता का द्योतक है।"

(उपर्युक्त विचार श्रीभातखण्डेजी ने अपने ग्रन्थ "A short Historical Survey of the Music of Upper India" में प्रगट किए हैं।)

संगीत सहित्य निर्माण की दृष्टि से यह काल बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा—

इसी काल में प्रसिद्ध विद्वान व्यंकटमखी पंडित ने दक्षिणी पद्धति के आधार पर संगीत का एक ग्रन्थ "चतुर्दंडि प्रकाशिका" निर्मित किया। इसमें गणितानुसार सप्तक के १२ स्वरों से ७२ मेल अर्थात थाट और एक थाट से ४८४ रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है। ७२ थाटों में से १९ थाट जो दक्षिणी पद्धति में प्रयोग किये जाते हैं। उनका विवरण तथा इन थाटों से आविभूत ५५ रागों का विवरण भी इस पुस्तक में दिया है।

वास्तव में संगीत साहित्य में निर्माण के दृष्टिकोण से यह काल बड़ा ही महत्व-पूर्ण रहा। जितना औरंगजेब संगीत का विरोधी था उतना ही अधिक इस काल में संगीत साहित्य निर्मित हुआ।

महान कवि भूषण की संगीतमयी कविताओं ने संगीत-प्रसारण में क्रियात्मक योग दिया—

इसी काल में हिन्दी के महान कवि भूषण हुए, जिन्होंने "भूषण ग्रन्थावली" लिखी। यह कवि बड़े स्वाभिमानी थे। इनकी कविता वीर रस की थी। पहले यह औरंगजेब के दरबार में रहते थे, किन्तु वहाँ का वातावरण अपने अनुकूल न पाकर फिर यह शिवाजी के दरबार में चले गए और अन्तिम दम तक वहीं रहे। इनकी कविता संगीतमयी होती थी। इनके वीर रस के गीतों को आम जनता बहुत पसन्द करती थी। भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला के अदभुत पराक्रम एवं साहस का बड़े ओज तथा सम्मान के साथ गुणगान किया।

भूषण रीति कालीन कवि थे, और जिन परिस्थितियों में आपका प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य में हुआ, उस समय चारों ओर रीति कालीन कवि तथा आचार्य सेनानी लक्षण ग्रन्थों के धनुषों पर अलंकारों एवं रसों के वाण वृष्टि से हिन्दी साहि-त्याकाश को तिमिराछन्न कर रहे थे। शृंगार की रसमयी प्रवाह धारा में सारा कवि वृन्द तथा समाज डुबकियाँ लगा रहा था। वीरता नाममात्र को भी शेष नहीं रही थी। वीर गाथा काल का सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य केवल राजाश्रय तक ही सीमित था तथा भक्ति काल की निराश जनता में आशा और प्रेम का संचार करने वाली कृष्ण भक्ति भी जयदेव की परम्परा में गोते लगाने वाली राधा और कृष्ण की शृंगारिक भावना का स्पर्श पाकर के सड़ी गली गंदी गलियों में बह रही थी। और उस काल के संगीतज्ञ तथा कवि भी अपनी कला को क्षत यौवना नायिका के हाव भावों एवं नख-शिख के सौन्दर्य पर अनेक बल खाकर अपने गीतों को उस पर न्यौछावर कर बैठे

थे। इससे इस काल का वातावरण विलासिता के कुहरे से आच्छादित हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में भूषण ने अपने को यौवन के उस द्वार पर खड़ा हुआ पाया, वहाँ पर सिवाय आश्रयदाताओं की मिथ्या प्रशंसा एवं रसिक समाज की वाहवाही लूटने के और कोई काम शेष नहीं था। यही नहीं राजनैतिक परिस्थितियाँ भी अपनी भीषणतर रेखा को पार कर रही थीं, और औरंगजेब के अत्याचारों से जनता इतनी निराश हो गई थी कि वह किसी शक्तिशाली नायक या रक्षक की ओर टुकर टुकर नेत्रों से निहार रही थी। उस समय दूर दक्षिण के अधिपति शिवाजी को अपने काव्य का नायक बनाकर के भूषण ने साहित्य में कदम रक्खा। भूषण ने अन्धकार में नवीन प्रकाश दिया। उसने जातीयता की गौरवमयी भावना को उत्कृष्ट किया। उसने संगीत को एक नवीन पथ की ओर मोड़ा और वह नवीन पथ था वीर-रस, जिसमें मानव-जीवन की नैतिक शक्ति का विशेष ध्यान रक्खा जाता था। भूषण ने गा-गाकर लोगों को बतलाया कि मानव का कर्त्तव्य विलासिता के आवरण में सुन्दर ढंग से लिपटे रहने का नहीं है, बल्कि मानवता का प्रस्फुटन करना है। दरअसल इस महाकवि ने मानव समाज की आँखे खोल दी। जो समाज पतन के गर्त में जारहा था, उसको भूषण की संगीतमयी कविता से संजीवनी शक्ति मिल गई।

संगीत ही मानव को मानव बनाता है—

मिर्जा हुसेन अली ने काली की भक्ति में बंगाल में बड़ी श्रेष्ठ रचनायें की। बहुत से मुसलमानों ने औरंगजेब की आज्ञा के विपरीत भी हिन्दू-संगीत का अध्ययन किया और राग रागनियों की रचना की। औरंगजेब के अन्दर कला और सौन्दर्य के लिए लेशमात्र भी निष्ठा नहीं थी। वह इनको जीवन के लिए व्यर्थ की चीज समझता था। प्रसिद्ध इतिहासकार ख्वाफी खाँ लिखता है—"औरंगजेब की प्रत्येक योजना निष्फल हुई। कला और सौन्दर्य से वह कोसो दूर था, इसीलिए वह बेरहम बादशाह था। उसके अन्दर सहानुभूति नाम की कोई वस्तु नहीं थी। वह बड़ा निर्दयी था। संगीत शून्य होने के कारण उसका दिल पत्थर बन गया था। यदि वह संगीत प्रिय होता, तो शायद इतना निर्दयी, इतना बेरहम और इतना जालिम बादशाह न हो पाता। संगीत ही मानव को मानव बनाता है।"

मुगल काल में दक्षिण भारत का संगीत

पन्द्रहवीं शताब्दी दो महानतम तेलुगु कवियों से प्रकाशमान हो रही थी—

१५ वीं शताब्दी दो महानतम तेलुगु कवियों के प्रकाश से देदीप्यमान हो रही थी। श्रीनाथ तथा पोतना का संगीतमय काव्य सदा अमर रहेगा। दोनों कवि महानता में समान हैं, परन्तु दोनों की शैली में बहुत वैषम्य है। श्रीनाथ के काव्य पर उनके राजकवि पद की पूरी-पूरी छाप है। वह राजाओं के रास विलास पर मुग्ध थे और स्पष्टतः कामिनी-कंचन के पूर्ण भक्त। उनके काव्य से जो हमें संगीतिक पृष्ठ-भूमि प्राप्त होती है, उसमें मनुष्यता का लावण्य उतने उज्ज्वल रूप में नहीं आ पाया जितने कि महाकवि पोतना के कृतियों में है।संगीत का विशद रूप हमें श्रीनाथ की रचनाओं में नहीं मिलता। और जो संगीत मिलता है वह पूर्ण श्रंगारिक है, जिसका उद्देश्य मानव की मौन वासना को उभारना है। लेकिन जो कुछ भी हो, उस वक्त आपका यह संगीतमय काव्य आम जनता ने मुक्त हृदय से अपनाया। संस्कृत पर आपका आश्चर्य जनक अधिकार था और अपने पांडित्य के प्रदर्शन के लिए आपने संस्कृत के कठिनतम काव्य श्रीहर्ष कृत "नैषध" का अनुवाद किया।

वीणापाणि के आराधक कवि पोतना लक्ष्मी तथा विलासिता से सदा घृणा करते रहे। बहुत दबाव पड़ने पर भी आत्माभिमानी कवि ने स्वरचित भागवत का समर्पण तत्कालीन शासक सर्वांगसिंघ भूपाल को करना स्वीकार न किया। यह रचना श्रीराम के चरण कमलों में अर्पित की गई। पोतना ने संस्कृत के मूलग्रन्थ का श्लोक प्रति श्लोक अनुवाद नहीं किया। तेलुगु रूपान्तर मूल भागवत से कहीं अधिक बड़ा है। पोतना की संगीतमय शैली प्रसाद तथा माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत थी। यही कारण है कि अशिक्षित व्यक्तियों में भी जितने श्लोक अकेले आपके प्रचलित हैं, उतने किसी अन्य कवि के नहीं। आज भी ग्रामीण महिलाएँ आपके गजेन्द्र मोक्ष, भक्त प्रह्लाद की गीतमय कथा एवं रुकमणि विवाह के गीत गाती हुई मिलेंगी। भगवद् भक्ति आप्लावित हृदय के आत्म आनन्द का जैसा सजीव चित्रण पोतना ने किया वैसा तेलुगु का कोई भी कवि अथवा संगीतज्ञ भक्त नहीं कर पाया। भागवत को

सामान्य व्यक्तियों का विषय बना देना आपका ही कार्य था। चूँकि आपके श्लोक इतने संगीत से परिपूर्ण होते थे कि एक ही श्लोक को लोग बार-बार गाते थे, फिर भी उनकी तबियत भरती नहीं थी। वास्तव में वे बड़े ही मनोमुग्धकारी होते थे।

तेलुगु नारियों ने पोतना के काव्य को दिलखोल कर अपनाया—

तेलुगु नारियों ने पोतना के काव्य को दिलखोल कर अपनाया। दरअसल पोतना ने नारियों की सजीवता को, उनके आत्मिक सौन्दर्य को बड़ी शिल्पज्ञता से अभिव्यक्ति किया है। पोतना ने जहाँ काव्य की सुन्दरता एवं कलात्मकता का ध्यान रक्खा, वहाँ उसके साथ-साथ उन्होंने संगीत की पवित्रता, संगीत की आत्मिक लावण्यता और संगीत की स्वाभाविकता का भी ध्यान रक्खा। उन्होंने कहीं तेलुगु संगीत की उत्कृष्टता को गिरने नहीं दिया। उनका विश्वास था कि काव्य और संगीत का घनिष्ट सम्बन्ध है। वह काव्य कला नहीं जिसमें संगीत का मनोहर पुट न हो, और वह संगीत, संगीत नहीं जिसमें काव्य का सौरभ प्रस्फुटित न होता हो। वह दोनों को एक दूसरे के लिए आवश्यक समझते थे।

प्रबन्ध बाहुल्य काल—

अब हम तेलुगु संगीत के स्वर्ण काल में प्रवेश करते हैं, इसे कृष्णदेवराया का काल भी कहा जाता है। उन दिनों विजय नगर साम्राज्य का सूर्य उत्कृष्टता के शिखर पर प्रदीप्त हो रहा था। कृष्णदेव का काल पुराण रचना प्रधान न रहा, बल्कि यह काल प्रबन्ध बाहुल्य होगया। इस काल के काव्यमय संगीत का मूल स्रोत पौराणिक होते हुए भी आत्म सौन्दर्य का प्रतीक रहा। संगीतज्ञों ने रूपरेखा पुराणों से अवश्य ली, पर चित्रों में रंग अपने ही भरे। इस युग में तेलुगु संगीत आत्म सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति बन कर सामने आया। इस काल के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और कवि राजा कृष्ण देवराया के प्रिय राजकवि अल्लसानि पेद्दना हैं। कृष्णदेवराया के दरबार में एक और संगीतज्ञ थे, उनका नाम था नन्दी तिम्मना, पर जनता में वह मुक्कु तिम्मना के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए। आपका संगीतमय काव्य कोमलता एवं कान्ति का प्रतीक है। इन गुणों में कोई भी कवि, संगीतज्ञ आपसे आज तक बाजी नहीं मार सका है। दरअसल आप कवि और संगीतज्ञ दोनों ही थे, जैसे उत्तर भारत के सूरदास, मीरा थे। कृष्णदेवराया स्वयं भी उच्चकोटि के कवि तथा संगीत प्रेमी थे। "आमुक्ता माल्यदा" संगीतमय काव्य वैष्णव मत के समर्थन में लिखा गया है, परन्तु अलंकार शास्त्र का जीवित दर्पण है। वास्तव में आपने संगीत के परिमार्जन में अधिक योग दिया। आपके गीत घर-घर में गाए जाने लगे। आपने अपने काव्य में मनुष्य की विराट शक्ति, तथा उसके आन्तरिक सौन्दर्य का व्यापक रूप में परिचय दिया। आपका विश्वास था कि संगीत और काव्य मनुष्य को सुन्दर बनाने में बड़ा योग देते हैं।

सोलहवीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया, और तंजौर एवं मुदरई जैसे कई स्वतन्त्र रजवाडों का उदय हुआ। इस समय की संगीत रचना अधिक यथार्थवादी रही। इस समय के संगीतज्ञों एवं कवियों में ताम्ययया, चेमकूर बेंकट कवि, सारधर, बेंकट कृष्ण नायक, सेषम बेंकट, तथा कदिरिपति के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं।

दक्षिण भारत के संगीत साहित्य की रचना भी अधिकतर तेलुगु में हुई है। आनुनासिक तथा स्वरान्तक होने, कण्ठ एवं ओष्ठ जन्य ध्वनियों के अभाव तथा प्रवाह, कोमलता के कारण तेलुगु संगीत साहित्य के सृजन के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। कुशल संगीतकारों में अन्नमाचार्य सबसे पहले (१५ वीं शताब्दी) में हुये। १७ वीं शताब्दी में महान "पद्म" कार क्षात्रज्ञ हुए, जिनकी तुलना "गीत गोविन्द" के रचयिता जवदेव से की जा सकती है। क्षात्रज्ञ के गीतों ने मानव जीवन को दिव्य सौन्दर्य से भर दिया। दक्षिण भारत में आपके गीत घर-घर में गाये जाने लगे, दक्षिण भारत की महिलाओं ने आपके गीतों को विशेष रूप से अपनाये, क्योंकि उनमें नारित्व की गौरव गरिमा का सुन्दर और सजीव चित्रण होता था।

महान संगीतज्ञ क्षात्रज्ञ की दक्षिण में धूम धाम थी--

क्षात्रज्ञ वीणा वादन में बड़े प्रवीण थे। जिस वक्त उत्तर भारत में औरंगजेब का शासन चल रहा था, और उसने अपने साम्राज्य में संगीत का बहिष्कार कर रक्खा था, उस वक्त दक्षिण भारत में क्षात्रज्ञ का नाम की धूम-धाम थी। आपने भारतीय संगीत के द्वारा मानव जीवन की कुरुपता के गर्दों गुवार को पर्याप्त मात्रा में हटाया। आपने संगीत की प्राचीन पवित्रता को स्थिर रक्खा। आपका कहना था—"मनुष्य की आत्मा तभी दिव्य बनती है, जबकि वह अपने जीवन-संगीत को पूर्ण रूप से समझ लेता है, जबकि वह संगीत और जीवन की दूरी को खत्म कर देता है। भगवान को प्राप्त करने के लिये आपको कहीं अन्यत्र भटकना नहीं चाहिए। बस संगीत की गहराइयों में उसको खोजो। आपको अपना ईश्वर उसमें हँसता हुआ मिल जायगा, और अगर आप जीवन में स्वर्ग प्राप्त करने के आकांक्षी हैं, तो भी आपको संगीत के अतल में प्रवेश करना होगा। संगीत सागर का आपको मन्थन करना ही पड़ेगा, यदि आप उसमें से अमृत प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। बिना मन्थन के आप संगील की चरम सीमा को स्पर्श नही कर सकते।"

क्षात्रज्ञ ने दक्षिण भारत के सङ्गीत में एक नवीन शक्ति भर दी--

दरअसल क्षात्रज्ञ ने दक्षिण भारत के संगीत में एक नवीन शक्ति संचारित करदी। मानव अपने रूप को समझने लग गया। इस युग में ईश्वर उपासना कीर्तन

द्वारा ही होती थी। मन्दिरों में संगीत खूब चलता था। दक्षिण भारत के मन्दिर संगीत के केन्द्र बने हुये थे। नृत्य और गायन दोनों का ही इस काल में खूब प्रचलन रहा। कहते हैं कुमारी आईप्पा ने नृत्य के क्षेत्र में बड़ा सुन्दर कार्य किया। नृत्य के प्राचीन सौन्दर्य को इन्होंने अक्षुण्ण रक्खा। इस काल में वर्णनात्मक नृत्यों का अधिक रिवाज था। अनेक प्रकार के नृत्यों का इस काल में निर्माण हुआ। कहते हैं "कल्प कोवा" नृत्य का भी निर्माण इस काल में हो चुका था। "कल्व कोवा" नृत्य में कृष्ण और राधा की रास लीला का सुन्दर ढंग से मुद्राओं और गीतों में वर्णन किया जाता था।

दक्षिण भारत का यह काल नृत्यों के लिये बड़ा समृद्धिशाली रहा—

अकबर के काल में "कल्व कोवा" नृत्य का दक्षिण भारत में खूब प्रचलन हो रहा था। इस नृत्य को महिलायें ही प्रदर्शित किया करती थीं। कृष्ण का पार्ट भी लड़की ही करती थी। उस वक्त दक्षिण भारतीय नारियों का "कल्व कोवा" नृत्य बड़ा प्रिय नृत्य माना जाता था। पर इसके सम्बन्ध में और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते। पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अकबर के काल में भी दक्षिण भारत का संगीत अपनी उत्कृष्टता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। दक्षिण भारत के इस काल में नाटकों का प्रचलन बहुत कम रहा। उत्तर भारत के समान दक्षिण में संगीत को नाटकों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जाता था, और जो थोड़ा बहुत किया जाता था, उसमें संगीत व्यवस्थित रूप से न हो पाता था।

कन्नड़ का संगीत साहित्य भी तेलुगु संगीत साहित्य के समान ही उच्चकोटि का है—

कन्नड का संगीत साहित्य भी तेलुगु संगीत साहित्य के समान ही उच्चकोटि का है। कन्नड भाषा की अपनी लिपि है, जो ध्वनि मूलक है और दक्षिण भारतीय लिपियों में जिससे तेलूगु विशेष मिलती जुलती है। समस्त भारतीय लिपियों की तरह इसका उदगम भी ब्राह्मी लिपि से है। इसकी वर्ण माला में भी उतने ही अक्षर हैं जितने कि देवनागरी में हैं। केवल दो स्वर और दो व्यंजन इसमें अधिक हैं। यह रेखाओं, वृत्तों तथा पुछल्लों में लिखी जाती है और बहुत कला पूर्ण है। कन्नड का संगीत साहित्य बड़ा प्राचीनतम है। कन्नड संगीत के प्राचीनतम उदाहरण ईसा की दूसरी शताब्दी के किसी ग्रीक ड्रामा में पाए जाते हैं, जो मिश्र के ऑक्सी हिंचस में "भोज-पत्र" पर लिखे पाए गए हैं। इस सम्बन्ध में मैसूर के डा० म० ह० कृष्ण जो एक प्रसिद्ध विद्वान हैं का कथन है—"वास्तव में इस रिकार्ड का विशेष महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि इससे कन्नड संगीत—साहित्य का स्वरूप ईसा के जन्म के आस पास प्रामा-

णित हो जाता है, क्योंकि कन्नड भाषा का यह सर्वप्रथम तथा अधिकृत लिखित रिकार्ड है।" वास्तव में कन्नड साहित्य प्राचीन साहित्य है और इसमें संगीत की अभिव्यक्ति भी प्राचीन है।

कन्नड के इस मनोहर प्राकृतिक वातावरण ने संगीतज्ञों को "सुन्दर-प्रकृति" के गीत गाने की अमर प्रेरणा दी—

वह प्रदेश जिसमें कन्नड लोग रहते हैं एक सौन्दर्यात्मक भूभाग है। सुन्दर तथा छविमय दृश्यों से भरा पड़ा है। चावल के खेत, सुपारियों के बगीचे, कोयल की सुरीली तान, मीठे रस-मय फल, मनोमुग्धकारी झीलें तथा सरोवर के विविध रंग-विरंगे कमल, कन्नड कवियों द्वारा इन सब का बहुत मधुर एवं कलात्मक वर्णन किया गया है। उसका अपना समुद्री सुरम्य किनारा है। और इसी से लगा हुआ किनारे का लम्बा तटवर्ती प्रदेश है, जो सम्पूर्ण वर्ष बड़े बड़े नारियल के वृक्ष, सुन्दर कदली वृक्ष एवं विविध वनखण्ड आदि से हरा भरा बना रहता है। इस मनोहर प्राकृतिक वातावरण ने संगीतज्ञों को सुन्दर प्रकृति के गीत गाने की अमर प्रेरणा दी। नृत्य और संगीत तो इस प्रान्त का जन्मसिद्ध अधिकार-सा रहा है। मन्दिरों में नृत्य और गायन की बाहुल्यता रहती थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में यहा का संगीत अपने पूर्ण यौवन काल में था। दक्षिणत्व संगीत की दक्षिणी प्रणाली आज कर्नाटक संगीत के नाम से प्रसिद्ध है। और कर्नाटक संगीत ने भारतीय संगीत कला के विकास में एक महत्व-पूर्ण योग दिया है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि विभिन्न कालों में जैन, शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों का इस भूभाग पर बड़ा दौड़-दौरा रहा। जैन धर्म का प्रभाव तो यहाँ ६ वीं शताब्दी सुदूर अतीत काल तक में पाया जाता है। जब अपने अनुयायियों सहित रख्तदेवली भद्रबाहु वहाँ पहुँचा था। सोलहवीं शताब्दी में कन्नड संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि अत्यन्त सुदृढ़ थी। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भक्ति के द्वारा संगीत का खूब प्रचार हुआ। अनेक संगीतज्ञ ऐसे हुए जो वैष्णव तथा शैव के उपासक थे और वे गायन तथा नृत्य के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार सामान्य जनता में किया करते थे। संगीत और धर्म का जितना सुन्दर और पवित्र रूप हमें कर्नाटक संगीत में मिलता है, उतना उत्तर भारत के मुगलकालीन संगीत में नहीं प्राप्त होता। मुगलकाल में कर्नाटक संगीत ने अपनी अद्वितीय पवित्रता को नष्ट नहीं किया था। जितना उत्कृष्ट आध्यात्मिक सौन्दर्य हमें कर्नाटक संगीत में देखने को मिलता है उतना उत्तर भारत के संगीत में नहीं मिलता। कन्नड के लोकगीतों का विकास भी इस काल में हुआ। ग्रामीण महिलाएँ जिस संगीत का प्रदर्शन करती थीं वह भी बड़ा उच्चकोटि का होता था।

कर्नाटकी संगीत में हमें मनुष्यता का सुन्दरतम चित्र प्राप्त होता है—

डा० वार्नयाल ने अपनी पुस्तक "The History of Karnatak music" के पृष्ठ २५ पर लिखा है—"उत्तर भारत में जब मुगल बादशाहों का दौड़-दौरा था, उस वक्त कर्नाटक संगीत भारतीयता का पवित्रतम सन्देश दे रहा था। मुगल काल में कर्नाटकी संगीत की आत्मा बड़ी सजीव एवं दिव्यात्मक थी, उसमें एक ऐसा धार्मिक सौन्दर्य पाया जाता था, कि जिसको देखकर मानव की प्रसुप्त प्रवृत्तियाँ सहसा जाग उठती थीं। वास्तव में मुगलकाल में भारतीय संगीत का यदि कोई सच्चा प्रतिनिधित्व कर रहा था तो यही कर्नाटकी संगीत। मानव जीवन का जितना उत्कृष्ट रूप, जितना कलात्मक स्तर और जितनी अलौकिक छवि हमें इस काल के कर्नाटकी संगीत में मिलती है, उतनी उत्तर भारतीय संगीत में नहीं। कर्नाटकी संगीत में हमें मनुष्यता का सुन्दरतम चित्र प्राप्त होता है।

चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक कन्नड प्रान्त में ग्राम गीत, ग्रामीण नाट्य लावणी, पारिजात नाटक, भागवत लीला, राधा और यक्षगान लीला विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। घर-घर में राधा और यक्षगान की लीलायें हुआ करती थीं। इनमें कर्नाटकी महिलायें विशेष भाग लेती थीं। इन लीलाओं के सार्वजनक-समारोह भी होते थे, जिनमें कन्नड स्त्रियाँ दिलखोल कर भाग लेती थीं। नाटकों का भी खूब प्रचार रहा। कन्नड साहित्य में शिलालेख तथा ताम्र पत्र साहित्य की आज भी अपार सम्पत्ति है। प्रस्तर और ताम्र पत्र लेख हजारों की संख्या में हैं। इनमें से कुछ ही ऐसे हैं जिनकी नकल हो चुकी हैं। और वे प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिनका साहित्य और संगीत की दृष्टि से मूल्यांकन ही नहीं हो पाया है। तथा ऐतिहासिक दृष्टि से जिनका अधिकृत रूपान्तर होने को है। इनके प्रकाशन पर संगीत और साहित्य के सम्बन्ध में और भी अधिक जानकारी हो सकेगी।

इस काल में जो कन्नड काव्य रचा गया वह सब वैष्णव एवं शैव प्रधान रहा—

इस काल में जो कन्नड काव्य रचा गया वह सब वैष्णव एवं शैव प्रधान रहा। यह काव्य "राग" और "ताल" के साथ गाये जाने के लिए ही लिखा गया। इस दिशा में पुरन्दरदास ने बहुत लिखा है और अपनी अधिकृत कृतियों से "कर्नाटक काव्य" को शास्त्र-शुद्ध करने का श्रेय इन्हीं को है। वे वास्तव में कर्नाटकी संगीत के जनक माने जाते हैं। आपकी बहुतेरी रचनायें भक्ति गीत हैं, जो श्रीमाध्वाचार्य की द्वैत परम्परा के अनुसार हैं, और वैष्णवी भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कविता को मधुर गेयस्वरूप देने की कला को सारे प्रान्त भर में प्रोत्साहन

दिया जाता रहा है। जिसे एक "गायक कला" के नाम से विशेष संज्ञा दी जाती है। श्रीपुरन्दरदास का एक पद देखिये जिसमें वे प्रभु की माया का रहस्योदघाटन करते प्रतीत होते हैं—

"हे अगम्य ! तुम्हें जान पाने में मैं असमर्थ हूँ। तुम मायापति जो हो। मैं नहीं जान पाता कि इस महान् अभिव्यक्ति (संसार) के तुम एक भाग हो अथवा यही तुम्हारा एक अंश है। न जाने तुम स्वयं इस देह में निवास करते हो या यह देह ही तुम में प्रतिष्ठित है। ओह ! शक्कर और मिठास में कौन जाने किसका कौन अंश है ? चखने वाली जीभ ही में तो दोनों समाये हुए हैं। सुमन और सुगंध, कौन बताये कि कौन किसमें आश्रित है ? प्राण शक्ति में ही तो दोनों का समावेश है ? इस रहस्य को केवल तुम्ही तो जानते हो।"

वैराग्य के सम्बन्ध में श्रीपुरन्दरदास का एक दूसरा पद भी देखिये :—

"जो मोह रहित है, उनका जीवन धन्य है। जीवन तो उस पंक्षी सा है जो दालान में क्षण भर को चहक कर उड़ जाता है; उन लोगों सा जो किसी मेले में जुटते हैं और रात भर में बिखर जाते हैं, उन शिशुओं सा जो किनारे पर घरौंदे बनाते बिखेरते हैं, उस पथिक सा जो रात भर किसी सराय में ठहर कर प्रातःकाल ही अपनी मंजिल पर चल पड़ता है। मेरे प्रभु ! विरिक्तमय जीवन का यह वरदान मुझे केवल तुम्हीं तो दे सकते हो।"

कर्नाटकी संगीत ने जीवन की विराटता का अधिक ध्यान रक्खा—

इन दोनों पदों से कन्नड संगीत की उत्कृष्टता का आप अनुमान लगा सकते हैं। दरअसल कर्नाटकी संगीतज्ञों ने जीवन की विराटता का अधिक ध्यान रक्खा। उन्होंने अपने संगीत को अनैतिकता उच्छृखलता से परिवेष्टित नहीं किया, वे उसको कला के उच्चतम स्तर पर लेगए। इस काल में रामायण महाभारत, भागवत कथाओं पर संगीतमय महाकाव्य लिखे गए, जिन्होंने देश का वायुमण्डल पवित्र बनाया। कुमार वाल्मिकि, कुमार व्यास, लक्ष्मी, राघवंश, हरिहर भीमकवि आदि अनेक कवियों तथा संगीतज्ञों ने विशेष पुराण लिखे जो उत्तम काव्य गुणों से अलंकृत हैं। पुराणों को पूर्ण रूप से संगीत की उज्ज्वल पृष्ठ पर उतार दिया गया। हमें इन महा काव्यों में कर्नाटकी संगीत का अति सुन्दर रूप उपलब्ध होता है। पंपा और पोन्ना ने भी कर्नाटकी संगीत को उत्कृष्ट बनाने में महान योग दिया। कर्नाटकी नारियाँ पंपा और पोन्ना के रचे हुए गीत बड़े प्रेम से आज भी गाती हैं। इनके गीतों या पदों में मानव जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है। वास्तव में जब उत्तर भारत का संगीत अवनति की ओर अग्रसर हो रहा था, उस वक्त दक्षिण भारत का

संगीत विकास की भव्य मंजिल की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा था। मानव का जितना सुन्दर एवं पवित्र रूप हमें कर्नाटकी संगीत में मिलता है, उतना अन्य किसी संगीत में नहीं मिलता। कन्नड प्रान्त के प्राकृतिक सौन्दर्य ने यहाँ के कलाकारों की प्रतिभा को विकसित करने में बड़ा योग दिया है।

तमिल संगीत में धार्मिक भावनाओं का अधिक पुट रहा--

तमिल का अर्थ है मधुरता। इस भाषा के प्रादुर्भाव के बारे में मतभेद है, परन्तु यह सत्य है कि अगस्त्य ऋषि ने इस भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण बनाया जो "अगत्तियम" के नाम से प्रसिद्ध था। यह व्याकरण जिसमें कुल १२,००० सूत्र थे, तमिल भाषा का सर्वांगपूर्ण व्याकरण माना जाता है। तमिल भाषा का अपना मौलिक अस्तित्व है। वह किसी अन्य भाषा पर अवलम्बित नहीं है। तमिल भाषा बहुत प्राचीन भाषा है। इसका काव्य भन्डार विशेष रूप से समृद्धि तथा संगीतमय माना जाता है। तमिल भाषा भाषियों के हृदय में भावुकता भरी पड़ी है। मुगल काल के अन्दर तमिल संगीत में धार्मिक भावनाओं का पुट अधिक रहा। तमिल गीतों की सबसे बड़ी खूबी है उसकी सरलता। ईश्वर के सम्बन्ध में एक बार कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था—"हे ईश्वर! तुम एक कविता के समान सरल हो" हम इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन करके यह कहना चाहेंगे "हे ईश्वर तुम तमिल गीतों के समान सरल हो" सरलता एवं निर्मलता ही तो तमिल गीतों की संजीवनी शक्ति है। तमिल संगीत की इसी सरलता के कारण पन्द्रहवीं शताब्दी तक उत्कृष्ट तमिल संगीत भी आम जनता का सुदृढ़ सम्बल बना रहा। विद्वान ईनोवान अपनी डायरी "What we see in Duccan" में लिखता हैं—"तमिल प्रदेश में सन्त, और भक्त एवं दार्शनिक ही संगीतज्ञ हुआ करते थे। वे ईश्वर उपासना में विश्वास रखते थे। वे अपना संगीत ईश्वर के सम्मुख अर्पण कर दिया करते थे। जीवन की सादगी के अनुरूप ही उनका सादा संगीत था। उस सादे संगीत में हमें उनके उत्कृष्ट व्यक्तित्व की मनोहर झलक मिलती है। वास्तव में मुगल युग के समय में तमिल संगीत में कीर्तिनों की भर मार थी। धार्मिक नृत्यों की व्यापकता थी। नृत्यकारों की पोशाकें भी बड़ी विचित्र हुआ करती थीं, पर वे पोशाकें बड़ी भव्य होती थीं।

पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह तमिल संगीत में—

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में तमिल प्रदेश के देवालयों, मठों एवं गृहों में "तेवारम" एवं "तिरुवाचकम" के पदों का गुंजन सुनाई पड़ता था। तमिल भाषा में ते और आरम दो शब्द हैं "ते" का अर्थ है ईश्वर, "आरम" का अर्थ है माला

अर्थात पुष्पमाला के स्थान पर स्तुति माला है। "तेवारम" के तमिल भाषा के तीन संत कवियों अप्पर, सुन्दरर एवं सम्बधर के सुन्दर एवं संगीतमय पदों का संग्रह है। इस संग्रह में कुल ९०,००० पद्य थे। इसमें से कितने ही नष्ट होगए। शेष ७९५ पद्य अब भी प्राप्त हैं। "तेवारम" शैव सम्प्रदाय के देवालयों में गाये जाते थे। "तिरुवा-चकम" माणिक्कवाचक स्वामी की अमरकृति है। माणिक्कवाचक स्वामी के गीत सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी में तमिल प्रदेश के घर-घर में गाये जाते थे। धार्मिक पर्वों पर भी इनके गीतों का प्रयोग होता था। विवाहोत्सव पर भी यह कलात्मक गीत गाये जाते थें।

मधुरा तमिल प्रदेश का एक प्राचीन नगर है। मुगल काल में यह नगर संगीत कला का मुख्य केन्द्र स्थान था। यहाँ बाहर से भी अनेक कलाकार संगीत प्रशिक्षण पाने के लिए आते थे। यह नगर वेगवती नदी के तट पर बसा हुआ है। यहाँ की पृथ्वी उस समय गाती थी, यहाँ का अणु-अणु संगीतमय था, ऐसा कहा जाता है। यहाँ के वायु के झोंकों से भी संगीत की मधुर स्वर लहरियाँ निकलती थीं। ऐसा सुनने में आता है। एक विदेशी यात्री उम्भल लिखता है—"मैं तमिल गीतों के सम्मुख विश्व के सम्पूर्ण वैभव को समर्पित कर सकता हूँ। पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह तमिल संगीत में है। वास्तव में चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक तमिल संगीत, विकास मार्ग पर बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ता जा रहा था। आत्मा और परमात्मा का जितना सुन्दर निरुपण इस प्रान्त के संगीत में हुआ उतना अन्य किसी प्रान्त के संगीत में नहीं हो पाया।"

सङ्गीत मानव के आत्मा की सच्ची आवाज है—

दक्षिण भारत के मन्दिर एवं धार्मिक मन्डलियाँ विशेष रूप से संगीत के प्रचार में सहायक थी। यह निश्चित है कि मुगल काल में दक्षिण भारत के मन्दिरों ने बड़ा सुन्दर कार्य किया। मन्दिरों के पवित्र वातावरण में अनेक कलाकार पैदा हुए जैसे निम्मया, हमतैया इन दोनों कलाकारों का जन्म और विकास देवालयों के पवित्र वायु मण्डल में हुआ और इन्होंने अपने सुन्दर गीतों के द्वारा विश्व के वातावरण को सुन्दर एवं कलात्मक बनाया।

इन विद्वानों ने सर्वप्रथम आवाज बुलन्द की कि संगीत मानव के आत्मा की सच्ची आवाज है। मनुष्य हर चीज को धोका दे सकता है, किन्तु संगीत के सामने उसकी मिथ्या भाषण एक पल भी टिक नहीं सकता। दरअसल मानव संगीत सत्य का प्रतीक है, और सत्य की सुन्दर रश्मियाँ ही हमारे जीवन का संगीत बनती हैं। सब

इसी प्रकार के दार्शनिक भाव उनके गीतों में रहते थे। निम्मया ने नारियों के गीत अधिक गाये। उन्होंने गाया कि विधाता की एक महान संगीतमय कृति नारी है। हमें इसका सम्मान करना चाहिए। नारी को ठुकरा करके हम सफल संगीतज्ञ नहीं बन सकते। संगीत की आत्मा नारी ही है, और नारी ही संगीत है। सत्रहवीं शताब्दी में निम्मया के गीत दक्षिण की नारियाँ खूब गाती थीं। वर्तन माँजते हुए, पशुओं को चराते हुये नारियाँ निम्मया के गीतों को गाती थीं। उनके गीतों से नारियों को एक विशेष आनन्द मिलता था। सन्तों ने भी दक्षिणी संगीत के विकास में बड़ा योग दिया। सन्तों के संगीत में जीवन का वैराग्य मिलता था। ताल और राग का अनुपात भी सन्तों के संगीत में पूर्णरूप से रहता था। दक्षिण भारत के संगीत में हमें दार्शनिकता की पवित्र भावनायें तथा भक्ति की चारु सुरम्यता पूर्ण रूप से मिलती है जबकि उत्तर भारतीय संगीत में अरबी और परशियन संस्कृतियों का समिश्रण-चित्र प्राप्त होता है।

मराठा काल में संगीत

(१७०७—१७६१)

मराठा काल में संगीत की स्थिति लगभग वही रही जो मुगल-काल में थी—

मराठा काल में संगीत की स्थिति लगभग वही रही जो मुगल काल में थी। लेकिन फिर भी महाराष्ट्र प्रान्त में भारतीय संगीत की रूपरेखा परिवर्तित रूप में थी। मराठा जाति सिर्फ एक लड़ाकू जाति ही नहीं थी, बल्कि वह संगीत से भी प्रेम करती थी। रामदास और तुकाराम ने गान विद्या को धार्मिक उपदेश करने का साधन बनाया। तुकाराम के "अभंग" गाकर सुनाए जाते थे। उन्हें सुनकर जनता के हृदय में धार्मिक श्रद्धा एवं भक्ति के दिव्य भाव जाग्रत होते थे। तुकाराम ने मानव को संगीत के माध्यम से नवीन पथ का निर्देश किया और इसी प्रकार रामदास ने लड़ाकू जाति को भक्ति रस से परिपूर्ण बना दिया। महाराष्ट्र की नारियों ने इन दोनों सन्तों के गीत दिलखोल कर अपनाए। लोगों के जीवनों में सुदृढ़ता आने लगी। जीवन का अन्धकार डगमगाने लगा, और लोगों ने अनुभव किया कि संगीत ही मनुष्य को स्वर्ग का सुन्दरतम द्वार दिखा सकता है, संगीत ही मनुष्य को आवागमन के चक्कर से छुड़ा सकता है, और संगीत ही मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है। रामदास और तुकाराम के धार्मिक उपदेशों ने सामान्य जनों के जीवन में एक नवीन स्फूर्ति भर दी। उनके अन्दर दिव्य-मनुष्यता जाग्रत होने लगी। वे मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य समझने लग गए। रामदास तथा तुकाराम के धार्मिक प्रवचनों का क्षेत्र नगरों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि महाराष्ट्र प्रान्त के ग्राम-ग्राम में पहुँचा, जिसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जनता भी जाग उठी। उसके अन्दर भी सांगीतिक चेतना प्रस्फुटित होने लगी। त्यौहारों के अवसरों पर विशेष रूप से महिलायें खूब सज-धज कर राधा और कृष्ण के गीत गाती थीं तथा कृष्ण का "काली नाग मर्दन नृत्य" को प्रदर्शित किया करती थीं। राधा और कृष्ण के ऊपर अनेक नृत्य तथा गीत बने।

इस काल में जो संगीत निर्मित हुआ उसमें हिन्दुत्व के पवित्र गौरव-गाथा का चित्रण विशेष रूप से किया गया—

शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर नृत्य और गायन का प्रदर्शन किया गया। संगीत का प्रदर्शन एक सप्ताह तक चलता रहा। शिवाजी का यशोगान गीतों

के द्वारा गाया गया। कहते हैं भैरव राग में यह गान गाये जाते थे। नृत्यों में भी शिवाजी के रम्य व्यक्तित्व की उज्ज्वलता को गूँथा गया। इस काल में जो संगीत निर्मित हुआ उसमें हिन्दुत्व के पवित्र गौरव-गाथा का चित्रण विशेष रूप से किया गया। हिन्दू संस्कृति की पवित्रता का विशेषरूप से ध्यान रक्खा गया। युद्धों में जो संगीत प्रयोग में लाया जाता था, उसमें भी भारतीय संस्कृति की बाहुल्यता रहती थी। विवाहिक उत्सवों पर भी संगीत का क्रम चलता रहता था। दुन्दभी मृदंग तथा वीणा का प्रयोग अधिक किया जाता था। सितार का प्रयोग मराठा लोग बहुत कम करते थे। तबला का प्रयोग भी वे बहुत कम ही करते थे। सार्वजनिक उत्सवों में वृन्दवादन का प्रदर्शन किया जाता था। महिलायें वीणा वादन में विशेष रूप से दिलचस्पी लेती थीं। क़व्वाली तथा ख्याल का प्रचलन महाराष्ट्र प्रान्त में नहीं हो पाया। ध्रुपद शैली का खूब प्रचार हुआ। भजन का प्रचलन विशेष रूप से था। महाराष्ट्रीय महिलायें भजनों का अधिक उपयोग करती थीं। मन्दिरों में भी भजन का उपयोग होता था। इस काल में सन्तों द्वारा महाराष्ट्रीय संगीत का अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ। कई एक संगीतिक संस्थायें भी थी, जोकि शास्त्रीय संगीत का प्रचार करती थीं। महाराष्ट्रीय ग्रामों में लोकगीतों का प्रचार था। कृष्ण लीला सम्बन्धी नृत्य और गीत विशेषरूप से प्रचलित थे। पौराणिक गाथाओं पर अनेक गीत निर्मित हो चुके थे। वीर रस के गीतों का भी अधिक प्रचार रहा। शृंगार रस का प्रचार बहुत कम हुआ। भक्ति के क्षेत्र में पवित्र शृंगार की धारा प्रवाहित हो रही थी।

मराठा संगीत को जीवनोत्थान का प्रशस्त सम्बल समझते थे—

मराठा सैनिक जब युद्ध के मैदान से आते थे, तो उनके सामने संगीत का प्रदर्शन किया जाता था, लेकिन उस संगीत में मानव की विराटता का ही प्रस्फुटन होता था। महाराष्ट्रीय संगीत का नैतिक स्तर उत्तर भारत के संगीत से उठा हुआ था। संगीतज्ञों का समाज में उच्चस्थान था। मराठा संगीतज्ञों ने संगीत को कला के रूप में ही प्रयोग किया, उसे पेशा के रूप में नहीं अपनाया, जैसाकि उत्तर भारत में अपना लिया गया था, इससे भारतीय संगीत अपनी भौतिक चमक को अक्षुण्ण रख सका। मराठा संगीत को जीवनोत्थान का प्र शस्त सम्बल समझते थे। शिवाजी ने औरंगजेब की तरह संगीत को घृष्णास्पद दृष्टि से नहीं देखा। संगीत मानव चरित्र को उज्ज्वल बनाने का एक शक्तिशाली माध्यम समझा जाता था। अतएव इस काल के अन्दर संगीत का उपयोग मानव के चरित्र को सुन्दर बनाने में किया गया, मानव की प्रसुप्त प्रवृत्तियों को जागृत करने में लगाया गया। संगीत को मानव की आत्मा का प्रतिरूप माना गया।

भारतीय संगीत पर महाराष्ट्रीय गौरव गरिमा का विशेष प्रभाव पड़ा—

भारतीय संगीत को उत्कृष्ट बनाने में महाराष्ट्रियों का विशेष योग रहा। भारतीय संगीत पर महाराष्ट्रीय गौरव गरिमा का विशेष प्रभाव पड़ा। जब औरंगजेब के काल में भारतीय संगीत पतन के गर्त की ओर अग्रसर हो रहा था, उस वक्त महाराष्ट्रीय संगीत में वैदिक संगीत की उच्चता पाई जाती थी। महाराष्ट्रियों ने जीवन और संगीत को निकटतम लाने में सक्रिय कार्य किया। मुगल काल में संगीत और जीवन के मध्य जो व्यवधान पड़ गया था, वैसा व्यवधान मराठा काल के संगीत में नहीं पाया जाता। राग रागनियों का शुद्ध रूप ही आम जनता में प्रचलित था। आम जनता भी शास्त्रीय संगीत में उतना ही रस लेती थी जितना कि उच्च महाराष्ट्रीय वर्ग लेता था। वास्तव में मराठा काल में भारतीय संगीत विकास की भव्य मंजिल की ओर निरन्तर बढ़ता रहा। गायन-वादन, और नृत्य तीनों ही अंगों का विकास अनुपातिक रूप से हुआ।

महाराष्ट्रीय कलाकार बड़े स्वाभिमानी थे, वे कभी मुसलमानी नरेशों के सामने झुके नहीं—

महाराष्ट्रीय कलाकार बड़े स्वाभिमानी थे। वे कभी मुसलमान नरेशों के सामने झुके नहीं, और न उन्होंने कभी मुसलिम नरेशों के इंगतों पर अपनी कला को विकृत बनाया। वे किसी भी शाही प्रलोभन में न पड़े। उन्होंने अपनी कला का उपयोग राष्ट्रोत्थान में लगाया। वे कला का वास्तविक मूल्य समझते थे। वे जानते थे कि कला का सौन्दर्य तभी प्रदीप्त होता है, जबकि उसके अन्दर राष्ट्रीय भावना समाविष्ट हो जाती है।

संगीत की एक सूत्रता को अक्षुण्ण रक्खा गया—

इस काल के महाराष्ट्रीय-संगीत में सब से महत्वपूर्ण बात जो मिलती है वह है उसका राष्ट्रीय रूप। संगीत का हमें खण्ड-खण्ड रूप नहीं मिलता। हमें उसमें एक-सूत्रता प्राप्त होती है, और इस एकसूत्रता की नींव विशाल राष्ट्रीय भावना की पृष्ठ-भूमि पर आधारित है। हमें महाराष्ट्रीय संगीत में मानव का संकीर्ण रूप नहीं मिलता बल्कि हमें उसमें मानव का महान राष्ट्रीय रूप ही प्रतिबिम्बत होता हुआ दीखता है। महाराष्ट्रीय संगीत मानव की सच्चरित्रता का प्रधान अङ्ग था। सभी कलाकारों ने मानव प्रेम पर विशेष बल दिया। इस काल में जो संगीत निर्मित हुआ उसमें मानव-प्रेम ही सर्वोपरि रहा। महाराष्ट्रियों का विश्वास था कि संगीत-कला राष्ट्र के लिए तभी सार्थक बन सकती है, जबकि वह मानव प्रेम का प्रगटीकरण करे। जो संगीत

मानव हृदय में उच्चता का आविर्भाव नहीं कर सकता, वह कदापि श्रेष्ठ संगीत नहीं हो सकता। बस यही पवित्र भावना महाराष्ट्रीय संगीत की रीढ़ की हड्डी बनी। मरठा काल में जो गीत निर्मित हुए उनमें दार्शनिक भावनाओं की अपेक्षा भक्ति-भावना का अधिक पुट रहा। द्वैतवाद ही इस काल के संगीत का मुख्य आधार था। महाराष्ट्रीय संगीत ने इस द्वैतवाद का प्रचार राष्ट्रीयता के रूप में किया। अनेक महाहाष्ट्रीय नारियाँ भगवत-भजन में लीन हो गई। संगीत के इस द्वैतवाद के पवित्र सिद्धान्त को नारियों ने अधिक अपनाया। पर इसका मतलब यह नहीं कि पुरुष वर्ग द्वैतवाद के सिद्धान्त से दूर रहा। महाराष्ट्रीय भी संगीत को मोक्ष का प्रमुख साधन समझते थे।

सुप्रसिद्ध सन्त संगीतज्ञ गणेशनाथ—

इस युग में गणेश नाम के एक भक्त संगीतज्ञ होगए हैं। बाल घाट जिले के एक ग्राम में उनका जन्म हुआ। वह वैष्णव धर्म के मानने वाले थे। गणेशनाथ पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचते थे और कीर्तन करते थे। कहते हैं कि शिवाजी इनके दर्शन से बड़े प्रभावित हुए थे।

गणेशनाथ के पद महारष्ट्र में बड़े लोकप्रिय हुए। उनके पदों में हमें कृष्ण की भक्ति का गहरा चित्र मिलता है। वह उस भक्ति में इतने डूब चुके थे कि उनका प्रत्येक शब्द संगीतमय निकलता था। उन्होंने अपने सम्पूर्ण वैभव को त्याग करके इस पवित्र मार्ग को अपनाया था।

सुप्रसिद्ध सन्त संगीतज्ञ नामदेवजी—

महाराष्ट्र में सन्त संगीतज्ञ नामदेवजी ने संगीत को व्यापक ही बना दिया था। दक्षिण हैदराबाद में नरसी ब्राह्मणी नामक एक गाँव है, वहाँ दामा सेठ नामक परम भगवद्भक्त दर्जी (छीपी) रहते थे। उनकी धर्म पत्नी का नाम गोसाई था। भक्त संगीतज्ञ नामदेव जी इसी दम्पत्ति के पुत्र रत्न है। विक्रम संवत् १३२७ के कार्तिक शुक्ल १ रविवार के दिन सूर्योदय के समय नामदेव जी का जन्म हुआ था। ये शुरू से ही भगवद्भक्त थे। नामदेवजी के माता-पिता भी भगवद्भक्त थे। वे निरन्तर भगवान के नाम और गुणों का गान किया करते थे।

वास्तव में नामदेवजी के द्वारा महाराष्ट्र प्रान्त में भारतीय संगीत के विकास को बड़ी शक्ति मिली। नामदेवजी ने संगीत को लोक व्यापक बना दिया। जन-साधारण की आस्था को उन्होंने संगीत में लगाया। बालक, बूढ़े और जवान सभी नामदेव के गीतों को गाने लगे।

नामदेवजी का कहना था—"मुझे ज्ञान का मार्ग अच्छा नहीं लगता, मुझे तो गा-बजा कर ही अपने भगवान को रिझाना है। संगीत की अपरमित शक्ति के सम्मुख भगवान कब तक अकड़े रहेंगे, उनको एक न एक दिन झुकना ही पड़ेगा। मेरे भगवान को गाना-बजाना बहुत पसन्द है, इसीलिए मैं उनको प्रसन्न करने के लिए गाता-बजाता हूँ।"

महाराष्ट्रीय संगीत ने भारतीय संगीत के शानदार परम्परा के पवित्र गौरव को सजीव रक्खा--

सुप्रसिद्ध इतिहासकार आम सजीवा अपने ग्रन्थ "The Music of Maharatha Period" के पृष्ठ नं० १०५ पर लिखते हैं—"महाराष्ट्रीय संगीत में एक ऐसी स्फूर्ति और शान्ति मिलती है जोकि मानव को दिव्य पथ पर अग्रसर करा देती है, जो मानव के अन्दर एक नवीन आध्यात्मिक जागृत का आविर्भाव कर देती है। यह संगीत मानव की विलासिता को नष्ट करके उसके अन्दर चेतना की मशाल को जलाता है, और उसको जीवन के सुन्दर पृष्ठभूमि पर ला खड़ा करता है। दरअसल इस युग में जबकि उत्तर भारत पर और कुछ दक्षिण में भी मुसलमानों का दौर-दौरा था, उस वक्त महाराष्ट्र ही एक ऐसा प्रान्त था, जिसका संगीत मानव को अपने यथार्थ रूप की ओर निर्देश कर रहा था। महाराष्ट्रीय संगीत में जितनी हमें जिन्दादिली, जितनी हमें प्रवृत्तियों की सजीवता तथा जितनी इखलाक की उच्चता मिलती है उतनी हमें अन्यत्र नहीं मिलती। वास्तव में महाराष्ट्रीय संगीत ने भारतीय संगीत परस्परा के पवित्र गौरव को शानदार ढंग से सुरक्षित रक्खा। उन्होंने कला की शान को नहीं गिरने दिया। उन्होंने मरते-मरते दम तक कला की एकसूत्रता, एक-रूपता और एक दीप्तता को अक्षुण्ण रक्खा।"

इससे हम भली-भाँति अनुमान कर सकते हैं कि मराठा-काल के अन्दर भारतीय संगीत-गौरव कीर्ति के उच्च शिखर पर विराजमान था। उसमें एक ऐसी ताजगी, एक ऐसी रुहानी शक्ति थी कि जो बराबर मानव को विमुग्ध कर लिया करती थी। प्रसिद्ध ईरानी विद्वान अकिमर ने लिखा है—"मराठा-काल का संगीत ही भारतीय-संगीत की शुद्धता, सुन्दरता एवं दिव्यता को स्थिर रख सका, और उसकी शिलपज्ञता की उच्चता की समानता, उस काल का योरपीय संगीत भी नहीं कर सकता।"

मध्यकालीन संगीत पर सिंहावलोकन

(सन् १२००–१७०० ई०)

अमीर खुसरो एक साधना प्रिय कलाकार था—

मुसलमान सुलतान विद्वानों के संरक्षक एवं आश्रयदाता थे। उनके समय में फारसी के अनेक प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ होगए हैं, जिनमें अमीर खुसरो, मीर हसन देहलवी, तथा वदरवाच के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। अमीर खुसरो के सम्बन्ध में विख्यात इतिहास लेखक आईलिस जीन (Ielish Jien) अपने ग्रन्थ "The out look of Indian Culture" में पृष्ठ १०३ पर लिखता है—"अमीर खुसरो मध्यकालीन युग का एक ऐसा कलाकार था, जिसमें हमें बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उसने साहित्य और संगीत के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन ही अर्पण कर दिया था। वह जिस वक्त गाता था और जिस वक्त गीत लिखता था, उस वक्त वह उसी रम्य वातावरण में तन्मय हो जाया करता था, इसीलिए उसकी कृति में एक अपूर्व सौन्दर्य प्रादुर्भूत हो जाता था, उसके गायन शैली में एक मंत्रमुग्धता पैदा हो जाती थी। वह साधना प्रिय कलाकार था। बादशाह का उस पर विशेष प्रेम था। अलाउद्दीन के दरबार में उसका बड़ा मान सम्मान था। दरबार में उसकी बात का काफी मूल्य था। उसने भारतीय संगीत की, सितार का नवीन आविष्कार प्रदान करके एक महान सेवा की है, इस महान कलाकार की उच्चता की शानदार धाक को हिन्दू कलाकार भी मान गए थे। वे भी उसकी अद्वितीय प्रतिभा के कायल थे। कब्बाली गायन शैली का आविष्कार भी उसने किया, जिससे गायन क्षेत्र में एक अभिनव क्रान्ति का जन्म होगया। उसके यह शब्द कला के प्रति ईमानदारी एवं बफादारी के पूर्णरूप से प्रमाण स्वरूप हैं—"I am an Indian, if a Turk, I do not derive my inspirations from Egypt, I do not therefore speak of Arabia, My lyre respons to the Indian Theme" (मैं तुर्क हूँ तो एक भारतीय भी हूँ, मैं अपने विचारों को मिश्र से नहीं लेता हूँ इसी कारण से न मैं अरब के विषय में ही कुछ बोलता हूँ। मेरी कविता भारतीयपन को दर्शाती है।)

आपके द्वारा मिश्रित राग जो आधुनिक संगीत में प्रचलित हैं, उनमें मुख्य साजगिरी, उश्शाक माफिक, जिला, फरगना, सरपर्दा और सनभवनम आदि हैं। अतएव अमीर खुसरो ने जो भारतीय संगीत का उपकार अपनी अमूल्य रचनाओं एवं सितार के आविष्कार के द्वारा किया है वह बहुत ही महत्व का है तथा भारतीय उनके उपकार के आभारी हैं।

एक विद्वान का कहना है—

"Persian models began to be introduced into Indian music, evidently widening the gulf between the Northern and Southern schools. The Northern school later on adopted a new scale as its basic or Suddha scale, while the Southern school retained the traditional one. Scholars believe that this change in the Northern school was wholly due to our contact with the Persian art of which Amir Khushru was the pioneer. With his rare insight and art, he introduced new & finer variations of the Rags and invented new instruments. It is therefore true that he not only contributed to the polish of the art, but also extended its possibilities. But it is equally true that attempts could not alter its traditional Hindu character. Perhaps, he never attempted any such alteration at all."

इसी प्रकार मीर हसन देहलवी तथा बदरवाच ने भी अपने सुन्दर एवं संगीत-मय काव्य से भारतीय संगीत को समृद्धि बनाया। इन्होंने अपने काव्य के संगीत की नवीन-नवीन ध्वनों पर रचना की।

सुकवि चन्दवरदाई आर्य संस्कृति का महान उपासक था—

संस्कृत की अनेक पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया गया, जिससे मुसलमानों को भारतीय संस्कृति को पहचानने में सुविधा पड़ी। इसी समय उत्तरी भारत में पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्दवरदाई ने संगीतमय कविता करके भारतीय संगीत को शक्तिशाली बनाया। चन्दवरदाई की कविता गेयत्व से परिपूर्ण रहती थी। कहते हैं कि चन्दवरदाई स्वयं एक अच्छा गायक था उसका स्वर बड़ा मधुर एवं आकर्षक था। वह जिस वक्त अपनी कविता को गाता था, उस वक्त दरवार में सन्नाटा छा जाता था। वास्तव में वह आर्य संस्कृति का महान उपासक था। उसने संगीत और साहित्य दोनों की महान सेवा की, और ऐसे समय में जबकि परसियन संस्कृति का भारत में बोलबाला था। हिन्दी भाषा का यह पहला कवि कहा जाता है।

पंजाब का संगीत

नानक ने अपने संगीतमय पदों से पंजाब प्रान्त को जगा दिया। पंजाब में उन्होंने संगीत की एक नवीन एवं स्फूर्तिमय चेतना बिखेर दी—

नानक का जन्म सन् १४६६ में लाहौर प्रान्त के निकट तलबन्डी नामक ग्राम में हुआ था। आजकल उस ग्राम का नाम उन्हीं के नाम पर "ननकाना साहब" रख दिया गया है। नानक सिक्खों के प्रथम गुरु थे, जिन्होंने सिक्ख धर्म को जन्म दिया था। उनका कहना था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान हैं। वे जाति-पाँति के भेद को नहीं मानते थे। उन्होंने अपने भजनों में इसी बात को गाया, और लोगों को समझाया कि मानव मानव चाहे वे किसी भी धर्म के हों सब बराबर हैं। नानक और बाद में उनके शिष्यों ने भारतीय संगीत का प्रचार एवं प्रसार पंजाब में खूब किया। उनके संगीत से मानव का नैतिक स्तर उत्कृष्ट हुआ।

इस महापुरुष के जन्म के समय वीर प्रसूता पंजाब भूमि की दयनीय दशा थी, जिस प्रदेश ने संसार को पाणिनी, चरक, कौटिल्य और ब्रह्मपुत्र जैसे रत्न दिए वह मुसलिम शासन के आतंक से सिहर उठा था। आक्रान्ताओं के भीषण आघात सहते-सहते पंजाब का सीना छलनी हो चुका था। मंगोलों के आक्रमणों से जीवन में अस्थिरता प्रवेश कर रही थी। जन साधारण की दशा सोचनीय थी। शान्ति और उद्धार के लिए मानव आत्मा छटपटा रही थी। गुरु नानक ने देश की मानसिक एवं बौद्धिक उथल-पुथल को समझा। उन दिनों हिन्दू समाज पर, अन्दर और बाहर से आक्रमण हो रहें थे। रामानन्द यह घोषित कर चुके थे कि परमात्मा की पूजा-आराधना का सबको समान अधिकार है। काशी में कबीर कट्टर पंथी धर्म के आडम्बरों एवं जात-पांत पर करारी चोट कर रहे थे। चैतन्य ने उपदेश दिया कि कोई बड़ा नहीं है, ईश्वर की दृष्टि में सब समान हैं। वल्लभाचार्य का भक्तिमार्ग का प्रचार चारों ओर फैल रहा था। स्वभावतः गुरु नानक पर इन विचारों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने सभी धर्मों की श्रेष्ठ बातें ग्रहण की। वह निर्गुण ब्रह्म की उपासना के अनुयायी और जात-पांत के भेदभाव मूर्ति-पूजा, धार्मिक आडम्बर के घोर विरोधी थे।

गुरु नानक के द्वारा सारे पंजाब में धार्मिक संगीत का खूब प्रचार हुआ। देश की संकीर्ण एवं डगमगाती परिस्थितियों ने पंजाबी संगीत पर जो अज्ञानता का घना आवरण डाल दिया था उसको गुरु नानक ने बड़ी कुशलता से ऊपर उठाया।

पंजाब में उन्होंने संगीत की एक नवीन एवं स्फूर्तिमय चेतना बिखेर दी, नानक ने जीवन का गीत गाया। नानक ने अपने भजनों द्वारा बतलाया कि मिथ्याडम्बरों, पाखण्डों, अवनति मूलक अंधविश्वासों, एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या,

द्वेष और घृणा के भावों, ऊँच नीच के मनुष्यकृत भेदों से ऊपर उठकर उसमें प्रेम, समता, बन्धुता को अपनाना चाहिए। सत्य, सन्तोष तथा विचार नवीनता का हमें नानक के भजनों में एकीकरण मिलता है। पंजाब में नानक के भजन घर घर में गूँजने लगे। पंजाबी महिलाओं ने नानक के भजनों को बड़े प्रेम से गाया। इन भजनों की पृष्ठभूमि पर ही "किनड़ी", "जिकड़ा" और "मल्डा" नामों का सृजन किया गया। इन नृत्यों की पृष्ठभूमि पूर्णरूपेण भक्तिरस तथा दार्शनिक रूप से परिवेष्टित है। यह नृत्य प्रधान रूप से महिलाओं के नृत्य हैं। इनमें नारियों की आन्तरिक सुषमा को बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया जाता था।

हिंगल नृत्य की जन सामान्य में सजीवता—

इसके अतिरिक्त संत बाबा फरीद के पद भी बड़े संगीतमय होते थे। अनेक पदों में राग-रागनियों का समावेश रहता था। इनके पदों ने इस काल में संगीत की खूब अभिवृद्धि की। इन्होंने गा-गाकर जीवन के गहन तत्वों को सर्वसाधारण को समझाया। इनके कई एक पदों पर भी नृत्यों का निर्माण हुआ। कहते हैं कि 'हिंगल' नृत्य इन्हीं के पद पर निर्मित हुआ था। मध्यकालीन युग में हिगंल नृत्य पंजाब प्रान्त में बड़ा लोकप्रिय रहा।

कवि हरवंश ने भी अपने काव्य से पंजाब में संगीत की उज्ज्वलता को बढ़ाया हरिवंश ने तो अधिकतर गीत ही लिखे, जिनको पंजाबियों ने बहुत पसन्द किया। इनके गीतों में २४ राग-रागनियाँ पाई जाती हैं। इनके कई एक गीत आज भी बड़ी दिलचस्पी के साथ पंजाब में गाये जाते हैं। इन्होंने संगीत के द्वारा जीवन की व्याख्या बड़े कलात्मक ढंग से की थी।

पंजाब प्रान्त में जयदेव के "गीत गोविन्द" का प्रचलन भी खूब रहा—

इसके अतिरिक्त पंजाब में जयदेव के 'गीत गोविन्द' का भी प्रचलन खूब रहा। पंजाबियों ने जयदेव के गीतों को बड़े प्रेम से गाया। नारियों ने विशेष रूप से गीत गोविन्द के गीतों को गाया। उनके कई एक गीतों पर नृत्य भी निर्मित हुए। पनघट का वातावरण बड़ा संगीतमय रहता था। पंजाबी नारियाँ जब कुँए से पानी भरने जाती थीं तो वे गाना गाती हुई जाती थीं।

मध्यकालीन युग में पंजाब में सभी प्रकार के गीत एवं नृत्य निर्मित हो चुके थे—

मध्यकालीन युग में पंजाब में सभी प्रकार के गीत, नृत्य निर्मित हो चुके थे, जैसे विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत रचे गए, अन्य अवसरों के लिए भी

गीत बने। विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के नृत्यों का प्रदर्शन होता था। सावन का महिना पंजाब के लिए विशेष संगीतमय होता था। इस काल में झूले के गीत भी बन चुके थे। बहिने झूले पर बैठकर अपने भाइयों के मंगल गीत गाती थीं। मध्यकालीन युग से पूर्व इन गीतों का प्रचलन पंजाब में नहीं हुआ था। अनेक प्रकार के लोकगीतों, लोकनृत्यों का भी प्रचलन हो रहा था।

कांगड़े का संगीत

यहाँ के संगीत में प्राचीनता अधिक पाई जाती है। मध्यकाल में "रली का त्यौहार" बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। यह त्यौहार पूर्ण संगीतिक है। कुवारी लड़कियों का एक मनोहर उत्सव है, जो आज तक कांगड़े के पहाड़ों में बड़े समारोह के साथ मानाया जाता है। इस त्यौहार के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है, वह इस प्रकार है—"एक ब्राह्मण ने अपनी पूर्ण युवती कुमारी "रली" का विवाह एक शंकर नामक बालक के साथ कर दिया। वह आयु में उससे कहीं अधिक छोटा था। जब डोली बिदा होकर नदी के किनारे पहुँची, तब रली ने कहारों को रुकने को कहा। उनके ऐसा करने पर रली ने अपने भाई "वस्तु" से कहा—"दुर्भाग्य से मेरा विवाह एक बालक से कर दिया गया है। इसलिए मैं जीवित न रहूँगी और प्राण त्याग कर दूँगी। भविष्य में मेरी दुर्गति की स्मृति में कुवारी लड़कियाँ हम तीनों की मूर्तियाँ बनाकर सारे चैत पूजेंगी। प्रथम वैशाख को जिस दिन मेरा विवाह हुआ था, उस दिन इसी भाँति हमारा विवाह रचाया जायगा। इसके बाद दूसरे दिन हम तीनों की मूर्तियों को डोली में नदी के किनारे ले जायेंगी और इन्हें बहा देंगी। ऐसा वे मेरी यादगार में करेंगी तथा इसका उनको यह फल मिलेगा कि उनका कभी मेरी तरह बेमेल, बे-जोड़ विवाह नहीं होगा।" इतना कह कर उसने नदी में छलाँग लगादी और वह डूब गई। उसी दुःख से उसके पति शंकर तथा भाई वस्तु ने भी डूब कर आत्म हत्या करली।

तब से आज तक उनकी स्मृति को सजीव करने के लिए रली उत्सव मनाया जाता है। बाल-विवाह, बेजोड़ विवाह का कैसा मूक निरन्तर श्रेष्ठ एवं जबरदस्त विरोध है। इस संगीतमय उत्सव से जहाँ यह स्पष्ट है कि योग्य वर की प्राप्ति एवं विवाह के लिए वे उत्सुक रहती हैं, वहाँ यह भी स्पष्ट है कि माता पिता अथवा समाज द्वारा किए गए बेजोड़ विवाह के सामाजिक अत्याचार को वे किसी प्रकार भी सहन नहीं करना चाहतीं।

मध्य युग में कांगड़े के संगीत में वैदिक संगीत की गहरी छाप पाई जाती थी। नृत्यों की बाहुल्यता थी। ढोल, तुरही वाद्यों का प्रयोग किया जाता था।

उत्तर प्रदेश का संगीत

स्वामी रामानन्द ने उतर प्रदेश के संगीत अभिवृद्धि में बड़ा योग दिया—

स्वामी रामानन्द ने उत्तर प्रदेश के संगीत अभिवृद्धि में बड़ा योग दिया। भजनों और गीतों के द्वारा संगीत का प्रचार हुआ। स्वामी रामानन्द ने विलासमय जीवन के प्रति लोगों को ललकारा। उस वक्त उत्तर प्रदेश में लोग विलासिता तथा अनैतिकता के वायुमन्डल में खो गए थे। वे संगीत का मूल लक्ष्य भूलकर गलत पथ पर चले गए थे। अतएव रामानन्दजी ने अपने प्रवचनों द्वारा लोगों को वास्तविक लक्ष्य निर्देश किया। संगीत विलासिता का उपकरण नहीं, इस तथ्य का उन्होंने आध्यात्मिक पदों को प्रस्तुत करके प्रामाणित किया। जीवन का उद्देश्य कला के सही पक्ष को अपनाना है। हमारा जीवन कलामय है, किन्तु ऐसी कला जो जीवन को विकासशील बनाए।

"आल्हा ऊदल गान" मध्यकालीन युग की एक अपूर्व देन है। इस गान को ग्रामीण लोग बड़े आनन्द से अब तक गाते हैं। यह वीर रस की कविता है। इसके सुनने से बड़ा जोश और उत्साह पैदा हो जाता है। इसके गाने की अपनी एक अनूठी पद्धति है। यह प्रायः सावन के महीने में गाया जाता है। भारतीय संगीत में इसका उच्च स्थान है।

इस काल में उत्तर प्रदेश में अनेक संत संगीतज्ञ प्रसिद्ध थे, जैसे मलूकदासजी, दूलनदासजी, बीरू साहब, संत रैदास, जगजीवन, ध्रुवदास, नरहरिदेवजी, रसिक-देवजी, छीत स्वामी, नजीर, नागरीदासजी।

बीकानेर के राजा पृथ्वीराज एक सुकवि थे, और वह संगीतमय कविताएँ किया करते थे—

इसी काल में बीकानेर के राजा पृथ्वीराज एक सुकवि थे। उन्होंने संगीतमय कविता लिखी। उनकी कविता बड़ी प्रभावशाली होती थी। एक बार जब महाराणा प्रताप कष्टों और मुसीबतों से तंग आकर निराश हो चुके थे, और वे अकबर की आधीनता स्वीकार करने वाले ही थे, तभी उन्हें पृथ्वीराज की एक कविता प्राप्त हुई। वह बड़ी संगीतमय थी। उसको पढ़कर महाराणा प्रताप का विचलित हृदय एक बार फिर आशा के उल्लास से परिपूर्ण हो गया, और पुनः आजादी की पवित्र भावना ने उनको गौरवपूर्ण बना दिया। उनके अन्दर स्वाभिमान जाग उठा। ऐसी थी पृथ्वीराज की पुरअसर संगीतमयी कविता। उस कविता में संगीत की अभिव्यंजना अधिक रहती थी। उसमें राग रागनियों का समावेश रहता था। पृथ्वीराज विद्वानों

का आदर करता था। पृथ्वीराज ने साहित्य और संगीत के प्रचार में सक्रिय योग दिया। मध्यकालीन युग के वे जगमगाते रत्न थे।

पृथ्वीराज ने जो कविता महाराणा प्रताप को भेजी थी, वह इस प्रकार है:—

"अकबर समंद अथाह, सूराषण भरियो सजल।
मेवाड़ों तिण माय, पोयण फूल-प्रताप सी॥
अकबर घोर अंधार, अंधाणा हिन्दू अबर।
जागे जग दातर पोहरे राणा प्रताप सी॥
हिन्दू पति परताप, पत राखी हिन्दूआण री।
सहे विपत संताप, सत्य सपथ करि आपणी॥
मूंछा पटकु पाण, कै परकूँ निज सिर करद।
लिख दीजै दीवाण, इन दो या हली बात इक॥"

इस कविता में संगीत अपनी पूर्ण अवस्था में अभिव्यक्ति हुआ है। राजस्थानी लोग आज भी इसको बड़े सुन्दर ढंग से गाते हैं।

बंगाल का संगीत

इस युग में बंगाल, गुजरात, जौनपुर आगरा, दिल्ली, काशी, वृन्दावन, संगीत और साहित्य के केन्द्र थे। बंगाल के अन्दर संगीत का बड़ा उत्कर्ष हुआ। बंगाल में अनेक संत संगीतज्ञ पैदा हुए, जिन्होंने बंगाली संगीत को समृद्धि बनाया। उन संतों में चैतन्य महाप्रभु का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका जन्म बंगाल में नदियां नामक ग्राम में हुआ था। यह श्रीकृष्ण के बड़े भक्त थे। उनके संकीर्तन एवं भजनों में बड़ी मधुरता एवं मंत्रमुग्धता थी। कहते हैं कि एक दिन चैतन्य गीत गाने में तन्मय हो रहे थे। दो मुसलमानों ने उन्हें पत्थर के टुकड़ों से मारा, जिससे उनका सिर फूट गया। खून बहने लगा। किन्तु उन्हें तनिक भी रोष उत्पन्न नहीं हुआ। वह प्यार के साथ आगे बढ़े और दोनों को गले से लगा कर बोले—"तुम लोग तो सब से अधिक दया और संगीत के अधिकारी हो, क्योंकि और से तुम लोगों को उनकी अधिक आवश्यकता है।" चैतन्य के प्रेम भरे शब्द सुनकर वे दोनों मुसलमान उनके चरणों पर गिर पड़े और वे उनके अनन्य भक्त बन गए। इन मुसलमान शिष्यों ने भी चैतन्य महाप्रभु के गीतों को गा गा कर बंगाल के वातावरण को संगीतमय बनाया। इस युग में "बुलखा" और "हीवा" बंगाली नृत्यों का जन्म हुआ। इनमें मानव के दार्शनिक रूप को निखारा गया था। थिब्बा" इसमें मानव प्रेम को विस्तृत किया गया था। पन्द्रहवीं, सोलहवीं शताब्दी में यह नृत्य

बंगाल में बड़े लोकप्रिय थे, वास्तव में मध्यकालीन युग में बंगाल के संगीत में हमें मानव जीवन की असीम गहराई तथा आत्मा की सुरम्यता की उत्कृष्टता प्राप्त होती है। बंगालियों ने संगीत के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण इस बात का ध्यान रक्खा कि मानव जीवन उसमें सिकुड़ न पाए, मानव जीवन की प्रवृत्तियों का फैलाव सुचारु ढंग से हो, तथा जीवन के उथले खन्डहर न उभरने पाए। अतएव बंगाली संगीत में हमें मानव की विराटता का जितना स्पष्ट चित्र प्राप्त होता है, उतना इस काल के अन्य प्रान्तों के संगीत में नहीं मिलता। बंगाली संगीत आपको इस युग में भक्ति-रस प्रधान मिलेगा। संगीत का दार्शनिक रूप उभरने नहीं पाया है। बंगाली नारियाँ संगीत के आयोजनों में खुलकर भाग लिया करती थीं। वे नृत्य के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रगट हुई। उन्होंने नारी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नृत्यों का उपयोग किया। इस युग में अनेक बंगाली नारियाँ संगीत के विशाल क्षेत्र में आ चुकी थीं, जिन्होंने बंगाली महिला वर्ग में बड़ा सुन्दर कार्य किया। देवी देवताओं की पूजा का प्रचलन बंगाल में खूब था। धार्मिक कृत्यों से बंगाली संगीत को बड़ी शक्ति और स्फूर्ति मिली।

बंगाल के संगीत में "श्रीकृष्ण कीर्तन" का प्रमुख स्थान है। रमाई पंडित ने संगीत को विकसित किया। उनके पद बड़े लोकप्रिय हो रहे थे। मयूर भट्ट के पद भी इस युग में खूब प्रचलित थे। इनके मंगल गान बड़े लोकप्रिय हो रहे थे। पर उनका काल निश्चित नहीं हो पाया है। "माणिक चन्द राजार गान" के पद भी बंगाली महिलायें बहुत गाती थीं। इनके पद पर अनेक नृत्य निर्मित हुए। "दुर्गा नृत्य" निर्मित हो चुका था। "नाटय नृत्य" का भी प्रचलन खूब हो रहा था। चन्डीदास और विद्यापति के गीत भी बड़े लोकप्रिय हुए। घर घर में चन्डीदास के पद गाये जाने लगे। सर्वसाधारण लोग चन्डीदास के गीतों को विशेष पसन्द करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १४०३ ई० के पहले ही चन्डीदास हजार के लगभग गीत लिख चुके थे। यद्यपि उनका जन्म कहीं और हुआ था। वह नानूर में ही बचपन में ही बस गए थे। कवि और संगीतज्ञ के अतिरिक्त प्रेमिक रूप में भी वह प्रसिद्ध हुए। वह रामी नामक एक धोबिन के प्रेमी थे। उन्होंने अपना कवित्व और ब्राह्मणत्व सब कुछ अपनी प्रेमिका पर बलिदान कर दिया। उनका विषय राधाकृष्ण का प्रेम था। उसके वर्णन में इतना रस आने के पीछे कहाँ तक धोबिन का यह प्रेम था, यह कहाँ नहीं जा सकता। चन्डीदास के गीत की तुलना मध्ययुग के ऊँचे से ऊँचे संगीतज्ञों के के साथ की जा सकती है। यद्यपि विद्यापति मैथिल के कवि थे, पर बंगाल में उनका जितना आदर था और है, उतना मिथिला में नहीं रहा। बंगाल में उनकी रचनाओं का जो संस्करण प्रचलित है, वह मिथिला में प्राप्त संस्करण से काफी भिन्न है।

उनकी कई रचनायें ऐसी हैं, जो केवल बंगाल में ही प्रचलित थीं। बंगाल रामायण के लेखक कृत्तिबास का जन्म १३४६ ई० में हुआ था। उनके रामायण को बंगला में इस युग में खूब गाया जाता था। आज भी उनकी रामायण को गाया जाता है। यह रचना बहुत उच्चकोटि की है और मध्ययुग की किसी भी भारतीय कृति से इसकी तुलना की जा सकती है। यह रामायण पूर्ण संगीतमय है। रामायण की तरह महाभारत का भी बंगला संस्करण तैयार हुआ। बंगाल महाभारतकारों में काशी राम दास सब से सफल रहे, जहाँ हिन्दी में तुलसीदास कृत रामायण का घर-घर में प्रचार हुआ, वहाँ बंगाल में कृतिवास की रामायण और काशीरामदास के महाभारत दोनों का समान रूप से प्रचार हुआ। भागवत के भी बंगला संस्करण हुए। इसके अतिरिक्त "मनसा मंगल" आदि ऐसे धार्मिक एवं पौराणिक ढंग के गीतों की रचना हुई, जिनकी कथायें बंगला में ही प्रचलित हैं।

चन्डीदास और विद्यापति के उपरान्त सब से बड़े पद कर्त्ता गोविन्ददास (१५१७–१६१२) माने गये। उन्होंने ब्रज बोली में पद लिखे। वह ब्रज बोली ब्रजभाषा से भिन्न थी। बंगाल के वैष्णवों ने ब्रज की यात्रा करते करते एक नई बोली ही बना डाली थी। जिसका मैथिल से अधिक निकट सम्बन्ध है। ब्रज बोली में गोविन्ददास के अतिरिक्त और बहुत से गीतकारों ने इसमें रचना की।

१६१८ ई० में सैयद अलावल का जन्म हुआ। वह बंगाल के एक प्रमुख कवि एवं गीतकार थे। उन्होंने जायसी के "पद्मावत" का अनुवाद बंगला में किया। ऐसा मालूम होता है कि अलावल के युग में बंगला उर्दू लिपि में भी लिखी जाती थी, क्योंकि अलावल की रचनायें चटगाँव और अराकान के इलाकों में पाई गई हैं।

इसके बाद हम एकदम भारतचन्द पर आते हैं, जिनका जन्म १७२२ ई० में हुआ। वह संस्कृत, फारसी आदि के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्होंने "मनसा मंगल" की रचना की। जिसमें विद्या सुन्दर की कहानी भी आती है। आपका काव्य संगीत के दृष्टिकोण से बहुत उच्चकोटि का था। "मनसा मंगल" के पदों पर कई नृत्य बने। इस युग में "मयूर नृत्य" भी बंगाल में प्रचलित था। "सपेरा नृत्य" "पनघट नृत्य" "सलिल नृत्य" "पुष्प नृत्य" "बसन्त नृत्य" "कोकिल नृत्य" विशेष लोकप्रिय थे।

आसाम का संगीत

मध्यकालीन युग में आसाम के संगीत की बड़ी उन्नति हुई। सामूहिक गान तथा सामूहिक नृत्यों का जन्म हो चुका था। यहाँ के गीतों में प्राकृतिक छटा का

सुन्दर वर्णन रहता था। जीवन-संघर्षों का चित्रण किया जाता था। कठिन जीवन की दुरुहता को गीतों में अभिव्यक्ति किया जाने लगा था। देवी देवताओं की आराधना के लिए भी नृत्य और गीत निर्मित हो चुके थे। धार्मिक भावनाओं की बाहुल्यता इन गीतों में पाई जाती है। वर्षा न होने पर इन्द्र की उपासना गीतों द्वारा होती थी, उनका विश्वास था इस प्रकार के पूजन से वर्षा के अधिष्ठाता इन्द्र अवश्य प्रसन्न हो जाता है। इसलिए फसलों को सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के गीत निर्मित हुए जिनको पुरुष और महिलायें गाती थीं। फसल को काटते वक्त भी पुरुष और महिलाएँ नाचते और गाते थे। उनके कई त्यौहार फसल से सम्बन्धित थे। इन त्यौहारों पर संगीत का प्रयोग खुलकर किया जाता था। यहाँ के संगीत में हमें दार्शनिक भावनाओं की पुट बहुत कम मिलती है। भक्ति-रस की प्रधानता यहाँ के संगीत में पाई जाती है। वर्ष के मध्य में यहां संगीत सम्बन्धी एक मेला भी लगता था, जिसमें आम जनता भाग लेती थी, और इसमें बाहर के संगीतज्ञ भी शामिल होते थे। यहाँ के संगीत पर पौराणिक साहित्य का भी प्रभाव गहरा दृष्टिगोचर होता है। अनेक पौराणिक कथाओं पर नृत्य और गीत गुम्फित हुए। कृष्ण और राधा को लेकर अनेक प्रकार के नाट्य नृत्य बने जिनमें सर्वसाधारण विशेष रूप से दिलचस्पी लेता था। महाभारत और रामायण की कथाओं पर भी मध्यकाल में गीत और नृत्य निर्मित किए गए। मुसलिम संस्कृति का प्रभाव यहाँ के संगीत पर पड़ चुका था, लेकिन उत्तरप्रदेश और बिहार और पंजाब के समान गहरा नहीं था। संगीतिक स्वांगों की भी प्रथा प्रचलित थी।

बसन्त ऋतु के शुभागमन पर जो त्यौहार मनाया जाता था उसका नाम है "वहागबिहू" इसका दूसरा नाम है "रंगाली बिहू"।

मध्यकालीन युग के युवक युवतियों में वास करने वाली प्रणय की भावना व्यक्त करने का यह उत्सव एक माध्यम के रूप में था। इस उत्सव पर जो "बिहू" गीत गाए जाते थे वे प्रायः सभी शृंगार गीत ही होते थे, यह कहना अनुचित न होगा। मध्यकालीन युग में आसाम में यह उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। युवक अपनी प्रेमिका के प्रति अथवा युवती अपने प्रियतम को सम्बोधित करके अपने मन की बात गीत के रूप में स्पष्ट करते थे।

मध्यकालीन युग में आसाम के अन्दर एक महान संगीतज्ञ शंकरदेव हो गए हैं। यह जाति के कायस्थ थे। इनके "बड़ गीत" आज भी आसाम में बड़े आदरपूर्वक गाये जाते हैं। "बड़ गीतों" के आप ही जन्मदाता थे। "बड़ गीतों" में आपने आसाम के निवासियों के जीवन पर सुन्दर प्रकाश डाला है। आपके गीतों में धार्मिकता का पुट अधिक रहा करता था। आसाम वालों ने आपके गीतों को मुक्त हृदय से अपनाया

मन्दिरों में भी आपके गीत गाये जाने लगे थे। आसाम को संगीतमय बनाने में शंकर देव का विशेष प्रयास रहा। उनके गीतों में जितनी हमें मानव जीवन की गहराई मिलती है उतनी अन्य संगीतकारों के गीतों में नहीं पायी जाती। वास्तव में शंकरदेव ने आसाम के संगीत को नवीन दृष्टि दी, नवीन कल्पना प्रदान की, और नवीन शक्ति से विभूषित किया। भारतीय संगीत के इतिहास में शंकर देव का नाम सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

इसी युग में शंकरदेव जी के शिष्य माधवदेवजी भी हुए। इन्होंने भी आसाम के संगीत को विकास के मार्ग पर बढ़ाने में विशेष कार्य किया। इनकी संगीत की पद्धति करीब-करीब वही थी जोकि इनके गुरूदेव की थी। इनके संगीत में आत्मा की पवित्रता का वायुमन्डल अधिक पाया जाता है। इन्होंने अनेक प्रकार के गीतों की रचना की। नृत्य और वाद्य के क्षेत्र में भी इन्होंने हाथ बटाया। वह संगीत के अनन्य भक्त थे। आसाम के संगीत को आज जो हम इतना उत्कृष्ट एवं समृद्धिशाली देख पाते हैं, इसका मुख्य श्रेय इन्हीं दो संगीतज्ञों शंकरदेव और माधवदेवजी को है। भारतीय संगीत के इतिहास में इन दोनों का नाम सदैव अमर रहेगा।

मणिपुर नृत्य—

इम्फाल की घाटियों का सुन्दर संगीत हमें मणिपुर नृत्य के रूप में प्राप्त हुआ है। इसका जन्म ऐसा कहा जाता है कि मध्यकालीन युग में हो चुका था। कुछ लोगों का कथन है कि मणिपुरी नृत्य में अश्लीलता है, लेकिन ऐसी बात नहीं है। अगर नैतिकता के बारे में लोगों के सोचने विचारने का दृष्टिकोण इतना गिर जायगा, तो जिस पवित्र ग्रन्थ "सूरसागर" में महाकवि सूर ने कृष्ण और गोपियों की लीला का वर्णन किया है, और जिसे पढ़कर हमें आत्मिक शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होता है, निश्चय ही वह कोक शास्त्र बन जायगा, और कवि सूर कोक पंडित। परन्तु बात ऐसी तो नहीं है। ठीक इसी प्रकार मणिपुरी नृत्यों में कीर्तन के माध्यम से नृत्य होता है। इनके द्वारा गोपियों के कृष्ण के प्रति भक्ति प्रगट होती है और गोपियों की विरह में क्या स्थिति होती थी, नृत्य द्वारा उनका सुन्दर एवं मनोमुग्धकारी परिचय मिलता है। मणिपुरी नृत्य की वेशभूषा का यदि आप गम्भीरता से विचार करें, तो मालूम होगा कि वह हमारी प्राचीन पद्धति के अनुसार ही है, उस पहनाव में हमारी भारतीय संस्कृति सौन्दर्यात्मक ढंग से उभरती है, उसमें नर्त्तकी के शरीर का प्रत्येक अवयव ढका रहता है, अतएव वे नृत्य पवित्र एवं उत्कृष्ट हैं। मणिपुरी नृत्य में हमें मानव जीवन की पवित्रतम, सुन्दरतम एवं गहनतम पृष्ठभूमि मिलती है। भारतीय संस्कृति का जितना कलात्मक ढंग से इस नृत्य में निरूपण हुआ है, उतना बहुत कम

अन्य स्थानों पर देखने को मिलता है। यह नृत्य मणिपुर राज्य का नृत्य है, उसमें अपनी प्रदर्शन करने की शैली है। अनेक कलाकारों ने इस नृत्य में प्रवीणता प्राप्त की है, उन सबका नाम यहाँ देना बड़ा ही मुश्किल कार्य है। भारतीय संगीत में इस नृत्य का अपना एक उत्कृष्ट मौलिक, तथा विशिष्ट स्थान है।

उड़ीसा का संगीत

उदयगिरि में ४४ एवं खण्डगिरि में २१ गुफाए मिली हैं। ये गुफाएँ पत्थर में से खोद कर निकाली गई हैं। एक सीध में पत्थर की लम्बाई के अनुसार एक से लेकर सात आठ गुफाएँ तक हैं। गुफाओं की बाहरी दीवारों पर कलात्मक चित्र एवं भीतर महावीर, बुद्ध, हनुमान और गणेश की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। गुफाओं में सब से अधिक चित्रित "रानी गुफा" नामक गुफा है, जिसमें जीवन के विभिन्न दृश्यों का चित्रण है। कहीं शिकार, कहीं विजय-यात्रा, कहीं नृत्य पूजा और कहीं गृहस्थ जीवन के चित्र हैं। नृत्य और पूजा के दृश्यों में आनन्द, भक्ति, प्रेम, शृंगार के सुन्दर भाव स्पष्ट लक्षित होते हैं। शेर और हाथी बहुत ही सजीव और तेजवान हैं। नारियों का सौन्दर्य और शृंगार अत्यन्त सजीव है। उनके सौन्दर्य में संगीलिक आभा स्पष्ट झलकती है। संगीतिक वातावरण का चित्रण बड़े सजीव ढंग से किया गया है, जैसे पूर्ण विकसित और अर्ध विकसित कमल, वृक्षों की तरुणता की रम्यता, पल्लवों की कमनीयता, पुष्पों के रंगीन विकास की चारुता, एवं पत्तियों का संकोच बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है। इन सब में मौन संगीत की कलात्मक अभिव्यक्ति बड़ी चतुरता से की गई है।

कोणार्क का सूर्य मन्दिर—

कोणार्क का सूर्य मन्दिर पुरी के उत्तर पूर्व के कोण पर २० मील की दूरी पर समुद्र तट पर स्थिति है। इसी कारण शायद उसे कोणार्क अर्थात् कोण पर स्थिति सूर्य मन्दिर कहते हैं। अंगरेजी में इसे "ब्लैक पगोडा" (काला मन्दिर) कहते हैं। यह मन्दिर सबसे अधिक ऊँचा है (२२फुट) उसका विस्तार भी सबसे अधिक है अर्थात् वह ८७५ फुट एवं ५४० फुट के अहाते में बना हुआ है।

उसका निर्माण श्री गंगवंश नरसिंह प्रथम (१२३८ से १२६४) ने किया था। उसके निर्माण में ४० करोड़ रुपए खर्च हुए तथा १२०० कलाकार १६ वर्ष तक लगातार काम करते रहे। इतना होने पर भी यह मन्दिर सब से भग्न दशा में है। इस मन्दिर में संगीत की नाना प्रकार की भाव मुद्राओं का सजीव चित्रण है। प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता पर्सी ब्राऊन अपने ग्रन्थ "इन्डियन आर्कीटेक्चर" (भारतीय स्थापत्य

कला) में लिखते हैं—"बहुत ही कम भवन ऐसे होंगे, जो मूर्तियों की सजावट की बाहुल्यता तथा समृद्धि में इस विशाल भवन की बराबरी कर सकें। मन्दिरों के प्रत्येक बाहरी भाग रेखा गणित की आकृतियों, फूल पत्तियों, पौराणिक पशु पक्षियों, यक्ष गंधर्वों, नृत्यकाओं, नाग, नागिनों तथा परियों के संगीतमय मुद्राओं के रूप उत्कीर्ण हैं। मतलब यह है कि भारतीय मस्तिक जितने भी विषयों या रूपों को सोच सका, वे सब इस मन्दिर में मौजूद हैं। इसकी कला छोटी-छोटी कलावृतियों से लेकर विशाल रूप और आकारों तक फैली हुई है।"

मन्दिर के शिखर की चारों दिशाओं में ब्रह्मा की चार मूर्तियाँ हैं, उनके बीच बीच में विशाल नर्त्तकियों की मूर्तियाँ हैं, जो कि वीणा-मृदंग वादन करती हुई उल्लास की मुद्रा में हैं। बीच-बीच में हास्य और नृत्य की स्मरणीय मुद्रा में अनेक सुन्दर वेश-भूषा से सज्जित नारी मूर्तियाँ हैं। शृंगार करती हुई, दर्पण देखती हुई, तथा गाने की अनेक मुद्राओं में नारी मूर्तियाँ अंकित हैं। भुवनेश्वर के मन्दिर में भी इसी प्रकार की संगीतिक मूर्तियाँ पाई जाती हैं। भुवनेश्वर का मन्दिर इसी काल में निर्मित हुआ। यहाँ पर कई सुन्दर मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। मन्दिर के ऊपरी भाग में विद्याधर और गन्धर्व गीत गा रहे हैं। सूर्य मूर्ति की आराधना करती हुई अनेक नर्त्तकियों का चित्रण किया गया है। मन्दिर के अन्दर भी नृत्य गीत की आकर्षक मुद्रा में नर-नारियों के संगीतमय चित्र उत्कीर्ण हैं। सम्पूर्ण वातावरण में उल्लास, विकास और संगीतमय आनन्द प्रस्फुरण हो रहा है, जोकि सूर्योदय के समय विश्व में दीख पड़ता है। कोणार्क में दो विशाल नृत्य करते हुए हाथियों की मूर्तियाँ अलग बनी हुई हैं।

इन सब संगीतमय चित्रों से पता लगता है कि मध्यकालीन युग में उड़ीसा का संगीत विकास पूर्ण अवस्था में से गुजर रहा था। उन चित्रों के देखने से पता लगता है कि मध्यकालीन युग में उड़ीसा में संगीत मानव की आत्मा की वस्तु बन चुका था। उड़ीसा के संगीत का आधार भक्ति रस था। उड़ीसाई संगीत में हमें मानव भावनाओं की सजीवता, प्राणवानता पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। उसमें हमें उपासना का पवित्रतम चित्र मिलता है। इन विभिन्न मूर्तियों के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि मानव जीवन के समस्त भागों पर संगीत छाया हुआ था। संगीत ने मानव जीवन को अश्लीलता की धारा में इतना नहीं डुबोदिया था कि वह पथ भ्रष्ट हो जाता, लेकिन फिर भी संगीत मनोविनोद का मुख्य साधन समझा जाता था। इस युग में अनेक संत संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने उड़ीसा के संगीत को पूर्ण विकसित किया। मन्दिरों में नर्त्तकियों के नाचने की प्रथा पाई जाती थी। ऐसा मालूम होता है कि देवदासी की बुनियाद पड़नी यहीं से शुरू होगई थी। धार्मिक संगीत के अतिरिक्त सामाजिक संगीत भी

निर्मित होने लगा था, जिसमें समाज को विकसित एवं पवित्र करने के लिए प्रयास किया जाता था। राष्ट्रीय संगीत की नींव पड़ चुकी थी। इस युग में "पीपनी" वाद्य का प्रयोग पाया जाता था, वह वाद्य अब नहीं पाया जाता। कहते हैं कि 'पीपनी' को नागा जाति ने अब तक सुरक्षित रक्खा है। नागा प्रदेश में भी संगीत का प्रचार खूब था। मध्यकालीन युग में उड़ीसा के संगीत में मानव जीवन के अनेक पहलुओं का अंकन मिलता है। संगीत और जीवन की एकरूपता को इस युग में स्वीकार कर लिया गया था, ऐसा प्रतीत होता है। विद्यापति और चन्डीदास के गीतों का उड़ीसा में भी खूब धूम-धाम थी। उनके पदों को यहाँ काफी सम्मानित दृष्टि से गाये जाते थे, और आज तक भी गाये जाते हैं। सब मिलकर उड़ीसा का मध्यकालीन संगीत विकास पूर्ण था, लेकिन उसमें दार्शनिक पृष्ठ सुदृढ़ नहीं थी, बस यही एक अभाव उसकी पृष्ठ में था।

बिहार का संगीत

विख्यात संगीतज्ञा चिन्तामणि—

मध्यकालीन युग में बिहार के संगीत में हमें प्रस्फुटित सौन्दर्य, वह आत्मिक सुषमा दिखाई नहीं पड़ती, जो कि बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश के संगीत में थी। लेकिन फिर भी बिहार के नगरों में संगीत अपने पैर फैला चुका था। पटिलपुत्र (पटना) बिहार के संगीत का केन्द्र माना जाता था। इस नगर में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। विख्यात संगीतज्ञा चिन्तामणि ने भारतीय संगीत के विकास में बड़ा योग दिया। इस युग की वह "संगीत-ज्योति" थी। वह वीणा-वादन एवं गायन दोनों में दक्ष थी। उसका स्वर बड़ा मधुर था। इसको "बिहारी बुलबुल" की उपाधि मिल चुकी थी। इसके गाने सुनने के लिए बाहर के लोग भी आते थे। अपने अद्वितीय लावण्य, मनोहर संगीत तथा कलापूर्ण नृत्व से उसने पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया था।

कहते हैं कि सुप्रसिद्ध कवि विल्वमंगल चिन्तामणि से प्रेम करने लग गये थे। चिन्ता ने ही विल्वमंगल को कवि से संगीतज्ञ बनाया। इसकी एक लम्बी कथा है, जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं, अतएव हम यहाँ उसका उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

विल्वमंगल एक महान संगीतज्ञ थे, जिन्होंने बिहार के संगीत में महान योग दिया। आज भी विल्वमंगल के भजन एवं गीत बिहार की नारियाँ बड़े प्रेम से गाती हुई पाई जाती हैं। चिन्ता ने भी विल्वमंगल की याद में कई गीत बनाए और उनको गाया। चिन्ता और विल्वमंगल दोनों के दिव्य प्रेम ने संगीत की पृष्ठ को सौन्दर्य की गहराइयों से अभिव्यक्ति कर दिया। "प्रणय नृत्य", "भावना नृत्य", "चन्द्र नृत्य"

निर्मित किए। इन नृत्यों की पृष्ठभूमि पूर्ण साहित्यिक थी। हो सकता है कि इनकी पृष्ठभूमि में विल्वमंगल ने सहयोग दिया हो। विल्वमंगल ने बिहारी संगीत को शृंगारिक बनाया, किन्तु उस शृंगार में अश्लीलता नहीं आने पाई, उसमें जीवन की गहराई, आत्मा की उज्ज्वलता को विस्तार रूप में उतारा। चिन्ता और विल्वमंगल के प्रेम ने भारतीय संगीत को एक नवीन दृष्टि दी।

विद्यापति महान कवि एवं संगीतज्ञ थे—

विद्यापतिजी का अवतरण उस युग में हुआ था, जब कि अपभ्रंश का स्थान डिंगल और अन्य देशी भाषाओं ने ले लिया था। यही कारण है कि तत्कालीन कवि इसी का आश्रय लेकर कविता कर रहे थे और विद्यापतिजी भी इसी की परम्परा लेकर चले। उनके रचित ग्रन्थों को देखने पर यह ज्ञात होता है कि वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत, अपभ्रंश और मैथिल पर उनका अपूर्व आधिपत्य था। संस्कृत तो इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। उसमें आपका काव्य खूब निखर गया है। उनके पिता गरापत ठाकुर संस्कृत के प्रकान्ड परिडत थे।

विद्यापति के पद और गीत मिथिला और बंगाल में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं—

अपभ्रंश भाषा को संगीतमय बना देना, माधुर्य-रस से परिपूर्ण कर देना, आपका ही कार्य था। इसके अतिरिक्त प्राकृति भाषा में भी आपकी कई रचनायें प्राप्त हैं। वे मैथिल थे, इसलिए मैथिली तो इनकी जन्म भाषा थी। आपकी प्रसिद्ध पदावली की रचना भी इसी में हुई है। वास्तव में वह एक उच्चकोटि के कवि और संगीतज्ञ थे। उनको कविता और संगीत पर समान अधिकार था। बिहारी संगीत को उन्होंने पूर्णरूप से विकसित किया। उसको जनप्रिय बनाया। उनके अनेक पदों पर अनेक नृत्य भी निर्मित हुए।

विद्यापति के यह पद मिथिला तथा बंगाल में अधिक गाये जाते हैं। आपके प्रेम सम्बन्धी पदों में शृंगार को एवं भक्ति सम्बन्धी पदों में शांत-रस को प्रधानता दी जा सकती है। विद्यापति का शृंगार अपने पूर्ण विभावों और अनुभावों सहित संगीत साहित्य में उतरा है। शृंगार के भी दो रूप हैं, संयोग और वियोग।

मैथिल कोकिल—

आपके गीतों की भाषा सरल, सुबोध होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र में आपके गीत खूब गाये जाते थे। कहते हैं कि आपकी आवाज भी बड़ी मीठी थी। आप कुशल गायक थे। आप प्रायः अपने गीतों को स्वयं ही सर्वसाधारण में गाते थे।

आपके सुन्दर गायन पर ही अनेक नारियाँ अपने हृदय आपको अर्पित कर चुकी थीं। ऐसा कहा जाता है, लेकिन हमारे पास इसकी पुष्टि के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इनके गीत झोंपड़ी से लेकर महलों तक गाये जाते थे। वीणा का प्रचलन इनके समय में भी था, लेकिन अधिक नहीं। बिहार में सितार का प्रयोग अधिक बढ़ चला था। तवला, मजीरा, झांझ आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी होता था। इस युग में "कजरी" एक प्रकार का गाना भी खूब प्रचलित था। नाटकों का भी प्रदर्शन किया जाता था। नाटकों में संगीत का पुट अधिक रहता था। विद्यापति ने बिहार के संगीत-साहित्य में एक नवीन धारा प्रवाहित की, किन्तु इन्होंने बिहारी संगीत की दार्शनिक पृष्ठि को सुदृढ़ नहीं किया। इस युग का संगीत भक्ति रस और शृंगारिक प्रधान रहा। नृत्यों का भी प्रदर्शन सार्वजनिक समारोहों में किया जाता था। "होली नृत्य" "भक्ति नृत्य" "सुषमा नृत्य" आदि प्रचलित थे। विद्यापतिजी तिरहुत के राजा शिव सिनहा के दरबार में रहते थे। इनका समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है।

उज्जैन का संगीत

मध्यकालीन युग में संगीतज्ञा रूपमती संगीत-कला में बड़ी कुशल थी। वह गान विद्या में इतनी निपुण थी कि कहते हैं कि प्रसिद्ध गान-विशारद तानसेन भी उनसे कुछ सीख गये थे। उज्जैन से ५५ मील दूर मालवा में उनका जन्म हुआ था, किन्तु उनकी कीर्ति सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई थी। मालवा नरेश वाजबहादुर नृत्य संगीत के विख्यात प्रेमी थे। रूपमती का जब अपने राजा का साक्षात हुआ तो वाजबहादुर उनकी अद्वितीय कला पर तथा रूपमती उनकी गुणग्राहकता पर मुग्ध हो गई। बाजबहादुर को उन्होंने अपना हृदय सर्मापित कर दिया। नरेश ने भी अपनी समस्त रानियों से अधिक सम्मान दिया। उनके लिए एक पृथक महल बनवा दिया गया।

बाजबहादुर संगीत-कला का महान प्रेमी था। वह अपने दरबार में संगीतज्ञों को रखता था। रूपमती और बाजबहादुर में अटूट प्रेम होगया। दोनों ने मिलकर संगीत का प्रचार किया।

अकबर का एक सेनानायक अहमदखाँ रूपमती पर आसक्त हो गया और उसने उसको युद्ध के द्वारा अपने अधिकार में कर लिया।

अहमदखाँ रूपमती को अपने साथ ले गया और उसका विधिवत उपचार करवाया। रूपमती से कह दिया गया था कि उसका पति बाजबहादुर जीवित है।

अच्छी होने पर तुम्हें उनके पास भेज दिया जायगा। यह अहमदखाँ की चाल थी। रूपमती को विश्वास हो गया। स्वस्थ्य होने पर जब रूपमती ने अपने पति बाजबहादुर के पास जाने की इच्छा प्रकट की तो उत्तर मिला कि बाजबहादुर अभी बादशाह का शत्रु है, जब तक वह बादशाह के सामने उपस्थित होकर क्षमा नहीं माँगे और बादशाह उसे क्षमा न करदे, तब तक उसके पास किसी को नहीं भेजा जा सकता। रूपमती को यथार्थ परिस्थिति का पता चला, उसने सोचा प्रतिवाद करना व्यर्थ है। दुष्ट अहमदखाँ को कोई रोकने वाला नहीं।

अहमदखाँ ने रूपमती से कहलवाया कि वह उसका संगीत सुनना चाहता है, इसलिये रूपमती को वह चाहता है। उसने रूपमती को अपनी बेगम बनाना चाहा। पर रूपमती तो अपने पति पर ही एकमात्र न्यौछावर थी।

रूपमती ने दूत को यह सन्देश दिया—"खाँ साहब से कहना कि मैं उनकी बाँदी हूँ, महरवानी करके आज वे यहीं पधारें और उनको खूब गाना सुनाऊँगी इतना कि उनका दिल भर जाए।"

इधर रूपमती ने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया, क्योंकि वह भारतीय कलाकारिणी थी, कला की सच्ची उपासिका थी। कला की शान के लिए उसने मरजाना श्रेष्ठ समझा। वह अच्छी तरह समझती थी कि अहमदखाँ बड़ा दुष्ट है वह अवश्य मेरे संगीत को सुनकर मेरे साथ बलात्कार करेगा, क्योंकि वह संगीत का सच्चा उपासक नहीं था, वह तो रूपमती के रूप पर मोहित था। इसलिए उसने संगीत की पवित्रता के गौरव को सजीव रखने के लिए विषपान कर लिया।

अहमदखाँ खूब सजकर आया था। उसने समझा कि रूपमती मेरे आने में देर होने से रूठकर सो गई है। पुकारने का परिणाम न होते देख उसने रूपमती के मुख से रूमाल उठाया। नीले होठ, चढ़े नेत्र, विचित्र आकृति। पीछे हट गया वह। सिर पीट लिया उसने अपना। रूपमती के बलिदान ने उसकी आँखें खोलदी।

सारंगपुर में एक तालाब के किनारे संगीतज्ञा रूपमती की समाधि है। मालवा में रूपमती के निर्मित सरस पद अब तक प्रेम से गाये जाते हैं। रूपमती कवित्री भी थी। वह सुन्दर गीत लिखने में बड़ी सिद्धहस्त थी। उसके गीतों में प्रेम की पवित्रता की अभिव्यक्ति रहा करती थी। इस काल में रूपमती के पद खूब प्रचलित होगए थे। मालवा और उज्जैन की महिलाओं में रूपमती के पद बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। कहते हैं कि रूपमती वीणावादन में भी बड़ी निपुण थी। उस वक्त उसकी गणना प्रथम श्रेणी के संगीतज्ञों में थी। उसकी कविता में प्रेम का गौरव-गान है। उसके एक पद का भाव है—

"दूसरे लोग सम्पत्तियों का संग्रह करें, "मेरा धन तो प्रियतम का प्रेम है। प्रेम-धन तो मैं सबकी दृष्टि से बचाकर हृदय में रखती हूँ। इस धन में कभी कमी नहीं होती। मेरी सम्पत्ति दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती है, मैंने अपने को प्रियतम को समर्पित कर दिया है। मेरा प्रेम-धन अनन्त है।"

प्रसिद्ध इतिहासकार वेलिस पीब्स (Wallish Pebas) ने "The study of Indian Music" नामक ग्रंथ में लिखा है कि—"रूपमती मध्यकालीन युग की महान संगीतज्ञा थी। वह मालवा नरेश बाजबहादुर की पत्नी थी। बाजबहादुर भी संगीत का महान मर्मज्ञ था। वह संगीत कला पर मुग्ध होकर ही उसने उसको अपनी रानी बनाया। रूपमती सुन्दर कवित्री थी। वीणा-वादक भी थी। उसकी कविता बड़ी संगीतमय होती थी। उस वक्त सम्पूर्ण उज्जैन प्रदेश में रूपमती की कविता को लोग बड़े चाव से गाते थे। उसकी कविता इसलिए और भी लोकप्रिय हुई कि वह प्रेमरस से परिपूर्ण रहती थी। उनमें मानव हृदय का अन्तर द्वन्द भी रहता था। संगीतज्ञा रूपमती ने सोलहवीं शताब्दी में भारतीय संगीत के विकास में बड़ा योग दिया। वह वास्तव में असाधारण संगीतज्ञा थी। उसको राग-रागनियों का पूरा-पूरा ज्ञान था। वह शास्त्रीय संगीत को ही पसन्द करती थी। वह कलाकार के पवित्र चरित्र की समर्थक थी। उसका कहना था "जब संगीत में अपवित्रता आजाती है, तब संगीतज्ञ की मौत हो जाती है। संगीतज्ञ के लिए उसका उज्ज्वल चरित्र ही उसकी अमूल्य थाती होता है। उसका उज्ज्वल चरित्र ही उसके कला की दिव्य सुषमा होती है। यही दिव्य सुषमा कलाकार को अपनी चमकती मंजिल पर पहुँचाती है, जहाँ मानव अपूर्ण से पूर्ण बनता है।"

राजस्थानी संगीत

मध्यकालीन युग में चन्द्रसखी एक बड़ी लोकप्रिय संगीतज्ञा थी—

मध्यकालीन युग में चन्द्रसखी एक बड़ी लोकप्रिय संगीतज्ञा थी। इनके गीतों, भजनों को राजस्थानी जनता बड़े प्रेम से आज भी गाती है। राजस्थान को आपके संगीत पर सदैव से बड़ा गौरव रहा है। आपकी शिक्षा कोई विशेष नहीं थी। मामूली पढ़ी लिखी थी, परन्तु आपका संगीत का अध्ययन विशेष गहरा मालूम देता है। आपके भजनों में काव्यात्मक-सुषमा उतनी उच्चकोटि की नहीं पाई जाती, जितना कि संगीतिक सौन्दर्य उज्ज्वल पाया जाता है। आपकी आवाज इतनी मधुर थी कि राजस्थान वाले आपको राजस्थान की कोकिला ही कहने लगे थे। दरअसल आपका स्वर कोयल को भी मात देता था। राजस्थान के घर-घर में आपको इनके गाने सुनाई

पड़ेगे । बच्चे के नन्हें-नन्हें हाथ पकड़े तालियों की लय पर ताल देकर नारियाँ भजन इस तन्मयता से गाया करती थीं कि जिसे सुनकर नासमझ बच्चा भी झूम उठता था । काम करते वक्त राजस्थानी महिलायें प्रायः चन्द्रसखी के भजन ही गाती थीं । इनके भजन राजस्थान में मीरा के भजनों से भी अधिक लोकप्रिय हुए, ऐसा प्रतीत होता है ।

चन्द्रसखी के भजन केवल महिला वर्ग तक ही सीमित न रहे, जीवन के हर पहलू में पाए जाते हैं । फागुन के महिने में स्निग्ध चाँदनी रात में, बालूरेत पर ग्रामीण लोग इकट्ठे हो "डफ" पर झूम-झूम कर एक दूसरे की गलबहियाँ डाले अलापते हैं ।

"बोलत नहीं राधे, गोरी काहे से ?
पीली-पीली देह वाणी राधे की जल, जमना के न्हाये से ।

उस समय समाँ देखने योग्य हो जाता है । वह वर्णनातीत है । ऐसे मीठे एवं लोकप्रिय भजनों की निर्मात्री चन्द्रसखी कौन थी, कहाँ जन्मी के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं होती । यह बड़े आश्चर्य की बात है । खोज पर खोज चल रही है, लेकिन अभी तक कोई प्रामाणिक सामग्री हाथ नहीं लगी है । परन्तु हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि चन्द्रसखी के भजनों में कुछ ऐसी प्राण शक्ति है, कुछ ऐसी सजीवता एवं चेतनता है कि जो हमें अपनी ओर आकृष्ट किए बिना नहीं रहती । चन्द्रसखी न तो विद्यापति की तरह षडभाषा जानती थी, न सूर सी संगीत विशेषज्ञ थी, न मीरा सी मतवाली, इसलिए उसके भजनों में न तो भावों का सागर है, न विचारों का तूफान, न शब्दों का आडम्बर आपको मिलेगा, न अलंकारों का सुन्दर विधान, न कला की ऊँची उड़ान है और न परिपक्व मस्तिष्क की प्रौढ़ रचना । बस उसके भजनों में हृदय से प्रसूत सीधे-साधे भाव मात्र हैं, और है उन्हीं के अनुकूल सरल भाषा । वास्तव में वह जन-संगीतज्ञा थी । उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह जन-भाषा में लिखा । उनके भजनों में हमें भाषा सौन्दर्य, सरलता की चारुता और मानव को आकर्षित करने की प्रवल शक्ति मिलती है । एक गीत देखियेः——

भजो सुन्दर स्याम मुकुट बिहारी,
वदन कमल पर कुण्डल झलके ।
अलके सोवे घूँघर वाली,
उर वैजन्ती माला विराजे, बन माला साजै गुँजनवारी ।।
केसर भाल तिलक पर से है,
मुरली की छवि है न्यारी ।।

विश्व साहित्य में जो स्थान मीरा ने उपलब्ध किया है, वह चन्द्रसखी भले ही प्राप्त न कर सके, किन्तु राजस्थान की मरुभूमि में संगीतकार के रूप में जितना लोक-

प्रिय चन्द्रसखी हो सकी उतनी मीरा नहीं। राजस्थान निवासियों को अपनी लोकप्रिय संगीतकार स्वच्छन्द आकाश में विचरण करने वाली प्रातः विहंगिनी एवं मरु-कोकिली चन्द्रसखी पर गर्व है। वह मध्यकाल के युग की एक जगमगाती रत्न है। उसने राजस्थानी शुष्क वातावरण को संगीतमय बना कर एक अद्वितीय कार्य किया, जिसको भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय संगीत के इतिहास में उनका नाम ठीक वैसा ही चमकता रहेगा जैसे आकाश पर तारागण।

गुजरात का संगीत

नरसी मेहता का जन्म काठियाबाड़ प्रान्त के जूनागढ़ राज्य में हुआ था। कीर्तन छोड़ कर उन्हें कोई कार्य अच्छा नहीं लगता था। लेकिन एक बात निश्चित है कि नरसी के पदों से गुजरात में संगीत का प्रचार खूब हुआ। गुजरात के घर-घर में नरसी के गीत गाये जाने लगे। जो लोग पहले संगीत को घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे भी नरसी के कीर्तन से प्रभावित हुए। वास्तव में नरसी संगीत के महान उपासक थे। वह संगीत से परे अपने भगवान को नहीं समझते थे। गायन और वादन दोनों में नरसी बड़े प्रवीण थे। नरसी ने संगीत को आम लोगों में पहुँचाया, ऐसे वर्ग में जो संगीत से अब तक महरूम था। "गरवा" नृत्य भी इनके पदों पर निर्मित हुए। "गरबा नृत्य" की शक्ल को नरसी ने स्पष्ट करके जन समाज के सामने प्रस्तुत किया। नरसी के पूर्व जो गरबा गुजरात में प्रचलित था, उसमें धूमिलता अधिक थी, संगीत की प्रवृत्तियों का सुन्दर निखार उसमें न था। नरसी के पद गुजरात की सीमा को लांघ कर उत्तर प्रदेश व अन्य प्रान्तों में भी गाये जाने लगे। इनके पदों में एक ऐसा आकर्षण था कि वह बरवस मानव प्राणियों को आत्मविभोर कर देता था। वह संगीत के सन्मुख सब कुछ भूल जाया करते थे। एक इतिहासकार ने लिखा है—
"गुजरात को जो हम आज संगीतमय देखते हैं उसका अधिकतर श्रेय भक्त नरसी को है। वह भक्त संगीतज्ञों में सबसे आगे थे। उन्होंने अनेक रागों में गीत रचना की, और उनके गीतो में आत्मिक सौन्दर्य बड़ी कलात्मकता के साथ प्रस्फुटित हुआ है। गुजरात के संगीत में जो आज इतना मिठास पाया जाता है, वह वास्तव में नरसी की ही देन है।"

गरबा नृत्य गुजरात की अनोखी देन है—

वास्तव में "गरबा" गुजरात की अनोखी देन है, और इसीलिए गुजरात को इस पर गर्व भी है। गुजरात ने इस नृत्य के साथ जिन अपूर्व भावनाओं को जोड़ दिया है उनके कारण यह और भी महिमामय बन गया है। मध्यकालीन युग में ही "गरबा" को स्पष्ट रूप से जन्म हुआ। शरद की सुहानी रातें गरबा नृत्य करती

हुई गुजराती महिलाओं की हथेली की ताल, पैर की पटकन और गीतों से और सजीव हो उठती थीं, सावन भादों की भयंकर झड़ियों के पश्चात, कुवार कार्तिक के शारदीय वातावरण में, आकाश में उमड़ घुमड़ कर चाँद के साथ आँखमिचौनी करने वाले बादल जब कहीं दूर चले जाते हैं और शरद का हँसता चाँद बादलों के काशनी से दुपट्टे में लुका छिपी करता है, तो गुजरात के ग्राम ललनाओं के सुन्दर चेहरे गरबा की हाथ की ताली एवं गीतों से मुखरित हो उठते थे। आज भी गुजरात में गरबा का उतना ही महत्व है जितना कि मध्यकालीन युग में था। आश्विन के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की पूजा का घट सजाया जाता है। "गरबा" का घट बहुत ही सुन्दर होता है और इस घट के ऊपर के भाग में कटी हुई फूल पत्तियाँ बनी हुई होती हैं और उसके बीच में घी का दीपक रखा जाता है। इसे घट की गरबी कहते हैं। इस नृत्य का गरबा नाम पड़ने के कई कारण हैं। इस नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों को गरबा कहते हैं सम्भवतः उन्हीं के कारण इसका नाम गरबा पड़ गया हो और वे गीत गरबा नामक एक गीतकार ने बनाये थे। अतएव गरबा नृत्य गरबा नामक गीतकार की अमर यादगार है। यह गरबा गीतकार मध्यकालीन युग में पैदा हुआ था लगभग राजपूत युग में। इस नृत्य में जिस घट को सजाया संवारा जाता है और पूजा के काम आता है, उसे "गरबा" कहते हैं। लोक संस्कृति के विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि "गरबा" घट "गर्भ" का प्रतीक है, इसके द्वारा महिलाओं की यह कामना प्रदर्शित होती है कि गरबी घट में रखे दीपक की तरह उनका गर्भस्थ बालक अथवा गर्भ में आने वाला बालक प्रकाशवान अथवा तेजस्वी हो।

गरबा के अनेक रूप—

यह ठीक है गरबा गुजरात की देन है, पर अब इस पर उसका एकाधिपत्य नहीं। गरबा अनेक रूपों में अनेक राज्यों में प्रचलित है। महाराष्ट्र में "गोफा" उत्तर प्रदेश में विभिन्न रूपों में "रास" और आंध्र में "कोलाटम" आदि नामों से यह नृत्य प्रसिद्ध हैं। कृष्ण अथवा रासलीला नृत्य गरबा की शैली पर होने वाले नृत्य हैं। मालवा का "गड़बा नृत्य" और "मटकी नृत्य" बिल्कुल गरबा जैसे ही है। मालवा के यह नृत्य भी मध्यकालीन युग में ही जन्मे थे। पंजाब की नारियों का "गिद्धा" गरबा का ही रूप है, वह भी मध्यकालीन युग में पैदा हुआ था। ताली और गोल घेरे में नाचने की भाव भंगी बहुत कुछ गरबा से मिलती है।

मध्यकालीन युग में गरबा सम्मिलित नृत्य नहीं था, परन्तु आजकल यह एक सम्मिलित नृत्य के रूप में अथवा यो कहिए कि बम्बई आदि नगरों में लड़के और लड़कियों के पृथक पृथक दलों में गरबा प्रतियोगिता होती हैं। प्रसिद्ध इतिहास

कार विगमाई फ्रोस्ट ने अपनी पुस्तक "The Indian music" में लिखा है—"गुजरात के संगीत की आत्मा वास्तव में गरबा नृत्य ही है जोकि मध्यकालीन युग की सबसे बड़ी देन है। भारतीय संगीत में गरबा नृत्य का अपना एक विशेष महत्व पूर्ण स्थान है। अगर आप गुजरात को समझना चाहते हैं, तो पहले आपको वहाँ का गरबा नृत्य को देखना पड़ेगा, तो फिर आप गुजरातियों की सही स्थिति का मूल्यांकन कर सकेंगे।"

सिन्ध का संगीत

मध्यकालीन युग में सिन्ध के संगीत में जीवन का एक गहरा रंग था—

इस युग में सिंध में सन्त संगीतज्ञ सदना के गीत गुँजाय मान हो रहे थे। इनके गीत बड़े मधुर तथा जीवनोपयोगी होते थे। सिंधी नारियों में तो आज तक सदना के गीत गाये जाते हैं। सदना के गीतों पर तीन प्रकार की नृत्य रचना हुई "भाव नृत्य" "कला नृत्य" और "मुक्त नृत्य", "भाव नृत्य" के द्वारा लोगों में ईश्वर के प्रति प्रेम पैदा किया जाता था। "कला नृत्य" के द्वारा लोगों को बतलाया जाता था कि ईश्वर कला से परे नहीं है तथा "मुक्त नृत्य" के द्वारा मानव को निर्देश किया जाता था कि संगीत के द्वारा आप अपने पाप पूर्ण जीवन से मुक्ति हो सकते हैं। "किवाली" "इग्जा" नृत्य भी अधिक प्रसिद्ध थे। मुसलिम संस्कृति का प्रभाव यहाँ के संगीत पर पड़ चुका था। ख्याल, और कव्वाली का प्रवेश इस प्रान्त में हो चुका था। मध्यकालीन युग में सिन्ध के संगीत में जीवन का एक गहरा रंग था।

काश्मीर और लद्दाख का संगीत

मध्यकाल में यहाँ का वातावरण पूर्ण संगीतिक था। यहाँ के संगीत में पर्वतीय सुषमा का उभार स्पष्ट पाया जाता है। बौद्ध भिक्षुओं के धार्मिक नृत्य काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। सामान्यजन इसमें शामिल होते थे। इस प्रदेश की तेज आँधियों एवं भीषण सरदी ने नृत्य की सीमा बन्दी नहीं की। यहाँ के गीतों में प्रकृति सुषमा की प्रधानता मिलती थी। काश्मीर में अधिकांश सामूहिक नृत्यों का जन्म हुआ। लोग घेरों में नाचते थे। घेरे में साथ का नर्तक या तो एक हाथ अपने पास वाले की कमर में रखता है अथवा यदि वे आगे पीछे खड़े हों तो आगे वाले के कंधे पर। इन नृत्यों के अवसरों पर साल भर मठों में बन्द रहने वाले लामा लोग भी बाहर निकलते थे। इन लामा लोगों के हाथ में एक चक्र रहता था, जिसको वे मंत्रोचारण के साथ घुमाते थे इससे वे पापों का नाश होना मानते थे। यह चक्र नृत्यों के अवसरों पर भी नहीं छूटता था। गर्मी का मौसम यहाँ का विशेष रूप से संगीत का मौसम माना जाता था। नृत्य जहाँ पापों के नाश, पापों के बचाव एवं आन्दोपलक्ष्य में होते थे, वहाँ फसल के लिए देवताओं को धन्यवाद देने तथा आगामी फसल की शुभ कामना के लिए

होते थे। नृत्य धार्मिक उत्सवों पर भी होते थे। नृत्यों के साथ गीत भी चलते थे। वैसे तो गायक और नर्त्तक पृथक-पृथक ही थे। परन्तु नृत्य में नर्त्तक उल्लास में भर गीतों की कड़ियाँ गुनगुनाने लगते थे। इन नृत्यों में बूढ़े भी इतने भाव विभोर हो उठते थे कि उनके होठ अनायास फड़क उठते थे। नृत्य प्रारम्भ करने के लिए कोई बढ़िया गायक गीत की कड़ी छेड़ता था, और उसके बाद नृत्य आरम्भ किया जाता था।

यहाँ के गीत इस प्रदेश के समान ही अनोखे होते थे। उन गीतों में पहाड़ों की दुरुहता, कठिन जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य की अनिर्वचनीय छटा, ईश्वर उपासना की पवित्र प्रार्थनायें आदि की सुन्दर एवं अलौकिक भावनायें उनमें स्पष्ट हो उठती थीं। इस काल के गीत लम्बे होते थे। कई कई गीत इतने लम्बे होते थे कि उन्हें नृत्य के साथ नहीं गूँथा जा सकता था। इन लम्बे गीतों को खानाबदोश ही गाते थे, जबकि वे लम्बी और कठिन यात्राओं के लिए निकल पड़ते थे। यही गीत उन यात्रियों के चिर-साथी थे। उन्मुक्त प्रकृति के साथी को और चीजें ही कौनसी दिखाई देगी। मध्यकालीन काश्मीर के एक गीत का भाव देखिये :—

"आकाश में तीन वस्तुयें सजी हैं
सूर्य, चन्द्रमा और तारे।
सबसे बड़ा है सूरज,
दूसरा है चंदा, और तीसरा है सात सितारों का झुरमुट"

मध्यकालीन युग में काश्मीर में संगीत का सुरभित पुष्प पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो चुका था। काश्मीर के वर्तमान संगीत की पृष्ठभूमि मध्यकालीन के संगीत पर ही आधारित है।

दक्षिण का संगीत

मधुरवाणी दक्षिण की महान संगीतज्ञा थी—

मधुरवाणी दक्षिण की महान संगीतज्ञा थी। उसका रचा हुआ एक संस्कृत काव्य हाल ही में बंगलोर में पाया गया है। वह ताड़ पत्रों पर तैलंगी लिपि में लिखा हुआ है। वह तंजोर के रघुनाथ नायक नामक राजा के दरबार में रहती थी। यज्ञ नारायण दीक्षित कृत "साहित्य रत्नाकर" काव्य और "राज चूड़ामणि" के रुक्मिणी-परिणय काव्य से पता लगता है कि इस नाम के राजा ने १६१४ से लेकर १६६२ ई० तक राज्य किया। वह विद्वानों एवं कलाकारों का संरक्षक और स्वयं भी बड़ा संगीत प्रेमी था।

राजा रघुनाथ भूप ने मधुरवाणी को स्वरचित रामायण का संस्कृतानुवाद करने की आज्ञा दी। मधुरवाणी ने उस आज्ञा का पालन बड़ी योग्यता से किया।

इस काव्य में १४ सर्ग तथा १५०० श्लोक हैं। प्रथम सर्ग के पहले अड़तीस श्लोकों में अनेक देवी-देवताओं की स्तुति और प्रार्थना है। अगले चार श्लोकों में (३६-४२) वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, वाण और माघ आदि प्राचीन कवियों की प्रशंसा है। इसके आगे के दो श्लोकों में (४३-४४) उस वक्त के दुःशील आधुनिक कवियों की निन्दा है। निम्नलिखित पैंतालीसवें श्लोक में उसने सुकविता की उपमा अलंकार विभूषित-सौन्दर्यशालिनी युवती से दी है देखिए उसमें कितना गहरा संगीतिक सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है :—

"संङ्ख्यावतां सर्वपथीनधीभिः संशाधिता चेत्कवितासभा याम्
कस्तूरिका चन्दन कुङ्कमाद्यैरू द्वर्तिताङ्गी युवतीव दीव्यते ।।"

इसके उपरान्त राजा रघुनाथ के ऐश्वर्य और उसके दरबार की शोभा का चितार्कषक एवं विस्तृत वर्णन है। इसके आगे रामायण की आख्यायिका प्रारम्भ होती है। दूसरे तीसरे और चौथे सर्ग में दशरथ और उनके यज्ञ का वर्णन है। पाँचवें तथा छठवें सर्ग में रामजन्म तथा बाल्य लीला है। विश्वामित्र का आगमन, यज्ञ रक्षा, ताड़का वध, अहल्या उद्धार, धनुष भंग, विवाह और परशुराम संवाद का वर्णन, सातवें और आठवें सर्गों में है। अगले ६ सर्गों में वन वास, सीता हरण, राम सुग्रीव की मित्रता, बालिवध और सीता की खोज आदि के सम्बन्ध की समस्त कथायें बड़े रोचक ढंग से वर्णित हैं। आगे के पन्ने नहीं मिलते। किन्तु आगे तीन फुटकर (१२६, १२६, १४०) पन्नों के देखने से मालूम होता है कि कथा अधूरी नहीं छोड़ी गई।

उसका नाम मधुरवाणी क्यों पड़ा—

मधुरवाणी ने इस महाकाव्य में अपनी काव्य मधुरता का सुन्दर परिचय दिया है। वास्तव में इसका नाम मधुरवाणी नहीं था, यह नाम तो गुण विशिष्ट उपनाम मात्र था। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से मालूम होता है—

"चतुर मधुरवाणी सम्यगाकर्ण्य यस्या
स्सदसि मधुरवाणी नाम दत्तं त्वयैव ।
सरसकृतिविधायां साधुमेधा विशेपा
स्वधिक पटुर शेपास्वम्बुजाक्षीषु सैषा ।।"

यह उपनाम उसे राजा रघुनाथ जी का दिया हुआ था। वह कैसी विदुषी, कला कुशल थी और उसकी कवित्व शक्ति कितनी बड़ी चढ़ी थी वह उसी के मनोहर एवं संगीतमय शब्दों में हम यहाँ लिखते हैं। वास्तव में उसकी स्वर लहरी बड़ी मधुर एवं चित्ताकर्षक थी। वह सुन्दर गायिका भी थी। उसके श्लोक से आप उसकी अपूर्व प्रतिभा भी जान सकेंगे।

"चातुर्यमेति कवितासु चतुर्विधासु
वीणा कला प्रगटने भवति प्रवीणा ।
प्रज्ञामियं निपुणमंचति पाणिनीये
मेधां व्यनक्ति बहुधा विविधाव धाने ।।
तत्ताहग्घटिकार्धनिर्मित शतश्लोकी फणिग्रामणी
वाणी प्राकृतशास्त्रनैपुणसमुन्मीलद्यशश्श्रीजुषा ।
वीणावाद कलाविनोद समये धृत्वा समस्याशतं
सद्यस्संसदि साधु पूरयति या दत्ता कवीन्द्रैस्तया ।।"

मधुरवाणी वीणा बजाने में अत्यन्त प्रवीण थी। संस्कृत और तैलंगी भाषा में कविता करने का उन्हें अदभुत शक्ति प्राप्त थी। वह आशु कवि थीं, आधी घड़ी में १०० श्लोक बना सकती थी अर्थात् एक मिनट में ८ श्लोक से भी अधिक। यह क्या कुछ कम प्रशंसा की बात है। विशेष कर नारी बर्ग के लिए। केवल इतना ही नहीं किन्तु आशुक्रिया, अष्टावधान आदि से भी वह खूब निपुण थी। नैषध काव्य एवं कुमारसम्भव के छायानुवाद लिखने के सिवा उन्होंने कई एक चम्पू गीत भी लिखे थे। यदि इस विषय में कुछ अतिशयोक्ति भी मानली जाए तो भी यह निश्चित है कि मधुरवाणी सत्रहवीं शताब्दी की विख्यात संगीतज्ञा एवं कवित्री थी।

वास्तव में यह काल दक्षिण भारत का विशेष गौरवास्पद रहा, इस काल को हम दक्षिण का संगीतमय काल कह सकते हैं—

वास्तव में यह काल दक्षिण भारत का विशेष गौरवास्पद रहा। इस काल को हम दक्षिण का संगीतमय काल कह सकते हैं। मधुरवाणी के गीत उस वक्त दक्षिणी जन समाज में खूब प्रचलित हो रहे थे। उनकी वीणा वादन को सुनने के लिए बहुत दूर-दूर के कलाकार आते थे। उसने दक्षिण भारतीय संगीत में एक नवीन युग प्रस्तुत किया। उसने ऐसे गीत अनेक रचे जो समय के हिसाब से गाए जाते थे। उस वक्त मधुरवाणी के समान उत्तर भारत में कोई संगीतज्ञा नहीं थी। इस काल के दक्षिणी संगीत में सबसे महत्वपूर्ण बात यह पाई जाती है कि दक्षिणी संगीतज्ञा ने संगीत की शुद्धता पर विशेष बल दिया। वह अपने संगीत को वैदिक संगीत से पृथक नहीं होने दे रहे थे। इस काल में शृंग वाद्य भी खूब प्रचलित था। अलकेरा वाद्य का भी प्रचलन पाया जाता था। वाद्यों पर खोज होनी प्रारम्भ हो गई थी। प्राचीन वाद्यों के आधार पर नवीन वाद्यों का भी इस काल में जन्म हुआ, लेकिन उसका विस्तार से वर्णन हमें प्राप्त नहीं हुआ है। मुँह से बजाने वाला अलेजा वाद्य आविष्कृत हुआ था। पर अब उसके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा चाँदबीबी

सोह्लवीं शताब्दी की चाँदबीवी महान संगीतज्ञा थी, और साथ ही साथ महान योद्धा—

चाँदबीबी अहमदनगर के सुलतान की पुत्री थी। उसका विवाह बीजापुर के राजकुमार अली आदिलशाह के साथ हुआ था। वह बहुत विद्वान थी, सोलहवीं शताब्दी की चाँदबीबी महान संगीतज्ञा थी, और साथ ही साथ महान योद्धा। वह बहुत वीर थी। कला और युद्ध कौशल दोनों पर उसका समान अधिकार था। मध्यकालीन युग में उसने दक्षिण में संगीत का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया। चाँदबीबी सितार और वीणा खूब सुन्दर बजाती थी। इन दोनों वाद्यों पर उसका समान अधिकार था। वह नियमित रूप से सितार और वीणा का अभ्यास किया करती थी। उसकी आवाज बड़ी मधुर थी। कहते हैं कि उसकी आवाज इतनी मीठी थी कि उसका साधारण वार्तालाप भी संगीतमय जान पड़ता था। विख्यात विद्वान वाई दिल वील ने अपनी सुन्दर पुस्तक 'The fundamental ground of Indian music" में लिखा है कि—"सोलहवीं शताब्दी में चाँदबीबी ने भारतीय संगीत को विकास पूर्ण बनाया। वह एक महान संगीतज्ञा थी। उसकी कला में अपूर्व चमक थी। वह सुन्दर गाना गाती थी। उसकी वाणी संगीतमय थी। वह संगीत साधना के सामने सब कुछ भूल जाया करती थी। लेकिन इतने पर भी वह एक कुशल शासिका एवं वीरांगना भी थी। उसके अन्दर प्रशासनिक शक्ति भी अद्वितीय थी। उस समय भारत पर अकबर का राज्य था। अकबर दक्षिण भारत को हड़प कर लेना चाहता था। उसने अपने पुत्र मुराद को अहमदनगर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही अपने मंत्री अब्दुल रहीम खान खाना जोकि हिन्दी के भी महान साहित्यकार थे, को सेना लेकर भेज दिया। मुराद और खानखाना अहमदनगर की ओर बढ़े। समाचार मिलते ही चाँदबीबी ने रक्षा की तैयारी कर दी। उसने गोलकुन्डा और बीजापुर के सुलतानों से सहायता माँगी तथा रसद का प्रबन्ध करके अहमदनगर के दुर्ग में बन्द होगई। मुगल सेना दुर्ग के निकट पहुँच गई। लेकिन इस आपत्ति काल के दिनों में भी चाँदबीबी ने संगीत का रियाज करना न छोड़ा। चाँदबीबी ने सामना करने की ठानी, शरीर पर कवच पहने, मुँह पर पतला घूँघट डाले एक हाथ में नंगी तलवार ऊपर उठाये वह मोर्चे पर आडटी, और अन्त में चाँदबीबी की अपूर्व शौर्य के सामने मुगल न डट सके। उनकी हार हुई। कहते हैं कि वह संगीत से युद्ध करने की प्रेरणा शक्ति लिया करती थी।

चाँदबीबी विद्वानों का आदर करती थी—

वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है, कि चाँदबीबी के कोमल हाथ जोकि वीणा पकड़ने में दक्ष थे, वे कैसे चमकती तलवार को चलाने में प्रवीण होगए। यह बड़ी अद्भुत बात है। जहाँ एक ओर वह सुन्दर-सुन्दर गीत गाकर लोगों को मंत्र-मुग्ध बना देती थीं, वहाँ दूसरी ओर वह लोगों के सिर काटने में भी बड़ी माहिर थी। लेकिन उसने संगीत साधना एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ी। वह लड़ाई के मैदान में भी गाना गा लिया करती थी। दरअसल उसकी प्रतिभा बड़ी बिलक्षण थी।

चाँदबीबी विद्वानों का आदर करती थी। उसके दरबार में संगीतज्ञ भी रहते थे। वह ध्रुपद शैली के गायन को विशेष पसन्द करती थी। वह भजन भी कभी-कभी गाती थी। अकबर बादशाह भी चाँदबीबी की अद्वितीय प्रतिभा से प्रभावित हो चुका था। चाँदबीबी ने विधिवत् भारतीय संगीत का अध्ययन किया था। वह भारतीय संगीत की पवित्रता की विशेष रूप से प्रशंसक थी। वह भारतीय संगीत के शुद्ध रूप को ही पसन्द करती थी। मध्यकालीन युग में चांदबीबी के समान ऐसी कोई नारी नहीं हुई जो वीरांगना के साथ साथ संगीतज्ञा भी हो। हाँ रजिया बेगम का नाम इस श्रेणी में लिया जा सकता है, किन्तु वह तो चाँदबीबी के समान वीरांगना न थी और न इतनी सिद्धहस्त संगीतज्ञा। खैर इतना तो हम कह ही सकते हैं कि चाँदबीबी मध्यकालीन युग की एक प्रदीप्त सितारा थी, जिसने संगीत के क्षेत्र को अपनी अलौकिक प्रतिभा से चमत्कृत किया। उसने "अलकजारा नृत्य" का निर्माण किया, जोकि आज पूर्ण रूप से लुप्त होगया है।

संगीत प्रेमिका रजिया सुलताना

रजिया गुलामवंश के द्वितीय सुलतान अल्तमश की बेटी थी। अप्रेल १२२९ ई० में उसके बड़े भाई नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई। उसे साहित्य और कला से शुरू ही से प्रेम था। वह विद्वानों कवियों एवं संगीतज्ञों का आदर करती थी। उसके दरबार में अनेक श्रेष्ठ संगीतज्ञ रहते थे। संगीत की वह महान प्रेमिका थी। उसके समय में देश के अन्दर संगीत का प्रचार खूब हुआ। वह स्वयं भी गाना सुनती थी। और गाना पसन्द आने पर पुरस्कार भी देती थी। उसके दरबार में नृत्यों का क्रम खूब चलता था। लेकिन वह उच्चकोटि के कलात्मक नृत्यों को ही पसन्द करती थी। उसे भारतीय संस्कृति से बड़ा प्रेम था। कुछ विद्वानों का तो यह भी विचार है कि वह स्वयं गाती भी थी। उसका गाना बड़ा दिलचस्प होता था, लेकिन इस सम्बन्ध में हमें कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ। खैर इतना तो निश्चय

ही है कि रजिया संगीत प्रेमिका थी और उसके काल में भारतीय संगीत की बड़ी उन्नति हुई । उसे घुड़ सवारी का भी शौक था । उसके शाही अस्तबल में एक से एक अच्छा घोड़ा मौजूद था । अबेसीनिया वासी गुलाम जलालुद्दीन याकूत था जो घोड़ों की परख करने में बड़ा दक्ष था । वह देखने में बड़ा सुन्दर और हट्टा-कट्टा नवयुवक था । रजिया को यह युवक बहुत पसन्द आया । उसकी दिलचस्पी उसमें बढ़ने लगी । याकूत शाही अस्तबल का सबसे बड़ा अफसर बना दिया गया । कहते हैं कि याकूत भी सुन्दर गायक था । उसने रजिया के सामने कई बार अपना गाना गाया था । रजिया उसके गाने पर ही मुग्ध हो गई थी । दोनों की मित्रता परस्पर बढ़ती गई । दोनों ही कला के उपासक थे । लेकिन इस सम्बन्ध में भी इतिहास मौन है । लेकिन इतना तो अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों के प्रेम का सूत्र कलात्मक उभार ही रहा होगा ।

रजिया मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति से प्रेम करती थी । उसने कभी भेदभाव की नीति को नहीं अपनाया—

रजिया मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति से प्रेम करती थी । उसने कभी भेदभाव की नीति को नहीं अपनाया । उसके दरबार में हिन्दू मुसलमान दोनों वर्गों के कलाकर रहते थे । सुप्रसिद्ध इतिहासकार गमालों कासी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "हिन्द ये ताकूल" (भारत की सांस्कृतिक परम्परा) में लिखा है—"रजिया ने जिस योग्यता से शासन चलाया, वैसी मिसाल विश्व के इतिहास में नहीं मिल सकती । वह एक स्वाभिमानी नारी थी । उसके अन्दर मानवता का प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था । लोगों ने उसको समझ नहीं पाया । वह भारत की प्रथम महिला थी जिसने राजसिंहासन पर बैठ कर मानव विकास के लिए कदम बढ़ाया हो । उसको संगीत से बड़ा प्रेम था । उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ एवं कवि रहा करते थे । उसको यदि वक्त मिलता तो वह अवश्य भारतीय संगीत की धारा को परिवर्तित करके नवीन रूप देती । पर ऐसा करने के लिए उसे अवसर नहीं मिला । पर वह यह अच्छी तरह जानती थी कि कला का जीवन में कितना महत्व है । वह जीवन को कला से दूर नहीं समझती थी । उसको हम इस डगमगाते युग के संगीत की रीढ़ की हड्डी कह सकते हैं, क्योंकि यदि वह संगीत को संरक्षण न देती तो इस काल में संगीत नष्ट होगया होता ।"

संगीतज्ञा एवं कवि जेबुन्निसा बेगम

जेबुन्निसा का जन्म सन् १६३६ ई० में हुआ था । प्रसिद्ध सम्राट औरंगजेब की वह बड़ी लड़की थी । उसकी माता का नाम दिलरसन बानू था । जब वह दस

दिन की हुई तब उसके पितामह ने उसका नामकरण किया। अर्थात् कैदी शाहजहाँ ने उसका नाम जेबुन्निसा रक्खा।

संगीत और काव्य से प्रेम—

जेबुन्निसा को बाल्यकाल ही से संगीतमय कविता का शौक था। वह अपना समय विशेषकर साहित्य चर्चा, प्राकृतिक सौन्दर्य निरीक्षण ही में बिताती थी। उसकी आवाज बड़ी मधुर थी। वह छोटे-छोटे गीत लिखती थी, जिनको वह स्वयं गाती थी। लेकिन वह अपने पिता के सामने कभी नहीं गाती थी, क्योंकि उसे पिता के स्वभाव का पता था। उसे सांसारिक झगड़ों से अरुचि थी। उसने विवाह नहीं किया। उसने ब्रह्मचर्य रहकर कला की सेवा करने का व्रत लिया। औरंगजेब चार लाख रुपए वार्षिक उसे खर्च देते थे। इन रुपयों से वह बड़े-बड़े विद्वानों, कलाकारों और कवियों की सहायता किया करती थी। उसने एक बड़ा भारी महल बनवाया था। इसमें सुकवि, संगीतज्ञ, सुपंडित और साहित्यकारों का अच्छा जमघट रहता था। वे लोग अनेक विषयों के ग्रन्थ लिखने, काव्य रचने, अन्य भाषाओं की किताबों का अनुवाद करने तथा हस्तलिखित पुरानी पुस्तकों की प्रतिलिपि करने में दिन रात लगे रहते थे। जेबुन्निसा ने संगीत की साहित्यिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करने के लिए महान प्रयत्न किया। जेबुन्निसा की ओर से इन सब विद्वानों को मासिक वेतन मिलता था। इसी महल में उसने एक वृहत पुस्तकालय भी खोला था, जिसमें उसने संगीत और साहित्य की पुस्तकों का संकलन किया था। उसके कर्मचारी कला की पुस्तकों की खोज देश-विदेश में करते थे।

गज़ल प्रेमी—

उसने गजल भी कई लिखीं। इन गजलों में अरबी संगीत का पुट अधिक रहता था। लेकिन यह गजलें बड़ी संगीतमय होती थीं। वह स्वयं ही इनको गाती थी। लेकिन एकान्त में गाना पसन्द था। कहते हैं कि वह उस समय की नारियों में सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञा मानी जाती थी। पर पिता के डर से उसने संगीत की पृष्ठ को कविता से परिवेष्टित कर दिया था। चूँकि औरंगजेब संगीत का विरोधी था, अतएव उसने संगीत का विकास ऐसा किया कि जिसे उसके पिता पकड़ न सके। वह हृदय से संगीत से प्रेम करती थी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार जोर्ज एवोल ने अपनी पुस्तक "The History ground of Indian Music" के ४० पृष्ठ पर लिखा है—"जेबुन्निसा संगीत और कविता की बड़ी मर्मज्ञ थी। वह संगीतज्ञों का बड़ा सम्मान करती थी और उनकी सहायता भी समय-समय पर करती थी। उसकी आवाज बड़ी मीठी थी।

वह गजल अधिक लिखती थी। उस समय उसकी गजलों का प्रचार सर्वसाधारणों में खूब हो रहा था। वह अपना सम्पूर्ण समय साहित्यक संगीत में ही दिया करती थी। दरअसल वह महान प्रतिभाशालिनी कलाकारिणी थी। उसकी कला बड़ी अपूर्व थी।"

मृत्यु—उसकी मृत्यु १७०२ ई० में हुई। वह जहाँ गाड़ी गई, इस विषय में इतिहास लेखकों में मतभेद हैं। कोई औरंगाबाद बतलाता है, कोई लाहौर। पर किसी किसी विद्वान का ख्याल है, कि वह दिल्ली में सब्जीमन्डी के निकट काबुली दरबाजे के बाहर दफन की गई। अधिकांश लेखक दिल्ली ही के पास उसका मकबरा बतलाते हैं।

जेबुन्निसा जन्म की कवित्री थी। जबसे उसने कविता का श्रीगणेश किया था तभी से उसके अन्दर संगीत का अमर प्रेम जाग गया—

जेबुन्निसा जन्म कवि थी। बाल्यावस्था से ही वह कविता करने लगी थी। और जबसे उसने कविता का श्रीगणेश किया था तभी से उसके अन्दर संगीत का अमर प्रेम जाग गया था। उसने काव्य रचने की शिक्षा मुल्ला सईद अशरफ से पाई थी। उसका तखल्लुस "मखफी" था। इसी उपनाम से उसका दीवान प्रसिद्ध है। सौभाग्य की बात है कि वह दीवान अब तक पाया जाता है। इस विषय में विद्वानों में मदभेद है। कुछ विद्वान कहते हैं कि यह दीवान उसका रचा हुआ नहीं, किसी फारस निवासी का है। और उसका तखुल्लुस "जेब" था "मकफी" नहीं। पर यह बात माननीय नहीं क्योंकि खुद दीवान की गज़लें ही इसके खिलाफ गवाही देती हैं और यह प्रामाणित करती हैं कि यह जेबुन्निसा का ही रचित है। उसके दीवान से मालूम होता है कि वह कोई साधारण कवि एवं संगीतज्ञा न थी। जेबुन्निसा की सरस, मनोहर तथा उच्च भाव पूर्ण कविता के पद पद से उसकी असाधारण प्रतिभा एवं प्रौढ़ ईश्वर भक्ति प्रगट होती है। उसकी गजलों में भक्ति रस का आनन्द मिलेगा।

जेबुन्निसा की चमत्कारी प्रतिभा के सुन्दर नमूने—

एक बार ईरान के बादशाह ने एक मिसरा (एक पंक्ति) भेजा जिस पर गिरह लगाने (उसकी पुष्टि में) दूसरी पंक्ति लिखने की वहाँ के किसी कवि की हिम्मत नहीं हुई। मिसरा इस प्रकार है—

"दूरे अबलक कसेकम दीदा मौजूद।"

(अबलक नामी मोती को किसी ने साक्षात नहीं देखा) अबलक एक विशेष प्रकार का मोती होता है जिसमें काली धारियाँ होती हैं।

औरंगजेब के पास यह मिसरा लाया गया, तो उसने अपने दरबारियों से इस पर गिरह लगाने को कहा। कई दिन बीत गए। दिल्ली के किसी शायर को गिरह

लगाने का साहस न हुआ। औरंगजेब बड़ा क्षुब्ध हो उठा। अन्त में औरंगजेब ने "मखफी" को गिरह लगाने को कहा। गिरई वाकई मुश्किल थी। मखफी की समझ में भी कुछ नहीं आरहा था। अगले दिन गिरह मिल जानी चाहिए थी। मखफी ने सारी रात आँखों में काट दी। सवेरे उठी आइने में अपना रूप देखा तो आँसू ढुलक पड़े। मखफी को दूसरा मिसरा मिल गया—

"मगर अशके बुताने सुर्मा आलूद"

(सुर्मा रंजित सुन्दरियों के आँसू के सिवा) अर्थात् अबलक नामक मोती कहीं नहीं होता और न किसी ने उसे कहीं देखा है, हाँ सुर्मा रंजित सुन्दरियों की आँखों के आँसू ही दूरे अबलक होते हैं।

इतनी सुन्दर और सूक्ष्म कल्पना मखफी जैसी भावुक शहजादी ही कर सकती थी।

इससे आप जेबुन्निसा की चमत्कारी प्रतिभा की कल्पना कर सकते हैं। वास्तव में उसकी कवित्व शक्ति बड़ी अपूर्व थी।

अमीर खुसरो की एक प्रसिद्ध फारसी गजल का यह मतला बड़ा विख्यात है—

"काफरे इश्कम म लमानी मरा दाकार नस्त
हर रगे-मन तार गश्ता, हाजते जुन्नार नेस्त"

(मैं इश्क का काफिर हूँ, मुझे इस्लाम धर्म की जरूरत नहीं। मेरे शरीर की एक-एक रग (नस) तार है, इसलिए यज्ञोपवीत की भी जरूरत नहीं) इसी जमीन में उस समय के प्रसिद्ध फारसी कवि "साइब" का मतला है।

"इश्के आलम स्वोजरा, बाकुफो इयांकार नेस्त
गरदने मादर कमन्दे-सुबहा-ओ जुन्नार नेस्त"

सच्चे प्रेमी को कुफ्र और ईमान से कोई वास्ता नहीं। हमारी गरदन तस्बीह या यज्ञोपवीत के घेरे के अन्दर नहीं है। सूफी कवि कर्मकान्ड में अधिक विश्वास नहीं रखते थे प्रेम ही उनकी दृष्टि में मुक्ति का साधन मार्ग था इसी जमीन में "मखफी" ने भी गजल कही है दो एक शेर देखियेः—

बुत परस्ता नेम बा इस्लाम मारा कार नेस्त
गैर तारे जुलफ मारा रिश्ता-ए-जुन्नार नेस्त"

(हम बुत परस्त हैं, इस्लाम से हमें कोई वास्ता नहीं है, हमारे यज्ञोपवीत का धागा प्रियतम की जुल्फ की तार के अलावा और नहीं हो सकता)।

वेश अर्जी ऐ अक्ल बरमन ताअने रूसवाई मजन
जाँ कि मस्ताने मुहब्बत रा मलामत आर नेस्त।

(ऐ बुद्धिमान लोगों, अब इससे अधिक और मेरी बदनामी को ताने मत दो क्योंकि प्रेम मदमातों के लिए मलामत लज्जास्पद नहीं ।)

मखफिया गर वस्ल रवाही बा गमे हिज्रां बसाज
कन्दरी गुलजारे आलम यक गुले बेखार नेस्त

(ऐ मखफी, यदि तुझे प्रिय मिलन की इच्छा है तो विरह व्यथा से निर्वाह कर, क्योंकि इस संसार के उद्यान में एक भी फूल बिना काँटे के नहीं है ।)

एक बार एक लौडी ने औरंगजेब को गलती से सुबह को नमाज के लिए वक्त से बहुत पहले जगा दिया, औरंगजेब हैरान था कि वह अभी काम करने के बाद सोया था कि सुबह हो गई । उसने नमाज पढ़ी । लेकिन सूर्य उदय होने में घन्टों लग गए । उसने क्रुद्ध होकर आज्ञा दी—

"सर वरीदन लाजम अस्त"

(लौडी का सिर काटना जरूरी है ।)

मखफी को मालूम हुआ तो उसने लौडी की सिफारिश करते हुए कहा—

"सर वरीदन लाजम अस्त आं मुर्गे वे हंगाम रा
ईपरी-पैकर चिदानद, वक्ते सुबहो शाम रा"

(उस बेवक्त अजान देने वाले मुर्गे का सिर काटना जरूरी है । भला यह परी-सी सुन्दर लौडी सुबह और शाम के वक्त को क्या जाने ।) औरंगजेब पर इस शेर का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने लौडी को क्षमा कर दिया ।

मखफी की कविता में संगीत का अधिक पुट रहता था । ईरान का शहजादा फर्रुख जेबुन्निसा की तस्वीर देखकर उसपर आसक्त होगया । वह ईरान से जेबुन्निसा से मिलने के लिए भारत आया, किन्तु रात को खाना खाते वक्त उसने कुछ गुस्ताखी करदी, इसलिए उसे निराश होकर लौटना पड़ा । ईरान पहुँचकर एक शेर जेबुन्निसा के पास भेजा, वह इस प्रकार है—

"तुराए महजबी बेपर्दा दीदन, आरजू दारम
जमालत हाए हुस्नत रा रसीदन नरजू वारम ।"

(चन्द्रमुखी, मैं तुझे बे-पर्दा देखने की इच्छा रखता हूँ—मुझे तेरे सौन्दर्य की अनुपम दुनियाँ में पहुँचने की अभिलाषा है ।) मखफी ने इसका जो उत्तर लिखकर भेजा, वह शहजादी की कवित्व शक्ति का एक मनोरम दर्पण है । उसे जहाँ अपने अनुपम सौन्दर्य का ज्ञान था, वहाँ संगीतमय कविता को भी वह एक अत्यन्त सूक्ष्म-कला समझती थी । देखिये यह उत्तर कितना संगीतमय है, कितना उसमें जीवन और संगीत की गहराई छिपी है—

"बुलबुल अज गुल बीगुजरद गर दर चमन वीनदमरा
वुत परस्ती के कुनद, गर बरहमन वीनद मरा ।"

(बुलबुल अगर मुझे बाग में देखले तो फूलों की उपेक्षा करदे । उनकी तरफ आँख उठाकर भी न देखे, यदि ब्राह्मण मुझे देखले, तो मूर्तिपूजा करना भूल जाए ।)

"दर सुखन पिनहाँ शुदम, च वुए गुल दर वर्गे गुल ।
हर के दीदन मैल दारद, दर सुखन वीनद मरा ।।"

(मैं अपनी कविता में इस प्रकार छिपी हुई हूँ कि जिस प्रकार फूल की पत्तियों में उसकी सुगन्ध, जो मुझे देखने की इच्छा रखता है, वह मुझे मेरी कविता, मेरी कला में देखले । मेरा अद्वितीय सौन्दर्य उसीमें है ।)

दरअसल उसने अपना सम्पूर्ण जीवन ही कला और काव्य को अर्पण कर दिया था। वह उसीमें दिन रात खोई रहती थी। वह श्रेष्ठ संगीतज्ञा एवं श्रेष्ठ कवित्री थी।

जेबुन्निसा की प्रशस्त प्रतिभा का पता इस चुटकले से भी अच्छी तरह लगता है। एक दिन जेबुन्निसा का एक बहुमूल्य आईना रोशन नाम की एक परिचारिका के हाथ से गिर कर टूट गया। भय से काँपती हुई राजकुमारी के पास आकर वह बोली—"अज कजा आईनये चीनी शिकस्त" (इत्तफाक से चीनी शीशा टूट गया) जेबुन्निसा को उस पर दया आई, उसने तुरन्त उत्तर दिया—"खूब शुद अस्वाव खुदबीनी शिकस्त" (अच्छा हुआ जो "खुदबीनी" का साधन टूट गया) यहाँ पर "खुदबीनी" शब्द ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसके दो अर्थ हैं, एक तो "अपने को देखना" और दूसरा घमन्ड और अहंकार।

जेबुन्निसा के स्वभाव को संगीत और काव्य ने बहुत ही शान्ति और मधुर कर दिया था—

मौलाना साईद ने लिखा है—"जेबुन्निसा के स्वभाव को संगीत और काव्य ने बहुत ही शान्ति और मधुर कर दिया था। वह बड़ी सरल स्वभाव की थी। घमन्ड से कोसों दूर रहती थी। उसे विद्वानों का सतसंग विशेष प्रिय था। वह अपना अधिक से अधिक धन विद्वानों और कलाकारों पर खर्च करती थी। औरंगजेब जितना शान्त मिजाज का था उतना ही उसकी लड़की जेबुन्निसा सादा और समधुर स्वभाव की थी। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन कला और साहित्य की अटूट साधना में समर्पित कर दिया था। उसे वैभव विलास से चिढ़ थी। राजकुमारी होते हुए भी वह साधारण लिबास में रहती थी। वह हर एक अदना से अदना व्यक्ति से भी बात

करने को सदैव तत्पर रहती थी। सत्रहवीं शताब्दी की वह एक महान नारी रत्न थी।"

(तवारीख हिन्दुस्तान जिल्द नं० २ पृष्ठ संख्या १५०)

भक्त संगीतज्ञ हरिराम व्यास—

हरिराम व्यास भक्त संगीतज्ञ थे। वह कृष्ण और राधा के महान उपासक थे। उन्होंने त्रिपदी छंद में एक "रासपंचाध्यायी भी लिखी थी, जिसमें श्रीमद्भागवत की कथा का ब्रज भाषा में सरस वर्णन किया है। यह ग्रन्थ संवत् (१५६७–१६६६) में तैयार हुआ। यह रासपंचाध्यायी १२१६ छदों में समाप्त हुई है, उक्त रासपंचाध्यायी के अतिरिक्त व्यासजी ने शरद और रास के वर्णन में अनेक पद प्रस्तुत किए जो संगीत और रसात्मकता के विचार से अत्यन्त सुन्दर तथा हृदयग्राही हैं। उस समय वृन्दावन में यह प्रसिद्ध था कि व्यासजी के बिना रासोत्सव ही फीका रहता था। इस बात का संकेत स्वयं व्यासजी ने अपने एक पद में किया है:—

"जहाँ न व्यास तहाँ न रास रस वृन्दावन कौं मत"

वास्तव में व्यासजी ने ब्रज के रास लीला की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ किया, उसमें नवीन शक्ति दी, नवीन उमंग दी और दी प्रेम की पवित्रता की अंजिल। आपने ही "रास नृत्य" का निर्माण किया।

व्यासजी ने भारतीय संगीत विकास में विपुल योग दिया। उनके गीत सर्व-साधारणों ने बड़े प्रेम से अपनाये। उनके द्वारा कृष्ण और राधा के संगीतमय रूप का बड़ा प्रचार हुआ। मध्यकालीन युग में व्यासजी का संगीत अपनी उत्कृष्टता पर विराजमान था।

मुसलिम संत संगीतज्ञ—

मध्यकालीन युग में मुसलिम संत संगीतज्ञ भी अनेक हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत को विकास की भव्य मंजिल की ओर अग्रसर किया—जैसे रहीम, रसखानि, यारी साहब, दरिया साहब, ताज साहब, नजीर, कारेखाँ, करीम बक्स, इन्सा, बाजिन्द, बुल्लेशाह, आदिल, मकसूद मिया, मौजदीन, दीनदरवेश, अफसोस, बाहिद, काजिम, खालिस, वहजन, लतीफ हुसेन, यकरंग, कायम, निजामुद्दीन औलिया, फरहत, काजी अशरफ महमूद, आलम, नफीस खलीली आदि। इन संत संगीतज्ञों ने मानव जीवन की कुरुपता को, उसके अशिव रूप को अपने पवित्र संगीत के द्वारा विनष्ट किया और मानवता को उज्ज्वल रूप दिया। महान संगीतज्ञ एवं कवि रसखानि का एक पद देखिए, जिसमें प्रेम की उज्ज्वलता, भावों की प्रकर्षता, दृष्टि की व्यापकता, रागों की स्पष्टता तथा आत्मा की रसलीनता आपको प्राप्त होगी। वह पद इस प्रकार है :—

"मानुष हौं तो वही रसखानि
बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन
जो पशु हौ तौ कहा बसु मेरो,
चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन
पाहन हौ तो वही गिरिकौं,
जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन
जो खग हौं तौ बसेरो करौ मिलि,
कालिंदी-कूल-कदम्ब की डारन ॥"

\+ \+ \+ \+

राग मालश्री का एक पद और देखिये—

"या लकुटी अरु, कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौ ।
आठहु सिद्धि नवो निधि कौ सुख
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं ॥
रसखानि, कबौ इन आँखिन सौं,
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिक हौ कलधौत के धाम,
करील की कुञ्जन ऊपर वारौं ॥"

हिमालय की उपत्यका का संगीत

"सालभंजिका" नृत्य—

हिमालय की तराई में "सालभंजिका" उत्सव मनाया जाता था । इसमें स्त्री पुरुष सब भाग लेते थे । नारियाँ अपने को रंग-बिरंगे पुष्पों से सजाती थीं और नृत्य करती थीं "उद्यान नृत्य" भी इस काल में प्रचलित था । वसन्त के सुहावने मौसम में यह नृत्य प्रारम्भ होता था । गीत और नृत्य से हिमालय की उपत्यका परिपूर्ण हो जाती थी । मध्य कालीन युग में हिमालय की तराई संगीत से गूँज उठती थी । वसन्त ऋतु संगीत का विशेष पर्व माना जाता था । कथात्मक एवं वर्णनात्मक नृत्य एवं गीत प्रचलित थे । इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान डा० वासदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं :—पुष्पित वृक्ष लताओं के साथ मिलकर आमोद-प्रमोद करना—ये उनकी वन क्रीड़ाओं के अंग थे । वन-उपवनों में जिस समय रक्ता शोक लाल-लाल पुष्पों के लम्बे-लम्बे फुग्गों से लद जाता है वह सुन्दरता देवताओं के नेत्रों को भी तृप्त करती है । मनुष्यों की बात ही क्या है ? रक्ता शोक के उस मंगल में नारियाँ अशोक पुष्प—प्रयाचिका क्रीड़ा मनाती थीं, हिमालय

की तराई लम्बे साल वृक्षों से भरी हैं। वसन्त आगम में ये वृक्ष पुष्प सम्भारों से कमनीय हो उठते हैं। ऐसे समय एक सामूहिक संगीतमय उत्सव होता था, उसका नाम "सालभंजिका" था।

युवतियाँ इस "सालभंजिका" नृत्य समारोह में बड़े प्रेम से भाग लिया करती थीं—

स्त्रियाँ फूले हुए साल वृक्षों के नीचे फूलों से लदी हुई टहनियों को झुकाकर उनके पुष्प चुनकर परस्पर गाती बजाती जो उत्सव करती थीं वही "सालभंजिका" उत्सव प्रति वर्ष वसन्त काल में हिमालय की तराई में बसने वाले सौन्दर्य प्रेमी स्त्री पुरुषों को अपनी ओर खींचता था। जनता हिमालय की वनदेवी के रूप दर्शन से मुग्ध होने के लिए वनों की यात्रा करती थी। "सालभंजिका" उत्सव में प्रसक्त स्त्री की वह मुद्रा लोक के मानस में बस गई। उसकी अमिट छाप भारतीय संगीत पर पड़ी। प्राचीन सांची, भरहुत और मथुरा के वेदिका स्तम्भों पर "सालभंजिका" उत्सव में संलग्न स्त्रियों के अनेक अकंन मिलते हैं। पीछे तो "सालभंजिका" उस प्रकार की विशेष मुद्रा की संज्ञा ही बन गई, जिसमें कोई स्त्री वृक्ष के नीचे उसकी शाखा झुकाए हुए खड़ी दिखाई जाती थी। वेदिक स्तम्भों पर उत्कीर्ण स्त्री मूर्ति के लिए भी "सालभंजिका" शब्द रूढ़ि होगया। सांची स्तूप के तोरणों में स्तम्भ एवं बड़ेरी के कोनो को शरीर भंगिमा से सजाती हुई स्त्री मूर्ति के लिए काव्य में "तोरण सालभंजिका" शब्द प्रयुक्त हुआ है। "वीरण पुष्प प्रचायिका" भी पुष्पों का संगीतमय उत्सव था। वीरण या खस के छोटे-छोटे पुष्पों का चयन करके वैशाखी पूर्णिमा को यह उत्सव मनाया जाता था। चैत्र मास में पूर्णिमा को और द्वादशी को दमनोत्सव अर्थात दौना मरुवा के सुगन्धित फूलों का उत्सव मनाया जाता था। युवक-युवतियाँ दमनक पुष्पों के आभूषण बनाकर धारण करते थे। पुष्पों के साथ विलास का ऐसा संगीतमय उत्सव अन्य किसी संस्कृति में नहीं पाया जाता। वस्तुत: उद्यान क्रीड़ायें एक सहस्त्र ईस्वी पूर्व से एक सहस्त्र ईस्वी बाद तक के सुदीर्घ काल में भारतीय सामाजिक और कलात्मक जीवन का आवश्यक अंग थीं। प्राचीन पाली और संस्कृत साहित्य इन वर्णनों से भरा हुआ है। बुद्ध की माता मायादेवी उद्यान उत्सव का खेल मनाने के लिए (उद्यान क्रीड़ा कीड़ित) ही लुम्बिनी उपवन में गई थी। जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था। जन्म के समय भी वह एक फूले हुए साल वृक्ष के नीचे उसकी टहनी झुकाए सालभंजिका की मुद्रा की मनोमुग्धकारी भंगिमा में खड़ी हुई थी।"

विख्यात इतिहासकार टर्नीवाइल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Back ground of Indian culture" में लिखा है—"हिमालय की तराई का साल-

भंजिका एक संगीतमय उत्सव था। भारतीय संगीत के इतिहास में यह उत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। इस उत्सव में स्त्री-पुरुष मिलकर नाच-गाना करते हुए पुष्प चयन करते थे। "सालभंजिका" नृत्य गीतमय होता था। नृत्य करती हुई नारियाँ गाती थीं। मध्यकालीन युग में सालभंजिका तथा इससे मिलते-जुलते अनेक उद्यान क्रीड़ायें हिमालय की तराई में होते थे। यह नृत्य इतना सुन्दर था कि हिमालय की तराई की सीमा को पार करके बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सों में पहुँच चुका था।" भारतीय संस्कृति का सालभंजिका एक महत्वपूर्ण संगीतमय उत्सव था।

स राष्ट्र का संगीत

"दूहा गीत" सौराष्ट्र का बड़ा ही लोकप्रिय संगीत था—

"दूहा गीत" का जन्म मध्यकालीन युग में हुआ था। सौराष्ट्र के संगीत में दूहा संगीत का एक विशेष स्थान है। स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति करना इन गीतों की जान है। इसके गाने बजाने का अपना एक विशेष ढंग होता है। वास्तव में लोक हृदय अपनी आस-पास की दुनिया से प्रत्येक चेतन-अचेतन वस्तुओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। चाहे कोई भी वस्तु कितनी ही परिचित क्यों न हो, फिर भी वह सुपरिचित वस्तुओं की अनुभूति, विभिन्न अवसरों पर नये-नये रूपों में कर सकता है। माघ के शब्दों में "क्षणे-क्षणे मन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः" क्षण-क्षण में नवीनता यही रमणीयता है। इस प्रकार प्रत्येक दूहा में लगभग सभी प्रकार एवं नित नये भावों का सुन्दर एवं सजीव चित्रण मिलता है। दो दो पङ्क्तियों के इन लघु "दूहा गीतों" में कभी-कभी जीवन का इतना सार एवं हृदयस्पर्शी भाव होते हैं कि बड़े-बड़े साहित्यिक विद्वान भी उनमें आनन्द लिए बिना नहीं रह सकते। प्रायः ऐसे चोटदार एवं मंत्रमुग्धक "दूहा गीत" का उद्‌गम स्थान जनसाधारण का उमंग भरा हृदय है।

"दूहा गीत" सौराष्ट्र के जन-जीवन की सुन्दर झांकी कराता है—

"दूहा गीत" में हमें सौराष्ट्र के जन जीवन की सुन्दर झांकी मिलती है। इन छोटे छोटे गीतों में उनका संगीत प्रखर हुआ है। मध्यकालीन युग की यह एक अपूर्व देन है। भारतीय संगीत के इतिहास में "दूहा गीत" अपना एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान रखता है। यह "दूहा गीत" नाना प्रकार के नृत्यों के साथ गाये जाते थे। सौराष्ट्र का सम्पूर्ण वातावरण ही इन "दूहा गीतों" से परिपूर्ण था, और आज भी इन गीतों का बहुत अधिक प्रचलन सौराष्ट्र में पाया जाता है। "दूहा गीतों" में प्रेम, धर्म, दर्शन, और राजनीति सभी कुछ हमें मिलता है।

मध्यकालीन युग में सौराष्ट्र की नारियों का "दूहा गीत" प्रमुख अङ्ग था—

सौराष्ट्र के लोकगीतों के अथाह कंठ साहित्य में "दूहा गीत" भी अपना निजी श्रेष्ठत्व रखते हैं। "दूहा गीतों" में सभी मानवीय भावनाओं का जो सुन्दर चित्रण मिलता है, इनमें स्वाभाविकता, कलात्मकता अभिव्यक्ति हुई है। सुप्रसिद्ध इतिहार कार टर्नीवायल अपनी पुस्तक "The Back grond of Indian Culture" में लिखते हैं—"सौराष्ट्र के संगीत में "दूहा गीतों" का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। इन गीतों में हमें मानव जीवन का जितना लम्बा विस्तार मिलता है, उतना स्वाभाविकता के साथ छोटे गीतों में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। सौराष्ट्र की नारियाँ इन गीतों के गाने में बड़ी कुशल होती थीं। मध्यकालीन युग में नारियों का यह गीत एक प्रमुख गान था। "दूहा गीतों" को किसने जन्म दिया इसके सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि यह मध्यकालीन युग में जन्मा और इसका पोषण सामान्य लोगों ने किया। सामान्य लोगों का यह संगीत होते हुए भी हमें इसका साहित्य बड़ा उत्कृष्ट मिलता है। मालूम होता है कि इसके रचयिता अवश्य ही कवि हुआ करते होंगे।"

मध्यकालीन युग में सौराष्ट्र में "दूहा गीतों" के अतिरिक्त अन्य प्रकार के गीत एवं नृत्य प्रचलित थे। जैसे "उषा गीत" "नव कोंपल नृत्य" "सपेरा नृत्य" "चन्द्रोदय गीत" आदि। सौराष्ट्र के संगीत में हमें दार्शनिक, भक्ति एवं धार्मिक भावों का पुट अधिक मिलता है।

खिलजी युग

सुलतान जलाउद्दीन, संगीत का महान प्रेमी था—

सुलतान जलाउद्दीन को संगीत से बड़ा प्रेम था, और वह कलाकारों को आश्रय देता था। वह कविता भी कर सकता था और ग़ज़ल तथा दुबैती (एक प्रकार की कविता) लिख सकता था। उसके संगीत कला से प्रेम का इससे स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि अमीर खुसरो जो कि प्राचीन तथा अपने समकालीन, कवियों में सर्वश्रेष्ठ था, उसका उसी समय से कृपापात्र था, जबकि सुलतान अर्जमयालिक था। सुलतान उसका बड़ा आदर सम्मान करता था। एक हजार दो सौ तनके जोकि अमीर खुसरो के पिता का वेतन था वही उसको मिलता था।

अलाउद्दीन राज्यकाल के गायक—

"अलाई राज्य काल के प्रथम दस वर्षों में मुकरियों (अच्छे स्वर में कविता पढ़ने वाले) में से सबसे प्रसिद्ध मौलाना मसऊद मुकरी के पुत्र मौलाना लतीफ़ तथा

मौलाना हमीदुद्दीन थे। अन्तिम दस वर्षों में मौलाना लतीफ के पुत्र, अल्तफ तथा मुहम्मद हुए हैं। उपर्युक्त चारों मुकरियों के मधुर स्वर के प्राण शरीर के बाहर निकल आते थे। किसी मनचले में उनकी आवाज को सुनने की शक्ति न थी। जिस महफिल में भी उपर्युक्त मुकरी गाना गाते थे, उस महफिल की शोभा सौ गुनी बढ़ जाती थी। उनके उपरान्त इस प्रकार के मधुर स्वर वाले, रूपवान तथा महफिलों की शोभा बढ़ाने वाले, गवैये और चुटकले बाज समय की आँखों ने न देखे।

अलाई राज्यकाल में अनेक विचित्र गज़लें गाने वाले भी थे। मुझे विश्वास है कि महमूद बिन सिक्का ईसूनशिया, मुहम्मद मुकरी और ईसा खुदादी मिजमारी (बांसुरी बजाने वाले) के गलों में भगवान ने दाऊद (दाऊद एक पैगम्बर हुए हैं जिनके लिए प्रसिद्ध है कि उनका स्वर बड़ा अच्छा था) का स्वर पैदाकर दिया था। जिन लोगों ने उन गज़ल गायकों की गजलें सुनली थीं, उन्हें भली भाँति ज्ञात है कि इस प्रकार के गज़ल गाने वाले न तो इससे पूर्व हो सके हैं और न हो सकेंगे। अलाउद्दीन राज्य के अन्य कलाकार—कव्वाल गायक, चंग (डफ के आकार का एक छोटा बाजा) रबाब (सारंगी जैसा एक बाजा) कमान्चा (धनुष के समान एक तार का बाजा) मिस्कल (एक प्रकार की वीणा) तथा नौबत (शहनाई) बजाने वाले जितने योग्य अलाई राज्य काल में थे, उतने योग्य किसी अन्य समय में न थे। प्रत्येक कला के कलाकार भी अलाई राज्य काल में भरे पड़े थे।

(सैं० अतहर अब्बास रिज़वी की "खिलजी कालीन भारत" से)

यूरोपियन–प्रवेश काल में संगीत

(१७०१ से १८५० ई०)

यूरोपिन भारतीय संगीत को पसन्द नहीं करते थे, और न उन्होंने कभी इसको समझने का ही प्रयास किया। मिस्टर कैप्टन डे लिखते हैं :—"To Europeans it is certainly the least known of all Indian Arts. Almost every traveller in India comes away with the idea that the music of the country consists of mere noise and nasal drawling of the most repulsive kind, often accompanied by contortions and gestures of the most, ludicrous description. Perhaps the traveller may have fancied that he has seen a nautch—he has possibly been asked to some such entertainment at the house of a wealthy native or more likely he has possessed a treasure of a "boy" who has been able to make the necessary arrangements with the "Nautchness" for a performance of the kind." योरोपियनों की दृष्टि में भारतीय संगीत महज एक शोर-गुल एवं अकलात्मक वातावरण से पूर्ण था। वे भारतीय संगीत को असभ्यों का संगीत मानते थे। उन्हें भारतीय संगीत में कोई भी विशेषता, कोई भी कलात्मकता नहीं दिखाई दी, इसीलिए वे भारतीय संगीत की उपेक्षा करते रहे और न उन्होंने कभी अपने शासन काल में भारतीय कलाकारों को प्रोत्साहन दिया। वे भारतीय संगीतकारों का सम्मान नहीं करते थे। वे भारतीय संगीतकारों को बड़ा तुच्छ एवं दयनीय समझते थे। वे अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के सामने भारतीय संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखते थे। पर इस उपेक्षा से भारतीय संगीत का विकास इस काल में अवरुद्ध नहीं हो गया, हाँ उसके विकास-क्रम में थोड़ा प्रभाव अवश्य पड़ा, लेकिन वह निरन्तर गति पूर्ण रहा।

घनानन्द कवि और संगीतज्ञ थे—

इस युग में संयीतज्ञ घनानंद बड़े प्रसिद्ध हो गए हैं। वह कवि और संगीतज्ञ दोनों ही थे। उनको कविता और संगीत पर समान अधिकार था। घनानंद का जन्म सम्वत् १७४६ के लगभग दिल्ली में हुआ था। वह भटनागर कायस्थ थे, और बचपन

से ही संगीत प्रेमी थे। उनके समय में फारसी का अधिक प्रचार होने के कारण उन्होंने फारसी पढ़नी शुरू कर दी और अबुलफजल के शिष्य हो गए। इनके संसर्ग से उन्होंने काफी विद्या प्राप्त की। घनानंद को बचपन से ही रामलीला देखने का बड़ा शौक था। उस समय जो भी रास मन्डली दिल्ली आती थी, तो वह उसे बड़े चाव से देखा करते थे। उसी के सम्पर्क से वह कृष्ण भक्त बन गए और धीरे-धीरे उनका संसार से भी वैराग्य हो गया। उनका गला बड़ा मधुर था। वह बड़ा सुन्दर गाते थे। उनकी आवाज में बड़ा ही रस एवं जादू था। ऐसा कहा जाता है कि जो कोई भी उनका एक बार गाना सुनता, वही उनका पक्का मित्र बन जाता था। वास्तव में उन्होंने गाने में बड़ी निपुणता प्राप्त की थी। उनके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार है—मुहम्मदशाह के दरबार में वह रहा करते थे। एक दिन दरबार में बादशाह से कुछ लोगों ने कहा कि घनानंद बड़ा सुन्दर गाते हैं। बादशाह ने घनानंद को बुलाया और उनसे गाना सुनाने को कहा। पहले घनानंद ने बहुत टाल-मटोल, की इस पर लोगों ने कहा कि यह तब तक न गायेंगे जब तक कि इनकी गायन की प्रेरणा सुजान इनके पास न हो, यदि सुजान इनके सामने आजवेगी तो तुरन्त ही इनके अधरों से अपने आप गाना फूट पड़ेगा। फिर इनसे कहने की आवश्यकता भी न पड़ेगी। सुजान को बुलाया गया। फिर क्या था, घनानंद ने सुजान की ओर मुखातिब होकर गाना गाया, और बादशाह की ओर उन्होंने पीठ करली, इससे बादशाह को चिढ़ हो गई। बादशाह इनके गाने पर जितना प्रसन्न हुआ, उतना ही बेअदबी पर नाराज। उसने उन्हें नगर से निकाल दिया। जब यह चलने लगे तो इनकी प्रेमिका सुजान ने भी साथ चलने को कहा, पर उसको वह न ले गए। उन्हें यहीं से विराग उत्पन्न हो गया, और वृन्दाबन जाकर निबार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गए। कृष्ण की उपासना में लीन होकर बंसीवट के आस पास ही किसी सघन वृक्ष के नीचे कृष्ण के ध्यान में मग्न रहा करते थे। घनानन्द के वैराग्य का चाहे कोई भी कारण क्यों न रहा हो पर इसमें सन्देह नहीं कि दिल्ली छोड़कर के वृन्दावन जाने पर वह राधा माधव की उपासना में इतने निमग्न हो गए कि उन्होंने फिर किसी से कोई सम्बन्ध न रखा और वहीं सन् १७९६ में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु का सम्बन्ध कुछ विद्वान नादिरशाह के सिपाहियों से जोड़ते हैं, परन्तु यह कहाँ तक सत्य है, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके विषय में इतिहास मौन है। खोज करने के बाद घनानंदजी के अभी तक निम्न ग्रन्थ प्राप्त हो सके हैं "धनानंद कवित्त", "आनन्द घन जू के कवित्त", "कवित्त संग्रह", "सुजान विनोद", "सुजानहित", "वियोगबेलि", "रस केलिबल्ली", आनन्द जू की पदावली", "इश्कलता", "प्रीतिपावस", "जमुना जस" और "वृन्दावन सत"।

घनानन्दजी रीतिकालीन कवि और संगीतज्ञ थे। पर फिर भी वह रीति मुक्त होकर के ही रहे। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें रीतिकालीन राधा और कृष्ण के लौकिक प्रेम से प्रेरणा मिली थी, पर फिर भी उसकी अभिव्यंजना में संगीतज्ञ का अपना अलग ही दृष्टिकोण है। उसमें भी उन्होंने संस्कार किया और उसे बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बनाया। इस पर उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों की सूफी तथा भारतीय प्रेम पद्धति की छाया में पनपते हुए भी उस पर निज की छाप ही रखी है। अपने गीतों में प्रेम की अभिव्यक्ति करते वक्त कही भी गीतकार ने रहस्य का (कबीर और जायसी) की तरह आश्रय नहीं लिया और नहीं अपने रीतिकालीन पूर्ववर्ती कवियों की भाँति अपने "गीति काव्य" को अधिक अश्लीलता से अपवित्र किया। उनका प्रेम कृष्ण और राधा की वासनामय भावना पर स्थिति नहीं था। उनमें त्याग है, तपस्या है और है अलौकिक प्रेम की पीर। घनानन्द की प्रेम भावना में गोपियाँ आँहें नहीं भरती और नहीं लोक-लज्जा को तिलांजलि दे देती हैं, पर वह त्याग, तप, उत्सर्ग और संयम की मूर्ति है। यही कारण है उनके गीतों, पदों से हृदय को उत्तेजना नहीं, अमर शान्ति मिलती है।

"घनानन्द के गीत इस युग में खूब प्रचलित हो रहे थे। उत्तर प्रदेश की नारियाँ उनके प्रेम भरे गीतों को खूब गाती थीं। उनके अनेक पदों पर कई प्रकार के नृत्य बन चुके थे। "कृष्णलीला नृत्य" बड़ा ही सुन्दर बना था। जनता ने घनानन्द के गीतों को गा-गाकर खूब उठाया। आम जनता आपके गीतों को बहुत पसन्द करती थी। सार्वजनिक समारोहों के अवसरों पर भी आपके गीत गाये जाने लगे थे। नाटकों का प्रचार इस युग में विशेष रूप से था। आपके गीतों को नाटकों का अंग बना दिये गए थे।

सुजान की प्रेरणा ने ही घनानन्द को उच्चकोटि का संगीतज्ञ और कवि बना दिया—

घनानन्दजी इतने उच्चकोटि के कवि और संगीतज्ञ हुए, उसका मुख्य श्रेय सुजान को ही है। सुजान की प्रेरणा ने ही आपको इतना ऊँचा उठाया। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है, कि यह सुजान उसकी लौकिक प्रेमिका है या अलौकिक, पर यह सत्य है कि घनानन्द की रचना एवं गाने का केन्द्र विन्दु सुजान ही है। आपके गीत विरह निवेदन से परिपूर्ण हैं। आपके संगीत में हमें प्रेम की पीर कितनी ऊँची होती है इसके दर्शन मिलते हैं। उनके प्रत्येक शब्द में वेदना, कसक और टीस भरी हुई है। उनका विरह इतना तीव्र और व्यापक है, जिसमें अन्य विषयों को तनिक भी स्थान नहीं। उसके सामने तो एक ही मूर्ति रही और वह है विरह की। 'उनका रोम-रोम उसकी ओर आकृष्ट है और इसी से उनके सम्पूर्ण प्रेम को सम्बल प्राप्त है।

घनानन्द एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही संगीत विकास में लगा दिया—

वास्तव में घनानन्द एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही संगीत विकास में लगा दिया। सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर विनय मोहन का कथन है—"मध्यकालीन युग में घनानन्द महान संगीतज्ञ थे। उनकी संगीतिक प्रतिभा बड़ी अद्वितीय थी। उनकी आवाज बड़ी मीठी थी, उनका गाना क्या था, एक जादू था। उन्होंने भारतीय संगीत के विश्व में नवीन-नवीन पगडन्डियाँ निर्मित की। उनके पद पर "उल्लास नृत्य", "चन्द्रिका नृत्य", "कमल नृत्य", "गुलाब नृत्य" आदि निर्मित हुए। "होली नृत्य", "धान्य नृत्य" भी प्रचलित थे। वाद्यों में सितार का अधिक प्रचार था, तानपूरा, सारंगी, तबला, मंजीरा, झांझ, ढफ, ढोलक आदि प्रचलित थे। नारियाँ भी सितार-वादन में प्रवीण होती थीं। लेकिन सार्वजनिक समारोहों में वे भाग नहीं लेती थीं। वीणा का चलन एक दम बन्द नहीं हुआ था।

मुहम्मद शाह रंगीले

मुहम्मद शाह रंगीले अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल वंश के अन्तिम बादशाह थे—

मुहम्मद शाह १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१७१९–४० ई०) में मुगल वंश के अन्तिम बादशाह थे। संगीत के यह अत्यन्त प्रेमी थे। संगीत विद्वानों का यह आदर करते थे। वह गाने-बजाने में बड़े प्रवीण थे, बहुत से गीतों में इनका नाम प्रायः आज कल भी पाया जाता है। संगीत में प्रवीण होने के कारण वह रंगीले के नाम से विख्यात हुए, ऐसा कई इतिहास लेखकों ने लिखा है। रंगीले के दरबार में दो सुप्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग थे, जिन्होंने हजारों ख्यालों की रचना करके शिष्य तैयार किए। वास्तव में ख्याल गायकी के प्रचार का श्रेय सदारंग और अदारंग को ही है। इन्हीं के ख्याल आम सर्वत्र प्रचार में आ रहे हैं। कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि कलावन्ती ख्याल गायकी का प्रचार जौनपुर के सुलतान हुसेन शर्की ने किया। खैर जो कुछ भी हो इतना तो निश्चित ही है कि मुहम्मद शाह के समय में ख्यालों का बहुत अधिक प्रचार हुआ तथा नवीन-नवीन ख्यालों का जन्म भी हुआ।

सदारंग और अदारंग दोनों महान संगीतज्ञों ने ख्यालों के निर्माण में अद्वितीय कार्य किया—

सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक वर्नाल ने अपनी पुस्तक "Survey of Indian Music" में लिखा है—"मुहम्मद शाह रंगीले के समय में सदारंग और अदारंग ने

ख्यालों के निर्माण अद्वितीय कार्य किया। यह दोनों संगीतज्ञ वीणा-वादन में बड़े कुशल थे। गाने में बड़े निपुण थे। इन्होंने अनेक प्रकार के गीत लिखे। सर्वसाधारण जनता ने सदारंग और अदारंग के ख्यालों को बेहद पसन्द किया। इस काल में सार्वजनिक संगीत सम्मेलन अधिक होने लगे। सभी वर्गों के लोग इन सम्मेलनों में भाग लेते थे। संगीत प्रतियोगता भी हुआ करती थी, जिसमें नवोदित कलाकारों को शामिल होने का अवसर दिया जाता था। त्यौहारों के अवसरों पर अनेक प्रकार के नृत्यों का प्रदर्शन किया जाता था। जैसे होली के अवसर पर "होली नृत्य" दिवाली के अवसर पर "दीप नृत्य" नाग पंचमी के अवसर पर "नाग नृत्य" तथा वसन्त पंचमी के अवसर पर "वसन्त नृत्य" एवं रामलीला के अवसर पर "राम नृत्य" प्रदर्शित होते थे। जनता में संगीत के लिए बड़ा उत्साह था।"

इसी काल में प्रसिद्ध काव्यकार शोरी ने "टप्पा" का आविष्कार किया—

इसी समय में शोरी मिया ने "टप्पा" आविष्कृत किया। "टप्पा" के सम्बन्ध में विख्यात विद्वान रानाडे "हिन्दुस्तानी म्यूजिक" में लिखते हैं—"Tappa employs the same Ragas as those of the Thumari's form. Its field is therefore very limited. The Tappa does not aim at a slow or gradual progression of the theme, which is usually in the Punjabi or Pushtu language. Even from the beginning it revels in ornamental flourishes at the occurrence of almost every accented portion of the bar-usually signified by a long vowel and builds up the melody by elaborate turns and trills rather than by a glide which is scarcely used in a Tappa. The turns and trills are known as "Murkis" of which there are several subvarieties, such as Khatka, Gitkadi, Jamjama, Sansa, Ansa etc. These Murkis are a speciality of the Tappa and provide good practice in developing vocal facility in singing several kinds of delicate Tanas. The one point, to be remembered about the Tanas or melodic flourishes of the Tappa, is that whether the Tana is simple or ornamental, the successive links taken up or down, are taken step by step only and without any break between them. A Melodic or ornamental phrase begins on a bar and continues over its full extent. Then another phrase begins on the next bar and continues over that bar and in this manner the melody moves over all the four stages or spans of each cycle of the Tappa measure. Tappa literally means a

stage or a halting place on a journey and since there are four such stages in the Tappa measure, the style is named as Tappa itself."

एक प्रसद्धि गायन शैली टप्पा—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार बनर्जी ने टप्पे के सम्बन्ध में लिखा है—"टप्पे का गाना ख्याल तथा ध्रुपद की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है। टप्पे सब रागों में नहीं होते। ख्याल की ही कतिपय तालों में बहुधा टप्पे गाये जाते हैं। प्राचीन रागनियों में से भैरवी, खमाज, चैतागारी, कांलिगड़ा देश तथा सिन्धू इत्यादि रागनियों में टप्पे होते हैं। टप्पों की रचना योरपियन-प्रवेश काल की मानी जायगी। काफी झिझौटी, पीलू, वरवा, मारू, यमनी, लूम इत्यादि आधुनिक रागों में अनेक टप्पे पाए जाते हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि इन रागों का विस्तार संक्षिप्त होता है। हमारे यहाँ यह धारणा दृढ़ होगई है कि टप्पे सदैव शृंगार रस में ही होने चाहिए। परन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। चाहे जिस रस में टप्पों की रचना करने में कोई हानि नहीं है। यह अवश्य सत्य है कि इन गीतों की गति शीघ्र तथा प्रकृति क्षुद्र होने से इन्हीं के अवलम्ब से पद्य रचना करनी पड़ती है। यह तो स्पष्ट ही है कि ईश्वरोपासना इत्यादि विषयक गीत, जिनमें अधिक गम्भीर रचना होती है, टप्पों की शैली में शोभित नहीं होती। संगीत का प्रधान कार्य स्मृति उद्दीपन है। अतः जिन स्वरों के कानों में पड़ते ही अन्तःकरण में महान, उन्नत, प्रशान्त और विराट भावना का उदय हो, वे ही भक्ति और उपासना के योग्य स्वर होते हैं। टप्पों की प्रकृति की ओर देखने से यही दिखाई देता है कि ये गीत व हास्य, आनन्द, प्रणय आदि लघुभावोंपयोगी अधिक होते हैं। कैप्टन विलार्ड अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि टप्पे का गायन पंजाब में ऊँट हाकने वाले लोगों से सर्व प्रथम प्रारम्भ हुआ। आगे चलकर शौरी नामक प्रसिद्ध गायक ने उनका शृंगार करके, उन्हें उच्च श्रेणी का बना दिया। संभव है कि यह कहानी सत्य हो, क्योंकि पंजाब में यह कहानी सर्वत्र ही भली भाँति प्रसिद्ध है। एक अन्य ग्रन्थकार का कहना है कि शौरी का वास्तविक नाम गुलामनवी था तथा वह अयोध्या का रहने वाला था। यह निर्विवाद है कि टप्पा आज कल अतिशय लोक-मान्य गीत शैली है। शौरी द्वारा रचे हुए गीतों को टप्पे कहते हैं। टप्पों के अतिरिक्त जो इधर क्षुद्र गीत प्रचलित हैं, उन्हें ठुमरी कहते हैं। शौरी मिया के टप्पे का ठंग (गाने की रीति) निराला ही था, यह सत्य है। उसमें प्रयुक्त होने वाले तान, कपं, गिटकिरी इत्यादि प्रकार कुछ निराले ही हैं। शौरी के टप्पे प्रायः खमाज, लूम, झिझौटी, भैरवी, सिंधू जैसे रागों में मिलते हैं। कुछ विद्वान यहाँ यह शंका करेंगे कि क्या यमन, केदार, कानड़ा इत्यादि रागों में टप्पे नहीं होते ? इसका उत्तर एक तो यही है कि टप्पे में

प्रयुक्त होने वाले गायन प्रकार इस गम्भीर प्रकृति के रागों में सुशोभित नहीं होते तथा दूसरा यह कि शौरी ने भी ऐसे रागों में टप्पे नहीं बनाए हैं।

टप्पा कैसे आविर्भूत हुआ—

अब आप टप्पे के विषय में कैप्टन विलर्ड के निजी शब्दों को पढ़िये-"Songs of this species are the admiration of Hindustan. It has been brought to its present degree of perfection by the famous Shoree, who in some measure may be considered its founder. Tappas were formerly sung in very rude style by the Camel drivers of the Panjab, and it was he who modelled it into the eleganee it is now sung with. Tappas have two Tooks and are generally sung in the language spoken at Panjab or a mixed jargon of that and Hindi, They recite the loves of Heer Ranjah equally renowned for their attachments and misfortunes and alludo to some circumstances in the history of their lives,"

इसी काल में तंजौर के मराठा महाराजा तुलाजीराव भोसले द्वारा "संगीत सारा मृत" नामक पुस्तक लिखी गई—

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत साधना साधारण रूप से चलती रही, इधर मुसलिम शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और अंग्रेजों का पंजा शनैः शनैः भारत पर जमने लगा। इस उथल-पुथल में संगीत कला बड़े-बड़े राजाश्रयों से पृथक होकर स्वतंत्र रूप से एवं कुछ छोटी-छोटी रियासतों में पलने लगी।

इसी काल में (१७६३–१७८६ ई०) तंजौर के मराठा महाराजा तुलाजीराव भोसले द्वारा "संगीत-सारा मृत" नामक पुस्तक लिखी गई। "संगीत सारा मृत" में दक्षिणी संगीत पद्धति का वर्णन किया है और ७२ थाट स्वीकार करते हुए २१ मेल (थाटों) द्वारा ११० अन्य रागों का वर्णन किया है।

"राग लक्षणम" ग्रन्थ में रागोत्पादक ७२ थाट मानकर उनके द्वारा अनेक रागों का विवरण स्वरों सहित दिया है। यह ग्रन्थ भी दक्षिण की प्रचलित संगीत पद्धति का आधार ग्रंथ माना गया है। इस पर मूल लेखक का नाम तो नहीं दिया गया, किन्तु इस ग्रन्थ की प्रस्तावना से पता लगता है कि तंजौर के ही एक कलाकार के यहाँ से यह प्राप्त हुआ है।

विख्यात इतिहासकार सुरेन्द्र मोहन टैगोर (S. M. Tagore) ने अपने ग्रन्थ में लिखा है—"मुहम्मद शाह (१७१६ ई०) जो कि अन्तिम बादशाह थे, जिनके

दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इनमें अदारंग और सदारंग नामक दो बड़े प्रसिद्ध बीनकार थे। कहा जाता है कि इसी समय से भारतीय संगीत में ख्याल प्रणाली का जन्म हुआ। इस प्रणाली के जन्म के विषय में एक स्थान पर एक कथा मिलती है कि तानसेन के दौहित्र वंश के लोगों को, तानसेन वंश ध्रुपद गाने वालों के साथ उनके पीछे बैठकर, वीणा बजानी पड़ती थी। किन्तु कुछ दिन बाद इन वीणाकारों ने इस प्रकार अपना निरादर जान, उनके साथ वीणा वादन समाप्त कर दिया। इसी कारण से इनका दरबार में प्रवेश भी समाप्त हो गया और इनकी इर्ष्या तान वंश से बढ़ गई। अतः इस द्वेष का बदला लेने के निमित्त सदारंगजी ने भिक्षुक बालकों को, इस नई ख्याल प्रणाली को सिखाकर वादशाह को उनका गायन सुनवाया, बादशाह को यह गायन बड़ा अच्छा लगा तथा इस प्रकार सदारंगजी का पुनः दरबार में प्रवेश हो गया। इसी समय शौरी नामक एक कलाकार ने टप्पा, एक गायन प्रणाली को भारतीय संगीत में जन्म दिया। इसी काल से भारतीय संगीत में फारस के संगीत का मिश्रण प्रारम्भ हो गया था तथा इस मिश्रण के परिणाम स्वरूप नये-नये रागों की उत्पत्ति होने लगी थी।

तंजौर संगीत का मुख्य केन्द्र बना हुआ था—

दक्षिण भारत में तंजौर के मराठा बादशाह तुलजानी (१७६३–१७८७ ई०) ने संगीत विद्वानों को लगभग समस्त भारत के भागों से बुला कर उन्हें पारतोषिक आदि और भूमि दान प्रारम्भ कर दिया था। इसके फलस्वरूप तंजौर उस समय भारतीय संगीत का प्रमुख केन्द्र होगया था। स्वयं बादशाह ने भी "संगीत-सारामृत" नामक एक उत्तम ग्रन्थ की रचना की थी। इस प्रकार यह प्रगट होता है कि उस समय संगीत का स्थान केवल राज दरबार ही रह गया था। इस समय तक भारत में कई एक मत प्रचार में आ लिए थे, जिसमें "शिवमत", "कृष्ण मत", "भरत मत", "हनुमान मत", "कल्लिनाथ मत", "सोमेश्वर मत" और "इन्द्र-प्रस्थ मत" आदि प्रसिद्ध थे। इसी समय में (१७७९–१८०४ में) जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी ने भारतीय संगीत को ढंग में लाने के लिए भारत के संगीत विद्वानों की एक कान्फ्रेन्स बुलाई। इस कान्फ्रेन्स में सारे विद्वानों की समिति द्वारा एक ग्रन्थ "संगीत सार" नामक रचा। इस ग्रन्थ में उस समय के संगीत विद्वानों के विचार पाए जाते हैं, और इन विद्वानों द्वारा माने हुए वही शुद्ध स्वर हैं जो आधुनिक बिलावल ठाठ के हैं। किन्तु इस ग्रन्थ में कई एक विद्वानों के भिन्न भिन्न मत प्राप्त होते थे, अतः लोग जो बात चाहते थे वह इस ग्रन्थ द्वारा पूर्ण न हो सकी।

हिन्दू और फारसी संगीत पद्धतियों का सुन्दर सम्मिश्रण चित्र गहरे रूप में समाज पर अङ्कित था—

श्री भातखन्डेजी ने अपने ग्रन्थ "शार्ट हिस्ट्रोरिकल सर्वे" में लिखा है— "राजा सर एस० एम० ठाकुर ने अपने Universal History of music" के पृष्ठ ५८ पर लिखा है—"मुहम्मदशाह (१७१६) अन्तिम बादशाह थे, जिनके दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञों को आश्रय मिला। आज भी ऐसे कई गाने मिलते हैं, जिनमें उनके नाम का उल्लेख है। इसी सम्राट के दरबार में प्रसिद्ध गायक और रचयिता अदारंग और सदारंग ने समृद्धि पाई। प्रसिद्ध कलाकार शोरी ने "टप्पा" पद्धति में चरम कुशलता का प्रदर्शन किया। हिन्दू और फारसी संगीत पद्धतियों का सुन्दर समिश्रण मुसलमान काल के संगीत की प्रमुख विशेषता थी। शास्त्रीय संगीत के कुछ प्रकारों के नाम फारसी में रहे और कुछ को पूर्णतया नये नाम दिए गए, जैसे त्रिवट, तराना, गज़ल, रेखता, कव्वाली, कुलबाना आदि। मुसलमानों की संगीत शैली आज भारत में आदर्श मानी जाती है, चाहे उसमें कुछ लोगों को सांप्रदायिकता की गन्ध मिले।" कैप्टन विलर्ड जिन्होंने १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में "Treatise on the music of Hindustan" प्रकाशित किया, मुसलमान काल के अन्तिम संगीतज्ञों के बारे में इस प्रकार लिखते हैं—"इस काल के सदारंग अदारंग, नूरखाँ, लादखाँ, प्यार खाँ, जानी, और ग़ुलाम रसूल, शकूर, मँखू, ठेंहू, और मीहू, मुहम्मदखाँ, छज्जूखाँ और टप्पा के प्रवर्त्तक शोरी अधिक महत्वपूर्ण हैं। आज भी स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों के ऐसे संगीतज्ञ मिलते हैं, जिन्हें शास्त्र का कोई ज्ञान न होते हुए भी कंठ माधुर्य कमनीयता एवं कुशलता का इतना ज्ञान रहता है कि वे योरप के प्रथम श्रेणी के चारणों से टक्कर ले सकते हैं। जिन उत्कृष्ट गायकों को मैंने सुना है, उनमें मुहम्मदखाँ और सेढ़ोबाई के नाम उल्लेखनीय हैं। उत्कृष्ट वीन वादकों में उमरावखाँ के नाम लिए जा सकते हैं। अन्य में कुशालखाँ और कुशल वादक भी अनेक हैं।"

इस काल में अनेक मत प्रचलित होने के कारण संगीत के क्षेत्र में एक सर्व माननीय दृष्टिकोण का आविर्भाव न हो सका—

सुप्रसिद्ध विद्वान रानाडे लिखते हैं—"Yet the distinct set-back given to science was so great and annoying, that by the time of the early British period, thinking people were thoroughly disgusted with the absurd classifications and meaningless conventions of the time. Thus there were numerous Matas (मतास) or schools of musical

traditions and lore, which hardly agreed with one another, one really wished for a simple yet a rational way out of the chaos. A step in the right direction was first taken by Maharaja Pratap Singh Deva of Jaipur (1779-1801 A-D) who called a conference of the Pandits and experts of his day and in consultation with them got a standard work of Hindustani music written, called the "Radha Govind Sangit Sara." It was certainly a praise worthy attempt, as it has preserved in writing the opinions of the best available experts of that period. In the opinion of Pandit Bhat Khande, "The literary talent available to the Maharaja at that time, does not however appear to have been of a superior order." The work refers to good many Sanskrit authorities notably to RatanaKar, Darpana, Ragamala, Anupavilas, Parijata and others, but according to Pandit Bhat Khande "the Pandits of Maharaja Pratapsingh do not seem to have followed or rightly understood even one of them."

आम जनता की जबान पर ठुमरी बड़ी शान के साथ थिरकती थी—

इस काल में ठुमरी का प्रचलन खूब था। ठुमरी घर घर में गाई जाती थी। विशेष रूप से आम जनता ने ठुमरी को अपनाया। इस सम्बन्ध में मिस्टर रानाडे लिखते हैं—"Thumri is another interesting form of musical composition. A majority of such songs employ scales which are usually met with in the folk songs and employ, as a rule, notes from the very nine consonances which principally figure in folk music. The Thumari therefore employs such Ragas as Khamaja, Kafi, Mand, Pilu and others as are derived from them. It however seldom employs one particular or pure Raga, as, such, and in such cases employs a jillha or a mixture of two or more Raga scales and the nucleus for the jillha is supplied by some one of the Raga referred to, above. There are some Thumris in ragas like Bihag and Kedar, but such Thumris are few in number. In fact the Thumri has a very restricted number of ragas to choose from. It never employs ragas which are manly and grave in nature nor does it employ Ragas which are awful or sad and pathetic. Thus

there are no Thumris in ragas like Darbari, Mallar or Hindol on the one hand, and in Bhairav, Todi, Marva or Shri Raga on the other."

"ठुमरी" का जन्म कैसे हुआ—

प्रसिद्ध इतिहासकार बनर्जी ठुमरी के सम्बन्ध में लिखते हैं—"जिन रागों में टप्पे होते हैं, प्रायः उन्हीं रागों में ठुमरियाँ भी अधिक होती हैं। "ठुमरी" में पंजाबी अद्धा, कव्वाली इत्यादि तालें होती हैं। विलार्ड साहेब ने अपने ग्रंथ में "ठुमरी" नामक राग का भी उल्लेख किया है। उसे देखने से यही अनुमान होता है कि वह शंकराभरण तथा मारु इन दो रागों के मिश्रण से बना है। "संगीत सार" नामक ग्रंथ में यह कहा गया है कि "ठुमरी" की उत्पत्ति शोरी मियाँ से हुई। यह नहीं कहा जा सकता कि, यह बात किस सीमा तक विश्वासनीय है। तथापि यह बात निश्चित है कि भारत में "ठुमरी" नामक एक प्रकार का गाना प्रचलित है तथा वह भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता है। लखनऊ की ओर "ठुमरी" का व्यवहार अत्यन्त लोकप्रिय है। प्रसिद्ध शोरी कलाकार भी उधर ही की तरफ का व्यक्ति था, और सम्भवतः इसी से उसका नाम इस प्रकार के गाने से जुड़ गया है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि शोरी ने "ठुमरी" गाने का प्रचार नहीं किया। इसका कारण यह है कि 'टप्पा' तथा 'ठुमरी' सर्वथा भिन्न प्रकार है। कदाचित ऐसा हुआ हो कि टप्पे के संक्षतीकरण से 'ठुमरी' का गाना निकला हो। भारत में गाने वाली वेश्यायें 'ठुमरी' बहुत गाती हैं तथा इस प्रकार गाये जाने के कारण बड़े-बड़े गायक 'ठुमरी' का गाना निम्नकोटि का समझते हैं। सच पूछो तो यह अनुभूत बात है कि समाज को ख्याल तथा ध्रुपद की अपेक्षा 'ठुमरी' का गाना अधिक मिष्ठ प्रतीत होता है। 'ठुमरी' में दो प्रकार का आनन्द है। एक तो यह कि गाने की शैली ही सुन्दर है, और फिर उसके स्वर-वैचित्र्य भी विलक्षण ही हैं। 'ठुमरी' गाने वाले का कन्ठ—फिर गायक चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष ख्याल, ध्रुपद गाने वालों के कण्ठ की अपेक्षा बिल्कुल ही निराले ढंग से तैयार किया हुआ होता है। उसमें अत्यन्त ही सारल्य और कोमलता होती है। ख्याल, ध्रुपद गाने वाले गायकों से 'ठुमरी' का गायन आम नहीं सधता। 'ठुमरी' के गीत बहुत ही छोटे होते हैं, अतः वे वैचित्र्य से ओत-प्रोत रहते हैं। उसकी विशेषता यही है कि, यद्यपि उसमें भिन्न-भिन्न स्वरों को एकत्र किया जाता है। तथापि कानों पर उसका परिणाम बड़ा ही सन्तोषप्रद होता है। खमाज की 'ठुमरी' हो, तब भी उसमें गायक, भैरवी, सिंधू, पीलू, विहाग इत्यादि रागों के भी स्वर शैनः शैनः युक्ति पूर्वक लगाकर लोगों का मन-रंजन करते हैं। ऐसे स्वर, अच्छे क्यों लगते हैं, इसका कुछ निराला ही कारण है। चाहे जो हो, बड़े-बड़े गायक भले ही 'ठुमरी' पर हँसें परन्तु इसमें संशय नहीं है कि ये गीत भी अति लोकप्रिय गीतों में से हैं।"

कैप्टन विलार्ड 'ठुमरी' के सम्बन्ध में लिखते हैं–"Thumri is an impure dialect of the vrijbhasha (ब्रज भाषा) The measure is lively and so peculiar that it is not mistaken by one who has heard a few songs of this class. It is useless to waste words in description, which must after all prove inadequate of a subject which will impress the mind more sensibly when attention is bestowed on a few songs."

इसी समय श्रीनिवास पण्डित ने "राग तत्व बोध" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी—

इसी समय में श्रीनिवास पंडित ने "राग तत्व बोध" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। जिसमें इन्होंने भी पारिजातकार की भाँति १२ स्वर स्थान बनाकर अपना शुद्ध थाट आधुनिक काफी थाट के समान निश्चित किया। यह पुस्तक इस काल में बड़ी लोकप्रिय थी। इसने संगीत को विकसित करने में बड़ा योग दिया। श्रीनिवास पंडित ने भारतीय संगीत में एक नवीन युग स्थापित किया।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ न्यामत खाँ—

एक प्रसिद्ध इतिहासकार इस काल के बारे में लिखते हैं:—"अठारहवीं शताब्दी में न्यामतखाँ नाम के एक विख्यात वीनकार तथा सांगीतज्ञ हो गए हैं। कहते हैं कि यह अपनी कृतियों पर उस समय के बादशाह मोहम्मदशाह का नाम डाल दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिये ही वह ऐसा कार्य करते थे। न्यामतखाँ अपना उपनाम सदा रंगीले रखकर साथ में बादशाह का नाम जोड़ दिया करते थे। सदारंगीले को ही सदारंग भी कहा जाता था। न्यामतखाँ (सदारंग) के खाददान के बारे में कहा जाता है कि यह तानसेन की पुत्री के खानदान में दसवें व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लालसानीखाँ और बाबा का नाम खुशालखाँ था।

यद्यपि ख्याल रचना का कार्य सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था, किन्तु उस समय ख्याल रचना विशेष लोकप्रिय न हो सकी। इसके बाद सुलतान हुसेन शर्की, बाज बहादुर, चंचल सेन, चाँदखाँ, सूरजखाँ ने भी यही कार्य करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी। न्यामतखाँ ने उनकी इन असफलताओं का कारण ढूँढ़ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविता में बादशाह का नाम न डाला जायगा तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही इन्हें रूठे हुए बादशाह को भी प्रसन्न करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर एक बार बादशाह इनसे नाराज होगए थे, अतः वे उपनाम "सदा-

रंगीले" के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किन्तु इसकी खबर बादशाह को न होने दी कि यह कविता किसकी बनाई हुई है। इस प्रकार बहुत-सी कविताएँ न्यामतखाँ ने तैयार करके अपने शिष्यों को भी याद कराई और जब बादशाह को यह कविताएँ ख्याल में गाकर सुनाई गईं तो वे बड़े प्रभावित हुए और जानने की इच्छा प्रगट की कि यह "सदारंगीले" कौन है? न्यामतखाँ के शिष्यों ने उत्तर दिया कि हमारे उस्ताद जिनका असली नाम न्यामतखाँ है उनका ही तखल्लुस "सदारंगीले" है। बादशाह ने कहा कि अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ। न्यामतखाँ दरबार में उपस्थित हुए तो मुहम्मदशाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा कर दिया और उन्हें आदरपूर्वक अपने दरबार में रख लिया और वे वीणा बजाकर गायकों का साथ करने के लिए स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारंग ने अपना रंग जमा लिया।

सदारंग के ख्यालों को आम जनता बड़े प्रेम से अपनाती थी—

सदारंग के ख्यालों में विशेष रूप से शृंगार रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारंग ने स्वयं अपनी ये चीजें महफिलों में नहीं गाईं। उनका कहना था कि स्वयं अपने लिए अथवा अपने खानदान के लिए मैंने यह चीजें नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को प्रसन्न करने के लिए इनकी रचना की गई। इतना होते हुए भी इनकी रचनायें समाज में पर्याप्त रूप से फैल गईं। ख्याल गायक और गायिकाओं ने इनकी चीजें बड़े प्रेम से अपनाईं। सदारंग के साथ-साथ कुछ चीजों में अदारंग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में एक इतिहासकार का कथन है कि न्यामतखाँ के दो पुत्र थे जिनका नाम फीरोजखाँ और भूपतखाँ था। अदारंग फीरोजखाँ का ही उपनाम था, भूपतखाँ का उपनाम "महारंग" था। इस प्रकार पिता के साथ साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में अपना नाम सर्वदा के लिए अमर बना गए।"

विख्यात इतिहासकार प्रतिसांख्यायन ने अपने ग्रन्थ "The world music" में लिखा है—"सदारंग का असली नाम न्यामतखाँ था, लेकिन वह गीत सदारंग के उपनाम से लिखा करते थे। यह मुहम्मद शाह के दरबार में रहते थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्होंने बादशाह को संगीत के क्षेत्र में कीर्ति दिलाने के लिए उनके नाम पर रचनायें किया करते थे। जिससे इन्हें आर्थिक लाभ पर्याप्त मात्रा में हो जाया करता था। अदारंग इनके भाई थे। दोनों भाइयों ने मिलकर भारतीय संगीत को विकास की मंजिल की ओर पहुँचा दिया।

यूरोपीय काल के दो संगीतकार—

प्रसिद्धू जी ने गायन की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता ठाकुरदयाल से ली। आरम्भ से वे कुशाग्र बुद्धि के थे। इसलिए इन्होंने संगीत में तुरन्त प्रगति करली। धीरे-धीरे इनकी गायकी की ख्याति बढ़ने लगी। उस समय अयोध्या के नवाब सआदतअलीखाँ को संगीत से बड़ा प्रेम था। उन्होंने प्रसिद्धू जी को अपना सभा-गायक बना लिया। उसी समय "टप्पा" के विख्यात गायक शोरी मिया से उनका परिचय हुआ, उन्होंने शोरी मिया के सान्निध्य में रहकर सात साल तक टप्पा की शिक्षा ग्रहण की। उन दिनों दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह थे। बहादुरशाह के दरबार में संगीतज्ञों को संरक्षण प्राप्त था। उस समय जो कोई भी अच्छा संगीतज्ञ समझा जाता था, वह दिल्ली दरबार में अवश्य आमंत्रित होता था। प्रसिद्धू जी की कला साधना का समाचार वहाँ तक पहुँच चुका था। फलतः प्रसिद्धू जी अपने दोनों भाइयों मनोहर मिश्र और विश्वेश्वर मिश्र को लेकर दिल्ली रवाना होगए। बहादुर-शाह इन तीनों भाइयों के गायन से बहुत प्रभावित हुआ। तीनों सभा-गायक के रूप में नियुक्त कर लिये गए। कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि बहादुरशाह ने बाद में प्रसिद्धू जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था और गुरु दक्षिणा में सवालाख रुपया एवं तीनों भाइयों को एक-एक गाँव दिया। ये तीनों गाँव बनारस जिले में दिये थे। उनके नाम हैं—शिवपुर, गुड़पुर और परमपुर। तीनों भाई दिल्ली से लौटने पर तीनों गाँवों में बस गए। प्रसिद्धू जी को काशी से बड़ा प्रेम था। बाद में अपने छोटे भाई विश्वेसर मिश्र को जमींदारी का भार सौंप दिया और बड़े भाई मनोहर मिश्र के साथ काशी चले गये।

मनोहर मिश्र और प्रसिद्धू जी साथ-साथ गाते थे। प्रसिद्धू जी मनोहर के नाम से आज भी संगीत-समाज इन युगलबन्धुओं की कला-साधना से सुपरिचित है। दिल्ली दरबार से लौटने के उपरान्त उनकी कला की कीर्ति दूर-दूर तक राजदरबारों में पहुँची।

इन दोनों कलाकारों ने पूरे पंजाब में मिश्र घराने के कंठ गीत को प्रचलित किया। प्रसिद्धू मनोहर ने पंजाब केसरी श्री रणजीतसिंह, नागपुर के भोंसला तथा अन्य राजदरबारों में भी अपनी कला के चमत्कार से लोगों को मुग्ध बनाया। बाद में यह नैपाल चले गए, और वहाँ अन्तिम दिनों तक सभागायक रहे। पंजाब केशरी रणजीतसिंह भी संगीत के महान प्रेमी थे, और उन्होंने कई एक कलाकारों को आगे बढ़ाने में योग दिया।

पेशवा बाजीराव और मस्तानी (सन् १७२०–४०)

मस्तानी सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा थी। हमें इसके सम्बन्ध में ठीक-ठीक इतिहास प्राप्त नहीं होता, लेकिन बुन्देलखन्डी परम्परागत लोक कथाओं के अनुसार मस्तानी पन्ना के प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल बुन्देला की एक मुगलानी उपपत्नी से उत्पन्न पुत्री थी। बंगश के साथ हुए युद्ध (१७२७-१७२६) में पेशवा बाजीराव प्रथम की सामयिक सहायता से कृतज्ञ होकर वृद्ध छत्रसाल ने पेशवा को अपना तृतीय पुत्र मानकर उन्हें पन्ना के राज्य के तीसरे भाग का उत्तराधिकारी घोषित किया था, और मस्तानी भी पेशवा बाजीराव को तभी भेंट की थी। किन्तु विख्यात विद्वान पाग्सन के मतानुसार मुहम्मदखाँ बंगश का युद्ध छत्रसाल से नहीं, अपितु उनके पुत्र जगतराज से छत्रसाल की मृत्यु (१४ दिसम्बर १७३१) के कुछ समय बाद हुआ था और पेशवा बाजीराव इसी युद्ध में जगतराज की सहायतार्थ बुन्देलखन्ड आए थे। पेशवा ने बंगश को पराजित कर दिया, जगतराज को पुनः उनके राज्य पर आसीन किया था और तभी बुन्देलखन्ड से लौटते समय मस्तानी नामक मुसलमानी कलाकारिणी को अपने साथ ले गए थे, क्योंकि बाजीराव स्वयं कला पारखी और संगीत के बड़े अनुरागी थे।

लेकिन हमें मिस्टर पाग्सन साहब का यह मत भ्रमात्मक लगता है, क्योंकि समकालीन फारसी ग्रन्थों, पत्रों, मराठी बखरों तथा पेशवा दफ्तर के कागजातों से यह प्रामाणित हो चुका है कि पेशवा बाजीराव प्रथम ने इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मदखाँ बंगश के विरुद्ध सहायता छत्रसाल को (मार्च १७२६) दी थी। अतः पाग्सन साहब के मत का महत्व इतना ही रह जाता है कि पेशवा बाजीराव को मस्तानी बुन्देलखन्ड से प्राप्त हुई थी और वह एक मुसलमान नर्तकी थी।

पेशवा दफ्तर के बेनाम और बिना तिथि के पत्र का लेखक बाजीराव को लिखता है कि—"मस्तानी के श्रीमान के पास होने से मुझे समाधान है। पर आपको श्रीमान होकर हमारा संरक्षण करना चाहिए। छोटी कन्या हरण करली, ऐसी अपकीर्ति न कीजिए।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री सर देसाई का मत है कि इस पत्र का लेखक कोई ऐसा व्यक्ति प्रतीत होता है जो तरुण कन्याओं को नृत्य-गान की शिक्षा देकर धनिकों को बेच दिया करता था। ऐसी प्रथा उस समय उत्तरी भारत में विशेष प्रचलित थी और यह सम्भव है कि छत्रसाल ने ऐसे ही किसी व्यक्ति से मस्तानी को लेकर पेशवा को भेंट कर दी हो। तारीख-इ-मुहम्मदशाही के अनुसार भी मस्तानी एक "काँचनी" (नृत्यांगना) थी।

एक और मत है कि मस्तानी पहले गुजरात के नायक सूबेदार शुजाअतखाँ के पास थी। निजाम के उकसाने पर मराठों ने शुजाअतखाँ पर आक्रमण किया। एक

युद्ध में (दिसम्बर १७२४) शुजाअतखाँ मारा गया। तब चिमाजी भापा ने मस्तानी को अपनी रक्षा में लेकर बाद में उसे अपने अग्रज पेशवा बाजीराव को सौंप दिया। निम्नलिखित एक पुराने छन्द का उल्लेख इस मत की पुष्टि करता है।

"मस्तानि नामे भवन करम्या।
अन्यानरा ष्टीस ही अगम्या ।।
स्वस्त्रीस ही कि बना मुनम्या।
वेश्या असे सानत खान गम्या ।।"

(मस्तानी नाम की संसार में एक ही सुन्दरी है, जो दूसरे मनुष्यों की दृष्टि तक ही अगम्य हैं। अपनी स्त्रियों की तरह वह अति नम्य है। वह वेश्या, सुजाअतखाँ को सुलभ है।)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मस्तानी का मूल विवादग्रस्त है, फिर भी उसका छत्रसाल द्वारा ही पेशवा बाजीराव प्रथम की भेंट किया जाना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। वास्तव में मस्तानी की कहानी बड़ी ही दिलचस्प है।

मस्तानी जब पेशवा बाजीराव को उपलब्ध हुई, तब उसकी आयु लगभग १४-१५ वर्ष की थी। पेशवा के महलों में वार्षिक गणेशोत्सव पर वह अपनी ललित कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन करती थी। उसने अपने अप्रतिभ सौन्दर्य और नृत्य गान से पेशवा को अपने ऊपर मुग्ध कर लिया था। तारीख-इ-मुहम्मदशाही के अनुसार "वह कोरी नर्तकी ही न थी, बल्कि घुड़सवारी तथा तलवार और भाला चलाने में भी बड़ी प्रवीण थी और बाजीराव को युद्ध यात्राओं में उनके घोड़े के साथ चलती थी। मस्तानी के इन्हीं गुणों ने पेशवा को वशीभूत कर लिया था। वह हिन्दू ललनाओं की तरह बाजीराव से प्रेम करती थी। उसने हिन्दू खान-पान, भाषा, रहन-सहन आदि सभी अपना लिया था। मृत्यु तक उसके सभी आचरण ब्राह्मणकुल बधुओं की तरह ही रहे।"

पेशवा बाजीराव का कठोर सैनिक जीवन मस्तानी के प्रेम से अनुप्राणित हो उठा। सन् १७३० में पेशवा ने पूना का प्रसिद्ध "शनिवार बाड़ा" बनवाया और उसीमें एक भाग को बाद में निर्मित करके उसका नाम "मस्तानी-महल" और उसके द्वार का नाम "मस्तानी दरवाजा" रक्खा।

वास्तव में मस्तानी ने अपने अलौकिक संगीत से बाजीराव पर बहुत गहरा असर डाला था। उसके नृत्य गान में बड़ी शक्ति थी, कहते हैं कि उसको सितार-वादन भी आता था। खैर जो कुछ भी हो मस्तानी का संगीत-ज्ञान बड़ा गहरा था। वह उच्चकोटि की कलाकारिणी थी। उसका संगीत, आध्यात्मिक पृष्ठ का था। धार्मिक

भावनाओं से ओत-प्रोत गीत वह अधिक गाया करती थी। मस्तानी हिन्दू न होते हुए भी उसने प्रेम के वशीभूत होकर हिन्दू वातावरण पूर्ण रूप से अपना लिया था। भारतीय संगीत के इतिहास में मस्तानी का नाम सदैव अमर रहेगा और उसके साथ ही बाजीराव पेशवा का भी। दोनों के योग से ही हमें ऐसी सुन्दर कलाकारिणी प्राप्त हो सकी।

(यह अंकन हमने श्री भगवानदास गुप्त के एक लेख के आधार पर प्रस्तुत किया है।)

सुगम-संगीत—

इस काल में सुगम संगीत (light music) की बाहुल्यता होगई थी। लोगों ने सुगम संगीत को शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा अधिक अपनाया। शास्त्रीय संगीत आम जनता से हटता जा रहा था। सुगम संगीत के सम्बन्ध में श्री रानाडे लिखते हैं :—"But as is the common experience, there are bound to be only a few who can understand the subtle technique of classical music and fewer still who may have the good luck of being initiated into its traditions. To the majority, who cannot have any opportunity of such a training, the cause of artistic pleasure must be more specific, direct and tangible facial expressions, bodily movements or certain other gestures appealing to the primary emotions of man, or a simple poetic idea or a speech serve as good short cuts in this respect. This is how dancing, and poetic improvisation came to be considered as necessary adjuncts to music and among them poetry is the simplest and the most direct. It is on this account that such music, in which poetry predominates over the technical (purely musical) processes of classical music, is easily understood by the populace and is therefore known as popular or light music. The songs of light music have an obvious time-beat and having no musical technicalities run on along with the poetic words like the horses on a race course. Light music is indeed the starting point of stage-music or the opera. Light music came into vogue in this erra in 18th Century."

इस काल में "सुगम संगीत" की बाढ़ में शास्त्रीय संगीत कुछ दब-सा गया।

"नग़माते आसफी" की रचना इसी काल में हुई—

सन् १८१३ ई० में पटना निवासी मुहम्मद रजा नामक संगीत-विद्वान ने एक आलोचनात्मक ग्रन्थ "नाग़माते आसफी" लिखी। इस ग्रन्थ में उन्होंने प्रचार में आए हुए सारे ही मतों की निन्दा की और कहा कि आधुनिक संगीत के लिए यह मत लाभदायक सिद्ध नहीं हैं, और इसी आधार पर उन्होंने अपना एक नवीन मत प्रचलित कर दिया। उन्होंने कहा कि प्रत्येक राग की रागिनी में उस राग के स्वरों की (जिस राग की वह रागिनी है) समान्यता आवश्यक है। यहाँ यह भली भाँति जान लेना चाहिए कि प्रत्येक मत में ६ प्रमुख राग माने जाते थे और उन्हीं के आधार पर संगीत की नींव थी। इन्होंने भी आधुनिक विलावल ठाठ के स्वरों को ही शुद्ध स्वर माना है। इस ग्रन्थ के लेखक का कहना है कि उन्होंने अपने समय के मुख्य-मुख्य संगीत विद्वानों की सलाह (Consultation) लेकर यह ग्रन्थ रचा है और उनकी पुस्तक के लक्षण गीत भारतीय-संगीत में आज भी बड़े उपयोगी हैं। "नग़माते" अयोध्या के नवाब आसफुद्दौला के समय लिखा गया। आसफुद्दौला ने भी संगीत प्रचार में बड़ा योग दिया।

मिस्टर रानाडे मुहम्मद रजा के सम्बन्ध में लिखते हैं—"Naghamat-e-Asafi of Mohammed Raza is yet another work of the same type and was compiled by its author about the year 1814. Thoroughly dissatisfied with the absurd and meaningless Raga-Ragini Putra classification of his time, Raza took it into, his head to introduce some sort of intelligent principle in the classification. Before doing so, he boldly criticised all the four Matas or system of music, current in his day, and pronounced them as wholly out of date and unsuited to the spirit and practice of his time. The central principle upon which he based his own Mata or system was that between every Raga and its Raginis, there must be some close similarity or common features. So far as is known, only a few possess its copies in the manuscript form. But a fairly detailed and critical account of its contents has been given by Pandit Bhatkhande in his "Hindusthadi Sangit Paddhati" Vol. III pp. 120-138."

"संगीत राग कल्पद्रुम" श्रीकृष्णानन्द व्यास ने रचा—

इसके उपरान्त श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा लिखित ग्रन्थ "संगीत राग कल्पद्रुम" सन् १८४२ ई० में कलकत्ते में प्रकाशित हुआ। इन्होंने इस समय के मुख्य-मुख्य

विषयों का वर्णन किया है। यह सत्य है कि इन्होंने इस ग्रन्थ में कोई नवीन बात नहीं दी है, किन्तु यह भी एक महत्व की बात है कि इन्होंने बहुत से प्राचीन और उत्तम-उत्तम गानों का संग्रह किया है। दूसरा ग्रन्थ "गीत सूत्रसार" जोकि कृष्ण बनर्जी ने सन् १८५० ई० के लगभग लिखा था, वर्णन योग्य है।

महात्मा त्यागराज ने दक्षिण भारत में संगीत को एक अभिनव दृष्टि प्रदान की—

इस समय जब कि उत्तर भारतीय-संगीत अपनी राग रागिनियों के लिए नया मत खोज रहा था, उधर दक्षिण भी अपने संगीत में खूब बढ़ रहा था। तंजौर कई वर्षों से संगीत का केन्द्र बन ही रहा था तथा सन् १८००-१८५० ई० में वहाँ के बड़े संगीत विद्वान महात्मा त्यागराज ने कई एक नवीन गीत और कविताओं की रचना की, और अपने शिष्यों को उन्हें सिखलाया भी। उनके कीर्तन आज भी दक्षिण में गाये जाते हैं। वह एक अद्वितीय संगीत विद्वान थे। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह लम्बे, पतले और कुछ सांवले रंग के थे। इनके पिता का नाम "राम ब्रह्म" था और वह स्वयं भी एक उत्तम संगीत विद्वान थे। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि स्वयं नारद ऋषि ने इन्हें दर्शन दिये थे और एक "स्वरार्णव" नामक दिव्य ग्रंथ भी दिया था। इनके गुरु का नाम सुनथी बैंकट रमन था। उन्होंने संगीत में धर्म का मिश्रण करके उसे बड़ा प्रिय बना दिया था। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ "त्यागराज हृदय" "प्रहलाद विजय" और "लोक-चरित्र" उच्चकोटि के हैं।

इसी समय दक्षिण में श्याम शास्त्री, सुबराम दीक्षित आदि संगीतज्ञों ने संगीत कला का प्रचार खूब किया। इसी समय के अन्य प्रसिद्ध संगीत विद्वान गोविन्द मारर थे। यह ट्रावनकोर में रहा करते थे। उन्हें लोग षटकाल गोविन्द कहा करते थे, कारण कि यह एक ही गीत की एक ही समय में ६ भिन्न-भिन्न तालों में गा सकते थे। इनकी और महत्मा त्यागराज की भेंट के विषय में एक कथा प्रचलित है कि एक बार यह अपने शिष्यों के साथ, एक संगीत सम्मेलन में बैठे, एक कोरस (पल्लवी) राग पंतुवराली में गा रहे थे, तभी गोविन्दजी ने अपने सात तारों के स्वयं निर्मित तानपूरे पर उस राग गीत को एकदम ६ तालों में गाकर त्यागराजजी को सुना दिया। इस पर महात्मा त्यागराज इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनका नाम गोविन्द स्वामी रख दिया और तभी एक गीत निर्माण किया जिसकी प्रथम पंक्ति का भावार्थ है कि संसार में अनेक बड़े मनुष्य हैं और मैं उन सबों का आदर करता हूँ

महात्मा त्यागराज के समकालीन मुक्त स्वामी दीक्षित और श्याम शास्त्री थे। इनमें से श्री दीक्षित तिन्नेवली जिले के थे और इन्होंने नोटेशन का एक नवीन प्रकार

प्रचार में लाने की चेष्टा की थी, जिसमें स्वरों के विकृत स्वरूपों के चिन्ह स्वरों के (Vowels) के आधार पर रखे। इनके षड़ पौत्र (Great Grandson) एट्टिया पुरुप सुबराम दीक्षित ने दक्षिणी पद्धति पर तैलगू में एक बड़ा सुन्दर ग्रंथ लिखा है, जिसमें उन्होंने शारंगदेव के सिद्धान्तों को आधुनिक संगीत से मिलाने का प्रयास किया है ।

इस काल में कोचीन और ट्रावनकोर के कई एक महाराज और राजकुमार अच्छे संगीतज्ञ थे, जिनमें पेरूमल महाराज सब से प्रमुख थे और जिनके गीत संस्कृत तमिल, तैलगी, मलायम हिन्दुस्तानी और मराठी आदि ६ भाषाओं में पाए जाते हैं। वास्तव में योरपियन प्रवेश काल में दक्षिण भारत में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा संगीत-विद्वान मौजदू थे, जिन्होंने दक्षिण भारतीय संगीत को वैदिक ढंग से परिष्कृत किया। दक्षिण की महिलायें भी इस युग में विशेष संगीत प्रेमिका थीं। दक्षिण के विशाल मन्दिरों में संगीत के महान आयोजन हुआ करते थे। देवदासी की प्रथा विकसित हो चुकी थी, मन्दिरों में देवदासियाँ जो कि अपना जीवन भगवान को समर्पित कर दिया करती थीं, नृत्य और गान करती थीं। कई एक देवदासियाँ संगीत कला में बड़ी प्रवीण होती थीं। वे कला साधना विधिवत करती थीं।

हैदरअली (सन् १७२२ ई०)

हैदरअली बड़ा ही संगीत प्रेमी था—

हैदरअली का जन्म सन् १७२२ ई० में मैसूर में हुआ था। हैदर शब्द का का अर्थ है व्याघ्र। वास्तव में वह व्याघ्र की तरह बलवान और भयानक था। वह बुद्धिमान तथा निर्भीक और चतुर सेना नायक था। अपनी कार्यकुशलता तथा प्रशस्त बुद्धि के द्वारा वह सुलतान बन गया। जितना वह युद्ध का प्रेमी था, उतना ही वह संगीत का भी प्रेमी था। गाने-बजाने में उसकी बड़ी अभिरुचि थी। वह प्रायः गाने में ख्याल तथा गज़ल अधिक पसन्द करता था। भजनों को भी पसन्द करता था। उसने अपने दरबार में नर्तकी और गायक रख छोड़े थे। जब वह बहुत परेशान होता, अथवा जब वह किसी समस्या को सुलझाने के लिए उतावला होता तो वह नृत्य देखता था, और गीत सुनता था। कहते हैं कि संगीत से उसे कार्य करने में प्रेरणा मिलती थी। उसने अपने राज्य में संगीत के आयोजन भी कराये। सितार बजाने में भी उसे दिलचस्पी थी, लेकिन उसे संगीत विकास के लिए बहुत कम समय मिल पाता था।

टीपू सुलतान कला और साहित्य का प्रेमी था—

टीपू सुलतान हैदरअली का बेटा था। इसमें अपने पिता के सभी गुण थे। वह अपने पिता की तरह निर्भीक, साहसी और कुशल सैनिक था। संगीत का यह बड़ा प्रेमी था। टीपू सुलतान का हृदय कोमल था। वह नृत्य को विशेष पसन्द करता था। भारतीय नृत्य, विशेष रूप से। "भरतनाट्यम" और "कत्थक नृत्य" और "कथकली नृत्य" टीपू सुल्तान को विशेष प्रिय थे। टीपू सुलतान के समय में "कथकली नृत्य" बड़ा ही विकासपूर्ण हो चुका था। अरबी नृत्यों में "अलकबरा" उसको विशेष प्रिय था। उसके राज्य में संगीत का अच्छा विकास हुआ। वह संगीत सम्मेलनों में शामिल होता था, और सुन्दर संगीतज्ञ को पुरस्कार भी प्रदान करता था। कहते हैं वीणा-वादन में यह बड़ी दिलचस्पी लेता था, लेकिन इसके सम्बन्ध में हमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, खैर जो कुछ भी हो इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसका हृदय संगीत अनुरागी था। उसमें साहित्य और कला के विकास के लिए बड़ा उत्साह था। उसने एक बड़ा पुस्तकालय स्थापित किया था, जिसमें साहित्य और कला की सुन्दर पुस्तकें एकत्रित की गई थीं। जिसको उसकी मृत्यु के वाद अंग्रेज कलकत्ते लेगए थे।

संगीतज्ञों में ईर्ष्या-द्वेष की प्रधानता हो गई थी—

वास्तव में यह काल संगीत की दृष्टि से कोई सुस्थिरि काल नहीं था, डगमगाती हुई भावनायें प्रचलित हो रही थीं। प्रत्येक मत अपने सिद्धान्तों को सही और श्रेष्ठ समझता था, और वह एक दूसरे पर थोपने का प्रयत्न करता था। कोई मत इस बात का निश्चय नहीं कर पाता था कि ऐसे कौन से तत्व हैं जहाँ सब मतों का एक समन्वित रूप बन सके। जहाँ संगीत की एक धारा होसके। लेकिन इस सुन्दर दृष्टिकोण पर वे सोचने की उपेक्षा करते रहे। वे अपने ही मतों के प्रचार में लगे रहते थे और इस प्रकार वे संगीत विद्यार्थी के लिए उलझन पूर्ण स्थिति पैदा कर देते थे, और इससे भारतीय संगीत का सही दिशा की ओर विकास नहीं हो पाता था।

सुप्रसिद्ध विद्वान रावर्ट मैकिंगजी ने भारतीय संगीत के सम्बन्ध में एक विदेशी पत्र में एक लेख लिखते हुए लिखा था—"अठारहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक इतने मत प्रचलित हो गए थे कि जिससे भारतीय संगीत के विकास में एक जबरदस्त अवरुद्धता आगई थी। वे परस्पर एक दूसरे वर्ग से लड़ते झगड़ते थे, और यहाँ तक लड़ते थे कि वे एक दूसरे मत के संगीतज्ञों का अहित भी कर बैठते थे। इस प्रकार भारतीय संगीत का विकास-क्रम रुक-सा गया था। उसका राष्ट्रीय स्वरूप खत्म-सा हो गया था, और अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग प्रारम्भ हो गया था।"

कैप्टन डे लिखते हैं :—"opinions of the kind just quoted, held by the educated and influential, naturally enough have tended to lower the standing of musician, and the art it self has suffered in consequence. Hence, though there are many Mohomedan professors who are skilled executants, they are rarely men of any social prosition or educational attainments, and their knowledge of the theory of their art is but slight, of course to this there are exceptions, men such as Maula Bux of Baroda or Bande Ali of Indore might be mentioned who have studied much and who love their art for its own sake. But such are few. and far between still Mohamendan music, taken as whole, has little to rcommend it self even at the present day. The ideas professed by Hindus offer a curious contrast. For music from Hindu standpoint, is associated will all that is bright and sweet in life, its origin, ascribed directly to divine providence, causes it to be regarded as surrounded by a halo of sanctity. Almost all the religious literature of the Hindus breathes music. The ancient writings on Hindu music are known as the Gandharva Veda. The "Gita Govind", the Indian song of songs is music it self from beginning to end. It is difficult to imagine imagery more vivid or to picture scenes more charming than those in which krishtan, with his fair Gopi companinions, on the banks of the yamuna, played and sang those witching strains that like those of orphens held all creation spellbound. And so music with Hindus is a resource to which they always fly in joy or grief for prayer or praise. But still the old idia that music as a profession is a degraded employment, only for the stroller or the dancing girl to some extent lingers on so strong, is the influnce caused by the long ordeal mohomedan conquest. And Mohemedans even now, though liking and enjoying music. Often prefer to engage singers and instrumentalists rather than learn the art themselves, indeed, it is not difficult to find Hindus who do the same, and hold very similar prejudice.

Happily, in southern India, ideas of this kind Cannot be said to prevail generally, proofs to the Cont

rary may be found in the many living musicians who are men of education and poets in their way, music has almost with out intorruption flourished there from very remote ages. This Can be accounted for by the Country having been more under Hindu rule than other parts of India, and having suffered perhaps less from internal Comotions. From the study of Sanskrit, which has been maintained a amongest the musician of the Courts of Mysore, Tanjore, and Travoncore, music has not been left, as in other parts, almost entirely in the hands of ingorant dancing girls and their attendants.

There is hardly any festivity in India in which some part is not assigned to music—and for religious ceremonies its use is universal. Since the Vedic times it has been cultivated as an art. The hymns of the Rig and Yajur Vedas were set and sung to music ages ago. The Vedic chant, composed in the simple Sanskrit spoken three thousands years ago, and handed down to generation to generation for more than thirty centuries, has a thrill ing effect upon a cultivated Hindu mind. The Vedic Chant is to Hindus what plain song is to us. For this ancient chant like plain song is bound up with the sacred ceremonials and is wedded to language alike sonorous and dignified. And the place where it is heard, for it is only heard in the temple, is considered so holy and the strain itself is so simple and devotional, that all who hear it cannot fail to be impressed.

Indian music, like its sister art in Europe seems to have under gone many changes before reaching its present stage. In remote ages the art seems to have been highly cultivated, and musicians were held in great esteem; but under the mussalman dynasty, and owing to the almost perpetual strife between petty pricesses, music like other arts, through want of encouragement, fell almost abeyance. There is therefore little information to be had concerning the music of those times. From early periods, however many learned and elaborate treatises (mostly in Miss) upon the art yet remain. The later of these show that even then music had passed through several stages of

transition since the "Sangita Parijata", which is believed to be one of the latest of these Sanskrit works had been written by Ahobala, two separate schools or systems of music have arisen and are now known for the names of Hindustani and Karnatik. The Karnatik appears to have been elaborated as a distinct system subsequent to the advent of the Aryans to the South of India. The two systems although sprung from the same origin, have since under gone independently considerable changes and are now totally distinct from each other.

Of Hindu music in Southern India, since the fall of the Hindu Empire of Vijayanagar, Tanjore has been the only school, and from it those of Travancore and other places have doubtless been founded. Unfortunately, there is no record remaining of what had been done in former times in Tanjore; but within the last few centuries the people there, as in Europe have been aroused to a great state of musical activity and there had sprung up a school of musicians, ending with Tiagyaraj, destined to effect great changes and improvements in the art. There are still papers in the library of the Tanjore palace which show that various attempts have been made to improve the existing notation, such as it is, of Indian music. With the cession of the Tanjore territory to the British, at the close of the last century, there came a time when arts and sciences were cultivated in peace; under encouragement of the noble and wealthy, music so long neglected, once more sprung up with vigour to strike out for itself a new path and to enjoy a fresh existence. History in parallel instances shows that such has always been the case when arts long neglected are revived and become rapidly popular. The earliar music of the Sanskrit period bears a close resemblance, as far as we can judge, to that of the ancient Greeks, going far to prove that music has been derived from the same Aryan source, which seems probable, and has been discussed freely by different writers.

योरपियनों ने भारतीय संगीत की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, इस कारण यह स्वतन्त्र रूप से पनपता रहा।

नाटक के रूप में भी संगीत उत्तर तथा दक्षिण भारत में विकसित होता रहा। नाटकों की प्रथा इस काल में बढ़ गई थी। नाट्य नृत्यों का प्रदर्शन सार्वजनिक रूप से किया जाता था, जिसमें आम जनता भी दिलचस्पी लेती थी। दक्षिण के मन्दिरों में भी नाट्य नृत्यों का आयोजन होता था। संगीत प्रचार के लिए उत्तर भारत से अधिक दक्षिण में स्वतन्त्र संस्थायें निर्मित हुईं, जिसमें युवक-युवतियों ने खुलकर भाग लिया। उत्तर भारत से बहुत कम "सुगम संगीत" दक्षिण में पनपा। जिस गति से "सुगम संगीत" उत्तर भारत में इस काल में विकसित हुआ, उस गति से दक्षिण भारत में नहीं हो पाया। दक्षिण भारत में शास्त्रीय संगीत ही प्रमुख रहा। "कत्थक नृत्य" का प्रचार इस काल में खूब रहा। "भरत नाट्यम" तथा "मणिपुरी नृत्य" भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित थे। "भरत नाट्यम" के सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ करते थे, जिसमें सर्वसाधारण भी मुक्त हृदय से भाग लेते थे। इधर-उत्तर प्रदेश में रास-लीलाओं का जोर रहा और गुजरात में गरबा नृत्य भी इस काल में अपने विशद रूप में चल रहा था। समाज में संगीतकारों का वह उच्च स्थान नहीं रह गया था जोकि अकबर के काल में था, लेकिन हाँ दक्षिण भारत में संगीतकारों की स्थिति समाज के अन्दर उत्तर भारत से कहीं श्रेष्ठ थी। संगीतकार उतने संयमी भी न रह गए थे जितते कि बौद्ध और जैन काल में थे। इस काल में लोग संगीत को मनोरंजन की दृष्टि से अधिक अपनाने लगे थे। संगीत के आन्तरिक सौन्दर्य वर्द्धन के लिए कोई सुसंगठित प्रयत्न नहीं हुआ। इस युग में भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्तर गिरता जा रहा था। उसका वाह्य रूप को सम्भालने का ही प्रयत्न होता रहा। इन सब तथ्यों पर दृष्टि डालते हुए हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि इस काल में भारतीय संगीत अपने आत्मिक रूप का प्रचार नहीं कर पाया था जिससे उसकी दिव्यता धूमिल पड़ती जा रही थी।

संगीत प्रेमी बहादुरशाह

इस युग में बादशाह बहादुरशाह बड़ा संगीत प्रेमी था। वह स्वयं गीत रचना करता था। वह घण्टों गीत लिखने में लगा रहता था। उसके सम्बन्ध में विख्यात इतिहासकार टाइस रूमल ने अपनी पुस्तक "Indian Music" में लिखा है—"सम्राट बहादुरशाह में संगीत की प्रतिभा बड़ी उच्चकोटि की थी। वह संगीतज्ञ और शायर दोनों था। उसकी शायरी में हमें पूर्णरूपेण संगीत की पृष्ठ बड़ी सुन्दर मिलती है। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ भी रहा करते थे। वह संगीतज्ञों, कवियों एवं विद्वानों का आदर करता था। वास्तव में वह जितना कुशल शासक था उतना ही कुशल संगीतज्ञ था।"

उसकी शायरी का एक नमूना देखिये—

"जलाया यार ने ऐसा कि हम वतन से चले,
वतौर शमश्रा के रोते इस अंजुमन से चले।
न बागवां ने इजाजत दी सैर करने की,
खुशी से आए थे, रोते हुए चमन से चले।"

कहते हैं कि यह कविता बहादुरशाह ने उस वक्त गुनगुनाई, जबकि उनको दिल्ली से रंगून के लिए भेजा जारहा था। कुछ भी हो इस कविता में हमें संगीत की पुष्ठ मिलती है। वह जफर के नाम से लिखते थे। एक बार एक अंग्रेज सेनापति ने जो तीस साल से हिन्दुस्तान में रह रहा था, और उर्दू में. शायरी भी करता था, बादशाह का मजाक उड़ाते हुए एक शेर कहा :—

दमदमे में दम नहीं अब खैर मांगो जान की,
बस जफर, अब हो चुकी तलवार हिन्दुस्तान की।"

बूढ़ा बादशाह यह सुनते ही बिजली की तरह कड़क उठा—

"हिन्दुयों में बू रहेगीं, जब तलक ईमान की।
तख्ते लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की॥"

वास्तव में बहादुरशाह एक कुशल गीत लेखक था। उसकी बाणी में बड़ी मधुरता थी। उसका जीवन बड़ा संघर्षमय रहा, लेकिन फिर भी वह संगीत के द्वारा प्रेरणा ले लिया करता था।

जौक और गालिव जैसे प्रसिद्ध शायर उसके पास रहते थे। अंग्रेजी सल्तनत का पाशा पलटने के अपराध में उसे आजन्म कारावाश देकर रंगून भेज दिया गया था। कहते हैं कि कारावाश की हालत में भी वह संगीत और शायरी से अपना जी बहला लिया करता था। रंगून में ७ नवम्बर १८६२ को मुगल वंश का अन्तिम सम्राट भी मिट गया।

Well known Historian Percival Spear says—in his book "Twilight of the Mughuls" "But above all Bhadur-Shah was a poet and a literary patron. He was the pupil and friend of zauq, whose rival was the famous Ghalib. He Composed several Volumes of lyrics, some of which attained considerable popularity. It is this gift, much more than his crown, which gave him his place in the life of Delhi, and it is this even more than his political misfortunes. Which has caused him to be affectionately remembered by the people."

महाराष्ट्र का संगीत

अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में "लावनी" का जन्म महाराष्ट्र देश में हुआ। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मध्यप्रदेश में तुकनगिरि नाम के महात्मा और शाहअली नाम के एक फकीर थे। दोनों ही कवि थे। एक बार ये दोनों मित्र अपने समकालीन किसी मराठा नृप के यहाँ गए। दोनों ने राज्यसभा में अपनी लावनियाँ सुनाई। राज सभा ने मुक्त कंठ से इनकी प्रशंसा की। राजा ने प्रसन्न होकर अपने मुकुट का तुर्रा निकाल कर महात्मा तुकनगिरि को प्रदान किया, और कलंगी निकाल कर फकीर शाहअली को दी। तभी से तुर्रा और कलंगी लावनीकारों की दो प्रसिद्ध शाखायें आज तक चली आ रही हैं। लावनियों का विशेष क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है। इनमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की ही सभ्यता, संस्कृति और धार्मिक विश्वासों का निरूपण मिलेगा।

जहाँ तुकनगिरि हिन्दू थे, वहाँ उनकी शिष्य परम्परा में मुसलमान भी मिलेंगे और इसी प्रकार शाहअली की शिष्य परम्परा में हिन्दू। इस प्रकार लावनियों ने हिन्दू-मुसलिम एकता में प्रचुर मात्रा में योग दिया है। दोनों की ही विचार धाराओं का इसमें समावेश है। एक ओर हमें पुराण और उपनिषदों की गाथायें और दर्शन मिलेगा, दूसरी ओर कुरान के निर्देशन। इसमें राम की पितृभक्त, कृष्ण की लीलायें, हरिश्चन्द्र की सत्य परायणता, मोरध्वज का हृदय द्रावक अतिथि-सत्कार, बुद्ध की दया, वेदान्त, योग, एवं न्याय का निरूपण, हल्दी घाटी का युद्ध, काबा कर्बला का रोमांचक वर्णन, सुकरात की मौत, ईसा की सूली, शीरी फरहाद और लैला मजनू का प्रेम, मतलब कहने का यह है, आपको इसमें सब कुछ मिलेगा। लावनियों का जनता ने बड़े ही खुले दिल से स्वागत किया। लावनियों के समारोह में आम जनता की भीड़ अधिक होती है।

अब तो "लावनी" ने अपना क्षेत्र उत्तर भारत के सभी नगरों, ग्रामों में कर लिया है। आगरा, जयपुर, जोधपुर, जबलपुर, लाहौर करांची, अमृतसर, अम्बाला, दिल्ली, मेरठ, लखनऊ, बरेली, हैदराबाद, बम्बई, कलकत्ता आदि। इससे यह प्रामाणित है कि "लावनी" भारतीय लोगों का प्रिय संगीत है। लावनी जन-जीवन की विचार धारा का और उनके मनोरंजन का वाहन बन कर रही है। आपको भारत के हर हिस्से में "लावनी साहित्य" मिलेगा।

लावनीकारों में बहुत से प्रसिद्ध लावनीकार हुए हैं, और हैं। जनता उनके नाम आज भी आदर के साथ लेती है। उनमें पंडित रूपकिशोर, कवितागिरि, घमंडगिरि, बाबा पन्नालाल, भैरोंसिह, द्वारकाप्रसाद, नत्थासिह, बादल, मौलवी

आशिक अकबरावादी प्रसिद्ध हैं। वर्तमान लावनीकारों में पंडित हरिवंशलाल सर्वाधिक प्रसिद्ध लावनी आचार्य हैं।

भारतीय संगीत के इतिहास में "लावनी साहित्य" एवं लावनीकारों का विशेष महत्व है।

यूरोपियन प्रवेशकाल में भारत में अनेक सुप्रसिद्ध संत संगीतज्ञ थे—

यूरोपियन-प्रवेश काल में भारत में अनेक सुप्रसिद्ध संत संगीतज्ञ थे, जैसे भगवत रसिकजी, सिंगाजी, प्रियादासजी, देवदासजी, भगवानदासजी, दाना साहब, भाणा आदि ने संगीत की धार्मिक पृष्ठ को मजबूत किया। भारत में यूरोपियनों के आगमन से एक प्रकार की अनैतिकता-सी फैल रही थी। कलाकारों के चरित्र डगमगाने लग गये थे। समय का कोई विशेष महत्व नहीं रह गया था। कलाकार उच्छृङ्खल बनते जा रहे थे। कला और जीवन का संतुलन टूट चुका था। कला का महत्व जीवन के लिए नहीं आंका जाने लगा। कला के नाम पर संगीत को अश्लील बना दिया गया था। संगीत भोगविलास का उपकरण मान लिया गया था। संगीतमय जीवन का मतलव चरित्र-हीनता माना जाने लगा था। संगीतज्ञों की समाज में एक विचित्र स्थिति हो चुकी थी। ऐसे समय में संत संगीतज्ञ सामने आए और उन्होंने संगीत-विश्व के धूमिल वातावरण को उज्ज्वल बनाने का महान प्रयत्न किया। संत संगीतज्ञों ने यह जोरदार आवाज बुलन्द की कि संगीत विलासिता का अवलम्ब कदापि नहीं है, संगीत चरित्र निर्माण करने का एक प्रशस्त उपकरण है। इसके द्वारा हम अपने जीवन की गन्दगी, अनैतिकता को बड़ी सुगमता से हटा सकते हैं। संगीत का लक्ष्य मनुष्य को सुन्दर बनाना है, मनुष्य को विकास के भव्य पथ पर प्रविष्ट कराना है। संगीतज्ञ का जीवन त्याग और तपस्या से परिपूर्ण होना चाहिए। संगीतज्ञ का आभूषण उसका त्यागमय जीवन है। मिस्टर विलोडी ने अपने ग्रन्थ "भारत के संत" में लिखा है—"भारतीय संगीत को भारतीय संतों ने शक्तिशाली बनाया। यूरोपियन-प्रवेशकाल में संत संगीतज्ञों ने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। इन संतों ने मानव-जीवन की कालिमा एवं धूमिलता को विनष्ट किया और उन्हें कला का यथार्थ दृष्टि-कोण, सही मकसद बताया।"

ब्रिटिश काल में संगीत (आधुनिक काल)
(सन् १८५० से १९४७ ई०)

अंग्रेज भारतीय संगीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे—

अंग्रेज, भारतीय संगीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, साथ ही साथ अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ने लगा। जिसके फलस्वरूप राजा लोग भी संगीत के प्रति उदासीनता का भाव प्रगट करने लगे, और इस प्रकार रियासतों से संगीतज्ञों को जो आश्रय प्राप्त हो रहा था, उसमें बाधा पड़ने लगी। फिर भी कुछ खास-खास रियासतों में विभिन्न घरानों के संगीतज्ञ साधना में तल्लीन रहे। साथ ही उन दिनों संगीत का प्रवेश भले घरों में निषिद्ध माना जाने लगा, इसका भी एक विशेष कारण था कि इस सयय में शासक वर्ग की उदासीनता के कारण संगीत-कला निकृष्ट श्रेणी के व्यवसायी स्त्री-पुरुषों में पहुँच चुकी थी। अतएव नवीन शिक्षा प्राप्त सभ्य समाज का इसके प्रति उपेक्षा रखना स्वाभाविक ही था।

सुप्रसिद्ध विद्वान भातखण्डेजी अपने ग्रन्थ "शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे" में लिखते हैं—"ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत को कोई विशेष आश्रय नहीं मिला, जिसके फलस्वरूप उसके गुण और परिमाण में निश्चित कमी होगई। भारतीय संगीत की अवस्था इस काल में पूर्वार्द्ध में बिल्कुल शोचनीय स्थिति पर पहुँच चुकी थी। जो रियासती राजा पहले इसकी ओर सहानुभूति और प्रेम रखते थे, नई पद्धति की शिक्षा पाकर इसकी पूर्णतया उपेक्षा करने लगे, परिमाणस्वरूप वंश परम्परा के श्रेष्ठ संगीतज्ञ अपने वंशजों एवं प्रतिनिधियों के पास अपनी श्रेष्ठतम कला को छोड़कर न जा सके। मेरा अनुमान है कि यह भी कारण है, क्यों आज देश में प्रथम श्रेणी के कलाकार बिल्कुल इने-गिने हैं ? मैं स्वीकार करता हूँ कि अब भी हमारे कुछ रियासती दरबारों में कई उत्कृष्ट कलाकार विद्यमान हैं, पर मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि उनकी संख्या आज बहुत थोड़ी है।"

ब्रिटिश काल के शुरूआत में भारतीय संगीत पतन की ओर अग्रसर होने लगा—

ब्रिटिश काल के शुरूआत में भारतीय संगीत पतन की ओर अग्रसर होने लगा था। संगीत को उचित राजाश्रय न मिलने के कारण और साथ ही साथ जनता घोर-

पियन सभ्यता में रंग जाने के कारण भारतीय संगीत की उपेक्षा करने लगी थी, इसलिए संगीत ऐसे व्यक्तियों के हाथों में पहुँच गया जो कि समाज में घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। इससे भारतीय संगीत के लिए बड़ी हानि हुई, उसका सम्पूर्ण विकास क्रम ही समाप्त हो गया। संगीतज्ञ समाज में घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे, इससे योग्य, प्रतिभाशाली तथा कुलीन घरानों के लोग संगीत क्षेत्र में आने से घबड़ाने लगे, और उन्होंने अपना हाथ इस विशाल क्षेत्र से खींच लिया। व्यवसायियों के हाथों संगीत पड़कर वह अपना कलात्मक, भावात्मक शिल्पज्ञात्मक और सौन्दर्यात्मक रूप खो चुका था। इन व्यवसायियों ने संगीत के उज्ज्वल एवं पवित्र रूप को बिगाड़ दिया। उसके आध्यात्मिक रूप को भी विनष्ट कर दिया, क्योंकि यह रूप उनके लिए व्यर्थ-सा प्रामाणित हुआ। उन्होंने संगीत को अपने नवीन साँचे में ढालना प्रारम्भ कर दिया, और इतना ढाला कि उसका वास्तविक रूप ही लोप कर दिया। इन लोगों ने संगीत को विलासिता का मुख्य उपकरण बनाकर प्रस्तुत किया। अब संगीत पवित्रता के चारु क्षेत्र से हटकर भोग विलास के क्षेत्र में प्रविष्ट हो चुका था। वेश्याओं ने तो संगीत की मट्टी ही पलीत कर दी। वेश्याओं का भारतीय संगीत पर पूर्णरूपेण अधिकार हो चुका था, और उन्होंने इसे अपने रंग में रंग लिया। शास्त्रीय संगीत को लोग बुरी दृष्टि से देखने लगे। वे शास्त्रीय संगीत का मखौल उड़ाने लगे। योरपीय शिक्षा में पले हुए युवक-युवतियों ने भारतीय संगीत को ठुकरा कर योरपीय संगीत को अपनाना प्रारम्भ कर दिया और वे उसकी प्रशंसा के पुल बाँधने लगे। हाँलाकि वे योरपीय संगीत को किंचितमात्र भी समझ नहीं सकते थे, परन्तु फिर भी अपनी झूठी शान स्थिरि रखने के लिए और अपने को अधिक प्रगतिशील प्रामाणित करने के लिए वे योरपीय संगीत की प्रशंसा करने लगे, और इस प्रकार भारतीय संगीत पतन के गर्त में गिरने लगा। किन्तु संगीत के भाग्य ने फिर पलटा खाया और कुछ प्रसिद्ध अंग्रेजों एवं भारतीय विद्वानों जैसे सर विलियम जोन, कैप्टन डे, कैप्टन विलार्ड आदि ने भारतीय संगीत का अध्ययन करके इस पर कुछ पुस्तकें लिखीं। जिनका प्रभाव शिक्षित वर्ग पर अच्छा पड़ा और संगीत के प्रति अनादर का भाव धीरे-धीरे घटने लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत के कई एक सुन्दर ग्रन्थों की रचना हुई—

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल में सर एस० एम० टैगौर ने संगीत में कई एक उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। इनका लिखा हुआ ग्रन्थ "अन्तर्राष्ट्रीय संगीत का इतिहास" (The Universal History of Music) नामक पुस्तक एक आम ग्रन्थ है। बंगाल के पंडितों ने, जिनमें टैगौरजी भी सम्मिलित हैं, अपने रागों का विभा-

जन राग-रागिनी के पुत्रादि के ढंग पर ही किया है। विख्यात विद्वान भातखन्डेजी लिखते हैं:—"पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान और संगीतज्ञ राजा सर एस० एम० ठाकुर के स्मारक ग्रंथों की रचना हुई। उन्होंने हमारी इस राष्ट्रीय कला के लिए जो कुछ किया, आने वाले कई वर्षों तक उसकी समता नहीं हो सकती। श्रीयुत ठाकुर के ग्रंथों की संख्या इतनी अधिक है कि उन सब का यहाँ उल्लेख नहीं हो सकता। बंग देश को सचमुच अपनी इस सन्तान का गर्व है। "कण्ठ कौमुदी", "संगीत सार", "यन्त्र क्षेत्र दीपका" आदि उनके कुछ प्रकाशन अपने गुण स्वयं प्रदर्शित कर देते हैं। बंगला का एक और विशेष रूप से उल्लेखनीय ग्रन्थ "गीत सूत्रसार" है, जिसकी रचना मेरे मित्र कूच बिहार निवासी स्व० श्रीकृष्णधन बनर्जी द्वारा हुई। बैनर्जी ने इस ग्रन्थ में योरपीय स्वरलिपि पद्धति में सैकड़ों ध्रुपद और ख्यालों को बड़ी कुशलता से लिपि बद्ध किया है।"

मिस्टर रानाडे लिखते हैं—"Sir Shourindra Mohan Tagore is another great figure of those days and is well known for his patronage to music. Between 1867 and 1896, he published a number of books on music among which "The Universal History of music" needs special mention The Geeta Suttra Sar (1887) of Krishnadhan Banerjee and "A Discussion on Indian music" (1894) by Bhawanrao Pingle are two other good books looking much a head of their time."

डा० रवीन्द्रनाथ टेगौर

"रवीन्द्र संगीत" का जन्म हुआ—

डा० रवीन्द्रनाथ टेगौर ने आधुनिक काल के बंगाली संगीत में बड़ा परिवर्तन कर दिया। आपने प्राचीन बंगाली संगीत के मार्ग को छोड़कर उसमें एक अद्वितीय मिठास भर दिया है और एक नवीन संगीत प्रणाली जिसे "रवीन्द्र संगीत" कहते हैं जन्म दिया है। रवि बाबू विश्व गायक थे। विश्व के चराचर में उन्हें मौन संगीत की झन्कार झंकृत प्रतीत होती थी, और काल के कराल करों में भी उन्हें जीवन का आशा गान प्रदीप्त होता हुआ दिखाई देता था। बालपन से ही कवि ने जो गीत गाए वे व्यक्ति की संकीर्ण परधि से परे, विश्व मानव की शक्तिशाली पुकार की पृष्ठभूमि पर ही उच्छ्वसित हुए। यही एक कारण था कि उनकी वाणी बंग के वन वनान्तर, नद नदी, आकाश बातास, राग गन्ध, रूप सौन्दर्य के मध्य के ही अपनी रसवन्ती की देह संवारकर भी केवल बंग प्रदेश अथवा भारत भूमि तक ही सीमित न रह सकी, अपितु अखिल विश्व के मानवों के अन्तर में समान रूप से परिव्याप्त होगई। उनका स्वर दिव्य वाणी के उस अम्बर में मुक्त एवं एकतन

हो गया है, जहाँ वेद, उपनिषद, बाइबिल कुरान एवं विश्व के अन्य द्रष्टाओं की सनातन वाणी गूँज रही है। रवीन्द्र का संगीत उनकी आत्म प्रकाश की आकुलता का ही परिणाम प्रतीत होता है, जिसे उन्होंने अपनी अमर वाणी द्वारा काव्य हार में गूँथा। उसीकी पूर्णता के प्रकाशन के लिए रविबाबू के मर्म की अन्तर्वेदना ने स्वर की सहायता ली। उन्होंने स्वयं कहा है—"गान के स्वर के प्रकाश में मैंने सत्य के दर्शन किए हैं। अन्तर में जब गान की दृष्टि ओझल हो जाती है तभी सत्य गौण होकर हट जाता है।"

भारत में संगीत की अदभुत ऐश्वर्यशालिनी परम्परा है, जोकि वैदिक युग के "सामगान" की अद्वितीय देन है तथा शास्त्रीय संगीत के रूप में जिसके अन्दर हमें अपनी चिरन्तनता की मंत्रमुग्धक झांकी मिलती है। जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत का स्वरूप विशेष एवं विचित्र है, उसी प्रकार लोक-सगीत भी कम महत्वपूर्ण नहीं। रविबाबू के हृदय में दोनों क्षेत्र समान रूप से परिव्याप्त थे। साथ ही उनके स्वरों में पाश्चात्य स्वर सरिता भी प्राच्य संगीत धारा से आ मिली।

रविबाबू बाल्य काल से ही शृंखला एवं बन्धन से दूर भागते थे। इसी कारण उन्होंने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा नियमानुसार नहीं, वरन अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर ही ली। इन शास्त्रीय राग रागनियों में उन्हें संगीत का एक विश्व रूप प्राप्त हुआ था। ये गाने मानों मानव के नहीं, चराचर के गाने हैं। उनके स्वर विश्व संगीत के स्वर थे।

रविबाबू ने प्रारम्भिक गान रचना में ध्रुपद पद्धति का आश्रय लिया—

अपनी प्रारम्भिक गान रचना में रवीन्द्र ने ध्रुपद-पद्धति का आधार लिया। उनके सभी गीत भारतीय पद्धति पर अवलम्बित हैं। रवीन्द्र संगीत प्रधानतः गीति काव्यात्मक अभिनव सृष्टि का दूसरा नाम है। यद्यपि अनेक गीतों में प्रसंग और विषयानुसार महान काव्य का संस्पर्श जान पड़ता है, एक प्रकार की मृदु गम्भीर गूँज गुँजरित लगती है। उनके गीतों में परिवर्तन एवं सृष्टि व्यापी प्राकृतिक आलोड़न-विलोड़न का स्पन्दन बार बार सुनाई देता है। कवि प्रकृति सौन्दर्य के अनन्य प्रेमी थे, प्रत्येक ऋतु परिवर्तन में उन्हें नव्य उत्सव दिखाई पड़ता था।

प्रकृति के अलौकिक रंगमंच पर नित्य जागृत संगीत माधुर्य से मुग्ध होकर उनका हृदय सदा प्रकृति के गीतों से संगीतमय रहता था। ग्रीष्म के प्रखर उत्ताप के निदारुण अग्निवाणों ने भी उन्हें गान रचना करने को प्रेरित किया तथा नीलांजन जैसी घनपुंज छाया से आच्छादित आकाश ने भी। शरत की अरुण अलोकांजलि की मृदुल

आशा किरण एवं शेफालिका के रात्रिव्यापी सौरभमय जीवन ने भी अभिनव पुष्पों के गान कवि के अन्तर में मुखरित हुए। शिशिर एवं हेमन्त की कम्पनमयी शीत एवं जीर्ण पत्रकों को उड़ा ले जाने वाली समीर ने कवि के स्वर अपने साथ बहाए। वर्षा एवं बसन्त के गीतों में उनका स्वर-वैभव सर्वाधिक सुन्दरता से प्रस्फुटित हुआ है।

कवि के करों की वीणा के तार नीलाम्बर पर श्याम मेघों को निरते देख स्वतः ही झंकृत हो उठते। कवि भूल जाता स्वयं को एवं गा उठता वर्षा मंगल, मानों अनन्त काल से निरन्तर आने वाला यह आषाढ़ आज कवि के अन्तर में ही भर गया है। इसीसे गीत उठ रहे हैं, किन्तु क्षर क्षर करती हुई वर्षा की बूँदे किस राग, छन्द और लय में बरस रही हैं, यह स्वयं कवि भी नहीं जानता :—

"बहु जगेर गोपार होते,
आषाड़ एलो आमार मोने।
कोन से कविर छन्द बाजे,
क्षर क्षर बरिसाने॥"

कवि की वीणा से उठने वाले अनायासिक स्वर कवि के हृदय को आकुल कर देते हैं। वह स्वयं भूल जाता है कि उसकी वीणा से कौन से स्वर उठ रहे हैं—

"मोर वीना उठे कोनरे,
कोन नव चंचल छन्दे।"

किन्तु उसे इतना अवश्य पता है कि उसकी वीणा पर एक ही स्वर बज रहा है :—

"आमार एकटि कथा बांशि जाने
की सुर बाजे आमार प्राने।"

रविबाबू को प्रत्येक ऋतु ने गीत लिखने की प्रेरणा दी—

घोर गम्भीर मेघ समूह की छाया से अम्बर छा गया है, और ऐसा प्रतीत होता है कि मानों शून्य में नील-अंजन लग गया हो। वन लक्ष्मी का अन्तर चंचल होउठा है, शरीर कम्पित हो रहा है, और उसकी वीणा हो उठी है झंकृत—

"नील अंजन घन पंज, छायाय संबृत अम्बर,
वन लक्ष्मीर कम्पित काय चंचल अन्तर।
झंकृत तार छिल्ली मंजीर, हे गम्भीर···॥"

गगन के एक छोर से उमड़ते हुए आषाड़ के कजरारे मेघ देखकर कवि के हृदय में एक अद्भुत-सी आशा किरण प्रस्फुटित होती है, उसका मन पावस का आगमन जान हर्षोन्मत हो उठता है, गा उठता है, हृदय उसका।

सहस्त्रों गीत लिखकर भी विश्व कवि का हृदय सन्तोष न पा सका—

सहस्त्रों गीत लिखकर भी विश्व कवि का हृदय सन्तोष न पा सका। वह सदा यही कहते रहे—"जो मैं कहना चाहता था, न कह पाया............जो लिखना चाहता था, न लिख सका........ । मेरे मन की व्यथा मेरे मन में ही रह गई।" यही कहते-कहते उन्होंने संसार से बिदा के गीत गाने प्रारम्भ कर दिए। प्रतीत होता है जैसे गुरुदेव के मन में अपने अवसान की एक काल्पनिक छाया अंकित हो चली थी। उसी रंग में रंगी वे सदा बातें किया करते थे। सोचते—"जैसे पुष्प के पौधे से पल्लव झर जाते हैं, बुद्ध वृक्ष जिस प्रकार शनैः अवसन्न हो जाते हैं, वैसे ही एक दिन विश्व प्रकृति के अंक से मेरा जीवन भी झर जायगा........ ।"

सम्भवतः वही कवि का स्वाभाविक एवं यथार्थ अवसान होता भी—

"आसन्न है वर्ष का शेष।
मेरा जो कुछ भी पुराना है—
श्लथवृन्त फल के समान।
वह छिन्न होता जा रहा है,
उसी की अनुभूति मेरे सब कुछ।
के बीच स्वयं को व्याप्त करती जारही है।"

(जन्म दिन)

"आनन्दरूपममृत यद्भाति" विश्व कवि की आराधना का आजीवन यही मंत्र रहा। इसी की उपासना उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में की। मृत्यु तक को उन्होंने आनन्द से ही ग्रहण किया। श्रावणी पूर्णिमा और रक्षा बन्धन की पुण्य तिथि गुरुवार ७ अगस्त को मध्यान्ह १२ बजकर ७ मिनट गुरुदेव की निर्लिप्त आत्मा को मानों मृत्यु ने अपने हाथों राखी बाँधी थी।

तुम भी योग देना उस अनुष्ठान में
पूर्ण घट लेकर,
कदाचित सुन पाओगे दूर—
दिगन्त के उस पार से आती हुई
शुभ शंख ध्वनि............ ।"

और कवि की पार्थिव वीणा यही कहते-कहते स्पन्दन हीन होगई—एक अतृप्त अभिलाषा लिए "प्रियतम ! जो गीत गाने के लिए तेरी सभा में आया था, वे आज तक नहीं गा सका। यह जीवन केवल तेरी वीणा के तारों का स्वर साधने में ही व्यतीत हो गया........।"

(शरत कुमार के एक लेख का अंकन)

योरप के विख्यात विद्वान डब्लू० बी० यीटस (W. B. yeats) गीताजंली की भूमिका में लिखते हैं—"No poet seems to me as famous in Europe as he is among us. He is as great in music as in poetry, and his songs are sung from the west of India into Burma whereever Bengali is spoken. He was already famous at nineteen when he wrote plays. I so much admire the completeness of his life; when he was very young he wrote much of natural objects, he would sit all day in his garden, from his twenty fifth year or so to his thirty fifth her perhaps, when he had a great sorrow he wrote the most beautiful love poetry in our language," and then he said with deep emotion, "words can never express what I owed at seventeen to his love poetry. After that his art grew deeper, it became religious and philosophical, all the aspirations of mankind are in his hymns."

आगे वह लिखते हैं :—

"Rabindranath Tagore, like Chaucer's forerunners, writes music for his words, and one understands at every moment that he is so abundant, so spontaneous, so daring in his passion so full of surprise, because he is doing something which has never seemed strange, unnatural or in need of defence. These verses will not lie in little well printed books upon ladies tables, who turn the pages with indolent hands that they may sigh over a life without meaning, which is yet all they can know of life, or be carried about by the Students at the University to be laid aside when the work of life begins, but as the generations pass travellers will hum them on the high way and men rowing upon rivers. Lovers, while they await one another, shall find, in murmuring them, this love of God a magic gulf where in their own more bitter passion may bathe are renew its youth."

भारतीय संगीत में रविबाबू का सर्वोत्कष्ट स्थान है—

वास्तव में भारतीय संगीत में रविबाबू का सर्वोत्कष्ट स्थान है। उन्होंने भारतीय संगीत को नवीन पथ की ओर मोड़ा, उन्होंने संगीत उद्यान में नवीन-नवीन रंग-बिरंगे पुष्प प्रस्फुटित किए, उन्होंने भारतीय संगीत को नवीन आलोक, दिव्य सुषमा से परिवेष्टित किया, उन्होंने भारतीय संगीत की आत्मिक पृष्ठ को सौन्दर्यात्मक बनाया।

कैप्टन विलर्ड के अथक परिश्रम से ही भारतीय संगीत योरपियनों की दृष्टि में आया—

इस काल कैप्टन एन० ए० विलर्ड जो कि बाँदा राज्य में, उच्च मिलट्री आफीसर थे, इन्होंने बड़े परिश्रम तथा लग्न के साथ भारतीय संगीत का गहरा अध्ययन किया; और उसके यथार्थ रूप को योरप में सर्वप्रथम रक्खा, इससे पूर्व योरप वाले भारतीय संगीत को हेय दृष्टि से देखते थे। कैप्टन विलर्ड के ही अथक परिश्रम ने भारतीय संगीत को योरपियनों की दृष्टि में रक्खा। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "A Treatise on the Music of Hindustan" यह ग्रन्थ सन् १८३४ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में भारतीय संगीत पर गहरा प्रकाश डाला गया। इस ग्रन्थ ने विश्व के सामने भारतीय संगीत की सही स्थिति रक्खी। मिस्टर रानाडे कैप्टन विलर्ड के सम्बन्ध में लिखते हैं।

Capt. N. A. willard who was also an officer in the army of the Banda state It appears that Willard had a sound knowledge of the theory and practice of the European system of music and was gifted with the power of close observation and study. He was a skilful performer on several of our musical instruments. His famous book 'A Treatise on the Music of Hindustan' was published at Calcutta in 1834. He has been sympathetic and essentially Indian in his approach to the subject. The book is valuable for the data collected in consultation with the leading musicians of his time and for the observations and generalisations which show its author's deep insight and sound acquaintance with the professional technique. According to him from the theory of music a defection had taken place in its practice, and men of learning used to confine themselves exclusively to the former, while the latter branch was abandoned entirely to the illiterate. Naturally, the theory that a professional knew did not go beyond a smattering knowledge of number of technical terms and the tuning of some instruments supported by a working hypothesis built out of fragments indifferently collected from old Sanskrit works on music and also from hear say.

It needs no arguments to prove that willard on account of his superior general education and critical

ability is inherently more dependable than Mohammed Raza and the more so because he was also an expert of the western system of Music and had a sound knowledge of acoustics and the art of putting into notation any music heard

अन्य यूरोपियनों ने भी भारतीय संगीत पर सुन्दर ग्रन्थ लिखे—

कैप्टन विलार्ड के अतिरिक्त भी अन्य यूरोपियनों ने भारतीय संगीत का अध्ययन किया जैसे कर्नल पेटर, मिस्टर इलियस (Elles) मिस्टर हिपकिन्स, मिस्टर क्लीमेन्टस, मिस्टर डेविल (Deval) मिस्टर फोक्स आदि। इन यूरोपियनों के कार्यों को भारतीय संगीत के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता। इन कलाकारों एवं संगीत के विद्वानों के सतत प्रयत्नों से ही भारतीय संगीत के इतिहास की सामग्री आज प्राप्त हो सकी है। इन्होंने खोज करके भारतीय संगीत पर जो आवरण पड़ गया था, उसको बड़ी चतुरता से उठाया। भारतीय संगीत के इतिहास में इन महान कलाकारों को सदैव याद किया जायगा।

मिस्टर रानाडे लिखते हैं :—

"In the army of some of these princes, there used to be some European officers, and those with a taste for music incidentally had many opportunities of listening to good music and also of associating themselves closely with the court musicians. Anecdote about one col. Peter of the old Gwalior army runs that he was good composer and an excellent performer of vocal music.

It was only in the latter part of the nineteenth century that eminent Indian as well as European scholars took to the study of Indian music of the European scholars of this period, most showed a peculiar want of imagination intrying to solve the problem of Indian music by a literal interpretation of ancient Indian works on music combined with the use of mathematical tables. A literal interpretation of many passages often leads one into a vicious circle of arguments. Again, mathematical measurements of the distance between the frets of an instrument or the length of a speaking wire on the veena do not often represent the true length. Playing on the veena or any Indian instrument with strings is largely a matter of guess-work, for a large number of the notes

employed are obtained by increasing the tension of the wire, by pressing it hard with the finger and by dragging it further on to one side. Under these circumstances, one cannot expect to find much about the Indian scales by measuring the wire lengths or the spaces between the frets of the different stringed instruments, yet, this was the method employed by such workers as Mr. Ellis and Mr. Hipkens in the verification of the Indian scales. The work of such scholars, though pursued on truly scientific lines, had but little practical value and in some cases only helped to feed the fire of prejudice against Indian music, by providing a faulty standard of contrast between the Indian and European systems of music."

"गीतालिप" का निर्माण हुआ—

मिस्टर जी० एल चत्रे ने बड़े परिश्रम से "गीता लिपि" को तैयार किया, जिसका कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके भाई ने सम्पादन किया, जिससे भारतीय संगीत का शिक्षण विद्यार्थियों के लिए सुगम बना दिया। वास्तव में इन विद्वानों का कार्य भारतीय संगीत क्षेत्र में बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा। इसमें हमें सरल भाषा स्वर का विधान एवं स्केलों की भाषा प्राप्त होती है। मिस्टर रानाडे लिखते हैं :—

"A pamphlet called the "Gita lipi" written by Mr. G. L. Chatre and after his untimely death revised by his brother the famous Keropant Chatre, stands out as a distinct land mark in the history of the early attempts of the educated classes to make the teaching of music, simple yet sound. It gives the elementary laws of sound and the scales and the staff-notation of the European system of music in plain everyday language and has proposed a similar system of notation for the purposes of recording Indian songs. It was published, in 1864 by Raosaheb V. N. Mandlik of Bombay, who in his introduction says that the book was prepared for use in the girls' school conducted by the literary and scientific society of Bombay. It consists of 39 pages and eight Charts of notation and eight specimen songs also put into notation. The interest attaching to this book is in the fact that it is perhaps the very first book which advocated and framed a system of notation for Indian music."

ब्रिटिश काल में "घरानों" की प्रथा पूर्ण रूप से विकास पूर्ण हो गई, जिसकी नींव राजपूत काल में पड़ चुकी थी—

इस ब्रिटिश काल में संगीतकारों में एक निकृष्ट प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। वह प्रथा थी 'घरानों' की, हाँलाकि इन घरानों की बुनयाद राजपूत काल में पड़ चुकी थी, लेकिन वह ब्रिटिश काल में उभर आई थी। इन घरानों ने भारतीय संगीत को पनपने नहीं दिया। इन्होंने भारतीय संगीत का बड़ा अहित किया, ये लोग अपने अद्वितीय संगीत ज्ञान को प्रच्छन्न रखते थे। वे अपने ज्ञान को समाज को समर्पित नहीं करते थे। संगीतज्ञों के कुटम्बी अपनी संकीर्ण मनोवृत्तियों के कारण उन अमूल्य निधियों को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने में हिचकिचाते रहे। यह अलभ्य विद्या इन संगीत विशेषज्ञों ने केवल उन गिने चुने शिष्यों के लिए ही बताई जो अधिकांश उनके पुत्र-प्रपुत्र अथवा कुटम्बी व्यक्ति थे। तब से आज तक लगभग सभी घरानों में यह परपाटी चली आ रही है। निर्विवाद सत्य है कि इस युग में अनेक संगीतज्ञ शिक्षा देने से पूर्व एवं मरते वक्त अपने शिष्यों को यह ताकीद करते थे कि इस संगीत ज्ञान को जो हमने तुम्हें प्रदान किया है, उसे अपने तक ही सीमित रखना, किसी भी दशा में इस अमूल्य ज्ञान को दूसरों को न देना, अगर तुमने दिया तो तुम महा पाप के भागी बनोगे। इस प्रकार का वे उपदेश दिया करते थे। और वे अशिक्षित अथवा शिक्षित शिष्य समुदाय भी उन्हीं उपदेशों को वेद वाक्य समझकर पालन करते चले आये। इससे आप कल्पना कर सकते हैं कि घरानों की उत्पत्ति संगीत विकास के ख्याल से नहीं हुई, बल्कि इसकी पृष्ठ-भूमि में कलाकार की संकीर्णता, उसकी स्वार्थता एवं उसकी बुद्धि हीनता भरी हुई है। इन घरानों को ब्रिटिश काल में पनपने के लिए काफी अच्छी जमीन एवं वातावरण मिल गया। शासकों की संगीत के प्रति उदासीनता के कारण संगीतज्ञों में अशिक्षा फैल गई थी। वे अपने पवित्र एवं महान उत्तरदायित्व से विमुख होगए थे, उनके सामने वैयक्तिक स्वार्थ ही सर्वोपरि रह गया था। इसी वैयक्तिक स्वार्थ के संकुचित गर्भ से घरानों की उत्पत्ति हुई। घरानेदार संगीतज्ञ इस बात को श्रेष्ठ व सुन्दर समझने लगे थे कि संगीत ज्ञान को आम जनता में विस्तृत करना ठीक नहीं है। संगीत ज्ञान को जितना छिपा कर रक्खा जायगा, उतनी ही समाज के रंगमंच पर हमारी गौरव एवं प्रतिष्ठा बढ़ेगी। वे इस झूठी प्रतिष्ठा एवं थोथे गौरव के फेर में पड़कर अपने पवित्र मार्ग से गुमराह होगए, और इतने गुमराह हुए कि आज तक भी वे सही रास्ते पर नहीं आपाये। देश में आज भी उन घरानों के अनुयाई प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। कुछ तो ऐसे हैं जिनके न संतान है और न उनकी जाति के बफादार शिष्य ही। अतः वे अपनी कला अपने साथ ही लेकर मरेंगे। वे संगीतज्ञ यह समझ न पाए कि ज्ञान को

छिपाकर, रखकर जो प्रतिष्ठा एवं गौरव प्राप्त होगा उसमें स्थायित्व न होगा, और इससे भारतीय संगीत को कितनी बड़ी हानि होगी, उसकी कल्पना नहीं की जासकती, इस बात को कभी उन्होंने सोचा नहीं, वे संकीर्णता के दायरे में ही घूमते रहे, उनके सामने राष्ट्र और समाज के हित का प्रश्न न था। अगर घरानों की परिपाटी भारत में चालू न होती तो भारतीय संगीत के विशाल क्षेत्र में न मालूम कितने और महान् विभूतियाँ आविर्भूत होती, उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। कितने ही महान कलाकार अपने अमूल्य ज्ञान को अपने ही साथ लेकर मर गए।

ब्रिटिश काल का सबसे बड़ा अभिशाप भारतीय संगीत के लिए घराने ही हैं—

ब्रिटिश काल का भारतीय संगीत के लिए सबसे बड़ा अभिशाप "घराने" हैं। जो संगीतज्ञ इन घरानों में जन्म लेते हैं, अथवा उसके दायरों में रहते हैं, उनकी बुद्धि इतनी संकुचित हो जाती है कि वे सामूहिक रूप से कोई भी विकास कार्य नहीं कर पाते। वे प्रत्येक कार्य में अपना व्यक्तिगत लाभ देखते हैं। इसके लिए कला का मूल्य सिर्फ व्यवसायिक ही है। यह लोग कला को गहराई एवं सौन्दर्यात्मक दृष्टि कोण से कभी देख नहीं पाते। जब तक यह घरानेदार संगीतकार जिन्दा रहते हैं, तब तक यह अपनी कला के संकीर्णता का चिराग जलाय रखते हैं, और फिर वही चिराग अपने शिष्य को सौंप जाते हैं, वह भी अपने गुरु के क्रम को जारी रखता है। बस इसी प्रकार यह कला की संकीर्णता का क्रम चला करता है। इस क्रम ने न मालूम कितने कलाकारों का अहित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज में जो प्रतिभाशाली युवक-युवतियाँ होते थे और वे संगीत को अपनाने के लिए आगे बढ़ते तो फिर यह घरानेदार संगीतकार उनके उत्साह को खत्म कर देते यह कह कर कि यह तुम लोगों के वश की बात नहीं हालाँकि, कहने वालों का ज्ञान, एवं बुद्धि उनकी अपेक्षा बहुत कुन्द होती थी।

इस काल में भारतीय संगीत घेरों में विभिक्त हो गया—

सुप्रसिद्ध विद्वान जोन हावर ने अपनी पुस्तक "Study of Indian music" में लिखा है—"ब्रिटिश काल के भारतीय संगीत में यदि कोई सबसे बुरी बात हमें मिलती है तो वह यही घराने का निर्माण है। जिसने भारतीय संगीत की पवित्रता, उसकी उत्कृष्टता, एवं उसकी आत्मिक सुषमा को विनष्ट किया। इस काल में भारतीय संगीत घेरों में विभिक्त हो गया, जिससे उसका सार्वभौमिक सौन्दर्य मारा गया, जिससे उसका राष्ट्रीय रूप उत्कीर्ण न हो पाया, और जिससे उसका शक्ति संतुलन डगमगा गया। इन घरानों ने कभी संगठित होकर भारतीय संगीत के

विकास के लिए कोई सुदृढ़ कदम नहीं उठाया। यह घरानेदार कलाकार कूप मन्डूक बन गये, न तो यह बाहर के कलात्मक ज्ञान को ग्रहण करते थे और न यह अपने ही ज्ञान की कुन्जी को किसी को देते थे। इनकी हालत तो उस तालाब के समान हो गई कि जो चारों तरफ से सीमा बद्ध हो, और जिसका वहाव बिल्कुल खत्म हो गया हो, ऐसे तालाब का पानी, कुछ दिनों के बाद सड़ायद पैदा करने लगेगा ठीक ऐसी ही सड़ायद हमें इन घरानों के संगीत में से मिलने लगी, क्या सबके सब संगीतज्ञ एवं विद्वान इन घरानों के चक्कर में पड़ गये थे, ऐसी बात नहीं। अनेक संगीतज्ञ और विद्वानों ने वास्तविक परिस्थिति को समझ लिया था, और वे इनसे बचते रहे तथा समय समय पर विरोध भी प्रगट करते रहे, किन्तु उनकी आवाज कमजोर थी, इसलिए वह न सुनी गई।"

दक्षिण भारत में ऐसी स्थिति न थी। वहाँ घरानों की पद्धति न पनप पाई। जिस समय में उत्तर भारतीय संगीत सकीर्णता के वर्गों से गुजर रहा था, उस समय दक्षिण भारतीय संगीत विशालता के भक्त पथ पर विचरण कर रहा था। ब्रिटिश काल के प्रारम्भ में दक्षिणी संगीत उत्तर भारतीय संगीत से कहीं अधिक विकसित दृष्टिकोण वाला था। उसमें संगीत के राष्ट्रीय रूप को खंडित नहीं किया गया था, और न संगीत के निर्माण को विनष्ट किया गया था। उन्होंने जो कुछ भी कदम उठाया वह संगठित होकर। इसीलिए उनके संगीत में हमें एकरूपता मिलती है। इसीलिए उनका संगीत अपनी आत्मिक उज्ज्वलता का मजार न बन सका।

संगीत के क्षेत्र में ब्रिटिश काल की महान देन—
श्रीविष्णुनरायन भातखन्डे

श्रीभातखन्डेजी ने उत्तर भारतीय संगीत के लिए जो महान कार्य किया, जो प्रशस्त कदम उठाया वह भारतीय संगीत के इतिहास में बड़ा ही महत्वपूर्ण है—

श्री भातखन्डेजी ने उत्तर भारतीय संगीत के लिए जो महान कार्य किया, जो प्रशस्त कदम उठाया वह भारतीय संगीत में बड़ा ही महत्व पूर्ण है। उनका जन्म बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान में १० अगस्त १८६० ई० को हुआ। इन्होंने १८८३ में बी. ए. और १८९० में एल. एल. बी. की परीक्षा पास की। इनकी लगन आरम्भ से ही संगीत की ओर थी। संगीत कला को पतन की ओर जाते हुए देखकर उसका पुनर्ज्जीवन करने की लग्न से पं० भातखन्डेजी ने प्रथम संगीतज्ञों के मूल संस्कृत

ग्रन्थों का अध्ययन किया, उनमें दिए हुए महत्व के आधारों पर टिप्पणी बनाई। पर्शियन तथा उर्दू को पढ़ने के लिए उन भाषाओं का अभ्यास किया। सन् १९०४ में उनकी ऐतिहासिक संगीत यात्रा आरम्भ हुई, जिसमें आपने भारत के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण करके संगीत सम्बन्धी साहित्य की खोज की, तथा उन्होंने प्राप्त मुद्रित एवं हस्त लिखित ग्रन्थों का अवलोकन एवं अध्ययन किया, इस प्रकार संगीत का जितना इतिहास एकतित्र कर सके उतना किया। जगह-जगह के मान्यवर संगीतज्ञों से वर्त्तालाप किया, भिन्न भिन्न रागों के और उनके प्रकारों के सम्बन्ध में उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन प्रचलित मत एकत्रित करके शास्त्र शुद्ध विचार से ही अपना मत निश्चित किया। प्राचीन महिती एवं तत्कालीन विचार प्रवाह दोनों का समन्वय करके श्री भातखन्डेजी ने संगीतकला को निश्चित सा स्वरूप प्रदान कर दिया। सन् १९०६ में पंडितजी ने उत्तरी तथा पूर्वी भारत की यात्रा की। इस यात्रा में उन्हें उत्तर भारतीय संगीत पद्धति की विशेष जानकारी हुई। विविध कलावन्तों से उन्होंने बहुत से गाने भी सीखे और संगीत विद्वानों से मुलाकात करके अनेक प्राचीन तथा अप्रचलित रागों के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की। सन् १९०७ में उन्होंने विजयानगरम, हैदराबाद, जगन्नाथपुरी, नागपुर और कलकत्ता की यात्रा की तथा सन् १९०८ में मध्यप्रांत एवं उत्तर प्रदेश का का भ्रमण किया।

भातखंन्डेजी की अलभ्य कृतियों से भारतीय संगीत में एक नवीन पथ का निर्माण हुआ—

उन दिनों उत्तर भारत में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति प्रचलित थी एवं वहाँ के संगीतज्ञ उनके नियमों पर ध्यान न देते हुए उन्हें गाते थे। बहुत से बड़े-बड़े संगीतज्ञ जोकि गाना तो बड़ा सुन्दर गाते थे, किन्तु स्वयं उन्हें इस बात का पता नहीं था कि यह गाना कौन से राग का है, और इसमें कौन से स्वर लगाए जा रहे हैं। यह देखकर पंडितजी ने विचार किया कि दक्षिण पद्धति के जन्य-जनक अर्थात राग थाट प्रणाली का प्रचार इधर किया जाए, तो इधर का संगीत क्रम बद्ध होकर ठीक हो जायगा अतः उन्होंने पद्धति आरम्भ करने के लिए अपने प्रयत्न शुरू कर दिए। फल-स्वरूप उत्तर भारत के संगीतज्ञ राग रागनी प्रणाली को छोड़कर थाट राग प्रणाली को ठीक समझ कर उसकी ओर आकर्षित हुए और कुछ समय बाद उत्तर में थाट पद्धति चालू हो गई।

श्री भातखन्डेजी ने सुशिक्षित समाज के लिए "श्री मल्लक्ष्य-संगीत" और "अभिनय राग मंजीरी" ये दो ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे। साधारण जनता के

लिए उन्होंने "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के चार भाग प्रश्नोत्तर रीति से मराठी भाषा में लिखे, और इसके अतिरिक्त "क्रमिक पुस्तक मालिका" ६ भागों में लिखी। वर्तमान तथा भविष्य काल के संगीत विशेषज्ञों एवं संगीत प्रेमियों के शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक ज्ञान सुगमता से प्राप्त होने के लिए श्री भातखन्डेजी ने शास्त्रकार एवं ग्रन्थकार के नाते इन अलभ्य पुस्तकों के लिखने में बहुत परिश्रम किया। शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक ज्ञान से ये पुस्तकें सम्पूर्ण होने के कारण, इनको संगीत का "ज्ञान कोष" भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जनरुचि तथा प्रचार को ध्यान में रखते हुए वागेयकार रागदारी गायन के उत्तमोत्तम नमूनों को भाषा के साथ गूँथकर गीतों की रचना करते हैं। गायक वर्ग इन्हीं गीतों द्वारा संगीत का दिव्य सन्देश जन-साधारण तक पहुँचाते हैं।

"लक्षण गीत" की परम्परा इस देश में बहुत प्राचीन है—

इसी कारण श्री भातखन्डेजी ने निरक्षर गायक-वादकों को संगीत का शास्त्रीय ज्ञान होने के हेतु "लक्षण गीत" की एक ऐसी रचना की जिसमें कि संगीत के सम्पूर्ण शास्त्र की छान बीन कर डाली।

वैसे देखा जाए तो "लक्षण गीत" की परम्परा इस देश में बहुत प्राचीन है। तानसेन, नायक गोपाल, बैजू, चिंतामणि मिश्र आदि गायकों के रचे हुए ध्रुपद अंग के अनेक "लक्षण गीत" आज भी उपलब्ध हैं। उसी प्राचीन गौरवमयी परम्परा को पंडितजी ने संगीत शिक्षा का एक माध्यम बनाकर प्रत्येक राग में २०, २५ लक्षण गीतों की रचना की। उनमें से कुछ तो उनके "लक्षण गीत-संग्रह", "क्रमिक पुस्तक मालिका" और "गीत मालिका" में प्रकाशित हो चुके हैं, और बहुत से अभी भी अप्रकाशित रूप में पड़े हुए हैं।

पंडितजी के रचित "लक्षण गीतों" को यदि कोई केवल एक भाषा ज्ञानी शास्त्रकार का कार्य समझ कर छोड़ देगा तो वह बड़ी ही भूल होगी। ख्याल, ध्रुपदादि प्राचीन गीत राग संगीत के उत्तमोत्तम नमूने हैं। जिन गीतों में रागांग के सुन्दर स्वर समुदाय प्राप्त नहीं होते उन गीतों को एक व्यर्थ की बकवास समझ कर हमारी संगीत परम्परा निःसंकोच ठुकरा देती है। हमारे यहाँ रागों द्वारा स्वर ताल के निराकार "ऊँकार" की पूजा की जाती है। जिन गीतों में रागों के स्वरूप ठूँस-ठूँस कर भरे होते हैं, वे ही गीत इस देश की संगीत परम्परा में जीवित रहते हैं। श्री भातखन्डेजी के बनाये हुए "लक्षण गीतों" में रागों के उत्तमोत्तम नमूने एवं स्वरूप दिखाई देंगे। उन्होंने अपने "लक्षण गीतों" में राग को प्रधानत्व देकर उत्तम भाषा भी जोड़ दी है। इसी कारण पंडितजी ने उस समय के बड़े-बड़े उस्तादों को अपने

"लक्षण गीतों" द्वारा रागों एवं शास्त्र का परिचय कराया। सर्वप्रथम उनकी रचनायें गायकों में सम्मानित हुई, पश्चात विद्यालय के छोटे-छोटे बालकों में उनका प्रचार हुआ।

"मारिफुन्नगयात" के प्रख्यात लेखक स्वर्गीय राजा नवाबअली ने नजीरखाँ उपनाम (काला नजीर) जैसे खानदानी गायकों को पंडितजी के पास शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने भेजा था, पश्चात स्वयं राजासाहब भी पंडितजी के शिष्य बन गए। प्रख्यात सारंगी-वादक बुन्दूखां को पंडितजी के सैंकड़ों "लक्षण गीत" बजाते हुए तथा गाते हुए देखा गया। सन् १९०४-५ ई० के लगभग बम्बई में पंडितजी ने कुछ मित्रों की सहायता से "गायन उत्तेजन मंडली" के नाम से एक संस्था स्थापित की थी। देश के प्रायः सभी उच्चकोटि के खानदानी गायकों के जल्से वहाँ होते थे। इन उत्सवों में संगीत विषय पर गम्भीर से गम्भीर वाद-विवाद होते थे। अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निराकरण अधिकारी व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। पण्डितजी के शानदार व्यक्तित्व तथा कार्य का उन गायकों पर इस प्रकार प्रभाव पड़ता था कि स्वयं गायक ही उनका शिष्यत्व ग्रहण करते थे। "मारिफुन्नगयात" पढ़ने से उस समय का बड़े से बड़ा संगीतज्ञ पंडितजी के कार्य का कितना सम्मान करता था, यह समझ में आयेगा।

भातखन्डेजी स्वयं एक महान गायक थे, इसीलिए वे गीत की सही दिशा पकड़ सके—

"लक्षण गीतों" की शब्द रचना को देखने से वे कितने बड़े शास्त्रकार तथा कवि थे इसकी कल्पना होगी, तो उनका स्वरकरण सुनने से वे कितने महान गायक थे इसका अनुमान होगा। ऊपर निर्दिष्ट किए हुए कार्य को देखते हुए पंडितजी न केवल शास्त्रकार, ग्रन्थकार, वागेयकार, गायक, महाकवि अथवा प्रचारक थे, अपितु वे तो उत्तर भारतीय संगीत के एक उद्धारक, पोषक एवं सम्वर्धक थे। उनकी विशाल कर्तव्य शक्ति, महान परिश्रम एवं ज्वलंत प्रतिभा का प्रमाण उनकी अपूर्व रचनाओं से स्पष्ट दिखाई देता है। चाहे आप उनकी कोई भी रचना ले, राग की सम्पूर्ण पूर्ति आप उसमें पायेंगे। ध्रुपद अङ्ग के "लक्षण गीत" में तो स्वयं राग अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंगप्रत्यांगन का प्रदर्शन करते हुए नाचता झूमता दीखता है। उसकी रचना में ध्रुपद अंग के गीत ही अधिक पाये जाते हैं। शास्त्र की जानकारी में भी गम्भीर विषय के लिए प्रकृति का राग तथा ध्रुपद शैली का ही उपयोग किया है। सरल विषय के लिए ख्याल आदि शैली का उपयोग किया है। जिससे गायनशैलियों के सम्बन्ध में एक गायक के नाते उनका क्या मत था इसका भी अनुमान हो सकता है। ख्याल को वे पसन्द तो, जरूर करते किन्तु उन्होंने ध्रुपद गायन को ही देश का सर्वोत्तम संगीत माना है।

अपने गीतों में पंडितजी 'चतुर', 'चतर', 'चत्र', 'चेय', आदि उपनामों का प्रयोग करते थे। "हररगं" के नाम से प्रसारित गीत भी उन्हीं के बनाए हुए हैं। केवल अपने उस्ताद के स्मरणार्थ वे उन्होंने बनाकर उस्ताद का नाम उनमें ग्रन्थित करते हुए मरहूम मुहम्मद अलीखाँ साहब को अर्पित किए थे।

एक विशाल संगीत सम्मेलन का निर्माण—

संगीत कला का विशेष ज्ञान प्राप्त करने एवं उसके प्रचार का एक उपाय पंडितजी ने यह सोचा कि विविध स्थानों में संगीत सम्मेलन कराए जाएँ। इस कार्य में उनको बड़ा परिश्रम करना पड़ा तथा सफलता भी मिली। सन् १९१६ में उन्होंने बड़ौदा में एक विशाल संगीत सम्मेलन किया, जिसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इस सम्मेलन में संगीत के बड़े बड़े विद्वानों द्वारा संगीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीर पूर्वक आपस में विचार विनिमय हुए, और एक "आल इंडिया म्यूजिक अकेडमी" की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद दूसरा सम्मेलन दिल्ली में, तीसरा बनारस में और चौथा लखनऊ में किया तथा अन्य कई स्थानों में भी संगीत-सम्मेलन हुए। इसके अतिरिक्त संगीत की उन्नति और प्रचार के लिए कई जगह उन्होंने "म्यूजिक कालेज" भी स्थापित किए। जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूजिक कालेज (अब भातखण्डे यूनिवर्सिटी आफ म्यूजिक) ग्वालियर का "माधव संगीत विद्यालय" तथा बड़ौदा का "म्यूजिक कालेज" विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कालेजों में उनकी स्वर-लिपि पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती है। इन कालेजों ने आधुनिक संगीत-निर्माण में महान योग दिया।

श्री भातखन्डेजी के महान कार्य को हम चार भागों में बाँट सकते हैं। मुसलिम काल में विशेष उन्नति पर पहुँचे हुए संगीत का नवीन शास्त्र बनाना यह उनके कार्य का प्रथम अङ्ग है। इन दिनों हमारे संगीत के शुद्ध स्वर बदल चुके थे, राग-रागनी पद्धति में भी कोई क्रम नहीं रह गया था। उन्होंने इस परिवर्तन-संगीत कला का शास्त्रों का आधार देकर उच्च स्तर पर पहुँचाया। दूसरा कार्य उन्होंने यह किया कि विविध खानदानी गायकों के गाने सुनकर उनकी स्वरलिपियाँ तैयार की और उन्हें एकत्रित करके "क्रमिक पुस्तक मालिका" के रूप में प्रकाशित किया, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। भातखण्डेजी का एक तीसरा और महान कार्य यह है कि उन्होंने एक सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया, आज भारतवर्ष में नोटेशन करने की इतनी सीधी और सरल पद्धति दूसरी नहीं है। पंडितजी का चौथा कार्य हुआ कि संगीत कला की क्षत-विक्षत पद्धतियों के स्थान पर आधुनिक थाट-पद्धति का निर्माण किया। इससे संगीतज्ञों में एक नियमबद्ध प्रणाली से गाने-बजाने की योग्यता पैदा होगई।

सन् १६३१ से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। तीन साल की लम्बी बीमारी के बाद संगीत का यह महान निर्माता १६ सितम्बर सन् १६३६ ई० में गणेश चतुर्थी के दिन परलोक वासी हुए।

मिस्टर रानाडे श्रीभातखन्डेजी के सम्बन्ध में लिखते हैं:—"Pandit Bhatkhande B. A., L.L. B., is the outstanding personality and an advocate of Bombay. A truly modern man of a selfless spirit and well equipped with the talent and education, he saw that it was possible to establish the current Hindustani Music System on a sound foundation, so as to render its study easy and intelligible. He was able to do so by successfully applying the Mela-Karta method of the Southern Pandit Vyankat Makhi to the Northern System without much sacrificing any of its specialities. As a result he wrote a book in Sanskrit called "Lakshya-Sangita", and published it in 1910 under a pseudonym. The book was written in the strains of the old Shastric school and Pandit Bhatkhande in support of his statements else where, freely quoted himself under the pseudonym. The third person references and the high tributes paid to the book by Pandit Bhatkhande himself, were Couched in such a language as to persuade a reader to think that the book was an extraordinary discovery and was the work of some Pandit belonging to a much earlier period. Pandit Bhatkhande had a very sharp wit and a natural gift of quick and clear judgment. But an advocate he was and an advocate he remained to the last. In his books he has devoted pages after pages to criticising his opponents in a very scathing and unsparing manner, though many of his own statements cannot go unchallenged. All these things provided his adversaries with much capital against him. But the book had its own merits. It gave in a very simple and compact form a practical basis for the Northern school of Indian music. The patterns for classifying the Rags were few and simple and as they were first arrived at, by the selection of common features from similar or allied Rags, it is no wonder if they easily conformed to the current practices. As the book had a workable basis in view, the author rejected the critical method, assumed certain things and wrote it in the

manner of the Naghmat-e Asafi of the early nineteenth century. The book easily appealed to the student of music with the popular mentality, but the more critically minded thought that Pandit Bhatkhande in his zeal for compactness and patterns sacrificed facts to forms. He however, firmly believed in the utility of his method and thought that it would do more good than harm to the study of Indian music. He therefore, did not mind the criticism levelled against him and spared no pains in collecting, collating and editing old books and manuscripts on music.

He cleared off the debris accumulated up to his time, laid bare the solid foundations of the system and built on them a wonderful structure of his own, in imitation of the archaic style of the old Pandits. His method however, is essentially historical and does not directly concern itself with the important bearings of the laws of sound on many musical questions".

ब्रिटिश काल के भारतीय संगीत में संजीवनी शक्ति भातखन्डेजी ने स्फुरित की—

ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत में संजीवनी शक्ति श्री भातखन्डेजी ने स्फुरित की। उन्होंने एक ऐसा प्रशस्त मार्ग निर्मित किया कि जिस पर चलकर प्रत्येक कलाकार संगीत के उच्चतम लक्ष्य को ग्रहण कर सकता है। भारत को इस महान संगीत विशेषज्ञ, संगीत निर्माता पर गौरव है, और युग युगों तक उनकी गौरवमयी एवं धवल कीर्ति चिरस्मरणीय रहेगी, और उनका नाम भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ पर अंकित रहेगा।

बालकृष्ण बुवा (इचलकरंजीकर)

श्री बालकृष्णजी अखिल भारतीय संगीत कला कोविदों में एक उच्च श्रेणी के गायक थे। बालकृष्ण बुवा का जन्म सन् १८४९ ई० (शाके १७७१) में कोल्हापुर के पास चन्दूर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता रामचन्द्र बुवा स्वयं एक अच्छे गायक थे, इस कारण बाल्यकाल से ही इनके अन्दर भी संगीत की अभिरुचि आविर्भूत होगई। भाऊ बुवा, देवजी बुवा, हद्दूखाँ, हस्सूखाँ आदि विद्वानों से इन्होंने ध्रुपद, धमार, ख्याल और टप्पा की शिक्षा पाई, अतः वह चारों अङ्गों के कलावन्त थे। उन्होंने जोशी बुवा नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ से भी संगीत शिक्षा प्राप्त की, और

उन्होंने अपने परिश्रम तथा रियाज के द्वारा थोड़े समय में ही बालकृष्ण बुवा गायनाचार्य बन गए। उन्होंने सम्पूर्ण भारत एवं नैपाल का पर्यटन किया, अनेक संगीत-सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में उन्होंने गायन समाज की स्थापना की तथा "संगीत दर्पण" नाम का एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। किन्तु श्वास रोग के कारण उनको बम्बई छोड़नी पड़ी। कुछ समय के उपरान्त वह आन्ध्र के स्टेट गायक हो गए। इसके बाद इचलकरजी नामक रियासत में स्थाई रूप से राज गायक की पदवी स्वीकार करली। तभी से वह इचलकरंजीकर के नाम से प्रसिद्ध होगए और पुनः समस्त भारत का भ्रमण करके उन्होंने संगीत का प्रचार किया। इसी बीच आपको पारवारिक आघात भी लगे, जिनसे उनके स्वास्थ्य को विशेष धक्का पहुँचा फलस्वरूप सन् १६२६ में इचलकरजी में ही वह स्वर्गवासी हो गए। लेकिन उन्होंने जो संगीत के विशाल क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया, वह कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। दरअसल वह लग्न के बड़े पक्के, विचार के बड़े उत्कृष्ट और आदर्श के बड़े विमल थे। वह जिस काम में लग जाते थे, उसे सम्पूर्ण करके ही छोड़ते थे। उनके महान प्रयत्नों से ब्रिटिश काल के संगीत में नवप्रभात का आगमन हो सका।

ब्रिटिश काल के उन्नायक—

श्री विष्णुदिगम्बरजी पुलस्कर

श्री विष्णुदिगम्बर पुलस्कर का जन्म सन् १८७२ ईसवीं में श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुरुन्दवाड़ (वेलगाँव) में हुआ। इनको संगीत शिक्षा गायनाचार्य पं० बालकृष्ण बुवा से प्राप्त हुई। इनके पिता श्री दिगम्बर पंत कीर्तनकार थे। हरि कीर्तन उनका वंश परम्परागत धंधा था। निजी संगीत गोष्ठियों में और बड़े बड़े संगीत सम्मेलनों में पण्डितजी अपने गुरुजी के साथ रहते थे और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करते थे। इस प्रकार गुरुजी के साथ रहने से उनकी गायन शैली पण्डित जी ने अच्छी तरह सीख ली। विद्यार्थी दशा में इनका जीवन बड़ा सादा और सरल था। इन्हें किसी भी प्रकार का व्यसन न था। ये संगीत शिक्षा तथा गुरु सेवा में ही व्यस्त रहते थे। सन् १८६६ में अपनी संगीत शिक्षा समाप्त करके महाराष्ट्र में घूमने निकले। प्रवास काल में इन्होंने अनुभव किया कि समाज में गायकों की स्थिति बड़ी शोचनीय है। संगीतज्ञों का समाज में जैसा सम्मान होना चाहिए वैसा नहीं होता था। इसके विपरीत संगीतज्ञों को उच्च वर्ग के लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। इन अरुचिकर परिस्थितियों का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, अतएव इन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक सम्मानित कुटम्बों में संगीत का चमत्कार एवं प्रतिष्ठा न हो जाए तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। दिगम्बरजी संगीत को हीन अवस्था में देखना नहीं चाहते थे। और उन्होंने संगीत को विकास पथ पर

अग्रसर करने के महान प्रयत्न किए। अपनी इस प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए उन्होंने गीतों में से शृंगार रस के अश्लील एवं गन्दे शब्दों को हटा कर भक्ति रस को स्थान दिया। इसके परिणाम स्वरूप इनके भक्तिमय गीतों का आकर्षण बढ़ने लगा, और वे समाज में प्रचलित होने लगे। पुलस्करजी ने अपने सुमधुर और आकर्षक संगीत के द्वारा संगीत प्रेमी जनता को आत्मविभोर कर दिया। पंडितजी के उज्ज्वल व्यक्तित्व के प्रभाव से सभ्य समाज में संगीत की लालसा जाग उठी, जिसके फलस्वरूप संगीत के कई विद्यालय स्थापित हुए, जिनमें लाहौर का गान्धर्व महाविद्यालय सर्व प्रथम ५ मई सन् १९०१ ई० को स्थापित हुआ। बाद में बम्बई का गान्धर्व महा विद्यालय स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बनाया गया। पंडितजी के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उनके शिष्यों के सामूहिक प्रयत्न से "गान्धर्व महाविद्यालय मन्डल" की स्थापना हुई, जिसके बहुत से केन्द्र विभिन्न नगरों में स्थापित हो चुके थे।

विष्णुदिगम्बरजी ने एक स्वर लिपि का जन्म दिया—

पंडितजी के गीतों और पदों पर केवल भक्ति रस का ही प्रभाव नहीं रहा, अपितु उनके अनेक गीतों में राष्ट्रीय चेतना भी पाई जाती है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के वार्षिक अधिवेशनों पर वे विशेष रूप से निमंत्रित किए जाते थे और अपने शिष्यों सहित वहाँ जाकर बन्देमातरम एवं अन्य राष्ट्रीय गान गाते थे। पण्डितजी ने संगीत के अन्दर से घासलेटी साहित्य को बिल्कुल निकाल दिया था, और उसको शुद्ध राग-रागिनी द्वारा भक्ति रस में लोकप्रिय बनाया। यह उनकी महान सेवा है। उन्होंने शिष्ट और सात्विक संगीत के प्रचार के लिए अनेक कुशल कलाकार शिष्य तैयार किए, जिनमें संगीत मार्तन्ड पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० विनायकराव पटवर्धन, इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके शिष्यों ने बम्बई, पूना, दिल्ली, आदि भारत के सभी उन्नत नगरों में गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। संगीत के विषय में उन्होंने लगभग २५० पुस्तकें लिखकर क्रमबद्ध एवं प्रमाण भूत संगीत साहित्य का निर्माण किया है। उनकी कुछ पुस्तकें ये हैं :—
"संगीत बाल बोध", "संगीत बाल प्रकाश", "स्वल्पालाप गायन", "संगीत तत्व दर्शक", "राग प्रवेश", "भजना मृत लहरी" इत्यादि।

उन्होंने स्वर लिपि पद्धति का भी निर्माण किया जो कि भातखन्डेजी की स्वर लिपि से भिन्न है। प्रोफेसर डी० वी० पुलस्कर, जो एक अच्छे गायक थे, उनके ही पुत्र हैं। पंडितजी ने अपने जीवन के अन्तिम दिन महात्माओं की भाँति व्यतीत किए और २१ अगस्त सन् १९३१ को महाराष्ट्र के मिरज नगर में वे परलोक वासी होगए। दिगम्बरजी के महान एव गौरव पूर्ण कार्य भारतीय संगीत के इतिहास में उच्च एवं सम्मानीय स्थान रखते हैं।

दिगम्बरजी ने भारतीय संगीत को अश्लीलता और गन्दगी से ऊपर उठाया—

मिस्टर रानाडे श्री विष्णु दिगम्बरजी के सम्बन्ध में लिखते हैं—"In more recent years, notable contribution towards the study of music was made by men like the late Pandit Vishnu Digambar of country wide fame, and a learned disciple of the famous Balkrishnabuwa. It was really he, who rescued music from the clutches of its vulgar caterer and by popularising it among the educated classes, prepared the way for the theories of Pandit Bhatkhande and others. He has also devised a system of music-notation, which is capable of recording old songs in a very faithful manner. The chief merit of the Pandit's work lies in the fact that he published in notation whole songs with all their progressions, embellishments and rhythmic variations and has thus left to posterity complete units of continuous and whole performances as it were, of old classical songs.

एक इतिहास लेखक दिगम्बरजी के सम्बन्ध में लिखता है"—दिगम्बरजी का सबसे बड़ा कार्य जो उन्होंने किया वह यह था कि उन्होंने भारतीय संगीत को गन्दगी और अश्लीलता के दलदल से ऊपर उठाया, सिर्फ यही कार्य उनका इतना महान एवं महत्व पूर्ण है कि जिसके कारण वे कभी भारतीय संगीत के इतिहास में भुलाये नहीं जा सकते। संगीत में यह गन्दगी मुगल काल के अन्तिमचरण से ही, प्रविष्ट होनी शुरू हो गई थी, और वह ब्रिटिश काल के अन्तर्गत इतनी बढ़ गई थी कि जिससे भारतीय संगीत भारतियों की दृष्टि से गिरता जा रहा था, और उसकी बड़ी शोचनीय दशा हो रही थी। दिगम्बरजी ने यह सब कुछ देखा और उन्होंने भारतीय संगीत को पवित्र एवं सुन्दर बनाने का सफल उपक्रम किया।"

राजा नवाबअली

राजासाहब संगीत सम्मेलनों द्वारा सार्वजनिक उत्साह को बढ़ाया करते थे—

सन् १६११ के लगभग लाहौर के रहने वाले एक संगीत विद्वान राजा नवाबअलीखाँ भातखन्डेजी के संपर्क में आए। राजा साहब ने उर्दू भाषा में संगीत की एक सुन्दर पुस्तक "मारिफुन्नगमात" लिखी। इस पुस्तक का यथेष्ट आदर हुआ और वह बी० ए० के म्यूजिक कोर्स में शामिल की गई। इस सम्बन्ध में, श्री भातखन्डेजी लिखते हैं—"मेरे मित्र नवाबअलीखाँ ने उर्दू भाषा में मेरे ही विचारों के आधार

पर "मारिफुन्नगमात" ग्रन्थ की रचना की है। वे मेरे वर्गीकरण से सन्तुष्ट हैं, और चाहते हैं कि इसका खूब प्रचार हो और मुझे यह कहते हर्ष होता है कि इतने थोड़े समय में ही इसका दूसरा बड़ा संस्करण छप चुका है। मेरी इस पद्धति से उन संगीत प्रेमियों को परिचित करने के लिए जिन्हें संस्कृत और उर्दू का ज्ञान नहीं है, मेरे अन्य मित्रों ने पद्धति के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया है। दूसरे और तीसरे भागों का अनुवाद कार्य भी हो रहा है। यह कहते हुए मुझे कम सन्तोष नहीं कि दक्षिणी भाग के संगीत प्रेमियों के लिए भी मेरे ग्रन्थ आकर्षणीय हुए हैं।"

राजा नवाबअली श्री भातखन्डेजी से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने उनकी पूर्ण संगीत पद्धति को स्वीकार कर लिया था। राजा नवाबअली ने उर्दू भाषा की जनता में भारतीय संगीत को सही रूप में रक्खा, जिससे उर्दू वाले भी भारतीय संगीत के यथार्थ रूप को समझ सके। राजा नवाबअली का यह महान कार्य भी संगीत के विशाल क्षेत्र में चिरस्थायी रहेगा। राजा साहब संगीत सम्मेलनों द्वारा सार्वजनिक उत्साह को बढ़ाया करते थे। वे समय-समय पर संगीत की गोष्ठियाँ भी किया करते थे, जिसमें संगीत सम्बन्धी विषयों पर वाद-विवाद हुआ करता था। राजा नवाबअली ने उत्तर भारतीय संगीत की गन्दगी को, अशुद्धता को दूर करने का प्रयत्न किया था। वे भारतीय संगीत का उज्ज्वल एवं नैतिक पूर्ण रूप पसन्द करते थे। वे चाहते थे कि भारतीय संगीत इतना उत्कृष्ट हो कि जिससे विश्व के विद्वान हमारे संगीत को आदर की दृष्टि से देखें।

पं० रामकृष्ण बझे

प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के रामकृष्णजी को बड़े कटु अनुभव हुए—

रामकृष्णजी का जन्म सन् १८७१ ई० में सावन्तवाड़ी के ओंझा नामक ग्राम में हुआ था। जब उनकी उम्र दस मास की थी उसी शिशु अवस्था में ही इनको छोड़कर इनके पिता स्वर्गवासी होगए, अतः इनका पालन-पोषण माता के द्वारा ही हुआ। जब इनकी अवस्था चार वर्ष की थी, तब इनकी माताजी इनको लेकर कागल नामक स्थान में आकर अन्नासाहब देशपांडे के यहाँ रहने लगी।

बाल्यकाल से ही इनकी रुझान संगीत की ओर थी। अध्यापकों के अनुरोध पर इनकी माताजी ने आर्थिक दशा प्रतिकूल होने पर भी, किसी प्रकार इनको संगीत शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय भाग्य से इन्हीं के गाँव में बलवन्त राव पोहरे नामक दरबारी गायक रहते थे, उनसे इन्होंने २ वर्ष तक संगीत प्रशिक्षण ग्रहण किया। तत्पश्चात मालवन में विठौवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायकी

सीखी। इस काल के विठोवा अन्ना हड़प भी सफल संगीतज्ञ माने जाते थे। जब इनकी बारह वर्ष की वय हुई तो इनका विवाह कर दिया गया। विवाह होते ही इनके सामने आर्थिक समस्या खड़ी होगई, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह पूना होते हुए पैदल ही बम्बई जा पहुँचे। बम्बई में गा गा कर दस बारह रुपए कमाए। वहाँ से आप नानासाहब पानसे के पास संगीत सीखने के उद्देश्य से इन्दौर पहुँचे। वहाँ इनका बन्देअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त वह ग्वालियर चले आए, यहाँ भी इनको बहुत आर्थिक कष्ट उठाने पड़े। खाँ साहब निसार हुसेन पर इनकी काफी श्रद्धा थी। उनकी फटकारें खाकर भी इन्होंने बहुत कुछ संगीत शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इस बीच इन्हें प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के बड़े कटु अनुभव हुए। फलस्वरूप इन्होंने संगीत शिक्षा देने एवं संगीत सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया। इन्होंने भारतीय संगीत का सुन्दर ढंग से निर्माण किया और संगीतकारों की संकुचित मनोवृत्तियों के विरुद्ध जोरदार आवाज बुलन्द की। ५ मई १९४५ ई० को पूना में इनका देहावसान होगया।

गायनाचार्य—राजा भैया पूछ वाले

बीसवीं शताब्दी के राजा भैया पूछ वाले एक सफल गायक थे—

राजा भैया के पूर्वज महाराष्ट्र के सतारा प्रान्त में "वालव अष्ट" के इनामदार थे। उनके परदादा के पिता श्री केशवराव अष्टेकर पेशवा दरबार की ओर से बुन्देलखन्ड में श्री शिवराव भाऊ साहब (झांसी वाली रानी के श्वसुर) के साथ आए थे। वहाँ उन्हें "पूछ" नाम का गाँव जागीर में मिला था। इसके उपरान्त यह अष्टेकर घराना "पूछ वाले" नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात इनके दादा श्रीरामचन्द्रराव सन् १८५७ के गदर में पूछ गाँव छोड़ कर ग्वालियर चले आए और स्थाई रूप से तब से यहीं रहने लगे।

रामचन्द्ररावजी के दो पुत्र थे, बड़े श्रीगणपतिरावजी तथा छोटे श्रीआनन्दराव जी, यही आनन्दराव जी राजा भैया के पिताजी थे। श्रीराजा भैया का जन्म लश्कर में श्रवणकृष्णा १४ सम्वत् १९३९ वि० (१२ अगस्त सन् १८८२) में हुआ। इनकी वय जब सिर्फ डेढ़ वर्ष की ही थी तभी इनके एक पैर को लकवा मार गया था। यह पैर इनकी पाँच वर्ष की उम्र तक निर्जीव रहा, बाद में शनैः-शनैः इसमें रक्त संचार होने लगा, और तब यह लगड़ाते हुए चलने लगे। इनके पिता श्रीआनन्दराव को सितार बजाने का शौक था।

खाँ साहब मेंहदी हुसेन के शिष्य श्री बलदेवजी इनके प्रथम संगीत शिक्षक हुए। इन्होंने हारमोनियम वादन में प्रवीणता प्राप्त करली। ग्वालियर संगीत नाटक मण्डली में यह कुछ काल के लिये हारमोनियम मास्टर हो गए। कुछ समय पश्चात इनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। इनको जीवन के घोर अन्धकार में से गुजरना पड़ा। आर्थिक कष्ट तो इनके सामने बराबर रहा। परन्तु यह कभी जीवन की संकट-पूर्ण परिस्थितियों से नहीं घबड़ाये।

"संगीत नाटक अकादमी" ने अप्रैल १९५६ में इनको "राष्ट्रपति पदक" प्रदान करने की घोषणा की, लेकिन उससे पूर्व ही यह १-४-५६ रविवार को साँयकाल स्वर्गवासी हो गये। वास्तव में यह श्रेष्ठतम गायक एवं शास्त्रकार थे। इनकी आवाज बड़ी मीठी थी। जब यह गाते थे उस वक्त श्रोतागण आत्मविभोर होकर झूम उठते थे। भारतीय संगीत के इतिहास में इनका नाम अमर हो गया। इनकी महान एवं अलभ्य सेवाओं को दुनिया कभी न भूल सकेगी।

श्री दत्तात्रेय पलुस्कर

नवीन कलाकारों को प्रोत्साहन देना उनका धर्म था—

श्री पलुस्करजी में अपने पिता श्री विष्णु दिगम्बर जी के सब गुण विद्यमान थे। वे अपने पिता दिगम्बर जी के पद चिन्हों पर ही चले थे। वह चीन यात्रा के लिये भी गये थे। भारतीय संगीत को उन्नति के मनोरम मार्ग पर ले जाना ही एक मात्र उनके जीवन का महत्वपूर्ण कार्य रहा। उन्होंने अनेक कलाकार तैयार किये। वह नवोदित कलाकारों को प्रोत्साहन दिया करते थे। उन्होंने कभी किसी को निराश नहीं किया, जो भी उनके पास पहुँचा उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के उसे पूर्ण-रूपेण सम्बल दिया। उनका यह विश्वास था कि नवीन पौध को प्रोत्साहन देने से संगीत का क्षेत्र व्यापक और सुन्दर बनेगा। उनका यह भी विचार था कि संगीत-कार को अशिक्षित न होना चाहिये। अशिक्षित कलाकार कला की अन्तर दृष्टि को ग्रहण नहीं कर सकता, और न वह कला के यथार्थ सौन्दर्य को ही उपलब्ध कर सकता है, इसीलिये वह संगीतकार के लिये शिक्षा अनिवार्य समझते थे, और इसीके लिये उन्होंने जीवन भर प्रयत्न किया।

उनका गाना बड़ा ही हृदयग्राही होता था। श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करना वह अच्छी तरह जानते थे। श्रोताओं पर उनकी प्रशस्त प्रतिभा की अमिट छाप पड़ जाती थी। भारतीय संगीत के उत्थान और विकास में श्री विष्णु दिगम्बरजी ने जो योग दिया था वह किसी से छिपा नहीं है। उनके पुत्र श्री दत्तात्रेय ने अपने पिता के उज्ज्वल आदर्शों पर चल कर राष्ट्र के संगीत का भाल ऊँचा किया। उनकी योग्यता एवं प्रतिभा को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि यदि वह जीवित रहते तो

अपने पिता की ही भाँति शास्त्रीय संगीत को और भी अधिक जीवन एवं लोकप्रियता प्रदान करते।

श्री पलुस्करजी के सम्बन्ध में साप्ताहिक हिन्दुस्तान के प्रधान सम्पादक श्री बाँकेबिहारी भटनागरजी लिखते हैं—"श्री पलुस्करजी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह संगीतज्ञों के समस्त व्यसनों से दूर रहे। उनका जीवन नम्रता एवं उच्च आदर्शों पर आधारित था। उनके संगीत में मधुरता एवं ओज़स्विता का एक अनोखा समावेश था………… ।"

गायन समाज का निर्माण

सन् १८७४ ई० में पूना में गायन समाज का निर्माण हुआ। यह एक सुप्रसिद्ध संस्था थी। इसने संगीत के क्षेत्र में बड़ा ही सुन्दर कार्य किया। इसकी हलचल पूना तक ही सीमित न रही, किन्तु मद्रास में भी इसकी स्थापना हुई, और वहाँ भी इस संस्था ने बड़ा ही प्रभावशाली कार्य किया। दक्षिण में संगीत की पृष्ठ भूमि को उत्कृष्ट बनाने में इस संस्था का बड़ा ही महत्वपूर्ण योग रहा। इस संस्था ने अनेक संगीतज्ञ देश के अन्दर पैदा किये, लोगों में स्वस्थ संगीत को प्रवृत्ति की अभिवृद्धि की। जनरुचि को परिष्कृत बनाया। इस संस्था के राजा-महाराजा भी सदस्य थे। इस संस्था की बड़ी ही गौरवमयी परम्परा रही। इसने संगीत साहित्य का प्रकाशन भी किया। इसने "राधा गोविन्द संगीत सार" का प्रकाशन किया, जिससे समाज के अन्दर अशुद्धता का धूमिल वातावरण विनष्ट हुआ। इसके निर्माण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता का दृष्टिकोण न था। यह संस्था घराने की शक्ल में न थी, बल्कि यह संस्था मुक्त हृदय से संगीत के स्वर्णिम ज्ञान को समाज के अन्दर वितरित करती थी। दक्षिण के अधिक भाग को इसने संगीतमय बना दिया था। लेकिन यह कुरुचिपूर्ण संगीत की विरोधी थी। इसने संगीत के द्वारा सुरुचिता का ही प्रस्फुरण किया।

मिस्टर रानडे लिखते हैं:—"The Poona Gayan Samaj founded in (1847) was a very influential body and soon spread its activities even at a far off place like Madras. Almost all the great men in these parts were associated with it in some way or the other and among its patrons are to be found the names of such illustrious personages as H. R. H., the then Duke of Connaught, and H. R. H., the then Prince of Wales (H. M. Edward VII). No other music institution can boast of such glorious tradition richly deserved by its publication of various works on music such as the "Radha Govind Sangit Sar" and by creating among the public a taste for good music and its academical study."

मिस्टर क्लीमेन्ट

भारतीय संगीत के लम्बे क्षेत्र में इन्होंने नवीन नवीन मार्गों का निर्माण किया—

मिस्टर क्लीमेन्ट ने भारतीय संगीत के लिए बड़ा ही सुन्दर कार्य किया। यह इण्डियन सिविल सरविस के मुक्त प्राप्त अफसर थे। इन्होंने अनेक संगीत-सम्बन्धी पुस्तकों का सम्पादन किया तथा भारतीय संगीत की मूल प्रवृत्तियों का गहराई से अध्ययन किया और संगीत के निचोड़ को इन्होंने जन समाज के सामने रक्खा। संगीत पर इन्होंने अनुसन्धान कार्य किया। वास्तव में यह भारतीय संगीत के बड़े प्रेमी थे। राग-रागनियों के भी वह मर्मज्ञ थे। अनेक प्राचीन राग-रागनियों को ढूँढ कर यह सामने लाये। इनकी प्रतिभा बड़ी प्रशस्त थी। इन्होंने संगीत की समस्या पर अनेक प्रकार के लेख देश विदेश के पत्र पत्रिकाओं में भी लिखे, जिससे योरप वाले भारतीय संगीत की यथार्थ धारा को समझ सके। यह जिस विषय को उठाते थे, उसको पूर्ण शक्ति से जन समाज के सामने रखते, इसीलिए इनकी बात में पर्याप्त वजन रहता था। दरअसल इन्होंने भारतीय संगीत के लम्बे क्षेत्र में नवीन नवीन मार्गों का निर्माण किया। यह उन पश्चमीय लोगों में से नहीं थे कि जिनको भारतीय संगीत में कोई अच्छाई ही दृष्टिगोचर न होती थी। वास्तव में यह सही माने में कलाकार थे। इनको योरप के संगीत का भी पूर्णरूपेण ज्ञान था। इन्होंने भारत में घूम कर प्रत्येक प्रान्त के संगीत को सर्वप्रथम समझा, उसके आध्यात्मिक पहलू को जाना, और उसकी आन्तरिक सुषमा का आनन्द लिया। इनका कहना था कि "भारतीय संगीत योरपीय संगीत से कई क्षेत्रों में उत्कृष्ट एवं प्राचीन है। उसकी आध्यात्मिक शक्ति जितनी उत्कृष्ट एवं व्यापक हमें भारतीय संगीत में प्राप्त होती है उतनी योरोपीय संगीत में नहीं मिलती। यह हमारा दुर्भाग्य रहा कि हमारे पश्चमीय भाई बिना सोचे समझे भारतीय संगीत के प्रति निम्न बिचार बना लेते हैं। भारतीय संगीत को समझने के लिए हमें संस्कृत को पढ़ना होगा, बिना संस्कृत को समझे आप भारतीय संगीत के अतल को स्पर्श नहीं कर सकेंगे। वास्तव में किसी भी कला के अतल को स्पर्श कर लेना मानों उस कला को ठीक रूप में समझ लेना है।"

मिस्टर डेनेलू

यह उन विदेशी लेखकों में से नहीं थे जो व्यर्थ में भारतीय संगीत को बदनाम करते—

एलेन डेनेलू (Allain Danielou) सन् १९४३ ई० में "इन्डिया सुसाइटी ओफ लन्दन" (India Society of London) ने एक बड़ी सुन्दर पुस्तक

"संगीतिक स्केल का परिचयात्मक रूप" (An Introduction to the Study of Musical Scales) प्रकाशित किया, जिसके लेखक विख्यात विद्वान एलेन डेनेलू थे, जोकि एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं कला विशेषज्ञ थे। बड़े ही स्पष्टवादी एवं सुन्दर विचार वाले थे। उनके विचारों में एक प्रकार की क्रान्ति थी। उनको भारतीय और पश्चमीय संगीत पर समान अधिकार था। यह उन पश्चमीय लोगों में से नहीं थे जो व्यर्थ में भारतीय संगीत को बदनाम करते। इनके सामने जातीय एवं रंग का भेदभाव बिल्कुल न था, इसीलिए यह भारतीय संगीत के प्रति अपनी निष्पक्ष राय प्रस्तुत कर सके। इन्होंने उन योरोपीय विद्वानों एवं लेखकों को आड़े हाथों लिया जिन्होंने भारतीय संगीत के विरुद्ध अपनी भावना बुलन्द की थी, अथवा, जिन्होंने भारतीय संगीत को हेच समझा था। इन्होंने इस बात की योरोपीय लेखकों को चुनौती दी कि जो लेखक इस बात का दावा करता हो, जो इस बात का हौंसला रखता हो, भारतीय संगीत को निकृष्ट प्रामाणित करने का, वह मुझसे वाद-विवाद करले। वास्तव में इनके महान् प्रयत्न का ही सुपरिणाम है कि आज योरोपीय लोग भारतीय संगीत को सही दृष्टि से देखने लग गये हैं।

मिस्टर डेनेलू को भारतीय संगीत सीखने में इतनी तकलीफें, परेशानियाँ उठानी पड़ीं कि जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, लेकिन फिर भी यह कभी अपने उच्च ध्येय से विचलित नहीं हुए। इनका कहना था कि "जो मनुष्य परेशानियों एवं कष्टों के आवर्तों में पड़ने से भागता है, कतराता है, वह कभी कला के मर्म को नहीं समझ सकेगा। कष्ट के गर्भ में ही कला का जन्म होता है और उसी में पनपती है। इसलिए कलाकार को कष्ट, और तकलीफों से विमुख नहीं होना चाहिए। हमें मुस्कराते हुए उनको अपनाना चाहिए।" बस इसी विश्वास पर उनकी सम्पूर्ण कला विकसित हुई। इसीलिए मिस्टर डेनेलू एक मजे हुए तथा सुलझे दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। इनकी अलम्य सेवाओं को भारतीय लोग कभी भी भूल नहीं सकते, और इनका अपना एक विशिष्ट स्थान भारतीय संगीत के इतिहास में अंकित रहेगा।

मिस्टर रानाडे एलेन डेनेलू के सम्बन्ध में लिखते हैं—"In 1943, the India Society of London published a very informative book called, An Introduction to the Study of Musical Scale's by Allain Danielou, a well known scholar and musician. He is quite frank and sympathetic in his views and his comparative study of the western and Eastern systems of music is a proof of his sound scholarship and impartial judgment. He has strongly criticised many European writers on Indian music for their hollowness, hatred and hypocrisy (only such terms can bring out

the full force of his criticism) and for their unwarranted sweeping statements, meant to belittle the antiquity and the truly scientific character of the Indian system. The copious historical references with which he substantiates his views and the large number of carefully worked-up tables, showing the ratios for Srutis and the musical notes scales etc., are bound to be of very great help to all studens of music.

To modern scholars Danielou may however appear be be some what antique in his views, since he subordinates science to metaphysical analogies and personal beliefs. Our more immediate interest however requires us to restrict ourselves to his exposition of the Indian system. In the surface of it, his treatment looks like a grand mosaic but is really full of contradictions and anachronisms as he has tacked together ancient and modern works belonging to different centuries though they have little in common. Music lovers must however thank Mr. Danielou for his sincerity and genuine appreciation of Indian music."

"उत्तर भारतीय संगीत" इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है—

मिस्टर डेनेलू की दूसरी पुस्तक का नाम है "उत्तर भारतीय संगीत" "Northern Indian Music" इसमें उन्होंने उत्तर भारतीय संगीत के विकास क्रम पर ऐतिहासिक रूप से प्रकाश डाला है। दक्षिण भारतीय संगीत के सम्बन्ध में भी हमें इस पुस्तक में देखने को मिल जाता है। वास्तव में यह पुस्तक भारतीय संगीत-साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय है। कहीं-कहीं इस पुस्तक में उन्हीं सब बातों को पुनः दुहराया गया है, जोकि वह अपनी पूर्व पुस्तक में कह चुके हैं, जिससे कि नवीन पाठक भी तथ्यों की तारतम्यता का सिलसिला समझ सके। नवीन पाठकों की सहूलियत के लिए ही उन्होंने ऐसा किया, ऐसा प्रतीत होता है। खैर जो कुछ भी हो पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य है। यह पुस्तक उन यूरोपीय पर्यटकों के लिए बड़ी उपयोगी है, जोकि भारत के भ्रमण करने के लिए आते हैं, और जो कम से कम समय में यहाँ की कला और संस्कृति को समझने की आकांक्षा रखते हैं। इस पुस्तक में बड़े सुन्दर और सरल ढङ्ग से भारतीय संगीत के साथ-साथ अन्य कलाओं पर भी प्रकाश डाला गया है, उन कलाओं पर जिनका प्रतक्ष और अप्रतक्ष रूप से संगीत का कुछ

भी सम्बन्ध है। इस पुस्तक में भारतीय संगीत पर ऐतिहासिक प्रकाश गहराई में डाला गया है।

मिस्टर रानाडे आगे लिखते हैं—"M. Danielou has published yet another book called "Northern Indian Music" intended to give the history and growth of the theory and practice of music in India, in general and in its Northern inparticular. It is mainly a bibliographical Volume and contains the original sources with a running commentary by the author. In many places, he has repeated much of what he has once said in his earlier book perhaps to preserve the continuity of the subject matter for a fresh reader. The book is like a travellers guide and appears to have been written principally for the European tourist in the wonderland of Indian music."

उदयशंकर और रामगोपाल

ब्रिटिश काल के यह दो महान कलाकार अनुपम देन हैं—

ब्रिटिश काल के यह दो महान कलाकार अनुपम देन हैं। इन दोनों कलाकारों ने भारतीय नृत्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। नृत्यों की आन्तरिक सुषमा और उसका आध्यात्मिक रूप धूमिल पड़ रहा था, उसको इन्होंने पुनः सजीव बनाया। इन कलाकारों ने नृत्यों के रूप को गन्दगी एवं अश्लीलता के दलदल से ऊपर उठाया। यूरोपियनों के आगमनों के युग से ही भारतीय नृत्यों का उच्च स्तर बड़ी तेजी से गिर रहा था, और ब्रिटिश काल तक आते-आते नृत्य अपनी सौन्दर्यात्मक, आध्यात्मिक, एवं कलात्मक आभा को बिल्कुल खो चुके थे। जन-सामान्य से नृत्य हटकर सामन्तशाही वर्ग में पहुँच चुका था। इन दोनों कलाकारों ने जब यह देखा तो इन्होंने सर्वप्रथम भारतीय नृत्यों में नवीन शक्ति, नवीन दृष्टि, नवीन कल्पना, अभिनव उन्मेष, अभिनव भाव और अभिनव रस प्रविष्ट किया। तथा फिर नृत्यों को भारतीय गौरवपूर्ण आदर्श से परिवेस्टित किया। उसकी पृष्ठ को पूर्णरूपेण साहित्यिक एवं मानव-प्रेम से सुसज्जित किया। कलात्मक, वर्णनात्मक नृत्यों का नवीन ढङ्ग से निर्मित किया। प्रदर्शन करने की शैली में नवीनीकरण किया। धार्मिक, पुराणात्मक नृत्यों को अभिनव शैली से अलंकृत किया। लोगों में नृत्यों के प्रति घृणात्मक भाव आविर्भूत हो रहे थे, उनका निर्मूलन किया और अपनी कला को सत्यं शिवम् सुन्दरम् बनाया। भारतीय लोगों ने इन कलाकारों की प्रदर्शन शैलियों को मुक्त हृदय से अपनाया। इन दोनों कलाकारों ने संगीत की कलुषिता को दूर करके उसे पवित्र बनाया। जनरुचि को भी साथ-साथ

परिष्कृत किया। दोनों कलाकारों ने ही भारतीय संगीत का बिदेशों में विशेष रूप से लंदन और अमेरिका में खूब प्रचार किया। विदेशियों में भारतीय नृत्यों के प्रति प्रेम पैदा किया। वे भारतीय नृत्यों की वास्तविकता समझे, उन्होंने जाना कि भारतीय नृत्य अपनी एक विशिष्ट उच्चता रखते हैं। उनमें एक विशिष्ट आकर्षण होता है, और होती है मानव-मानव के बीच दरारों को भरने की शक्ति।

उदयशंकरजी ने भारतीय नृत्यों को अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर पहुँचा दिया—

उदयशंकरजी पहले अजंता गुफा में चित्रकारी का कार्य करते थे, और वहीं से उन्हें नृत्य करने की प्रेरणात्मक पृष्ठभूमि मिली। वास्तव में वह बचपन से ही नृत्य की ओर झुक गए थे। उनको बचपन में नृत्य देखना और उसकी नकल करना उनको बहुत अच्छा लगता था।

भारतीय आरकेष्ट्रा के सम्बन्ध में उदयशंकरजी के विचार यह है कि—"भारत का आरकेष्ट्रा आजकल उस तरह मालूम पड़ता है, मानों यह भारतीय भोजन अंग्रेजी प्लेट में कर रहे हैं। आरकेष्ट्रा का अर्थ केवल दस बारह वाद्यों द्वारा एक ही गत को बजाना नहीं है, वरन उसमें विभिन्न वाद्यों द्वारा नवीनता लाना है। नृत्य में भावना के प्रदर्शन के सम रूप ही आरकेष्ट्रा होना चाहिए। नृत्य में बारीक-बारीक हलचल के साथ आरकेष्ट्रा बजाना चाहिए। हमें आरकेष्ट्रा में केवल योरप की नकल नहीं करनी चाहिए, हमें अपनी कला तथा अपने ही वाद्यों द्वारा अपने ढंग से आरकेष्ट्रा बजाना चाहिए, तभी हमारा भारतीय संगीत उन्नति के सुन्दर पथ पर अग्रसर होगा।"

उदयशंकरजी की आरकेष्ट्रा की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसमें भारतीय वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। श्री उदयशंकरजी का आरकेष्ट्रा सिर्फ नृत्य का ही पूरक होता है। वह स्वतन्त्र आरकेष्ट्रा का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। और इस प्रकार हमारे संगीत में यह एक महत्वपूर्ण कमी अब भी मौजूद है। लेकिन श्री उदयशंकरजी स्वतन्त्र आरकेष्ट्रा प्रणाली के निर्माण पर विचार कर रहे हैं। वह आरकेष्ट्रा को उपयुक्त बनाने के लिए स्वर संयोजक विधान (Harmony or Melody) स्वर लिपि एकता को आवश्यक समझते हैं।

श्री उदयशंकरजी ने भारतीय नृत्यों को विश्व भर में प्रचार करने के लिए "कल्पना" नाम का नृत्य प्रधान एक चित्रपट भी निर्माण किया, जिसमें उनको काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा, किन्तु इससे भारतीय नृत्य अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर बड़े सुन्दर ढंग से आगया। इस चित्रपट में उन्होंने अनेक नवीन प्रकार के नृत्य प्रस्तुत किए जैसे "स्वप्न नृत्य" "मशीन नृत्य" "प्रगति नृत्य" आदि, इन नृत्यों की पृष्ठभूमि पूर्णरूप से भारतीय थी।

इन नृत्यों को विदेशियों ने बहुत पसन्द किया। विदेशों में उदयशंकरजी का चित्रपट "कपल्ना" विशेष रूप से सुन्दर माना गया। इस चित्र को देखकर सुप्रसिद्ध कलाकार हावोडीन ने कहा था "उदयशंकरजी वास्तव में भारत के एक महान कलाकार हैं। उनके प्रस्तुत किए हुए नृत्यों में हमें भारतियों के जन-जीवन की गौरवमयी झाँकी मिलती है। यह नृत्य कला और इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अगर मैं स्पष्ट रूप से यह कहूँ कि ऐसे सुन्दर नृत्य मैंने जीवन में प्रथम बार देखे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। उदयशंकरजी के नृत्य विश्व के नृत्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उनमें जो मानव जीवन का उच्चकोटि का सौन्दर्य, उनमें जो आत्मा की गहरी दिव्यता प्राप्त होती है, उनमें जो मानव प्रेम की निर्मल पावनता मिलती है, उससे उनमें चार चाँद लग जाते हैं। दरअसल इन नृत्यों में विश्व के मानवों को संगठित करने की असीमित शक्ति प्रच्छन्न है।"

श्री उदयशंकरजी ने संगीत प्रचार के लिए अम्बाला में एक विद्यालय भी खोला था, किन्तु वह अर्थाभाव के कारण अधिक काल तक न चल सका। वास्तव में उनकी बड़ी-बड़ी स्वर्णिम महत्वाकांक्षायें हैं, अर्थाभाव के कारण वे अपने स्वर्णिम स्वप्नों को साकार नहीं बना पाते हैं। वह भारतीय संगीत को बहुत ऊँचा देखना चाहते हैं और चाहते कि भारत का बच्चा-बच्चा संगीत के उज्ज्वल गौरव से परिपूर्ण हो जाए। काश ! उनकी यह सुन्दर इच्छा शीघ्र ही पूर्ण हो। उदयशंकरजी की पत्नी अमला भी एक सुन्दर कलाकारिणी हैं। उनका भारतीय वातावरण एवं कला का अध्ययन अत्यन्त गहरा है। उसकी शैली भी बड़ी रोचक एवं प्रभावशाली होती है।

रामगोपाल के नृत्यों की शैली मानव जीवन की सौष्ठवता लिए हुए है—

अमेरिका वालों ने रामगोपाल के नृत्यों को विशेष रूप से पसन्द किया है। इन्होंने भी कई प्रकार के नवीन नृत्यों का जन्म दिया। इनकी शैली बड़ी भावात्मक है। और मानव जीवन की सौष्ठवता लिए हुए है। आज भारत में रामगोपाल की शैली के अनेक नृत्य प्रचलित हो रहें हैं। इन नृत्यों में हमें मानव जीवन की गहराई, भावनाओं की ऊँचाई, रंगीन कल्पना की उड़नशीलता और फटे हुए दिलों को जोड़ने की अपूर्व शक्ति मिलती है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार रावर्ट मार्टन ने एक लेख "ऐटयूड" में लिखते हुए लिखा था—"रामगोपालजी ने नृत्यों का अध्ययन ऐतिहासिक रूप से किया है। यदि हम उनके नृत्यों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें तो हमें मालूम होगा कि भारतीय संस्कृति जितने मनोरम एवं कलात्मक रूप में इनके नृत्यों में प्रस्फुटित हुई है, उतने सुन्दर ढंग में अन्यत्र नहीं मिलती। वास्तव में वह एक महान साधक हैं। उनके नृत्यों में तभी ऐसी शक्ति सजीव हो उठी है कि जिसको देखकर

मुर्दे भी फड़क उठें। भारतीय संगीत के इतिहास में रामगोपालजी का नाम उच्चस्थान पर अंकित रहेगा। उन्होंने नृत्यों के द्वारा जन-सामान्य को ऊपर उठाने में जो प्रशंसनीय कार्य किया है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनकी गणना अवश्य ही विश्व के श्रेष्ठ कलाकारों में की जायगी। यदि यह कलाकार योरप और अमेरिका में पैदा हुआ होता तो यह कभी का विश्व का महानतम कलाकार बन गया होता, लेकिन फिर भी कलाकार, विषम परिस्थितियों से जूँझता हुआ कला की चमकती मंजिल पर आ पहुँचा है। आज भी उसकी कला में वही तरुणता, वही नवीनता, वही मौलिकता पाई जाती है, जो कि कलाकार के उच्च कला को उच्चतम गौरव शिखर पर पहुँचने पर होती है। ऐसे कलाकार जहाँ भी पैदा होते हैं उस देश का नाम गौरवपूर्ण बना देते हैं।" रामगोपालजी ने भारतीय संगीत के निर्माण-क्षेत्र में जो महानतम कार्य किए हैं, उन्होंने जो नवीन पगडन्डी का निर्माण किया है, उसको भारतीय लोग सदैव स्मरण रक्खेंगे। उनके कला को उज्ज्वलता ही हमारे भविष्य के मार्ग को प्रदीप्त करेगी।

रामगोपालजी ने भी उदयशंकर की तरह ही बिदेशों का भ्रमण किया। उन्होंने विदेशों में भारतीय कला का सिक्का जमाया है। रामगोपालजी की कला में भी हमें आत्मा को तृप्त करने वाली अपूर्व सुषमा मिलती है, और मिलती है जीवन को ऊपर उठाने वाली संजीवनी शक्ति। रामगोपालजी भी उदयशंकर की तरह ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध कलाकार हैं। इन्होंने नृत्य के ऊपर कई एक पुस्तकें लिखी हैं। इनका अध्ययन गम्भीर है। इनका स्वभाव बड़ा सरल एवं सौम्य है। अहम की दुनिया से वह कोसों दूर रहते हैं।

सङ्गीत-मार्तन्ड पं० ओंकारनाथ ठाकुर

बीसवीं शताब्दी के पं० ओंकारनाथ ठाकुर युग प्रवर्त्तक संगीतज्ञ हैं—

इस बीसवीं युग के पं० ओंकारनाथ ठाकुर एक महान संगीतज्ञ हैं, उन्होंने गायन क्षेत्र में जो अभिनव पगडन्डियाँ निर्मित की हैं, वे अनुकरणीय हैं। उन पर चलकर कोई भी संगीत प्रेमी कला की सुरम्य मंजिल पर पहुँच सकता है। आपके गायन की सबसे बड़ी विशेषता है तथ्यों का स्वाभाविक प्रस्फुटन, भावों की गतिपूर्ण सजीवता, एवं स्वर की कलात्मक मधुरता। जीवन और कला की एकरूपता पर आप अधिक बल देते हैं। आपका कथन है कि जब जीवन और कला दो पृथक-पृथक धारायें हो जाती हैं, तब कलाकार में कला का उच्चतम सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता। सफल गायक बनने के लिए आप साधना उसके लिए अनिवार्य समझते हैं, इसलिए

स्वयं भी कला की अटूट साधना करते रहते हैं। आपका कहना है कि कलाकार की साधना ही कलाकार का जीवन है, साधना के परे तो कलाकार का कोई भी जीवन नहीं। कलाकार की पूर्णता साधना के गर्भ में ही प्रच्छन्न है।

ओंकारनाथजी सदैव ही खोजशील रहे—

पं० ओंकारनाथजी हमेशा से ही खोजशील रहे हैं। उन्हें अनुसन्धान के कार्यों में बड़ा आनन्द आता है। वह समय-समय सर संगीत के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करते रहते हैं। उनका लहना है कि "शरीर में सात धातु हैं, जिनके सात रंग हैं, वही सात रंग स्वरों के हैं। वही रंग सूर्य के किरणों में हैं। सतरश्मी सूर्य के सात घोड़े होते हैं। जब सूर्य की सतरंगी किरणों से प्रभावित पानी से ही रोग दूर हो जाते हैं, तो क्या सप्त स्वरों से ऐसा नहीं हो सकता। हमें जानना होगा कि कौन धातु रोगी के शरीर में कम हो गई, उसका क्या रंग है, उसी रंग के स्वरों का संगीत रोगी को सुनाया जाए तो वह स्वस्थ हो सकता है।"

पं० ओंकारनाथजी विदेश-यात्रा भी कर चुके हैं। वह भारतीय शिष्टमण्डल में गए थे। उन्होंने विदेशों में भारतीय गायन का नाम उज्ज्वल बनाया। विदेशी कलाकार आपसे बहुत प्रभावित हुए। आपकी अपूर्व प्रतिभा से वे बहुत सन्तुष्ट हुए। आपके जीवन का एकमात्र ध्येय भारतीय संगीत को उच्च एवं पावन बनाना है। आपको सङ्गीत मार्तन्ड की उपाधि प्राप्त हो चुकी है और साथ ही साथ राष्ट्रपति द्वारा आपको "पद्मश्री" से भी विभूषित किया जा चुका है।

"संगीत कलानिधि"—सेमनगुडी श्रीनिवास अय्यर

श्रीनिवास अय्यर कर्नाटकी संगीत के सर्वोत्तम संगीत-विशेषज्ञ हैं—

श्रीनिवास अय्यर का जन्म सेमुनगुडी (कुम्भकोनम के निकट) ता० २५ जून सन् १९२८ ई० में एक ऐसे कुटुम्ब में हुआ जहाँ संगीतकला ने अपना स्थाई पड़ाव डाल रक्खा था।

जन्मजात इन्होंने अपना श्वास संगीत के वातावरण में लिया। यह स्वाभाविक था कि इन्होंने अपने बचपन से ही कर्नाटक संगीत सीखना प्रारम्भ किया।

अपनी नौ वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने संगीत पर अधिकार कर लिया था। साथ ही साथ इन्होंने सब बड़े-बड़े कलाकारों की प्रशंसा भी प्राप्त करली थी।

संयोगवश इनकी भेंट एक दक्षिण के प्रसिद्ध गोट—वाद्य प्रवीण श्रीसखारामराव से हो गई। यह तब सिर्फ ग्यारह वर्ष के थे। श्री सखारामराव इनकी मधुर आवाज एवं नादोपासना देखकर दंग रह गए। तत्क्षण उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया।

फिर वे इन्हें वहाँ से तिरुवडमरुड्र लेगए, जहाँ वे एक संगीत विद्यालय के आचार्य थे। वह एक ऐसी जगह थी, जहाँ पर हर साल कई बार दक्षिण के विख्यात कलाकार अपनी कला, वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों के वार्षिक उत्सवों में देवताओं को अर्पण करते थे। इस कारण श्रीनिवास अय्यर को अपने संगीत को सुधारने और विशेष रूप से ज्ञान संग्रह करने के लिए बहुत सुन्दर अवसर मिला।

श्री सखारामराव के साथ कुछ वर्ष बिताने के उपरान्त यह वापस कुम्भकोनम आगये। जैसे ही यह वापस आए, वैसे ही एक दुर्घटना हुई। इनकी सुरीली आवाज मारी गई। वे बिल्कुल हताश हो गये। पर जैसे कहते हैं—"मुद्दई लाख बुरा चाहे पर होता वही है जो खुदा को मंजूर होता है।" कुछ सालों के बाद इनकी आवाज फिर ठीक होगई। इसके बाद इन्होंने स्वर स्थाई और कृति गायक में ऐसी निपुणता दिखाई कि हर जगह लोग इनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते लगे। कई कृतियों को लोग इनके सिवा और किसी के मुँह से सुनने को तैयार नहीं थे।

सन् १९४० ई० में इन्हें ट्रावनकोर के राज दरबार में "आस्थान विद्वान" की उपाधि दी गई। बाद में इन्हें "स्वाती तिरुनाल संगीत विद्वत सभा" के प्रचार्थ के पद पर नियुक्त किया गया।

सन् १९४५ ई० में इन्हें "राजसेवा निरुत्त" और सन् १९४७ ई० में मद्रास के म्यूजिक अकेडेमी से "संगीत कलानिधि" की उपाधि मिली।

सन् १९५३ ई० में यह कर्नाटक संगीत के सर्वोत्तम संगीतज्ञ चुने गये और राष्ट्रपति ने इनका आदर सम्मान किया। इसके अलावा यह बहुत अच्छे भाषणकार भी हैं।

इनको ईश्वर तथा धर्म में अटल विश्वास है, और यह हमेशा कहते हैं कि जब तक संगीत में भक्ति-रस न मिलाया जाय, तब तक वह संगीत सम्पूर्ण नहीं हो सकता।

श्रीनिवास अय्यर ने दक्षिणी संगीत की आत्मिक पृष्ठभूमि को बहुत उत्कृष्ट बनाया—

इन्होंने दक्षिण के संगीत की आत्मिक वृष्ठभूमि को बहुत उत्कृष्ट बनाया। इन्होंने गायन क्षेत्र को व्यापक बनाया। इनके गीत कर्नाटकी महिलाओं ने अधिक अपनाये। इनके कई एक गीतों के आधार पर अनेक प्रकार के नृत्य भी निर्मित हुए। यह वर्णनात्मक एवं कथात्मक नृत्यों को पसन्द करते हैं। वैदिक संगीत के यह बड़े समर्थक हैं। कर्नाटकी सङ्गीत में नवीन जीवन फूँकने का पूर्ण श्रेय इनको प्राप्त है। इन्होंने काव्यात्मक सौन्दर्य को उभारा। कर्नाटकी सङ्गीत को राष्ट्रीय रूप देने में भी

इन्होंने महान प्रयास किया। यह सङ्गीत को वर्गीकरण में वितरित करने के पक्षपाती नहीं थे। इनका विश्वास है कि सङ्गीत की सम्पति सम्पादन करने के लिये साधना से अतिरिक्त और कोई सुमार्ग नहीं है। यह जन-सङ्गीत के बड़े विशेषज्ञ हैं। इन्होंने कर्नाटकी संगीत में नवीन चमक, नवीन उत्साह, नवीन यौवन तथा नवीन प्राणशक्ति भरदी। वास्तव में श्रीनिवास अय्यर कर्नाटकी संगीत के महारथी हैं। भारतीय संगीत के इतिहास में इनका नाम उज्ज्वलता की पृष्ठि पर स्वर्णिम अक्षरों में अङ्कित रहेगा।

संगीत के महान सेवाव्रती अब्दुल करीम खाँ

खाँ साहब अब्दुलकरीम किराना के निवासी थे। इनके कुटम्ब में प्रसिद्ध गायक, तन्तकार एवं सारंगी वादक हुए हैं। इन्होंने अपने पिता काले खाँ व चाचा अबुल खाँ से संगीत शिक्षा प्राप्त की। यह शैशव काल से ही बहुत सुन्दर गाने लगे थे। कहा जाता है कि पहली बार जब इन्हें एक संगीत महफिल में प्रस्तुत किया गया, तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते करते इन्होंने संगीत कला पर इतनी उन्नति करली थी कि आपको तत्कालीन बड़ौदा नरेश ने अपने यहाँ दरबार-गायक नियुक्त कर लिया। बड़ौदा में तीन वर्ष तक रहने के पश्चात सन १९०२ ई० में प्रथम बार बम्बई आए और फिर मिरज गए। मधुर और सुरीली आवाज तथा हृदयग्राही गायकी के कारण दिनोंदिन इनकी लोकप्रियता बढ़ती गई।

सन्० १९१३ ई० को पूना में आपने "आर्य संगीत विद्यालय" की स्थापना की। विविध संगीत सम्मेलनों के द्वारा धन इकट्ठा करके आप इस विद्यलय को चलाते थे। गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था। इसी विद्यालय की एक शाखा सन् १९१७ ई० में खाँ साहब ने बम्बई में स्थापित की, और स्वयं उन्होने तीन वर्ष तक बम्बई में रह कर उसकी व्यवस्था को सुन्दर बनाया। कई कारणों से सन् १९२० ई० में विद्यालय उन्हें बन्द कर देना पड़ा, और फिर खाँ साहब मिरज जाकर बस गए, और अन्त तक वहीं रहे।

इनका संगीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था—

महाराष्ट्र में मीड और कण युक्त गायकी के प्रसार का मुख्य श्रेय खाँ साहब को ही है। इनके अलापों में अखंडता एवं एक प्रवाह-सा प्रतीत होता है। सुरीलेपन के कारण आपका संगीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। "पिया बिन नाहीं आबत चैन" आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इस ठुमरी पर लोग निछावर हो जाते थे। इसे सुनने के लिए कला विशेषज्ञ विशेष रूप से फरमाइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमजोर थे, किन्तु आपका हृदय बड़ा विशाल और उदार था।

इनायतखाँ

इनायतखाँ का जन्म सन् १८६४ ई० में इटावा में हुआ था। अपने समय में सुरबहार के आप एक प्रसिद्ध कलाकार हो गए हैं। इनके बाबा साहेब दादखाँ ध्रुपद, ख्याल और गजल शैली के विशेषज्ञ थे, साथ ही साथ वे जलतरंग एवं सारंगी वादन में भी निपुण थे।

इनायतखाँ के पिता इमदादखाँ भारत के प्रसिद्ध सुरबहार एवं सितार वादक थे। जोड़ और गत तोड़ा शैली में वे अपना शानी नहीं रखते थे। महाराजा नौगाँव एवं महाराजा बनारस के यहाँ दरबारी गायक के रूप में रहने के पश्चात कलकत्ते में महाराजा सर यतीन्द्र मोहन टैगौर के यहाँ रहे। इसके उपरान्त इमदाद खाँ ३००) मासिक वेतन पर अवध के नवाब वाजिदअली शाह के कोर्ट म्यूजिशियन नियुक्त हुए। फिर कुछ समय बाद बड़ौदा दरबार में रहने के बाद अन्त में अपने दो पुत्रों के साथ इन्दौर दरबार में रहे। इनकी मृत्यु सन् १९२० में ६२ वर्ष की आयु में हो गई।

इमदादखाँ के दो पुत्रों में इनायतखाँ छोटे तथा वहीदखाँ बड़े हैं। इनायतखाँ ने उम्र से ही ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी आदि का प्रशिक्षण अपने पिता से प्राप्त की थी। इसके पश्चात् आपने विभिन्न रागों के बारे में जानकारी प्राप्त की तथा अपने पिता से ही सुरबहार और सितार बजाना भी सीखते रहे। अपने सतत परिश्रम एवं अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही इनकी गणना प्रमुख कलाकारों में होने लगी। काठियावाड़, मैसूर, बड़ौदा और इन्दौर में अपनी संगीत सेवायें अर्पित करने के बाद कुछ समय तक गौरीपुर के ब्रजेन्द्र किशोरराव चौधरी के यहाँ नौकरी की।

इनके सितार वादन में जो मिठास था वह सुनते ही बनता था—

इसके बाद इनायतखाँ ने विविध संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर अनेक स्वर्ण पदक प्राप्त किए। इनके सितार वादन में जो मिठास था, वह सुनते ही बनता था। मैंमनसिंह जिले के कई स्थानों में आपका शिष्य समुदाय फैला हुआ है। सन् १९३८ ई० के लगभग आपका शरीरान्त हो गया। इनके पुत्र विलायतखाँ आजकल एक सफल सितार वादक के रूप में गौरीपुर घराने का नाम ऊँचा कर रहे हैं।

श्रीमती इन्द्राणी रहमान

"भरत नाट्यम" की आधुनिक कलाकत्रियों में इन्द्राणी रहमान का स्थान बहुत उत्कृष्ट है। वह "भारत सुन्दरी" की उपाधि से सुशोभित हो चुकी हैं। इसीलिए वह अपने कला सौन्दर्य के साथ वह अपने शारीरिक सौन्दर्य से भी जनता को मुग्ध

करती हैं। उनका अंग प्रत्यंग कला का रूप है, और नृत्य उनकी आत्मा का ही एक अंश बन गया है। श्रीमती इन्द्राणी, श्रीमती रागिनी देवी की पुत्री हैं, और उनके पति श्री हबवी रहमान भारत सरकार के शिल्पकार हैं। इन्द्राणी रहमान ने नृत्य कला की प्रतिभा जन्म जाति पाई है। उनकी माँ भारत की जगत प्रसिद्ध नर्त्तकी हैं। इसलिए नृत्य कला में श्रीमती इन्द्राणी का पारंगत होना तो मानों उनकी जन्म कुण्डली में लिखा था। अपनी नृत्य विद्या उन्होंने पहले पहल कत्थक नृत्य से आरम्भ की थी, और बाल्यावस्था में ही अपनी माँ के साथ विदेशों में घूम आने का सुअवसर मिला। सन् १९५२ में इन्द्राणी "भारत सुन्दरी" की उपाधि से विभूषित की गई।

कुछ समय पश्चात् कत्थक नृत्य छोड़ कर आपने "भरत नाट्यम" को ग्रहण किया और वह नाट्य कला विशारद पंडेनेनूरचोकलिंगम पिल्ले की शिष्या बन गई। उनके गुरु और गुरु के गुरु नाट्य कला निधि स्वर्गीय मीनाक्षी सुन्दरम पिल्ले "भरत नाट्यम" की प्राचीन पद्धति के मुखिया थे। पाँच वर्ष हुए इन्द्राणी ने मदरास में अपनी कला का पहला उल्लेखनीय प्रदर्शन किया था, और तब से अब तक वह समस्त भारत में अनेक अवसरों पर नृत्य प्रदर्शन कर चुकी हैं।

सन् १९५२ ई० में इन्द्राणी अमरीका गई। सन् १९५३ में रोमानिया में जो अन्तर्राष्ट्रीय युवक समारोह हुआ था। उसमें भारतीय सांस्कृतिक शिष्टमंडल का नेतृत्व इन्द्राणी ने ही किया था। उस समारोह में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय, शास्त्रीय नृत्य प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। उसी वर्ष सितम्बर में वह रूस गई थी, और उन्होंने मास्को के सुविख्यात "बोल शोई थियेटर" में नृत्य किया था। अक्टूबर में वह चीन गई, और उन्होंने वहाँ कई स्थानों पर "भरत नाट्यम" नृत्य का प्रदर्शन किया। चीनी जनता ने आपके नृत्यों को बेहद पसन्द किया।

हाल ही में "संगीत नाटक अकादमी" की ओर से उन्होंने श्री लंका का भ्रमण किया और दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में नृत्य प्रदर्शन किए।

श्रीमती इन्द्राणी रहमान के नृत्यों में शारीरिक सौष्ठव के साथ-साथ अङ्गों का मधुर विन्यास भी है। उनके पाँव ऐसे चलते हैं जैसे पानी पर हंस तैर रहा हो। उनकी आँखें मानों कोई मूक सन्देश सुनाया करती हैं। उनके अधरों पर भावुकता की थिरकन रहती है। उनकी हस्त मुद्राएँ निर्दोष होती हैं। उनका सम्पूर्ण शरीर लास्य की सजीव प्रतिमा-सा लगता है। और यही तो "भरत नाट्यम" है।

उनके नृत्य में हमें समुद्र की उत्ताल तरंगों का रोर, बुलबुलों का चहकना और गाना, कमल के पत्तों पर भौरों का गुंजन करना तथा निर्मल जल में मछलियों

का तैरना, गुलाब पुष्प का रंगीन प्रस्फुटन यह सब कुछ मूर्तिमान होकर आकर्षित करता है। भारतीय संस्कृति को आप बड़े सुन्दर एवं सजीव ढंग से अपने नृत्यों में मुखरित करती हैं, आपके नृत्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें मानव जीवन का सम्पूर्ण सौन्दर्य साकार हो उठता है।

कुमारी अनुराधा गुहा

अनुराधा गुहा सबसे छोटी आयु की कलाकारिणी हैं। बंगाल की इस लावण्य मयी और प्रतिभा सम्पन्न कलाकारिणी का भविष्य निस्सन्देह बड़ा उज्ज्वल है। चीन के शिष्टमंडल में जाने के कारण उनकी ख्याति कत्थक नृत्य के प्रतिनिधि के रूप में बहुत ऊँची उठ गई है। आकर्षक मुद्रा के साथ अंगों का माधुर्यमय चपल संचालन उनकी कला की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के साथ-साथ जब वह पूर्ण आत्म-विश्वास की भावना लेकर रंगमंच पर उतरती हैं, तब कुछ क्षणों के लिए एक नैसर्गिक वातावरण का सृजन कर देती हैं। कुमारी अनुराधा ने नृत्य का अभ्यास बाल्य-काल से ही आरम्भ कर दिया था। जब वह एक छोटी-सी बच्ची थी, तभी घर में होने वाले भजन कीर्तन आदि को सुनकर उनमें एक अजीब स्फूर्ति-सी भर जाती थी, और वह अनायास ही झूम-झूम कर नृत्य करने लगती थी। उनकी माता ने जब देखा कि बालिका को नृत्य का इतना गहरा चाव है, तब उन्होंने उसे उसी मार्ग पर चलने को प्रोत्सासाहित किया। उसी समय उन्होंने यह कल्पना भी न की होगी कि कुछ ही वर्षों के उपरान्त उनकी यह कन्या एक सफल नर्त्तकी के रूप में देश-विदेश में प्रसिद्ध प्रात करेंगी।

आठ नौ बरस की वय में उन्होंने चित्रपट जगत के प्रख्यात संगीतज्ञ के० सी० डे से पदावली कीर्तन सीखना आरम्भ किया, और थोड़े ही समय में वह इसमें इतनी प्रवीण हो गई कि दो दो घन्टे तक लगातार गाती रह सकती थी। दस वर्ष की वय से उन्होंने कत्थक नृत्य को नियम पूर्वक प्रशिक्षण पाना आरम्भ कर दिया। उनके गुरू नलिन गंगोली हैं, जो अच्छन महाराज के शिष्य हैं। इस योग्य गुरु की देख रेख में प्रवीण होकर अनुराधा ने दो तीन वर्ष बाद ही संगीत नृत्य सम्मेलनों में भाग लेना शुरू कर दिया था, और पश्चमी बंगाल, बिहार, तथा आसाम में अपनी कला का प्रदर्शन किया। सन् १९५४ में उनकी कला कौशल से प्रभावित होकर भारत सरकार ने उन्हें भारतीय सांस्कृतिक छात्रवृति प्रदान की और नृत्य सम्राट शम्भू महाराज की वह शिष्या बन गई।

अनुराधा की नृत्य कला में व्यक्तित्व की छाप है। नृत्य की रस हीन मुद्राओं को उन्होंने अपने माधुर्यमय अंग संचालन से रस पूर्ण बना दिया है। उनका पद-

संचालन नियमित होता है और उनके अंग विक्षेपों में बंगाल की लोक कला पद्धति की झलक मिलती है । वास्तव में अनुराधा ने कत्थक नृत्य की कला में थोड़ी बहुत उलट-फेर करके उसे अपने निजी ढंग से प्रस्तुत करने में बड़ी सफलता प्राप्त की है ।

गायिका के अतिरिक्त अनुराधा वादिका भी हैं, और उस्ताद अलाउद्दीनखाँ की आज्ञानुसार वह बंगाल के सुविख्यात सरोद विशेषज्ञ श्री श्याम गंगोली से सितार वादन सीख रही हैं । कुमारी अनुराधा से भारतीय नृत्य जगत को बड़ी आशाएँ हैं ।

श्रीमती सुमति मुटाटकर

श्रीमती सुमति मुटाटकर सफल गायिका तथा संगीत की विशेषज्ञा हैं—

इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की है और एल०-एल बी० तथा एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है । श्रीमती मुटाटकर भारत की पहली महिला हैं जिन्हें "भारतीय संगीत का सांस्कृतिक दृष्टिकोण" (Cultural aspect of Indian Music) नामक खोज पूर्ण निबन्ध पर पैरिस कालिज ऑफ इन्डियन म्यूजिक से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई । श्रीमती मुटाटकर न केवल सुप्रसिद्ध गायिका है, बल्कि इन्हें भारतीय संगीत के विषय में गहरी जानकारी है, इन्होंने विभिन्न घरानों की गायन प्रणालियों का अच्छा अध्ययन भी किया है । आजकल यह लोक-गीत, लोक-संगीत तथा लोक-साहित्य के अध्ययन में व्यस्त रहती हैं । संगीत के यह विषय आपको विशेष प्रिय हैं । भारतीय संगीत के साथ ही साथ वह पाश्चात्य सङ्गीत के विषय में भी जानकारी रखती हैं ।

उस्ताद विलायतखाँ

उस्ताद विलायतखाँ सितार वादन के विशेषज्ञ हैं—

उस्ताद विलायतखाँ ने सितार वादन अपने वालिद इनायतखाँ साहब से सीखा । उनकी मृत्यु के पश्चात इन्होंने अपने नाना बन्देहसनखाँ से सीखा । लेकिन इनको सितार सीखने का चाव पाँच साल की उम्र से ही हो गया था । सितार सीखने में इन्हें क्या-क्या परेशानियाँ उठानी पड़ी, इसको आप इन्हीं के शब्दों में सुनिये :—"सन् १९३८ तक पिताजी से सितार सीखता रहा, लेकिन उसी साल १९३८ में मेरे वालिद का देहान्त हो गया । उनके देहान्त से मेरे हृदय पर गहरा सदमा पहुँचा । अब तकलीफों के बादल चारों ओर मडराने लगे । उन तकलीफों की मंजिलों को तोड़ने के लिए मैं बढ़ता ही गया । यातनाओं ने मेरे पैर जकड़ दिए । लेकिन मैं उनका मुकाबला अपनी शक्ति से करता ही गया । अब मेरी तकलीफें मेरे जन्म स्थान से दिल्ली की ओर घसीटने लगीं । मुझे कलकत्ता छोड़ना पड़ा, हाँ एक

धुन मुझे उस समय सूँझ गई थी कि अपने हाथों से ही जो कुछ कमाऊँगा उसीसे गुजारा करता रहूँगा । इस प्रकार कठिनाइयाँ अब चौगुनी बढ़ गई थीं । मैं मारा-मारा दिल्ली नगरी की गलियों में घूमता रहा । दो-दो तीन-तीन दिन तक भूखों रहना पड़ता था, और कपड़े भी नहीं मिलते थे । इतना ही नहीं एक गर्म कोट भी नसीब नहीं हुआ, क्योंकि कठिनाइयों ने मेरे पैर जकड़ लिए थे । दिल्ली के फुटपाथ अभी भी मुझे भूले नहीं हैं । उस समय छोटी उम्र में किसी से भी मेरी जान पहचान नहीं थी । मारा-मारा ही फिरता रहा, और जो कुछ मैंने पिताजी से सीखा था वही बजाता रहा । उस समय मुझे बहुत से उस्ताद मिलते थे, हर एक मुझे अपना शागिर्द बनाना चाहता था । क्योंकि "होनहार विरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत चरितार्थ होती थी । लेकिन भाग्य से उसी नगरी में मेरे नाना उस्ताद बन्देहसनखाँ रहते थे । फिर मैंने उनसे ही शिक्षा लेना शुरू किया । खाँ साहब ने मुझे सन् १६३८ से १६४२ तक गायकी की तालीम दी, और उस समय मैंने १४-१४ घण्टे तक रियाज किया । इन्हीं चार वर्ष की महिनत में जो कुछ बना बन गया । तकलीफों को कम करने के लिए उस समय मेरे एक दोस्त मुस्ताक अहमद ने बहुत ही मदद की थी ।

बस यह मेरे गुजरे हुए समय की कहानी है । इसी कहानी पर मेरे जीवन की सफलता मुस्करा रही है ।"

विलायत हुसेन साहब की दृष्टि में इस समय श्रेष्ठ गायक उस्ताद अमीरखाँ, तबला वादक अहमद जान थिरकवा, कंठे महाराज, सरोद वादक, उस्ताद हाफिज अली खाँ, अली अकबर खाँ हैं ।

आप चित्रपटों में भी काम कर चुके हैं (१) "घर आना", (२) "मल्हार", (३) "मदहोश", (४) "मुन्ना", (५) "भैरवी" ।

आप सितार वादन में सबसे ज्यादा अहमियत गायकी को देते हैं । वादक को वही वाद्य बजाना चाहिए जो वाद्य कि वह बजा रहा है । यदि वह सितार बजा रहा है तो सितार ही बजाना चाहिए, न कि सरोद । इस प्रकार वह सितार पर सितार ही बजाते हैं ।

वह विदेश यात्रा भी कर चुके हैं, और वहाँ भारतीय संगीत का खूब प्रचार किया । पूर्वी दक्षिणी अफ्रीका, इग्लैन्ड, स्काटलैन्ड, हालैन्ड, पोलैन्ड, ईष्टग्रीस, स्पेन, स्विटजरलैन्ड, मिश्र, चीन, बर्मा, होनूलूलू, तथा रूस आदि बहुत देशों का भ्रमण किया है ।

आप आधुनिक युग के एक महान कलाकार हैं । भारतीयता से आपको विशेष प्रेम है । उदार दृष्टिकोण के आप हैं । संकीर्णता से आपको बहुत चिढ़ है । आप

नवोदित कलाकारों को भी प्रोत्साहन देने में किसी से पीछे नहीं रहते हैं। आप अपना अधिकतर समय अभ्यास और साधना में खर्च करते हैं। बड़े ही मिलनसार हैं। आपका कथन है कि जो कलाकार कला का सौन्दर्य प्राप्त करने में विनम्र नहीं बनता वह कदापि समाज में लोकप्रिय नहीं बन सकता। कलाकारों को विनम्रशील होना चाहिए। विनम्रता कलाकार का सबसे सुन्दर गुण है। आप सादा ढंग से रहते हैं। टीप-टाप आपको पसन्द नहीं। आडम्बरों से आपको चिढ़ है। भारतीय संगीत को विकास की मंजिल की ओर अग्रसर करने में आपके महत्वपूर्ण प्रयत्न भारतीय संगीत के इतिहास में भुलाये नहीं जा सकते।

बंगाल की सुप्रसिद्ध गायिका कुमारी मीरा चटर्जी

कुमारी मीरा चटर्जी बंगाल की सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय गायिका हैं—

बंगाल की पवित्र भूमि उच्चकोटि के साहित्यकारों एवं संगीतज्ञों को जन्म देती रही है। आधुनिक युग में भी बंगाल संगीत का केन्द्र बना हुआ है। वहाँ अनेक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार विद्यमान हैं, वहाँ अनेक उदीयमान कलाकार भी संगीत के क्षेत्र में अवतरित हो रहे हैं। कलकत्ते की कुमारी मीरा चटर्जी ने बाल्यावस्था ही में अपने मधुर गायन के लिए जो प्रसिद्ध प्राप्त की है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। उन्हें न केवल उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में तथा आकाश वाणी के विभिन्न केन्द्रों से ही अपने कार्यक्रम प्रसारित करने का अवसर प्राप्त हुआ है, बल्कि वह राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी भाग ले चुकी हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें भारतीय शिष्ट मण्डल के साथ रूस तथा अन्य योरपीय देशों के भ्रमण का भी सुअवसर मिला है।

कुमारी मीरा चटर्जी की आवाज बड़ी सुरीली एवं मधुर है। उनकी गायन शैली आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण है। उसमें उनके गुरु बड़े गुलामअली की छाया प्रतिबिम्बित होती है। वास्तव में खाँ साहब की गायन शैली का अनुकरण उन्होंने खूब किया है।

कुमारी मीरा चटर्जी का जन्म १९३२ में हुआ। उनकी संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा उनके पिता द्वारा ही हुई। अल्पावस्था ही में वह सुन्दर गाने लगी। जब उनकी उम्र दस वर्ष की थी, तब उन्हें अखिल बंगाल संगीत सम्मेलन में भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ, और उन्होंने उसमें अपने गायन में प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् १९४४ तथा १९४५ में उन्हें उपर्युक्त सम्मेलन में कुशल गायिका के रूप में आमंत्रित किया गया। इस सम्मेलन से उनके गायन की ऐसी प्रसिद्ध फैली कि चारों ओर से संगीत सम्मेलनों में भाग लेने के आमंत्रण आने लगे। सन् १९४५ में गोआ के विराट संगीत सम्मेलन में तथा १९४७ तथा १९५४ में प्रयाग विश्व

विद्यालय के द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलनों में उन्होंने अपनी गायन कला से श्रोताओं को पूर्णरूपेण प्रभावित किया।

सन् १९४८ में भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड माऊन्टबेटन के सम्मानार्थ संगीत के विशेष कार्यक्रम में मीरा चटर्जी ने "उठ जाग मुसाफिर भोर भई" गा कर लार्ड माऊन्टबेटन तथा उनकी पुत्री पमेला माऊन्टबेटन को मंत्र-मुग्ध कर दिया था। उन्होंने इन्हें बुलाकर बहुत शाबाशी दी।

सन् १९५९ में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उनके गाने से प्रभावित होकर खाँ साहब उस्ताद बड़े गुलामअली ने उन्हें अपनी शिष्या बना लिया। खाँ साहब के योग्य निर्देशन में कुमारी मीरा चटर्जी ने संगीत के क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की। उन्हें दो बार "राष्ट्रीय कार्यक्रम" में भाग लेने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

कुमारी मीरा चटर्जी को योरपीय देशों का भ्रमण करने का सुअवसर भी प्राप्त हो चुका है—

कुमारी मीरा चटर्जी को अन्य संगीतज्ञों के साथ सांस्कृतिक शिष्टमंडल में सम्मिलित होकर रूस तथा अन्य यूरोपीय देशों की यात्रा करने का भी अवसर प्राप्त हुआ। विदेशों में इनके गायन की बड़ी प्रशंसा हुई। अनेक रूसी महिलाओं ने उनके साथ मित्रता के ऐसे प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लिए कि उनके भारत चले आने के बाद भी वे उन्हें हिन्दी में पत्र लिखती रहती हैं।

भारतीय संगीत के इतिहास में आपकी अमूल्य सेवायें युग युगों तक अंकित रहेंगी। भारतीय संगीत का प्रचार करना ही आपके जीवन का मुख्य ध्येय है। आप कला का प्रसारण करना ही अपने जीवन का मुख्य आदर्श मानती हैं। भविष्य आपका स्वर्णिम है।

"ठुमरी" गायक कमलसिंह

भारतीय संगीत की "ठुमरी" एक अपूर्व देन है—

भारतीय संगीत की "ठुमरी" एक अपूर्व देन है। "ठुमरी" अवध के नवाब वाजिदअलीशाह के काल में ही फली फूली। उसके दरबार के चिरस्मरणीय कत्थक महाराज कालिका विदादीन न केवल नर्त्तक ही थे, बल्कि सैकड़ों ठुमरियों के शब्दकार और स्वरकार भी थे। आज भी लखनऊ घराने के गायक और गायिकायें उनकी बनाई ठुमरियाँ गाते हैं। भरी महफिल में ध्रुपद अथवा ख्याल गायक बहुधा अपना रंग नहीं जमा पाते, किन्तु छोटी आवाज वाला "ठुमरी" गायक महफिल को तड़पा देता है। यों तो आजकल सभी पेशेवर गायक गायिकायें 'ठुमरी' गाते बजाते हैं।

किन्तु "ठुमरी" को बढ़ाने वाले और उसके विशेषज्ञ ग्वालियर दरबार के स्वर्गीय भैया गनपतराय, उनके शिष्य मौजुद्दीन, श्यामलाल, लखनऊ के सादिकअलीखाँ, गौहर, मुश्तरी, और मैना, कदरपिया, ललनपिया और प्यारे साहब आदि ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। उन दिनों जब बड़े-बड़े गायक "ठुमरी" गाना अपनी शान के खिलाफ समझते थे, तब इन कलाकारों ने "ठुमरी" का चलन संगीत प्रेमियों में चलाकर उसे सदा के लिए सजीव कर दिया।

और आज तो ध्रुपद, ख्याल की तरह "ठुमरी" के भी कई घराने प्रसिद्ध हैं। लखनऊ, दिल्ली, बनारस और पंजाब। इनमें बनारस और पंजाब अंग की ठुमरियाँ अधिक लोकप्रिय हैं।

"ठुमरी" को वास्तविक रंग तो बनारस अंग से गाने में ही है। मीड़ मुकरियों की हरकत सुनते ही बनती है। इसके विपरीत पंजाब अङ्ग की 'ठुमरी' में ठप्पे के अङ्ग की तानों की भरमार रहती है। पहाड़ी और महिमा शैली के ग्राम गीतों का भी मिश्रण रहता है। उस्ताद बड़े गुलामअलीखाँ पंजाबी ठुमरियाँ गाने में अपना शानी नहीं रखते। बनारस अङ्ग की गाने वाली सिद्धेश्वरी, रसूलबाई, मोतीबाई और गया के रामू मिश्रा आदि प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु नये कलाकारों में बहुत ही कम अवस्था के श्री कमलसिंह ने भी यथेष्ट ख्याति प्राप्त की है। आप दिल्ली, पंजाब तथा बनारस अंग की ठुमरियाँ बड़ी कुशलता से गाते हैं। "ठुमरी" गायक का गला बड़ा मधुर और सुरीला होना चाहिए और कमलसिंहजी को यह ईश्वरी देन है।

उस्ताद अलीअकबरखाँ

उस्ताद अलीअकबरखाँ एक श्रेष्ठ सरोद वादक हैं—

उस्ताद अली अकबर खाँ एक श्रेष्ठ सरोद वादक हैं। आपने सरोद वादन में बड़ी निपुणता प्राप्त करली है। जिस वक्त आप अपना सरोद बजाते हैं। उस वक्त श्रोतागण आत्मविभोर होकर झूमने लगते हैं। इस क्षेत्र में आपने नवीन-नवीन मार्ग खोज निकाले हैं। आपको रियाज करने का अभ्यास बहुत बढ़ा-चढ़ा है। आपका कहना है कि जो व्यक्ति जितना रियाज कर लेगा वह व्यक्ति उतना ही सरोद पर अपना अधिकार जमा सकेगा। नवोदित कलाकारों को आप बड़े उत्साह से प्रोत्साहन देते हैं। संगीत के क्षेत्र में आपने बहुत ख्याति एवं कीर्ति उपलब्ध करली है। आपका संगीत-संसार में उच्चकोटि का स्थान है।

इधर आपने चित्रपटों की ओर भी ध्यान दिया है। विख्यात निर्माता चेतन आनन्द के एक चित्र में आपने संगीत दिया है। आपके अनेक शिष्यगण हैं। भारतीय संगीत के विकास में जो आपने महान योग दिया है, उसका भारतीय संगीत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

इलियासखाँ

आधुनिक युग के कुशल सितार वादकों में उस्ताद इलियासखाँ की गणना की जाती है। इनकी वादन शैली रोचक तथा आकर्षक है। ये "मसीदखानी" तथा "रजा खानी" दोनों प्रकार की गतों के बजाने में प्रवीण हैं।

इनकी वादन शैली ध्रुपद अंग की है। और उसमें "बीन" अंग भी सम्मिलित है, क्योंकि इन्होंने सितार वादन की शिक्षा जिनसे प्राप्त की है, उनके वंशज कुशल "बीन" वादकों के शिष्य थे। "लढ़ गुथाव", "ठोक झाला" तथा विभिन्न प्रकार के स्वर समुदाओं का प्रदर्शन बहुत सुन्दरता के साथ करते हैं।

उस्ताद इलियासखाँ का जन्म ३ जनवरी १९२४ ई० को दिल्ली में हुआ था। ये खानदानी संगीतज्ञ हैं। इनके पिता उस्ताद सखावत हुसैनखाँ कुशल सरोद वादक थे। इनका वंश रबावियों (सरोद वादकों) के नाम से शताब्दियों से विख्यात है।

उस्ताद इलियासखाँ के परबाबा संगीताचार्य मिया तानसेन के पुत्र उस्ताद बसातखाँ के शिष्य थे। उन्होंने उस्ताद बसातखाँ से "सैन्य" घराने की वादन शैली की विशेषताओं को प्राप्त करके अपनी वादन शैली में सम्मिलित किया था। इसीलिए इस घाराने के कलाकारों में "सैन्य" घराने की वादन शैली की विशेषताओं की झलक देखने को मिलती है। इलियासखाँ ने सितार की शिक्षा खजूरी गाँव के सुप्रसिद्ध सितार वादक उस्ताद अब्दुलगनीखाँ से लिया और आप उन्हीं के शिष्य बन गए। आपने अपने नाना उस्ताद करामत अलीखाँ से भी शिक्षा ग्रहण की। अन्त में यह उस्ताद यूसुफ अलीखाँ के शिष्य हो गये। आप लखनऊ रेडियो पर सितार वादक के रूप में तीन चार वर्ष काम कर चुके हैं। किन्तु आपने अनुभव किया कि नौकरी और अभ्यास एक साथ नहीं चल सकता, अतः नौकरी छोड़ दी। २५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने निरन्तर अभ्यास और सुन्दर सितार वादन से पर्याप्त ख्याति और प्रशंसा प्राप्त करली। विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से आपके कार्यक्रम प्रसारित होने लगे। खाँ साहब को राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी भाग लेने का गौरव प्राप्त हुआ।

नागपुर के एक विराट संगीत सम्मेलन में खाँ साहब के सितार वादन से प्रभावित होकर श्री पृथ्वीराज कपूर तथा उनके पुत्र श्री राजकपूर इन्हें अपने साथ बम्बई ले गए और वहाँ "बरसात" चित्र में पार्श्व संगीत में काम करने का इन्हें अवसर मिला।

आप सरल प्रकृति के कलाकार हैं। आप देश के सभी कलाकारों के प्रति आदर भाव रखते हैं। चाहे वे किसी भी जाति अथवा संगीत के किसी भी क्षेत्र के क्यों न हो ? उनका उद्देश्य संगीत की शिक्षा प्राप्त करना है। जिसके पास कला है इलियासखाँ उसी का शागिर्द है। अपने आपको अभी तक साधारण विद्यार्थी बने रहने में ही उन्हें गौरव का अनुभव होता है। आजकल आप लखनऊ के "भातखन्डे संगीत महाविद्यालय" में नियुक्त हो गये हैं। वास्तव में आप एक उच्चकोटि के कलाकार हैं। विनम्रता आपका विशिष्ट गुण है। आपने अनेक नवयुवकों को सफल कलाकार बना दिया। भारतीय संगीत के क्षेत्र में आप बड़े लोकप्रिय हैं।

बिसमिल्लाखाँ

सुप्रसिद्ध शहनाई वादक—

आप काशी के सुप्रसिद्ध शहनाईवादक हैं। आपको शहनाई बजाने का शौक शैशव काल से ही था। आप सोलह वर्ष की उम्र से ही ६ घन्टे रोज रियाज करते थे। रियाज करने में वह किसी भी दिन नागा नहीं करते। बड़े पक्के रियाजी हैं। उन्होंने अपने तीनों मामू से संगीत की शिक्षा ग्रहण की। इनके तीनों मामू के नाम थे, विलायत हुसैन, सादिक हुसैन और अलीबक्स, पर इन्होंने अलीबक्स से विशेष रूप से सीखा। इनका रियाज करने का वक्त ६ बजे शाम से १२ बजे रात्रि तक। आपको चार राग विशेष रूप से प्रिय हैं, भैरव, भैरवी कल्याण और पूरिया। वह इन्हीं चार रागों पर शुरू से ही रियाज करते चले आए हैं। स्वर में तासीर लाने के लिए आपका कहना है कि—"देखिये हर एक स्वर की अलग-अलग जगह पर अपना-अपना तोल होता है। अगर नि रे ग गाते हुए इस प्रकार लगाया जायगा तो बिल्कुल ही मजा न आयेगा। यद्यपि कोई स्वर बेसुरा नहीं है। अगर यही नि रे ग गमक व मीड़ लेकर इस प्रकार लगाया जायगा, तो यही स्वर कानों को सुन्दर लगेंगे। इसीलिए गाते समय स्वरों के तौल पर अधिक ध्यान देना चाहिए।"

बिसमिल्लाखाँ ने शहनाई वादन में भारत में अच्छी ख्याति उपलब्ध की है।

कुमारी दमयन्ती जोशी

कुमारी दमयन्ती जोशी का भारतीय नृत्य कलाकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान है—

कुमारी दमयन्ती का भारतीय नृत्य कलाकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। आपने जिन परिस्थितियों और वातावरणों में नृत्य कला का अध्ययन कर अपनी प्रतिभा एवं कला कुशलता का परिचय दिया है, वह प्रशंसनीय है। कुमारी दमयन्ती जोशी का जन्म एक साधारण वर्ग के परिवार में बम्बई में हुआ था। शैशवावस्था में

ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया, जिससे इनको बहुत कष्ट उठाने पड़े। नृत्य की ओर इनकी अभिरुचि बचपन से ही थी। इनकी माता ने इनको नृत्य की शिक्षा दिलाने के लिए योग्य गुरु का प्रबन्ध कर दिया। थोड़े ही समय में नृत्य की पर्याप्त शिक्षा ग्रहण करली।

"कत्थक नृत्य" में कुमारी जोशी विशेष रूप से पारंगत हैं—

"कत्थक नृत्य" कला का इन्होंने विशेष अध्ययन किया। इसकी शिक्षा स्वर्गीय अच्छन महाराज, लच्छू महाराज आदि उच्चकोटि के नर्त्तकों से प्राप्त की है। उत्तरी भारत में वह अपने "कत्थक नृत्य" के लिये बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलनों में आमंत्रित की जाती हैं।

"कलाकार सांस्कृतिक परिषद" की ओर से, जिसकी वह प्रमुख सदस्या हैं, अपनी मण्डली के साथ चीन गई थीं। वहाँ इन्होंने कत्थक और मणिपुरी नृत्य का प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त टैगौर संगीत तथा मराठी भाव संगीत के अनुकूल स्वयं रचित दो नृत्यों का भी प्रदर्शन किया। इनके नृत्य की लोकप्रियता के फलस्वरूप चीन में इनके अनेक नृत्य के आयोजन हुए। इन्होंने वहाँ केवल अपनी कला का प्रदर्शन ही नहीं किया, बल्कि चीन की कलात्मक विशेषताओं का अध्ययन और अनुशीलन किया। आपका कथन है कि—"नृत्य कला के छात्रों को चाहिये कि वे धैर्य, परिश्रम, संलग्नता के साथ नृत्य कला का क्रियात्मक अभ्यास करें। सर्वप्रथम चाहे वह महिला छात्र हो अथवा पुरुष इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि वह नृत्य के किसी भी एक क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करलें। उसको "एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय" पर ध्यान नहीं देना चाहिये। जब तक नृत्य-कला में समुचित कुशलता प्राप्त न हो जाए तब तक एक ही समय में दो भिन्न नृत्य शैलियों का अध्ययन नहीं करना चाहिए।

दमयन्ती जोशी भारत की एक उच्चकोटि की नर्तकी हैं—

दमयन्ती जोशी भारत की एक उच्चकोटि की नर्तकी हैं। उन्होंने देश विदेश में ख्याति उपलब्ध करली है। उन्होंने नृत्य के क्षेत्र में नवीन-नवीन नृत्यों का जन्म भी दिया है। भाव नृत्यों का निर्माण आपने विशेष रूप से किया है। नृत्यों के निर्माण में आपने आत्मिक सुषमा का पुट दिया, जिससे उन नृत्यों में प्राणवानता मुखरित होगई। आपके नृत्यों में हमें काव्यात्मक सौन्दर्य की गहरी पृष्ठभूमि भी मिलती है। आप काव्य और नृत्य का गहरा सम्बन्ध मानती हैं। आपका कहना है कि "काव्य की पृष्ठभूमि पर जो नृत्य आविर्भूत होगा, उसकी सुषमा की कोई सीमा नहीं। काव्यात्मक नृत्य में एक ऐसी संजीवनी शक्ति रहती है कि जो बरवस मानव को मंत्रमुग्ध बना लेती है। आपके निर्मित नृत्यों में हमें भारतीयता का गहरा रंग मिलता है। मानव

जीवन की गहराइयाँ पर्याप्त मात्रा में उभरती हैं। आपके कथात्मक एवं भावात्मक नृत्यों में कल्पना का गहरा रंग मिलता है। आपकी नृत्य प्रदर्शन करने की शैली बड़ी आकर्षक है। आप नृत्यों को मानव जीवन का विशेष अंग मानती हैं। आपका विश्वास है कि नृत्य मानव जीवन में एक आनन्द का आविर्भाव करते हैं कि जिसमें मानव का विकास पूर्णरूपेण होता है। वह निम्नता से ऊपर उठता है।"

दमयन्ती जोशी की अपूर्व सेवायें भारतीय संगीत के क्षेत्र में सदैव स्मरणीय रहेंगी। इनकी कला से भारतीय कुमारियों को नृत्य क्षेत्र में आगे बढ़ने में प्रेरणात्मक शक्ति प्राप्त हुई है। कुमारी जोशी निरन्तर विकास की भव्य मंजिल की ओर अग्रसर होती जारही हैं। उन्होंने भारतीय तरुण समाज में संगीत की पर्याप्त मात्रा में जाग्रत की है।

विख्यात संगीतज्ञ रातांजन्कर

आप आजकल मैरिस कालेज लखनऊ के प्रिन्सीपिल हैं, और इसी वर्ष सन् १९५७ में गणतन्त्र दिवस के सुअवसर पर राष्ट्रपति द्वारा आपको "पद्म विभूषण" की उपाधि प्राप्त हुई है। आपका पूरा नाम श्री कृष्णनरायन रातांजन्कर है। आपके संगीत में विकास शील तत्व तथा गहरी कलात्मक चेतना के सजीव स्फुरण मिलते हैं। वह बड़े ही साधनाप्रिय कलाकार हैं। वास्तव में आपने भारतीय संगीत को एक नवीन मोड़ दिया है और आप नवीन कलाकारों को प्रोत्साहन देने में सब से अग्रणी रहते हैं।

सुप्रसिद्ध बेला-वादक वी० जी० जोग

मिस्टर जोग भारत के बेला-वादकों में उच्च स्थान रखते हैं—

श्री विष्णु गोविन्द जोग का जन्म बम्बई प्रेसीडेन्सी के सतारा जिले के "वई" स्थान में सन् १९२२ ई० में हुआ। इनके पूज्य पिता श्री गोविन्द गोपाल जोग इन्हें पाँच वर्ष की आयु में छोड़कर स्वर्गवासी होगए थे। आपकी संगीत शिक्षा सन् १९२७ ई० से श्री अत्थावले द्वारा आरम्भ हुई। इसके बाद आप अपने परिश्रम और साधना के द्वारा शनैः शनैः विकास के भव्य पथ पर बढ़ते गए, और फिर श्री गनपत बुवा पुरोहित के द्वारा आपने शीघ्र ही भास्कर बुवा के घराने की गायन शैली प्राप्त करली। कुछ दिन आपने कर्नाटक पद्धति के आचार्य श्रीकृष्ण भट्ट के शिष्य विज्ञानेश्वर शास्त्री से भी वायलेन की शिक्षा ली। इसके पश्चात आपने विभिन्न स्थानों के संगीत कार्य-क्रमों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। अजमेर, इलाहाबाद, बनारस आदि स्थानों के संगीत सम्मेलनों में कला प्रदर्शित करने लगे।

सन् १९३६ ई० में श्री रातांजन्करजी ने एक संगीत सम्मेलन में श्री जोग को निमंत्रित किया तथा आपकी कला से प्रभावित होकर सन् १९३८ ई० में भातखन्डे द्वारा स्थापित मैरिस कालेज में वायलिन के प्रोफेसर पद पर आपकी नियुक्ति कर दी। तब से अबतक आप अनेक विद्यार्थियों को तैयार कर चुके हैं। भारत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों के साथ वायलिन की संगत करके आपने अच्छा यश प्राप्त किया है, और आपने यह सिद्ध कर दिया है, कि स्वरों की बारीकी जिस प्रकार सारंगी से अभिव्यक्ति की जा सकती है उसी प्रकार वायलिन द्वारा भी गायकी के सूक्ष्म अंगों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

उस्ताद फैयाज खाँ, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० नारायणराव व्यास, पं० विनायकराव पटवर्धन तथा हीराबाई बड़ौदेकर आदि चोटी के कलाकारों के साथ आप वायलिन द्वारा संगत कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त उस्ताद थिरकवा, अनोखेलाल, हबीबुद्दीन और श्री कंठे महाराज जैसे सुप्रसिद्ध तबला-वादकों के साथ-साथ आप लय की दौड़ में कभी पीछे नहीं रहे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत में इस वक्त आप सर्वश्रेष्ठ बेला-वादक हैं।

सन् १९४९ ई० में हीराबाई बड़ौदेकर के साथ आपने दक्षिणी अफ्रीका का भ्रमण किया और सन् १९५१ में समस्त दक्षिणी भारत का दौरा कर आपने अपूर्व ख्याति प्राप्त की। श्री जोग में उच्चकोटि के संगीतज्ञ जैसे सभी गुण विद्यमान हैं। वे एक मिलनसार तथा प्रसन्न चित्त कलाकार हैं। अपनी हँसमुख प्रकृति और आकर्षक व्यक्तित्व के द्वारा वे सहज में ही अपना प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं। कर्नाटक संगीत का आकर्षक भाग लेकर आप भारतीय संगीत में मिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

महान संगीतज्ञ उस्ताद बड़े गुलामअली

शास्त्रीय संगीत कभी भी श्रोताओं को उबाने वाला नहीं होता—

उस्ताद बड़े गुलाम अली भारत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं संगीत विशेषज्ञ हैं। आपकी कला में समुद्र जैसी गहराई है। सपाट तानें जैसे आपकी मुट्ठी में बन्द हो, मुट्ठी खोलते ही फुर्र से एक तीन सप्तक की तान (मिठास से भरी) उड़ा दी। बड़े गुलाम अली खाँ का शरीर देखने पर अनायास ही कोई व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता कि यह भीमकाय व्यक्ति स्त्रियों से भी मधुर गाने का हौसला रखता है। लेकिन जब वह गाते हैं, तो फिर क्या कहना है उनकी मधुरता का। मानों मधुरता का पारावार ही उमड़ पड़ता हो। श्रोतागणों को मंत्र मुग्ध करके आत्मविभोर बना देना आपके लिए बहुत ही सुगम है। आपके गायन की शैली में एक विशिष्ट सौन्दर्य प्राप्त होता है।

प्रस्तुतीकरण का ढंग इतना रोचक, इतना प्रभावोत्पादक तथा हृदयग्राही होता है कि सब श्रोतागण अपनी पीड़ा की दुनिया को भूलकर उसी रस के अथाह सागर में डूब जाते हैं। आप व्यर्थ की अलापें नहीं भरते, गाते वक्त आप श्रोताओं की रुचियों का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। आपका कथन है कि शास्त्रीय संगीत कभी भी श्रोताओं को उबाने वाला नहीं होता, उसमें आत्मविभोरित करने की असीम शक्ति है, लेकिन आजकल, जब से ब्रिटिश काल का आरम्भ हुआ है, तब से शास्त्रीय संगीत के प्रदर्शन के ढंग को लोगों ने बिगाड़ दिया है। उसकी आत्मा को ही नष्ट कर दिया है। यदि गायन में गीत की आत्मा सजीव न हो पाई, तो फिर ऐसे गाने से क्या लाभ? वास्तव में आप गीत की आत्मा को साकार बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं। आपके अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ शिष्य हैं। भारतीय संगीत को विकास पूर्ण बनाने में आपका विशेष योग रहा है, जिसका ऐतिहासिक मूल्य अलभ्य है। भारतीय संगीत के इतिहास में आपका नाम सदैव अमर रहेगा। आपका सम्पूर्ण जीवन ही संगीत को विकासशील बनाने में लग गया है।

उस्ताद अलाउद्दीनखाँ

साधना ही उस्ताद अलाउद्दीनखाँ का जीवन है—

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ भारत के विख्यात संगीतज्ञ हैं। वाद्य वृन्द के प्रवीण कलाकार तथा स्वरकार हैं। उस्ताद अलाउद्दीनखाँ सरोद वादन के विशेषज्ञ हैं। वास्तव में उन्होंने सरोद वादन को नवीन मोड़ देकर उसमें नवीन सजीवता पैदा की है। वह बड़े ही साधना प्रिय कलाकार हैं। वह इस उम्र में तेरह-चौदह घन्टे तक साधना में व्यस्त रहते हैं। उनका कहना है—"कलाकार का जीवन उसकी साधना है, साधना से परे तो उसका कोई जीवन नहीं। साधना की तलहटी (Depth) में ही कला की मनोरम मुस्कराहट, कला के रंग-बिरंगे खुशनुमा प्रसून खिल रहे हैं, कला की तलहटी में हमें मानव जीवन की सुगन्ध मिलती है, जिसको कलाकार निकाल कर बाहर रखता है। कलाकार की वही सुगन्ध उसको अमर बनाती है, वही सुगन्ध मानवता के गदलेपन को दूर करती है। जो कलाकार साधना से घबड़ाते हैं, वे कभी कला की सुन्दर मंजिल पर नहीं पहुँच पाते।" हमें खाँ साहब की कला में एक ऐसा दृष्टिकोण मिलता है, जो मानवता का प्रतीक होता है। उनकी कला का आधारभूत मानव प्रेम ही है। उनका कहना है कि जिस कला में मानव प्रेम की प्रशस्त भावना नहीं होती, वह कभी इन्सान को तरक्की के खुशनुमा रास्ते पर नहीं ले जा सकती। वास्तव में यह बात सच भी है, जब तक आदमी-आदमी के बीच घृणा का कुहरा फैला रहेगा, तो ऐसे संकुचित एवं दयनीय वातावरण में कैसे कला

पनप सकती है। खाँ साहब ने संगीत कला को बड़ी गहराई एवं व्यापक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है। उनका स्वभाव बड़ा ही सरल है। विनम्रता तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। सौम्यता की वह मूर्ति हैं। खाँ साहब यह मानते हैं कि कलाकार का सबसे पहला गुण जो होना चाहिए वह है विनम्रता। कलाकार ज्यों-ज्यों विकास के अभिराम पथ पर आगे बढ़ता जाए, त्यों-त्यों उसमें विनम्रता आनी चाहिए, जिससे उसकी कला का और भी अधिक विकास हो सके। आपका विश्वास है कि अंहम की संकुचित दुनिया में कला का विकास नहीं होता। वह सिकुड़ जाती है।

आप कभी कठिनाइयों एवं परेशानियों से नहीं घबड़ाये, बल्कि इन्हीं की छाया में आपकी कला का विकास हुआ। आपने संगीत के लिए अनेक कष्ट उठाये, तब कहीं आप संगीत की गहराइयों में प्रवेश कर पाए, आपने संगीत शिक्षा जिन्दगी की बड़ी कशमकस में प्राप्त की है। वास्तव में आपका ४० वर्ष का कला का जीवन बड़ा ही तपोमय रहा है, उस तपोमय जीवन में ऐसा भी अन्धकार का समय आया, जब कि प्रायः इन्सान उस स्टेज पर पहुँच कर आत्म-हत्या कर लेता है, अथवा अपने पथ से परांगमुख हो जाता है। लेकिन खाँ साहब ने कला का वास्तविक अर्थ समझ लिया था, वह इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि कला और जीवन को एक रस करने के लिये हमारे सामने अनेक उलझनें, अनेक विषमताएँ निगल जाने के लिए मुँह बाए खड़ी होंगी। यदि हमने लेशमात्र भी असंतुलित जीवन कर दिया, तो हम पतन के खन्डहर में जा पड़ेगे। दरअसल खाँ साहब का सम्पूर्ण जीवन ही त्याग और तपस्या की पर्णशाला रहा है। तभी वह संगीत के पावन विश्व में आज इतने आगे बढ़ पाए हैं। भारतीय संगीत के इतिहास में उनका नाम सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। मानव वर्ग उनकी अलभ्य सेवाओं को कभी नहीं भूल सकता। युग युगों तक उनकी सेवाएँ अमर रहेंगी।

शीरी वजीफदार

शीरी वजीफदार का भारत के नृत्य संसार में एक महात्वपूर्ण स्थान है—

भारत के नृत्य संसार में इस कलाकारिणी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आज उनकी गणना भारत के श्रेष्ठतम नृत्यकत्रियों में होती है, और साथ ही साथ वह नृत्यों की एक सफल निर्मात्री एवं शिक्षका भी मानी जाती हैं। उनका नृत्य-परिधान का चुनाव तथा रंगों का मेल अद्वितीय होता है।

शीरी भारत की उन इनी गिनी शिक्षित महिलाओं में हैं, जिन्होंने नृत्य को एक पेशे की तरह अपनाया है। औरों की तरह उन्हें भी अपनी कला की सफलता के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ा है। लेकिन वह कभी मायूस नहीं हुई, वह निरन्तर

अपने पावन पथ पर दृढ़ता पूर्वक एवं साहस के साथ आगे बढ़ती रही, और उन्होंने अपने पीछे आने वाली शिक्षित युवतियों के लिए नृत्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनमें काम करने की एक अपूर्व लग्न है। उनके नृत्यों में एक ऐसी सजीवता पाई जाती है, जो आँधियों के अंजुमन में तूफान की गति को मोड़ देती है, जो जीवन में एक ऐसी सौष्ठवता प्रदीप्त करती है, जिससे मानव को एक रुहानी शान्ति मिलती है।

शीरी का जन्म बुलसार में हुआ था। उन्होंने बम्बई में शिक्षा पाई और विलसन कालेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने भारतीय संगीत का निकट से गहरा अध्ययन किया है। और उसमें उच्च योग्यता उपलब्ध की है। सन् १९३८, १९३९ में आकाश वाणी के बम्बई केन्द्र से उन्होंने कई बार अपना संगीत प्रसारित किया था। किन्तु बाद में उन्होंने अपना सारा समय भारतीय नृत्य के अध्ययन में ही लगा दिया।

देश की विभिन्न नृत्य शैलियों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने भ्रमण भी किया, और भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न नृत्य शैलियों के विशेषज्ञों से दीक्षा भी ली। वह प्रत्येक शैली का भारतीय नृत्य बड़ी ही सुगमता एवं योग्यता के साथ करती हैं। "कत्थकली नृत्य" की वह विशेष विशेषज्ञा हैं, और इसी का उन्होंने गहराई से परिशीलन किया है।

वह विदेश भ्रमण कर चुकी हैं। चीन में उन्होंने "कत्थकली नृत्य" में विशेष ख्याति प्राप्त की। चीनी कलाकार आपकी उच्चकोटि की कला से बहुत प्रभावित हुए, एक चीनी कलाकार ने तो इतना कहा—"शीरी के नृत्य में जो मिठास, जो आत्मिक सौन्दर्य एवं जो पावनता प्राप्त होती है, वह हमें अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। वास्तव में शीरी ने भारतीय नृत्य कला को विकारा शिखर पर पहुँचाने में योग दिया है।

श्रीमती रुक्मिणिदेवी अरुंडेल

रुक्मिणिदेवी भारत की उच्चकोटि की नर्त्तकी हैं—

आप दक्षिण भारत की विख्यात नर्त्तकी हैं और आपको २६ जनवरी १९५६ को राष्ट्रपति ने "पद्म विभूषण" की उपाधि से विभूषित किया। आप संसद सदस्या भी हैं। आपको संगीत से शैशव काल से ही प्रेम था। कर्नाटकी संगीत पर आपको पूर्ण अधिकार है, लेकिन आप नृत्य में विशेषज्ञा हैं। नृत्य की सूक्ष्मताओं को पकड़ लेना आपके नृत्य की सबसे बड़ी विशेषता है। आपके नृत्य में जहाँ हमें नृत्यक सौन्दर्य मिलता है, उसके साथ-साथ शिल्पक सौन्दर्य भी प्राप्त होता है। आप नृत्यों के प्रसारण करने में बड़ी प्रवीण हैं। मजाल है कि प्रसारणशीलता में कहीं भी कला का उभार दब जाए।

मानव जीवन का स्पष्ट चित्र हमें आपके नृत्यों में मिलता है। नृत्यों के प्रदर्शन में आप स्वाभाविकता का विशेष रूप से ध्यान रखती हैं। आपका कथन है कि नृत्य की आत्म-शक्ति उसकी स्वाभाविक पृष्ठभूमि है। आपने अनेक प्रकार के कर्नाटकी नृत्यों को जन्म दिया है। आपके निर्मित नृत्यों में हमें मानव की विराटता तथा भारतीयता का अधिक पुट मिलता है, और कल्पनाओं की सुन्दर उड़ानों की रंगीनी भी मिलती है।

आपका स्वभाव बड़ा मधुर एवं सरल है। आप संगीत को मानव एकता का जबरदस्त प्रतीक समझती हैं। नृत्यों के प्रदर्शन करते वक्त आप दर्शकों को नृत्य के शिल्पक वातावरण में ही नहीं भुलाये रखती हैं, बल्कि वह प्रशस्त भावनाओं के रंगीन पुष्प खिलाकर नृत्य के अन्दर भाव सौन्दर्य को भी बड़ी कलात्मकता से, बड़ी प्रग्लभता से निखारती हैं। आप भारत की उच्चकोटि की नर्त्तकी हैं। आपने कर्नाटकी नृत्य को विकास मार्ग पर आगे बढ़ाने में महान योग दिया है। आपने नृत्य की अनैतिकता, उच्छृखलता को भी दूर किया है और नृत्य की पृष्ठ को पावनता से परिपूर्ण बना दिया है। कलात्मक नृत्यों से आपको विशेष प्रेम है। भारतीय संगीत के क्षेत्र में आपका नाम हमेशा आदर की दृष्टि से देखा जायगा।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ विनायकराव पटवर्धन

उत्तर भारत में, संगीत जागरण के आप एक प्रशस्त कड़ी हैं—

आप महाराष्ट्र के उच्चकोटि के संगीतज्ञ हैं। आपकी आवाज में अमृत है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में आप बड़ा सुन्दर गाते हैं, गाते वक्त आप गीत में अपने अस्तित्व को मिला देते हैं। आप और गीत के मध्य में एक रस की धारा प्रवाहित हो जाती है। महाराष्ट्र को ही नहीं, बल्कि आपने समस्त उत्तर भारत में संगीत जागरण में विशेष योग दिया है। आप गीत के प्रस्तुतीकरण में सिद्धहस्त हैं। गीत को दर्शकों के सामने कैसे प्रस्तुत किया जाए इस टैकनिक को आप पूर्ण रूप से जानते हैं, तभी तो आपका प्रदर्शित किया हुआ गीत असफल नहीं होता। वह दर्शक के हृदय में अपना उच्चस्थान बना लेता है। एक पत्रकार ने एक बार आपसे प्रश्न किया था कि आपको गीत प्रदर्शन की यह सफल कुन्जी कैसे मिली, तो आपने तत्काल ही उत्तर दिया था कि साधना के द्वारा। विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो साधना की सीमा के परे हो। वास्तव में पटवर्धन की साधना अद्वितीय है।

श्री मनहर बर्वे

श्री मनहर बर्वे का जन्म बम्बई में २० दिसम्बर १९१० ई० को हुआ था। उनके पिता श्री गणपतराव गोपालराव बर्वे की संगीत में असाधारण दिलचस्पी

थी। उनकी आरम्भ ही से मनहर को एक शास्त्रीय संगीतज्ञ बनाने की इच्छा थी और वह पूरी हुई। वह आज भारत के उच्चकोटि के संगीतज्ञ हैं। उन्होंने ६ वर्ष की आयु में ही संगीत के क्षेत्र में आशातीत प्रसिद्ध तथा प्रशंसा प्राप्त करली थी। सन् १९४६ में श्रीमती सरोजनी नायडू द्वारा "बाल स्वर-भास्कर" की प्रथम उपाधि उन्हें मिली। इसके बाद तो उपाधियों का तथा पुरस्कारों का तांता बध गया और आपने संगीत प्रचार के लिए सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया।

३ मार्च सन् १९३९ को बैरिस्टर श्री जमनादास मेहता ने वरद हस्त से "मनहर संगीत विद्यालय" की स्थापना की। जिसमें आज भी लगभग २०० विद्यार्थी संगीत की शिक्षा प्राप्त करते हैं। रेडियो के प्रोग्रामों में आप समय-समय पर भाग लिया करते हैं।

तामसिक वृतियाँ संगीत के शुद्ध उत्थान में सहायक नहीं हो सकतीं—

आपका विश्वास है कि तामसिक वृत्तियाँ संगीत के शुद्ध उत्थान में सहायक नहीं हो सकतीं। संगीत कला पैगम्बरों की कला है, यही वह कला है जो आत्मा की अशान्तियों को शान्त करती हैं। मन के अन्तराल में जो सुसुप्त अथवा जाग्रत अशान्ति है उसे परम शान्ति का सौन्दर्य प्रदान करने के लिए प्रत्येक दर्शन विनीत है। मन की एकाग्रता विराट—स्थिरता एवं उसकी प्रचंड शक्ति का बोध यह है—आध्यात्मिक विकास की सीढ़ियाँ। इन्हीं सीढ़ियों पर चढ़कर आप भारतीय संगीत के दिव्य रूप को प्राप्त कर सकते हैं, और उसके लिये आपको अपनी तामसी वृत्तियों पर अधिकार पाना होगा। यह ऐसी वैयक्तिक साधना है, जिसका प्रकाश सर्व सुलभ है। व्यक्ति की क्रान्ति सार्वजनिक रूप में यहाँ स्पष्ट होती है। मनहर बर्वे ने गांधीजी की चिकत्सा संगीत के द्वारा की थी, और उसमें सफल भी हुये। गांधीजी ने उसका प्रमाण पत्र भी दिया।

सुप्रसिद्ध सितार विशेषज्ञ पं० रविशंकर

पं० रविशंकर ने अपनी अलभ्य कला से विदेशियों को विमुग्ध किया—

आधुनिक युग में पं० रविशंकरजी ने सितार में विशेषज्ञता प्राप्त करली हैं। वे इसके पूर्ण ज्ञाता हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्भ भावों को साकार बनाकर प्रस्तुत कर देना आपका बड़ा ही हृदयग्राही कार्य है। उन्होंने संगीत के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। वे विदेश भी घूम आये हैं, उन्होंने अपनी कला से विदेशियों को प्रभावित किया हैं। उनकी कला में हमें जहाँ जीवन की सन्जीदगी एवं गहराइयों के नयनाभिराम चित्र मिलते हैं, वहाँ उसके साथ-साथ हृदय को स्पन्दन करने वाले प्रलुब्धकारी तथ्य भी मिलते हैं। जब आपकी आयु १५ वर्ष की थी, तभी नियमित

रूप से सितार बजाना आपने शुरू किया, जबकि उस्ताद अलाउद्दीनखाँ ने इनके ट्रूप को जोइन किया था। प्रारम्भ में आपने रियाज कम किया, किन्तु बाद में बढ़ते-बढ़ते आपका रियाज १३, १४ घन्टे तक पहुँच गया था। आप इन गायकों को विशेष रूप से पसन्द करते हैं, बड़े ग़ुलामअलीखाँ, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, उस्ताद अमीरखाँ तथा डी० वी० पुलस्कर का गायन इनकी रुचि के अनुकूल है। अपने नवीन रागों के सम्बन्ध में वह स्वयं कहते हैं :—मैं नये राग बनाता हूँ, ऐसा दावा तो नहीं करता हाँ स्वरों का मिलान (Combination) स्वयं होकर नये राग का रूप धारण कर लेते हैं तथा कभी-कभी २, ३ राग मिलकर ऐसी रचना बन जाती है, जो मुझे बहुत सुन्दर दिखाई देती है, उन्हीं को एक नवीन नाम देकर मैं बजाने लगता हूँ।" आपके ऐसे नवीन प्रयोग राग ये हैं—"मोहन कोस", "तिलक श्याम", "अहीर ललित", "वैरागी", "रसिया" भारतीय आरकेष्ट्रा पद्धति के सम्बन्ध में आपके विचार हैं—"हमारी आरकेष्ट्रा पद्धति की तो अभी बाल्यावस्था ही है, इतना तो हम कह सकते हैं कि हमारी वृन्दवादन शैली से विदेशी अब प्रभावित होने लगे हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि हम उनका मुकाबिला कर सकेंगे ?"

आपको सितार के द्वारा वैज्ञानिक प्रयोग करने का भी शौक है। आप कभी-कभी सितार के प्रभावशाली आलाप व गतों द्वारा निद्रा का आ जाना, करुणा-रस का संचार होकर आँसू ढुलकना और शिथिलता तथा उसके बाद शान्ति देखने को आती है। आप संगीत के वैज्ञानिक रूप के विशेष ज्ञाता हैं।

सितार वादन में सफलता प्राप्त करने के सम्बन्ध में आपका कथन है—"सितार की सिद्धी केवल रियाज पर ही अवलम्बित हो, ऐसी बात नहीं है। स्वास्थ लगन, योग्यता, अच्छी शिक्षा तथा ईश्वरीय प्रेरणा होने पर ही सफलता मिल सकती है। फिर भी मेरी राय में नवोदित कलाकार को चार घन्टे दैनिक अभ्यास पर्याप्त है।

रविशंकरजी के संगीत में हमें एक ऐसी उठान मिलती है जो मानव को प्रगति के युग की ओर प्रयाण कराती है—

रविशंकरजी बड़े हँसमुख कलाकार हैं। आप किसी भी नवोदित कलाकार को निराश नहीं करते, उनको प्रोत्साहन देना आपकी रुचि में शामिल है। रविशंकरजी के द्वारा भारतीय संगीत का प्रचार देश-विदेश में बहुत हुआ है। आप लगन से काम करने वाले कलाकार हैं, तभी इस छोटी-सी उम्र में गायन, संगीतकला पर इतनी दक्षता प्राप्त करली है। आपके संगीत में हमें एक ऐसी उटान मिलती है जो मानव को प्रगति के युग की ओर प्रयाण कराती है। आपके भावों में कलात्मक उच्चता का इतना स्पष्ट चित्र मिलता है कि जिससे आपका व्यक्तित्व बड़ा ही मनमोहिक होगया है।

सफल नर्त्तकी—तारा चौधरी

कत्थक शैली के नृत्य में तारा चौधरी प्रवीण हैं। आप भारत की सुप्रसिद्ध नर्त्तकी हैं। आपने अपने नृत्यों का प्रचार अपने देश में करने के बाद विदेशों में भी किया। एक सुप्रसिद्ध रूसी कलाकार श्री यूरी जावादस्की आपके सम्बन्ध में लिखते हैं—"शास्त्रीय कत्थक शैली में तारा चौधरी द्वारा प्रस्तुत नृत्य ने हमारी कल्पना को मन्त्र मुग्ध कर दिया। तारा चौधरी का नृत्य बहुत ही सुन्दर और कमनीयतापूर्ण होता है। उन्होंने जो नृत्य प्रस्तुत किया था वह धारावाहिक था। लेकिन प्रत्येक खंड अपने में पूरा मालूम होता था, हर हाव-भाव गतिशील होने के साथ-साथ स्थापत्य कला परिपूर्ण था। तारा चौधरी के हाथ, अंगुलियाँ, हावभाव अत्यन्त अभिव्यक्ति पूर्ण हैं, उनकी पूरी देह, उनकी समस्त कला, उनके अन्तर को प्रतिबिम्वत करती है। उनके नृत्य में अनुभव की हुई उनकी प्रत्येक भावभंगिमा की रचना, सफाई और सर्वांगपूर्णता के पीछे शदियों की परम्परा है। हम उनकी कला का भारी सम्मान करते हैं, कला जो इतिहास का किसी राष्ट्र के आत्मिक जीवन एवं नियति का प्रतिविम्ब है।" यह है एक विदेशी कलाकार की दृष्टि में तारा चौधरी का कला-चित्र।

बी० आर० देवधर

बम्बई के श्री बी० आर देवधर एक विख्यात संगीतज्ञ हैं। आप संगीत नाटक अकादमी के एक सदस्य भी हैं। आपने भारतीय संगीतोत्थान में महान योग दिया है। आप बचपन से ही संगीत प्रेमी थे। लेकिन तरुण अवस्था में ही आपका संगीत पुष्प प्रस्फुटित होकर अपना अपूर्व सौरभ बिखराने लगा था। आप संगीत की नैतिकता पर विशेष बल देते हैं। आपका कथन है कि यदि संगीत की नैतिकता ही नष्ट हो जायगी तो फिर संगीत का दिव्य रूप ही जो उसकी वास्तविक शक्ति है, उसका वास्तविक आलोक है, यदि उसमें से यह दिव्य रूप विनष्ट हो जाये तो फिर वह ऐसा हो जायेगा जैसे किसी निम्बू से रस निचोड़ लिया हो। संगीत की यही दिव्यता कलाकार को ऊपर उठाती है, उसको अमर बनाती है। उसको आँधी तूफानों में एक सम्वल प्रदान करती है। कलाकार जब संगीत के इस पावन रूप से पृथक हो जाता है। तभी वह अपनी कलात्मक सुषमा को खो बैठता है, और तभी वह अपने उच्च स्तर से नीचे गिरता है।

कलाकार की सफलता के लिए शिक्षा भी आवश्यक है—

मिस्टर देवधर कलाकार की सफलता के लिए शिक्षा भी आवश्यक अंग समझते हैं। उनका विश्वास है कि शिक्षित कलाकार ही कला की सही दिशा की ओर बढ़ सकता है, उसके सही दृष्टिकोण को ग्रहण कर सकता है। उसकी सही स्फूर्ति को प्राप्त कर सकता है। मिस्टर देवधर संगीत के इसी रम्य उद्देश्य का प्रचार करते हैं।

बसन्तराव राजोपाध्ये

भारतीय संगीत में वह शक्ति विद्यमान है जो मनुष्य, मनुष्य को मिलाती है—

आप बम्बई के रहने वाले हैं, और संगीत के क्षेत्र में आपने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। आपकी प्रतिभा वड़ी अपूर्व है। आप कुशल अध्येयता हैं। स्वाध्याय करना आपको अच्छा लगता है। आपका कहना है—"कलाकार के लिए स्वाध्याय करना परम आवश्यक है। जो कलाकार स्वाध्यायी नहीं होते, वे प्रगति के नयनाभिराम पथ पर तेजी के साथ नहीं बढ़ सकते, और न वे अपनी कला में मानव जीवन की गहराइयां ही पैंदा कर सकते हैं। उनकी कला फिर उथली हो जाती है। अगर हम सागर जैसी गहराई अपनी कला में आविर्भूत करना चाहते हैं, तो हमें स्वाध्यायी बनना पड़ेगा। वास्तव में स्वाध्याय कलाकार के अन्दर एक कलात्मक बहाव जारी रखता है, जब यह बहाव बन्द हो जाता है, तभी कलाकार के कलात्मक व्यक्तित्व की मौत हो जाती है।"

आप संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं। आपने वर्षों की साधना के उपरान्त संगीत पर सतुलनता प्राप्त करली है। आपका नाम महाराष्ट्र में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत में विख्यात है। अपका विश्वास है कि भारतीय संगीत में वह शक्ति विद्यमान है जो मनुष्य-मनुष्य को मिलाती है, इसके द्वारा हम सम्पूर्ण भारत की ऐकता को अखंड बनाये रख सकते हैं। एकता के लिए सबसे सर्वोत्तम माध्यम संगीत ही है।

सुप्रसिद्ध गायक जी० चन्नम्मा

जिस कलाकार के अन्दर अहम भाव पैदा होगया, समझ लो वह कलाकार लोकप्रियता की दुनिया में मर गया—

आप दक्षिण के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। आपका जन्म बंगलौर में हुआ था। आपने कर्नाटकी संगीत के निर्माण में विशेष योग दिया है। वास्तव में आप कर्नाटकी संगीत के महान प्रणेता हैं। तभी तो कर्नाटकवालों को आप पर नाज है, गौरव है। आपका विशाल दृष्टिकोण है। आपने अपने संगीत को विशालता के पृष्ठ पर ही आविर्भूत किया है। आप संगीत के क्षेत्र में छोटे-छोटे वर्ग पैदा करने के पक्षपाती नहीं हैं। आपका विश्वास है कि जहाँ संगीत छोटे-छोटे वर्गों में वितरित हो जाता है, फिर वह अपनी सार्वभौमिकता को नष्ट कर देता है। अपनी आत्मिक सुषमा को खो बैठता है। उसकी ज्योति को बराबर प्रज्वलित रखने के लिए हमें उसकी अखन्डता को स्थिर रखना होगा। आप दक्षिण भारत में बड़े लोकप्रिय संगीतज्ञ हैं। आपकी आवाज बड़ी मधुर एवं सरस है। आपके गाने की शैली बड़ी रोचक एवं आकर्षक है। आप बड़े मिलन-

सार हैं। अहम भाव आपके अन्दर बिल्कुल नहीं है आपका कथन है कि जिस कलाकार के अन्दर अहम भाव पैदा हो गया, समझलो वह कलाकार लोकप्रियता की दुनिया में मर गया। वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। विनम्रता ही कलाकार को अधिक दिनों तक जिन्दा रखती है।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ—आर० चन्द्रशेखरय्या

आपके गायन शैली की मुख्य विशेषता अनुपातिक रूप है—

आप मैसूर के रहने वाले हैं। आप भी संगीत नाटक अकादमी के सम्मानीय सदस्य हैं। आजकल आप कर्नाटकी संगीत के विशेषज्ञ माने जाते हैं। आप बड़े ही साधना प्रिय कलाकार हैं। साधना पर अपका अटूट विश्वास है। स्वयं भी चौदह पन्द्रह घन्टे तक साधना करते हैं। उनका कथन है—"साधना ने ही मुझे सफलता के रंगमंच पर आगे बढ़ाया, वरना तो मैं किसी अन्धकार में पड़ा होता। साधना में असीमित शक्ति है। साधना के गर्भ में ही कलाकार का जन्म होता है। इसलिए कलाकार को साधना और परिश्रम से कभी नहीं घवड़ाना चाहिये। साधना के लिए चरित्र की उज्ज्वलता आवश्यक है। उज्ज्वल चरित्र वाले ही कला की सफल साधना कर सकते हैं। जब कलाकार अपने चरित्र की उज्ज्वलता से गिर जाता है, तभी वह कला के पथ से भ्रष्ट हो जाता है।"

आप बड़े जिन्दा दिल कलाकार हैं। श्रोतागणों को विमुग्ध कर लेना आपके लिए बहुत ही सुगम है। आपके गायन में एक अपूर्व मिठास है, जो वरबस प्रेक्षक को अपनी ओर खीच लेती है। आप गाते वक्त इतनी शिल्पज्ञता का प्रदर्शन नहीं करते कि श्रोता ऊबने लगें। आप कला के अनुपातिक रूप को अच्छी तरह समझते हैं। आपकी गायन शैली की मुख्य विशेषता अनुपातिक रूप है। आपका कहना है कि "जो कलाकार कला के प्रदर्शन में स्वरों का अनुपातिक रूप प्रस्तुत करता है वह कभी असफल नहीं हो सकता। वह अवश्य ही संगीत सम्मेलनों में विजयश्री प्राप्त कर लेगा।"

सफल नर्तक हरि उप्पल

हमें नृत्य को अपनाने में कभी संकोच नहीं करना चाहिये—

आप पटना निवासी हैं। सम्पूर्ण बिहार प्रान्त में आपने नृत्यक संगीत का जागरण किया है, लोगों में नृत्य के लिए नवीन उत्साह, नवीन चाव पैदा किया है। जो लोग भारतीय नृत्यों को हेय दृष्टि से देखते थे, वे भी अब श्रीहरि उप्पल जी के सतत प्रयत्न से आदर की दृष्टि से देखने लग गए हैं। वास्तव में बिहार को संगीतमय बनाने में आपका पर्याप्त योग है। आपके अन्दर अपूर्व उत्साह है,

आप मानव जीवन के कठिन से कठिन सन्देश को नृत्य की शैली में गूँथ कर आम जनता तक पहुँचाते हैं। आम जनता ने आपके नृत्यों के यथार्थ सौन्दर्य को अपनाने में मुक्त हृदयता का परिचय दिया है। इसीलिए आप आम जनता के प्रिय नृत्यकार हैं। आप भारतीय संगीत नाटक अकादमी के सम्मानीय सदस्य हैं। वास्तव में आपने भारतीय नृत्य कला को काफी ऊँचा उठाया है।

आपका कथन है कि—"अन्य देशों ने नृत्य का महत्व आज समझा है, किन्तु भारत इसका महत्व न जाने कब से जानता चला आ रहा है। हमारा वैदिक साहित्य इस प्रकार के उल्लेखों से भरा पड़ा है। जब अमेरिका, यूरोप आदि को वस्त्र प्रयोग तक विदित न था, भारत में यक्ष गन्धर्व, किन्नर जैसी संगीत-वाद्य-नृत्य प्रवीण जातियाँ वर्तमान थीं। देवादिदेव शंकर के तान्डव नृत्य की प्राचीनता किसे विदित नहीं। जब भारत उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर था, तब सप्तसिन्धु प्रदेश में ऐसा एक भी आर्य युवक या एक भी आर्य युवती न थी, जिसे यह नृत्य की आह्लादकारिणी कला विदित न थी। यह धारा महाभारत काल से अजस्त्र गति से बहती मिलती है। उच्चवंशीय राज कुमार एवं राज कुमारियाँ नृत्य सीखने में अपना गौरव समझते थे। गाण्डीवधारी अर्जुन जैसा युद्धप्रिय युवक केवल नृत्य ही न जानता था, नृत्य की शिक्षा भी देना जानता था। कहने का मतलब यही है कि नृत्य भारतीय आत्मा का मुख्य अंश रहा है। इसलिए हमें नृत्य को अपनाने में कभी संकोच नहीं करना चाहिए।"

विख्यात संगीतज्ञा श्रीमती एम० एस० सुबुलक्ष्मी

श्रीमती सुबुलक्ष्मी ने भारतीय नृत्यों में एक नवीन रंग भरा है—

यह दक्षिण की कोकिला है। वास्तव में इनकी स्वर लहरी इतनी मीठी है कि कोकिला उपाधि सार्थक होती है। इन्होंने भारतीय संगीत के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन ही समर्पण कर दिया है। यह सुप्रसिद्ध गायिका तथा नर्तकी दोनों हैं। इनके नृत्य अपनी एक विशिष्टिता लिए हुए होते हैं। उनमें मानव जीवन को विकास क्षितिज की ओर अग्रसर कराने वाले पर्याप्त मात्रा में तथ्य विद्यमान रहते हैं, और विद्यमान रहती हैं आत्मा की दिव्यता। श्री सुबुलक्ष्मी दक्षिण भारत में ही विख्यात नहीं है, बल्कि उत्तर भारत में भी आप सुप्रसिद्ध हैं। आपने एक संगीतमय चित्रपट "मीरा" में भी मुख्य हीरोइन का कार्य बड़ी सफलता से किया है। मीरा के रूप में आपका वह पावन एवं संगीतमय रूप भारतियों के हृदयों में घर कर गया है। इस चित्रपट ने आपकी ख्याति को चारों ओर बिखेर दिया। वास्तव में आपने मीरा का सजीव रूप प्रस्तुत किया है, दर्शक को यह प्रतीत किंचितमात्र नहीं होता कि वह एक चित्रपट देख रहे हैं, उन्हें अपने सामने साकार मीरा दीखती है।

सुबुलक्ष्मी का वह दिव्य रूप कभी भुलाया नहीं जा सकता। अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने भी आपके मीरा के संगीसमय रूप की प्रशंसा की थी। नृत्य और गायन दोनों का जब आप समिश्रण रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं, तब एक स्वर्गीय वातावरण प्रस्तुत हो जाता है। दरअसल आपकी कला में आत्मविभोरित करने वाली सजीव शक्ति है। आपको राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है। वास्तव में आपका भारतीय संगीत में उच्च स्थान है। आपने भारतीय नृत्यों में एक नवीन मोड़ दिया है, उसको नवीन परिधान पहिराया है, उसमें नवीन रंग भरा है, तब वे इतने आकर्षक बन गये हैं, कि अनायास ही मानव हृदय को प्रलुब्ध कर लेते हैं। आप पर सिर्फ दक्षिण भारत को ही गर्व नहीं है बल्कि उत्तर भारत को भी आप पर बड़ा गर्व है।

गोविन्दराव टेम्बे

आप महाराष्ट्र के ख्यात प्राप्त संगीतज्ञ थे। लेकिन आप पर सिर्फ महाराष्ट्र को ही नाज़ नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण भारत को आप पर नाज़ है। आपने संगीत क्षेत्र में जो अविस्मरणीय कार्य किया, उसके कारण आप भारत भर में विख्यात होगये थे। टेम्बे अखिल भारतीय आकाश वाणी की म्यूजिक आडीशन कमेटी के सदस्य थे। हारमोनिमय वादन में आप विशेष रूप से दक्ष थे, और इसी कारण आप भारत-प्रसिद्ध होगये। आपने मराठी भाषा में संगीत पर दो महत्वपूर्ण पुस्तकें एवं ६ नाटक लिखे थे और कई चित्रपटों में संगीत निर्देशन का भी कार्य किया। वास्तव में आप एक उच्चकोटि के कलाकार थे। आपकी कला में हमें प्रान्तीयता के दर्शन नहीं होते, उसमें हमें कला का सार्वभौमिक रूप मिलता है। आपका ७६ वर्ष की आयु में ही गत ६ अक्टूबर १९५५ को देहावसान हो गया। आपकी मृत्यु से संगीत संसार की एक महान क्षति होगई जो सहज में पूर्ति नहीं हो सकेगी। आप जीवन भर संगीत विकास के लिए काम करते रहे। बीमारी के दिनों में भी आप साधना में मग्न रहते थे। आपका कहना था कि साधना से मुझे एक ऐसी राहत मिलती है, जिससे मैं कुछ देर के लिए आत्मिक आनन्द में खो जाता हूँ। आपका हारमोनियम वादन इतना सुरीला तथा प्रभावशाली होता था कि वह सुनते ही बनता था। उसकी स्वर लहरियाँ श्रोताओं के हृदय को चुरा कर अपने साथ उड़ा ले जाती थीं। इतना अधिकार था आपको हारमोनियम वादन पर। वैसे आप बड़े ही सरल स्वभाव के थे। आपने अनेक व्यक्तियों को संगीत के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का क्रियात्मक प्रोत्साहन दिया। महाराष्ट्र को संगीतपूर्ण बनाने में आपका विशेष हाथ रहा। आपने महाराष्ट्रीय संगीत में नवीन जीवन फूँका, नवीन रूप दिया और उसको नवीन ढंग से प्रस्तुत किया।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री दिलीपचन्द्र वेदी

आप उत्तर भारत के विख्यात गायक एवं संगीत शास्त्र के प्रकान्ड विद्वान हैं। दिलीपचन्द बेदी पंजाब प्रांत के हैं और आप भारतीय संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं। आपका गायन बड़ा ही मधुर एवं जीवनोत्कर्ष का मुख्य सम्बल होता है। वास्तव में आपके गायन में हमें शान्ति और स्फूर्ति का समावेश बड़े सुन्दर ढंग से प्राप्त होता है, उसमें हमें सौन्दर्यात्मिक कला का दिग्दर्शन होता है। आपके गाने पर श्रोतागरण मुग्ध हो जाते हैं। आपको संगीत विकास का हर वक्त ध्यान रहता है। आपके विचार बड़े ही प्रशस्त हैं। आपने अनेक व्यक्तियों को कला के सुरम्य पथ पर आगे बढ़ाया है। उत्तर भारत की दयनीय संगीत की स्थिति को देखकर एक बार आपने लिखा था—"कुछ अजीब-सी बात है कि भारतवर्ष के कोने-कोने में संगीत विद्यालयों के होते हुए भी शास्त्रीय संगीत से जनता दूर हटती जा रही है। उत्तर भारत में यह बात विशेष रूप से देखने को मिल रही है। दक्षिरण भारत के संगीत प्रेमी तो आज भी एक निर्धारित स्तर पर चलने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु उत्तर भारत के संगीत-प्रेमी इधर-उधर के प्रवाहों और प्रभावों में पड़कर कुछ इस तरह डगमगा रहे हैं कि भगवान ही उनकी रक्षा करें।

अब सोचना यह है कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है। बात यह है कि संगीत को सर्वसाधारण तक पहुँचाने का माध्यम केवल संगीत विद्यालय ही नहीं है, नाटक, भजन, रास मंडलियाँ, धर्म सम्मेलन, पाठशालाएँ यहाँ तक कि चलचित्र भी संगीत का प्रसार करने में योग देते हैं। इसलिए जब तक संगीत विद्यालयों के साथ ही साथ संगीत को फैलाने वाले दूसरे साधनों का भी सुधार नहीं होगा अर्थात् जब तक इन सभी साधनों में शास्त्रीय संगीत का उचित प्रवेश नहीं होगा, तब तक शास्त्रीय संगीत का सही रूप कैसे बना रह सकता है।

इतिहास के पन्नों पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तब देखते हैं कि वैदिक काल में इन सभी साधनों में एक प्रकार का परस्पर सहयोग था, जोकि गुप्त काल तक बराबर कायम रहा। कालिदास के नाटकों में भी हम राग-रागनियों का वर्णन पाते हैं और "भरत नाट्यशास्त्र" से इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है ही। मुगल काल में भी मन्दिरों तथा धार्मिक स्थानों पर जो भजन गाये जाते थे, उनकी धुनें राग-रागनियों में बँधी होती थीं। स्वामी हरिदास, सूरदास और मीरा के काव्य शास्त्रीय संगीत के नियमों से ओत-प्रोत थे।

किन्तु धीरे-धीरे स्थिति बदल गई। जनता ने जब से लोक-गीतों को अपनाना अधिक शुरू किया, मुसलमान फकीरों की मजारों और दरगाहों पर गाई जाने वाली

कव्वालियों की धुनों को अपनाया, तब से गम्भीर संगीत की अवनति होने लगी और चंचल प्रकृति का संगीत जनता में अधिक प्रचलित होने लगा। अंग्रेजी राज्य काल में दो बीमारी और आईं, जाज सङ्गीत और ग्रामोफोन। इनके लिये हम यूरोप के व्यापारियों को उतना दोषी नहीं ठहरा सकते, जितना कि रिकार्ड तैयार करने वाली कम्पनियों के भारतीय एजेन्टों को, जिन्होंने सस्ती तथा चलती धुनों को भरकर अधिक से अधिक पैसा कमाने की चेष्टा की। इसके बाद अशान्त मन को शान्ति देने वाले सङ्गीत के स्थान पर यौनिक उत्तेजना फैलाने वाली धुनों और गीतों की ऐसी बाढ़ आई कि क्या सनातन धर्म के मन्दिर और क्या आर्य समाज और क्या गुरुद्वारे कोई भी इनसे अछूता नहीं रहा।

अब सवाल है कि स्थिति में सुधार कैसे हो। सबसे पहली बात यह है कि संगीत के संरक्षण और प्रोत्साहन का काम अब राजा महाराजाओं, रईस जागीरदारों के हाथ में न रहकर सरकार के हाथ में आगया है और सच्चे सुधार का काम सच पूछिये तो सरकार ही कर सकती है। हर्ष की बात है कि जब से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है, तब से राष्ट्र की सरकार सङ्गीत कला की उन्नति पर विशेष ध्यान दे रही है और सम्मेलनों, प्रतियोगिताओं, पुरस्कारों और उपाधियों द्वारा सङ्गीतज्ञों का सम्मान बढ़ाया जारहा है। तथा उन्हें प्रोत्साहन भी दिया जारहा है। पिछले दो साल में भारत के अनेक प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञों जैसे उस्ताद मुस्ताक हुसेन, उस्ताद अलाउद्दीनखाँ आदि को सरकार की ओर से जो पुरस्कार प्रदान किए गए, वे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। गत वर्ष राष्ट्रपति भवन में श्री ओंकारनाथ ठाकुर को "पद्मश्री" की उपाधि देकर राष्ट्र की सरकार ने विशेष रूप से सम्मानित किया है।

मेरा अपना मत है कि भारत की सरकार योग्य संगीतज्ञों और संगीत संस्थाओं का ठीक-ठीक सहयोग प्राप्त कर सके तो वह स्थिति को सुधारने में बहुत कुछ सफल हो सकती है। इस काम में कानून भी सहायक हो सकता है। डा० केसकर सूचना मन्त्री संगीत के विषय में सबसे अधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। लेकिन जब तक उनके परामर्शदाता विशाल हृदय नहीं होंगे और गुटबन्दी तथा ईर्ष्या द्वेष के दोषों से ऊपर नहीं उठेंगे, तब तक संगीत का सुधार कार्य सुचारुरूप से नहीं चल सकता।"

दिलीपचन्द्र वेदी के अन्दर एक ऐसी तड़पन है, कि जिससे संगीत का बड़े सुन्दर ढंग से विकास हो सकता है—

श्री दिलीपचन्द्र वेदी बड़े स्पष्टवादी कलाकार हैं। उनके उपर्युक्त बिचार बड़े ही महत्वपूर्ण तथा मार्गदर्शक हैं। उन्होंने संगीत का गहरा अध्ययन किया हुआ है, हमें उनके प्रशस्त बिचारों से लाभ उठाना चाहिए। उनके सुझाव ऐतिहासिक मूल्य

रखते हैं, इसीलिए हमने यहाँ प्रस्तुत किए हैं। उनके विचारों से ब्रिटिश काल के संगीत की स्थिति स्पष्ट झलकती है। उनके विचारों से देश का लाभ होगा। वह भारतीय संगीत को उत्कृष्टता के शिखर पर ले जाने के अकाँक्षी हैं। दिलीपचन्द्र वेदी के अन्दर एक ऐसी तड़पन है कि जिससे संगीत का बड़े सुन्दर ढंग से विकास हो सकता है। दिलीपचन्द्र वेदी का भारतीय संगीत में उच्च स्थान है।

सुप्रसिद्ध नर्तकी मृणालिनी साराभाई

धार्मिक भावना को सजीव बनाकर नृत्य की सुन्दर पृष्ठ पर आप बड़ी कलात्मकता से उतारती हैं—

गुजरात की प्रमुख नर्तकी एवं संगीतज्ञा हैं आप "भरत नाट्यम" नृत्य की विशेषज्ञा हैं। इसके प्रस्तुतीकरण में आप विशेष रूप से प्रवीण हैं। आप गुजरात की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत की सुप्रसिद्ध नर्तकी हैं। आपको और भी अनेक नृत्य शैलियों पर अधिकार है। बचपन से ही आपको नृत्य से प्रेम था। आपने प्राचीन नृत्यों को नवीन रूप भी दिया है, जिससे वे बड़े मनमोहक बन गए हैं। नृत्य प्रदर्शन करते वक्त आप श्रोताओं की रुचि का विशेष ध्यान रखती हैं, तभी आपका नृत्य विशेष प्रभावशाली बन जाता है। आप नृत्य की जहाँ वाद्य वातावरण पर ध्यान देती हैं, वहाँ उसके साथ-साथ नृत्यों के आन्तरिक पहलुओं पर भी आप पर्याप्त मात्रा में अपना ध्यान देती हैं। इसीलिए हमें आपके नृत्यों में कला का अद्वितीय सौन्दर्य प्राप्त होता है। नृत्य का लावण्य नृत्य के प्रत्येक हाव-भाव में प्रस्फुटित होता है। धार्मिक भावना को सजीव बनाकर नृत्य की सुन्दर पृष्ठ पर बड़ी कलात्मकता से आप उतारती हैं, जो देखते ही बनता है। गुजरात में आपने भारतीय नृत्यों का प्रचार खूब किया है। आम जनता आपके नृत्यों को पसन्द करती है। शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के दर्शकों को आपके नृत्यों से आनन्द मिलता है। आप अपने नृत्यों का प्रस्फुटन साहित्यिक रूप से करती हैं, जिससे उसमें चार चाँद लग जाते हैं। मृणालिनी की नृत्य शैली बड़ी ही आकर्षक एवं हृदयग्राही होती है। उसमें हमें आत्मिक शान्ति के उपकरण पूर्ण रूप से मिलते हैं।

सुप्रसिद्ध नर्त्तकी रोशन कुमारी

नृत्य के लिए अश्लीलता जहर है—

रोशन कुमारी भारत की सुप्रसिद्ध नर्त्तकी हैं। आपने कत्थक नृत्य शैली में विशेष रूप से ख्याति प्राप्त की है। भारत के सभी संगीत सम्मेलनों में आप प्रायः भाग लिया करती हैं। आपने नवीन नृत्यों का भी अपनी निजी आकर्षक शैली में

निर्माण किया है। उन नृत्यों में आपने कलात्मक पुट अधिक दिया है। नृत्य के प्रदर्शन में आप स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखती हैं। आपका कथन है कि—"स्वाभाविकता नृत्य की जान है, इसके बिना नृत्य निर्जीव बन जाते हैं। बिना स्वाभाविकता के नृत्यों की चमक, उसकी सुषमा नष्ट हो जाती है, और स्वाभाविकता साधना तथा अध्ययन के द्वारा आती है। हमारा मानव जीवन का गहरा अध्ययन होना चाहिए, तभी हम सफल नर्त्तकी बन सकती हैं—उससे पूर्व नहीं।"

आज संगीत विश्व में आपकी काफी धूमधाम है, इसका मुख्य कारण है आपके नृत्यों की जनप्रिय पृष्ठभूमि। अश्लीलता, अनैतिकता के कुरूप वातावरण से आप अपने नृत्यों को बहुत दूर रखती हैं। नृत्य के लिए अश्लीलता जहर है। नृत्य का विकास-श्रृंगार तो पावनता के स्वच्छ वातावरण में ही हो सकता है, ऐसा रोशन कुमारी का विश्वास है। आप भारतीय नृत्य के लिए पावनता पर अधिक जोर देती हैं। आपका कहना है कि नृत्य की पावनता ही उसका सौन्दर्य है। भारतीय महिलाओं के लिए भारतीय नृत्य ही विशेष लाभकर हैं, क्योंकि इनसे उनका स्वास्थ्य सुन्दर और आकर्षक बनेगा।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा केसरबाई केतकर

साहित्य संगीत की पृष्ठ को सौन्दर्यात्मक बनाता है। उसमें एक प्रेरणात्मक चमक पैदा करता है—

आप कंठ संगीत में बड़ी प्रवीण हैं। आपको सन् १९५३ में राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। आपकी स्वर लहरी बड़ी मधुर है। जब वह गाती हैं तो संगीत सम्मेलन पर छा जाती हैं। आपके गायन शैली की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें हमें हृदय को स्पर्श करने वाले मंत्र मुग्धक तथ्य मिलते हैं, और मिलते हैं प्रलुब्धकारी उपकरण। वास्तव में आपने गायन शैली में एक नवीनीकरण किया है। आपकी नवीन गायन शैली सभी पसन्द करते हैं। आप भारत के लगभग सभी सम्मेलनों में भाग लिया करती हैं। आपका स्वभाव बड़ा ही सरल और मृदुल है।

व्यर्थ के अलापों से आपको बहुत चिढ़ है। आप उतना ही अलाप लेती हैं जितने से कला की स्वाभाविकता, उसकी मधुरता नष्ट न हो जाए। जितने से कला की सुषमा उभर सके। आपने भारतीय संगीत का खूब प्रचार किया है। आपका कथन है :—"संगीत और साहित्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। संगीतकार को साहित्य से दूर नहीं रहना चाहिए, उसे संगीत और साहित्य का समन्वय का ज्ञान पूर्ण रूप से होना चाहिए। जो कलाकार जितने सुन्दर ढंग से इस समन्वय-चित्र से अवगत होगा,

वह उतना ही सफल कलाकार माना जायगा। साहित्य, संगीत की पृष्ठ को सौन्दर्यात्मक बनाता है, उसमें चमक पैदा करता है, उसको निखारता है, उसमें नया रंग भरता है। वास्तव में संगीत और साहित्य अपनी पृथक पृथक सत्ता रखते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं।"

श्री शान्ताप्रसाद (गुदई महाराज)

तबला-वादन में आप भारत के प्रमुख विशेषज्ञ माने जाते हैं। आप बनारस के रहने वाले हैं। आपने तबले-वादन में विशेष निपुणता प्राप्त की है। आपकी भारत के प्रमुख तबला-वादकों में गणना है। तबला-वादन का आपका अपना ढंग निजी है, उसमें आपने नवीन आकर्षण पैदा किया है, नवीन मोड़ दिया है। आप भारत के उच्च कलाकारों के साथ संगत करते रहते हैं। भारत का शायद ही कोई प्रमुख संगीत सम्मेलन ऐसा छूटता हो जिसमें आपको निमन्त्रित न किया जाता हो। आपका तबला वादन ऐसा नहीं होता कि जिससे श्रोतागण ऊँब जाए, गायन की रस धारा ही खत्म हो जाए। आपके वादन में एक लालित्य है, एक लोच है और एक मादकता है, जो कि बरबस मानव हृदय पर अपना अधिकार कर लेती है। आप अभी युवक हैं, इस छोटी-सी उम्र में आपने तबले-वादन पर इतनी गहरी विशेषज्ञता प्राप्त करली यह प्रशंसनीय कार्य है।

सुप्रसिद्ध नृत्यकार गोपीनाथ

गोपीनाथ ने भारतीय नृत्य के क्षेत्र में विशेष कार्य किया। आपने भारतीय नृत्यों के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी लिखी है जिसका नाम है—"Classical dance poses of India", इस पुस्तक से हमें भारतीय नृत्यों के शास्त्रीय रूप का पता लगता है। वास्तव में भारतीय नृत्यों के क्षेत्र में गोपीनाथ का महान कार्य अद्वितीय एवं सर्वोच्च है। आप नृत्यों को मानव जीवन के विकास का प्रमुख साधन समझते हैं। आपका यह भी कहना है कि भारतीय नृत्य मानव के वाह्य रूप को ही सुन्दर नहीं बनाते, बल्कि उसके आन्तरिक रूप को भी सुन्दर बनाने में महान योग देते हैं। नृत्यों के द्वारा आप मानव के मानसिक उद्वेग को बड़ी सुगमता से दूर कर सकते हैं। भारतीय संगीत के इतिहास में उनका नाम अमर है।

पं० भीष्मदेव वेदी

पं० भीष्मदेव वेदी सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ ने भारतीय सङ्गीत क्षेत्र में बड़ा कार्य किया है। सङ्गीत से प्रेम आपका प्रारम्भ से ही रहा। आपके प्रधान गुरुओं में प्रयाग के पं० भोलानाथ भट्ट और ग्वालियर के पं० महादेव प्रसाद थे। आज भी वेदीजी के गायन में पं० महादेवप्रशाद की स्पष्ट झलक मिलती है। वेदीजी का गायन स्वर

प्रधान तथा गम्भीर है, विशेषकर अलाप में स्वर का चमत्कार सुनते ही बनता है। अभ्यास में आप स्वर को प्रधान अङ्ग मानते हैं। आपके स्थाई अन्तरे साहित्य और सङ्गीत दोनों दृष्टिकोण से उच्चकोटि के हैं। बन्दिशें इतनी सुन्दर हैं, दो घन्टे लगातार सुनने पर भी जी नहीं ऊँबता। आप सङ्गीत और साहित्य के सुन्दर समावेश पर अधिक ध्यान देते हैं। आप धार स्टेट के राज गायक भी रह चुके हैं, और फिर उसके बाद सङ्गीत प्रचार में लगे रहे। देश के अनेक स्थानों बम्बई, मुरादाबाद, आगरा, कानपुर, पटना, नागपुर अलीगढ़ में थोड़े-थोड़े समय रहकर शिष्य तैयार किए। आपके प्रधान शिष्यों में श्री रामनरायन (सारंगी) और राधा वल्लभ ठुमरी गायक देश में अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। तमाम शहरों में आपने संगीत विद्यालयों की स्थापना की है, जो आज भी चल रहे हैं। यही नहीं आपने सङ्गीत का प्रचार करने वाली अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं को भी जन्म दिया। जैसे बम्बई की "सुर सिंगार संसद" जिसके अन्तर्गत आज भी देश में होने वाले सम्मेलनों में सबसे अधिक विशाल सम्मेलन प्रति तीसरे वर्ष होता है। वैसे संगीत आपके परिवार में घृणा की वस्तु थी, लेकिन फिर भी संगीत में आपने जैसी उन्नति की है तथा संगीत पर जैसा अधिकार पालिया वह आश्चर्यजनक है।

काशी का संगीत

काशी का संगीत के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। आज भी यहाँ गायन, वादन और नृत्य के भारत प्रसिद्ध कलाकार हैं, कंठे महाराज, अनोखे लाल और किशन महाराज से संगीत समाज अच्छी तरह परिचित है। कत्थक नृत्य के आचार्य श्री शुकदेव मिश्र उर्फ सुकरे महाराज ने कई शिष्य तैयार किए हैं। जिनमें चतुर्भुज चौबे (चौबे महाराज) गोपी कृष्ण, सितारा प्रभृति प्रमुख हैं। काशी की गायन क्षेत्र में भी अपनी प्राचीन परम्परा रही है। यहाँ दिलराम मिश्र, सेवक, जगमन मिश्र, ठाकुर दयाल मिश्र, प्रसिद्धू जी, मनोहर मिश्र, विश्वेश्वर मिश्र, राम सेवक जी और शिवा पशुपति जी जैसे महान कंठ शिल्पी हो चुके हैं। यह सब कलाकार एक ही वंश परम्परा में हुए हैं। काशी में कई ऐसे परिवार हमें मिलते हैं जिनमें गायकी की एक सुदीर्घ निर्मल परम्परा रही है।

ब्रिटिश काल में अनेक सुन्दर एवं उच्चकोटि के कलाकार पैदा हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया—

ब्रिटिश काल जहाँ संगीत के लिए अभिशाप बनकर रहा, वहाँ इसके साथ-साथ इस काल में अनेक सुन्दर एवं उच्चकोटि के कलाकार भी पैदा हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। जिन संगीतज्ञों का इतिहास में उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त भी अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं कलाकार भारत में

विद्यमान हैं, जोकि भारतीय संगीत को ऊपर उठाने में महान प्रयत्न कर रहे हैं, और जिनको समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जाता रहा है। उन सब का यहाँ उल्लेख करना बड़ा मुश्किल कार्य है, फिर भी हमने कोशिश तो यही की है कि अधिक से अधिक ब्रिटिश काल के संगीतज्ञों का उल्लेख इस प्रकरण में हो जाए, पर फिर भी बहुत से सुप्रसिद्ध नाम छूट गये हैं। प्रो० डी, वेंकट स्वामी जो कि वायलिन विशेषज्ञ हैं, बड़ा ही सुन्दर कार्य कर रहे हैं और जिनको राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। श्री एस० आर० श्री निवासन अय्यर, यह भी वायलिन वेशषज्ञ हैं और दक्षिण में संगीत के प्रचार का वड़े ही कलात्मक ढंग से प्रचार कर रहे हैं। आपको राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। उस्ताद हाफिज अलीखाँ जो सरोद विशेषज्ञ हैं, इस युग के एक जीते जागते कलाकार हैं, और यह भी राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित हो चुके हैं। आप संगीत सम्मेलनों में प्रायः भाग लिया करते हैं। आपकी ख्याति भारत में खूब है। कंठे महाराज तबले वादन में विशेषज्ञ हैं। सितारा देवी और शान्ता आप्टे नृत्य विशेषज्ञा हैं। सितारा देवी ने विदेशों में भी भारतीय नृत्यों का खूब प्रचार किया है, और इन दोनों कलाकारिणयों ने चित्रों में भी कार्य किया है। श्री रंजनीकान्त देसाई गुजरात के सुप्रसिद्ध गायक हैं। मध्य प्रदेश की डा० कुमारी बुलबुल मित्रा (जवलपुर) जोकि संगीत, नाटक अकादमी की भी सदस्या हैं, और सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा हैं, मध्य भारत के बाबूलाल गुप्त जो ग्वालियर के रहने वाले हैं, बड़े ही ख्याति प्राप्त कलाकार हैं और संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं, राजस्थान के ब्रह्मानन्द गोस्वामी जोकि जयपुर के रहने वाले हैं और जिन्होंने राजस्थान में संगीत के जागरण में विशेष योग दिया है और जोकि संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं। बम्बई के डा० एन० जी० व्यास, बिहार के श्री जे० सी० माथुर, मद्रास के मुसीरी सुब्रह्मराम अय्यर, बम्बई की देवकारानी, यह सब कलाकार भारत के संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं जिन्होंने भारतीय कला के प्रसारणशीलता में बड़ा योग दिया है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक सुप्रसिद्ध कलाकार हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत के प्रसारणशीलता में महान योग दिया है। सौराष्ट्र के श्री रविशंकर रावल, पेप्सू के स० सुरजीतसिंह, जम्बू काश्मीर के श्री प्रांतजलदेव ने भी भारतीय कला को विकसित करने में अपना पूर्ण सहयोग दिया है और यह भी भारतीय संगीत नाटक अकादमी के सदस्य हैं।

गायन के क्षेत्र में उस्ताद चाँदखाँ और उस्ताद रहीमुद्दीनखाँ डगर ने भी बड़ी उन्नति की है। आप दोनों ही भारतीय कंठ संगीत के विख्यात शिल्पी हैं। आप दोनों के गायन में कला की सजीवता तो हमें मिलती ही है पर साथ-साथ इसके जीवन का अतुलनीय सौन्दर्य भी प्राप्त होता है।

गायन के क्षेत्र में राम मराठे ने भी अच्छी उन्नति की, बड़ी लग्न और तत्परता से आप अपने गायन को प्रस्तुत करते हैं। आप जन-समाज के हृदय पर अपने मधुर गायन से सहज ही विजय प्राप्त कर लेते हैं।

हम दक्षिण के उन महान संगीतज्ञों को भी नहीं भूल सकते, जिन्होंने कर्नाटकी संगीत का मार्ग दर्शन किया—

इसके अतिरिक्त हम दक्षिण के उन महान संगीतज्ञों को भी नहीं भूल सकते, जिन्होंने कर्नाटकी संगीत का मार्ग दर्शन किया है, और जो कि कर्नाटकी सङ्गीत की रीढ़ की हड्डी हैं, जैसे स्वर्गीय श्रीनिवास अय्यर, मुथिया, भागवतर, वीणाकार शेपण, वासुदेवाचार्य श्री सगुना, श्री सुन्दर अय्यर वास्तव में इन महान सङ्गीत विशेषज्ञों ने कर्नाटकी सङ्गीत को एक नवीन परिधान पहिराया, और उन्होंने अकथ परिश्रम करके उसकी पृष्ठ को सुदृढ़ बनाया। भारतीय सङ्गीत के इतिहास में इन सब का नाम सदैव अमर रहेगा।

संगीत के महान प्रेमी—राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीजी

राष्ट्रपिता महात्मा गन्धीजी संगीत प्रेमी थे, उनकी प्रार्थनायें संगीत के माध्यम से होती थीं, वह हर कला में "सत्य" का उज्ज्वल प्रकाश आभास करते थे, और संगीत भी उस पवित्रतम प्रकाश से परे नहीं था। गान्धीजी भजनों तथा पदों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से गाते थे। पं० नारायणराव खरे गान्धीजी के आश्रम में संगीत शिक्षक थे। आश्रम भजनावली उन्होंने बनाई। गान्धीजी संगीत चिकित्सा के रूप को भी स्वीकार करते थे। जब वह स्वयं एक बार बीमार पड़े तो उनकी चिकित्सा संगीत के माध्यम से महान संगीतज्ञ मनहर बर्वे ने की, जिसका उन्होंने प्रमाणपत्र दिया। वास्तव में गान्धीजी में भारतीय संगीत की प्रेरणात्मक शक्ति रहे, उनके ऊपर अगणित गीत और पद निर्मित हुए। भारतीय संगीत के इतिहास में उनका नाम आदर के साथ सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

कला और संस्कृति के प्रेमी—राष्ट्र-नायक पं० जवाहरलाल नेहरू

राष्ट्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरू, कला और संस्कृति के महान प्रेमी हैं। संगीत से उनको विशेष अनुराग है। वह अपने व्यस्त जीवन में से कुछ क्षण समय-समय पर संगीत आयोजन के लिए दे ही देते हैं, और श्रेष्ठ संगीत की प्रशंसा करने की भी क्षमता रखते हैं। वह भारतीय संगीत को विकास पथ पर आगे बढ़ाने में प्रेरणात्मक शक्ति रहे हैं। लेकिन वह भारतीय संगीत को संकीर्णता के वातावरण में

नहीं देखना चाहते, वह तो ऐसा संगीत पसन्द करते हैं जोकि स्वतन्त्र भारत के नवयुवकों एवं नवयुवतियों में राष्ट्रीय चेतना के शक्तिशाली स्फुरणों को प्रस्फुटित कर सके, जो स्वतन्त्र भारत की सामान्य जनता की प्रसुप्त वृत्तियों को जगा सके, और जो स्वतन्त्र भारतियों को भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण मंजिल पर ले जा सके। उनके सुन्दर जज़बात, प्रशस्त दृष्टिकोण सदैव भारतीय संगीत और संस्कृति को नूतन शक्ति प्रदान करते रहेंगे।

भारत-कोकिला—सरोजनी नायडू

श्रीमती सरोजनी नायडू का सम्पूर्ण काव्य ही संगीतमय है। उनका स्वर इतना मधुर था कि उनको "भारत कोकिला" की उपाधि से विभूषित किया गया। आपके काव्य का विषय भले ही रात्रि के प्रहरों को विमुग्ध कर देने वाले गन्धर्वों-जैसे नर्तक हों, चाहे समुद्री ज्वार की उछल-कूद मचा रही सम्पत्ति का अपहरण करने वाले कोरोमण्डल-तट के मछियारे हों, सरोजनी की वाणी में वही संगीतमय जादू है, वही शब्द अर्थ का सामर्थ्य है, और वही मोहिनी उन्मादिनी लय है। उन्होंने रवीन्द्र बाबू की भाँति, नित्यप्रति आँखों के सामने गुजरते दृश्यों एवं ध्वनियों को काव्यमयता में बाँधकर संगीत की पृष्ठ पर प्रस्फुटित किया। उनकी रचनाओं में कहीं भी हमें अपरिपक्वता दृष्टि नहीं आती। कुछ विद्वानों की राय है कि सरोजनी की कृतियों में कालिदास की अभिव्यंजना एवं मृदु स्पर्शिता नहीं है, और यह भी कहा जा सकता है कि सरोजनी के गीतों में कोई ऊँचा, कोई विशिष्ट दर्शन नहीं मिलता, परन्तु कवि की पंक्तियों की संगीतमयता ही उसकी विचारणा होती है। परन्तु सच तो यह है कि सरोजनी की रसिकता में यह नितान्त असम्भव था कि वह एक क्षण के लिए भी जीवन-सरिता की रास-लीलाओं से अपने को अलग-थलग करके जीवन के उद्देश्य पर, राष्ट्र की समस्याओं पर कुछ चिन्तन कर सके।

कुछ भी हो सरोजनी के गीतों ने संगीत के प्रसारणशीलता में पर्याप्त योग दिया। उनकी कविताओं का सम्पूर्ण कलेवर ही संगीत के स्वर्णिम आवरण में प्रस्तुत हुआ है। भारतीय संगीत के इतिहास में आपका नाम भुलाया नहीं जा सकता।

ब्रिटिश काल में चित्रपटी-संगीत

चित्रपटी-संगीत से शास्त्रीय संगीत का विशेष प्रचार न हो सका—

ब्रिटिश काल में बीसवीं शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार चित्रपट हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत के प्रचार में बड़ा योग दिया, किन्तु शास्त्रीय संगीत का इससे विशेष प्रचार न हुआ। घासलेटी (चीप टाइप) के गीतों का ही अधिक प्रचार हुआ। चित्रपटी-संगीत ने लोगों की अभिरुचि को विगाड़ दिया। वासना एवं कामुकता को इन्होंने उभारा, जिससे लोगों का नैतिक स्तर गिरता गया। जहाँ चित्रपटी-संगीत ने लोगों को संगीत प्रिय बनाया, जो व्यक्ति भारतीय संगीत से घृणा करते थे, वे भी भारतीय संगीत के प्रशंसक होगए। लेकिन शास्त्रीय संगीत का उच्च स्तर दिन व दिन गिरता गया। पर समय-समय पर शास्त्रीय संगीत का भी चित्रपटों द्वारा प्रचार हुआ। इधर कुछ अरसे से चित्रपटी-संगीत में काफी सुधार हुआ है। घासलेटी संगीत के एकदम असफल हो जाने के कारण अब समझदार संगीत निर्देशक अधिक गम्भीर तर्जे बनाने लगे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि जनता विशुद्ध भारतीय तर्जों को ज्यादा से ज्यादा पसन्द करने लगी है। अब चित्रपट निर्माता चित्रपटों में धड़ल्ले से पूर्व और पश्चिम के संगीतों की अधकचरी खिचड़ी नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं। कुछ साल पहले पश्चमी धुनों में ढले हुए वासना को उभारने वाले गीत बहुत लोकप्रिय थे। उन दिनों कामयाबी पाने के लिए यह लाजमी था कि ऐसे कुछ बेमेल गीत चित्रपटों में रक्खे जाते थे जो दर्शकों की भावनाओं को उत्तेजक बना सके। पर अब नई थोथी चमक का चकाचौंध दूर होता जा रहा है। जनता घासलेटी संगीत से ऊँब चुकी है, और वह वास्तविक संगीत की यथार्थताको पहिचानने लगी है। आजकल शास्त्रीय शैली के गीतों की जनता में अधिक माँग हो रही है। पहले हमारे म्यूजिक निर्देशक नहीं जानते थे कि शास्त्रीय संगीत को किस प्रकार चित्रपट प्रेमियों को प्रदान किया जाय, लेकिन अब वे शैनः शैनः समझते जा रहे हैं, और जब कभी चित्रपटों में शास्त्रीय संगीत की सुन्दर झांकी मिल जाती है। चित्रपटी-संगीत में जिन संगीतज्ञों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, उनके कुछ नाम यह हैं स्वर्गीय श्री सहगल, ब्रिटिश काल के एक जगमगाते चित्रपटी-संगीत के एक रत्न थे। उनके मधुर गाने अभी तक लोगों की जबान पर इठला

रहे हैं। उन की आवाज बड़ी मधुर एवं लोचदार थी। इसलिए वह शीघ्र ही जन-गायक बन गये। वह अपने मधुर गाने के कारण सम्पूर्ण भारत में विख्यात थे।

पंकज मलिक

बंगाल के पंकज मलिक को भला कौन भूल सकता है। आप चित्रपटी-संगीत के माने हुए कलाकार हैं। आपका चित्रपटों में जो संगीत है, वह भारतीय पृष्ठ को लिए हुए है, और उसमें सजीवता, ताजगी तथा स्फूर्ति का समन्वय बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है, वास्तव में आपने भारतीय संगीत को चित्रपटों के द्वारा लोक-प्रिय बनाया, और उस वक्त में जब कि घासलेटी संगीत का चित्रपट-संसार में प्रचलन था। उस वक्त भी आप शास्त्रीय संगीत के वास्तविक महत्व को जानते थे।

सुप्रसिद्ध गायक के० सी० डे०

बंगाल के सुप्रसिद्ध गायक के० सी० डे० को भी हम कैसे भूल सकते हैं, जिन्होंने संगीत के जन-जागरण में क्रियात्मक योग दिया। वह अन्धे होते हुए भी संगीत के क्षेत्र में बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी आवाज बड़ी प्यारी और मधुर थी। उनकी आवाज में एक ऐसा रस था, ऐसा लोच था कि जो बरबस श्रोताओं के हृदयों में अपना उच्चस्थान बना लेता था। उन्होंने भारतीय संगीत के विस्तार में बड़ा योग दिया।

स्वर-सम्राज्ञी कानन देवी

श्रीमती कानन देवी बंगाल की गायिका हैं और उन्होंने भारतीय संगीत के प्रचार में बड़ा ही महत्वपूर्ण अपना पार्ट अदा किया है। उनकी आवाज बड़ी सुरीली है, वह अपनी सुरीली आवाज के कारण ही चित्रपट संसार में लीगई। उनको शास्त्रीय संगीत से विशेष प्रेम है, और उन्होंने चित्रपटों में जहाँ तक हो सका शास्त्रीय संगीत को नवीन रूप देकर गाया। उनके गीत आज भी लोगों को याद आ जाते हैं।

नृत्य विशेषज्ञा साधना बोस

श्रीमती साधना बोस का उठान चित्रपट क्षेत्र में नर्तकी एवं गायिका के रूप में हुआ, वैसे आप अभिनय के क्षेत्र में भी अग्रणी रही। आपको शास्त्रीय संगीत से प्रारम्भ से ही प्रेम रहा। चित्रपटों में कार्य करते हुए भी आपने भारतीय नृत्यों का प्रचार सम्पूर्ण भारत में पर्यटन करके किया। आपकी एक संगीत मंडली थी जो घूम-घूम कर भारतीय नृत्यों का प्रचार करती थी, और वैसे चित्रपटों में भी आपके नृत्यों की सुन्दर झांकी मिल ही जाया करती थी। चित्रपटी-संगीत में आपका एक विशिष्ट स्थान है।

लोकप्रिय संगीतज्ञ खेमचन्द्र प्रकाश

बम्बई के चित्रपट-संसार में स्वर्गीय खेमचन्द्र प्रकाश का नाम सदैव अमर रहेगा । आपने भारतीय संगीत के प्रचार एवं प्रसार में महान योग दिया । "सिन्दूर" और "महल" चित्रपटों का संगीत आपका कभी भुलाया नहीं जा सकता । स्वर्गीय श्री खेमचन्द्र प्रकाश का जन्म जयपुर में ७ दिसम्बर १९०७ को हुआ था । आपके पिता दरबार में गायक थे । बाल्यकाल से ही उन्हें संगीत प्रेम था । और पांच वर्ष की उम्र में ही अपने पिता को जिनका ध्रुपद और धमार श्रोताओं को मुग्ध कर देता था गुरु मान कर खेमचन्द्र ने संगीत का अध्ययन प्रारभ कर दिया और प्रायः ११ वर्ष की आयु तक पिता के निरीक्षण में इस संगीतज्ञ का विकास हुआ । "दुख के दिन अब बीतत नाहीं" (जिसे बाद में सहगल ने 'देवदास' में गाया) "फागुन की रुत आई रे, जरा बजे बाँसुरी" (होली) "हरि के गुन गाऊँ मैं" (शादी) और "भिक्षा दे दे मैया पिंगला" (राजा भरथरी) आदि उनके गीतों का भारतीय चित्रपट-संगीत में अपना उच्चस्थान है । "तानसेन" के गीत भी आपके भुलाए नहीं जा सकते ।

चित्रपटी-संगीत में नवीन क्रान्ति पैदा करने वाला स्वर्गीय खेमचन्द्र प्रकाश—

श्री खेमचन्द्रजी को नृत्य से भी विशेष अनुराग था, और उन्होंने अच्छन महाराज से कत्थक नृत्य सीखने के अलावा अन्य भी कई प्रकार के नृत्य सीखे थे । परन्तु उनका मुख्य क्षेत्र तो संगीत ही रहा । अपने क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने के लिए वह मौलाबक्श दोपी के शिष्यत्व में संगीत का अभ्यास करते रहे और १९ वर्ष की अवस्था में बीकानेर के दरबारी गायक एवं नर्तक बन गए और बाद में उन्होंने इंगलैंड और यूरोप में भी अपने नृत्य संगीत का प्रचार किया । विदेश यात्रा के लौटने के बाद वह नेपाल के दरबार में नियुक्त होगए । जहां वह लगभग ६ वर्ष रहे ।

शास्त्रीय संगीत से आपका विशेष प्रेम था—

चित्रपटों में प्रवेश करने से पूर्व आप कलकत्ता रेडियो पर काम कर रहे थे और चित्रपटों में आपको लाने का श्रेय न्यूथियेटर्स के श्री बी० एन० सरकार को जाता है । न्यूथियेटर्स ने भारतीय चित्रपटी-संगीत के हर क्षेत्र के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है, और उच्च मूल्यों की उसकी अपनी परम्परा है । न्यूथियेटर्स ने ही अमर गायक सहगल को दिया । इसी न्यूथियेटर्स ने भारतीय चित्रपटों को खेमचन्द्र प्रकाश को दिया जिनकी ऊँचाइयों को आज के बहुत कम संगीत निर्देशक स्पर्श कर पाए हैं ।

खेमचन्द्र प्रकाश जीवन भर शास्त्रीय संगीत का ही चित्रपटों द्वारा प्रचार करते रहें। उनकी कृतियाँ इस बात की जीती जागती गवाही हैं कि शास्त्रीय संगीत भी यदि उसका उपयोग बुद्धिमत्ता पूर्वक किया जाए तो लोकप्रिय हो सकता है और वह कतिपय विद्वानों का विनोद का ही विषय नहीं है। चित्रपटी-संगीत का आज का सर्वश्रेष्ठ संगीत श्री नौशाद भी इन्हीं का सहायक रहा।

आपने विशेष उम्र नहीं पाई और सिर्फ ४३ वर्ष की अल्पायु में ही १० अगस्त १९५० में देहान्त होगया। उनके स्थान की पूर्ति होना कठिन है। उन्होंने भारतीय संगीत के विकास में महान योग दिया, उनकी अमर सेवाओं का भारतीय संगीत के इतिहास में उच्चस्थान है।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ नौशाद

नौशाद चित्रपट-जगत के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ माने जाते हैं—

आप चित्रपट-जगत के एक सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ माने जाते हैं। वास्तव में आपने भारतीय संगीत के विकास में विशेष योग दिया है। शास्त्रीय संगीत से आपको प्रेम है, और आप इस प्रयत्न में बराबर लगे रहते हैं कि शास्त्रीय संगीत को इस रूप में दिया जाए जो कि लोकप्रिय हो सके। आपका विकास बड़े परिश्रम तथा लग्न से हुआ। आपने अनेक कष्ट एवं परेशानियों के बीच में से अपना मार्ग बनाया। आप एक पल के लिए भी अपने जीवन की अँधेरी रातों में घबड़ाये नहीं, और उसी का यह प्रतिफल है कि आज आप सर्वश्रेष्ठ संगीत निर्देशक हैं। आप लखनऊ के रहने वाले हैं, और इस छोटी-सी उम्र में ही आपने अत्यन्त ख्याति उपार्जन कर ली है, यह प्रशंसनीय है। आपने चित्रपटी-संगीत का नवीनीकरण किया है, उसे एक नवीन मोड़ दिया, उसमें से वे तत्व निकाले जो भारतीय संगीत को निम्न बना रहे थे। आपके प्रभावोत्पादक संगीत से अनेक नवयुवकों को संगीतज्ञ बनने की प्रेरणा मिलती हैं।

हुसनलाल भगतराम

हुसनलाल भगतराम का भी चित्रपटी-संगीत में अपना एक उच्चस्थान है। इनकी अपनी एक अलग शैली है, जोकि काफी आकर्षक है। इन्होंने भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में विशेष योग दिया। "बड़ी बहिन" का आपका संगीत बड़ा ही आकर्षक रहा। आप बड़ी तन्मयता से संगीत विकास में लगे रहते हैं। आपने अब तक अनेक चित्रपटों में संगीत दिया है। आप प्रायः भारतीय वाद्यों का प्रयोग करते हैं।

शंकर जयकिशन

आपका संगीत भी विशेष लोकप्रिय हो रहा है। "बरसात" चित्र ने तो आपको एकदम फोरफ्रन्ट पर लाकर खड़ा कर दिया। आपका शास्त्रीय संगीत का काफी गहरा अध्ययन है, और तभी तो आप अपनी संगीत रचनाओं में शास्त्रीय संगीत को देने का प्रयत्न बराबर करते रहते हैं। आप शास्त्रीय संगीत के विशेष समर्थकों में से हैं। आपका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।

नर्त्तक गोपी कृष्ण

नवोदित कलाकार श्री गोपीकृष्ण उन कलाकारों में से हैं, जिन्हें चलचित्र जगत में शास्त्रीय नृत्यकला को समुचित स्थान दिलाकर जनसाधारण के हृदय में उसके प्रति आदर और सम्मान की पवित्र भावना जाग्रत करने का गौरव प्राप्त है। इनके पूर्व चित्रपटों में जिन नृत्य दृष्यों का प्रदर्शन होता था, उनमें बहुत बड़ी मात्रा में अश्लीलता, अनैतिकता का ही समन्वय होता था। उन नृत्यों में न तो कलात्मकता ही देखने को मिलती थी, और न उनका भारतीय संस्कृति और समाज से ही कोई सम्बन्ध होता था। श्रीगोपीकृष्ण ने चित्रपटों में प्रवेश करते ही इस अश्लील नृत्य शैली को समाप्त करने के लिए कदम उठाया। जिन-जिन चित्रों के नृत्य निर्देशन का कार्य उन्हें सौंपा गया, उनमें उन्होंने बड़ी कुशलता से शास्त्रीय नृत्यों का पुट दिया। इसके अतिरिक्त इनके नृत्य निर्देशन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह चित्र के कथानक की परिस्थिति एवं वातावरण के अनुकूल ही नृत्यों की रचना करते हैं, जिससे चित्र में अस्वाभाविकता नहीं आती।

नृत्य प्रधान चित्र "झनक-झनक पायल बाजे" में आपने बड़े ही सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किए हैं। इस चित्र के आपके नृत्य बड़े ही हृदयग्राही एवं मंत्रमुग्धक हैं। इन नृत्यों ने आपको नर्तकों की प्रथम कोटि में लाखड़ा किया।

आपका जन्म कलकत्ते में २२ अगस्त १९३३ में हुआ था। आपके परिवार के सभी लोग संगीतज्ञ हैं। आपके नाना सुखदेव महाराज बहुत गुणी व्यक्तियों में से हैं। आपकी मौसी सितारादेवी प्रसिद्ध नर्तकी तथा फिल्म अभिनेत्री हैं। माताजी और दूसरी मौसी अलकनन्दादेवी सुन्दर गायिका हैं। ११ वर्ष की अवस्था से उन्होंने नियमित रूप से अपने नाना से नृत्य सीखा। इसके बाद आपने कालिका बिन्दादीन महाराज घराने के प्रतिनिधि नर्तक सम्राट श्री शम्भू महाराज से गन्डा बँधवाया, उनसे कई वर्ष तक सीखा। "मणिपुरी", "भरत नट्यम" आदि शैलियों की शिक्षा आपने सितारा देवी से प्राप्त की।

लोकप्रिय संगीतज्ञ हेमन्तकुमार

आप एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। आपने चित्रपटी संगीत को एक नवीन परिधान पहिराया है। आपके संगीत में हमें आत्मा की गहराई और शिल्पज्ञता की उच्चता मिलती है। आप अब तक अनेक चित्रपटों में अपना संगीत प्रस्तुत कर चुके हैं, और वे सब चित्रपट संगीत के लिहाज से सफल उतरे। आपके संगीत में सबसे बड़ी विशेषता है मानव के सुसुप्त भावों को जगाना, उनमें नवीन उन्मेष भरना। आपका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।

सुप्रसिद्ध गायिका लतामंगेशकर

गायन के क्षेत्र में आपने वास्तव में बड़ी उन्नति की है। आपने चित्रपटों के द्वारा अपनी गायन शैली का सुन्दर परिचय दिया है, जो प्रशंसनीय है। आपके अन्दर सबसे बड़ी बिशेषता है, मधुर वाणी स्वर आपका बड़ा ही रसमय है और आकर्षक है। मानव हृदय को विमुग्ध करना आपकी कला का सरल कार्य है। आपके गायन में हमें एक ऐसी सजीव शक्ति मिलती है कि जिससे मन एकाग्र होकर बस उसी रस के संसार में खो जाता है, यह आपके गायन शैली की सबसे बड़ी सफलता है। आज आप सम्पूर्ण भारत में विख्यात हैं और एक उच्चकोटि की कला-कारिणी हैं। शास्त्रीय संगीत का आपको अच्छा ज्ञान है। शास्त्रीय संगीत के उत्कर्ष के लिए आप हर वक्त प्रयत्न में रहती हैं तथा संगीत सम्मेलनों में भी समय समय पर भाग लिया करती हैं। भारतीय संगीत के इतिहास में आपका कार्य सदा सराहनीय समझा जायगा, और आप महाराष्ट्र प्रान्त की रहने वाली हैं। वास्तव में आपने हिन्दुस्तानी संगीत के विकास में जो महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है, वह प्रशंसनीय है।

सुप्रसिद्ध नर्त्तकी वैजयन्तीमाला

नृत्य के क्षेत्र में वैजयन्तीमाला ने बड़ी लोकप्रिय उन्नति की है, और जबसे आपका सुन्दर नृत्य चित्रपटों में आने लगा है, तब से तो आपके नृत्य की ख्याति सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी है। वास्तव में आपके नृत्यों में हमें एक ऐसी प्रबुध्धकारी चेतनता, एक ऐसी रंगीन कल्पना का उभार और एक ऐसी ओजस्विनी धारा प्राप्त होती है कि जिससे मानव आत्मविभोर हो जाता है। आपने शास्त्रीय नृत्यों का अध्ययन विधान पूर्ण किया है। "भरतनाट्यम" और "कथकली" नृत्यों में आप विशेष दिलचस्पी लेती हैं। वैसे आपने अनेक प्रकार के नवीन नृत्यों को जन्म दिया है। आपका भविष्य बड़ा ही स्वर्णिम है।

सुप्रसिद्ध गायिका सुरैया

कंठ संगीत में सुरैया ने विशेष ख्याति उपलब्ध की है। आपका स्वर बड़ा ही मधुर है। स्वर सौन्दर्य में आप चित्रपट-जगत में अपना कोई अब भी शानी नहीं रखतीं। आपके स्वर में एक ऐसी कशिश है, एक ऐसी मीठी उठान है, और एक ऐसी विद्युत चेतना है कि श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती है। गायन के क्षेत्र में आपका स्थान उच्च है।

सुप्रसिद्ध नर्त्तकी सितारा देवी

सितारा देवी ने प्रारम्भ ही से शास्त्रीय नृत्य कला में दक्षता प्राप्त की थी। वह तो संयोगवश चित्रपट लाइन में चली गई। वैसे आपकी रुचि शास्त्रीय नृत्यों की ओर विशेष रही और अब तो आप भारत की एक सुप्रसिद्ध नर्तकी हैं। उन्होंने अनेक बड़े बड़े संगीत सम्मेलनों में अपनी कला का प्रस्तुतीकरण किया था। जिसमें उन्हें बहुत सफलता प्राप्त हुई थी। उनके नृत्य से प्रभावित होकर एक बार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें प्रमाण-पत्र दिया था।

आपने कत्थक नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी से प्राप्त की। आपके पिता आचार्य सुखदेव महाराज अच्छे संगीतज्ञ थे। इसके बाद आपने नर्तक सम्राट शम्भू महाराज से गन्डा बधवाया। उनसे कई वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की। कत्थक नृत्य के अतिरिक्त वह "भरत नाट्यम" और "मणिपुरी" की भी विशेषज्ञा हैं। इन नृत्य शैलियों की शिक्षा भी उन्होंने योग्य गुरुओं से उपलब्ध की। पाश्चात्य नृत्य शैली का भी ज्ञान आपने प्राप्त किया। आपने आधुनिक नृत्यों का निर्माण भी किया है। आप साधना को कलाकार के लिए विशेष आवश्यक समझती हैं। वह अपनी कला का देश-विदेश में प्रदर्शन कर चुकी हैं। आपका कथन है—"हमारी नृत्य कला विश्व की समस्त कलाओं में प्राचीन है, और यह अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।"

यूरोपियनों ने आपकी नृत्य कला को विशेष पसन्द किया है। अनेक विदेशी कलाकार भी आपकी कला से प्रभावित हुये हैं। संगीत के क्षेत्र में जो आपने महान सेवायें की हैं, वे कभी भुलाई नहीं जा सकती।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ सी० रामचन्द्र

सी० रामचन्द्र ने चित्रपटी संगीत में विशेष उन्नति की है। आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में सन् १९१८ के जनवरी मास में हुआ। आप विदेशों में भी भ्रमण कर चुके हैं। आपका संगीत बड़ा आकर्षक तथा लोकप्रिय होता है। आप

प्रथम श्रेणी के सङ्गीतज्ञ हैं। आपने अब तक अनेक भारतीय चित्रपटों में संगीत दिया है। आपका कथन है—"जिस प्रकार शरीर और आत्मा इन दोनों को मिलाकर मानव पूर्ण होता है, ठीक इसी प्रकार सुगम-संगीत तथा शास्त्रीय संगीत को मिलाकर संगीत का रूप पूर्ण होता है। सुगम-संगीत में जन-जीवन की अभिव्यक्तिकरण मिलती है, उसमें जन-जीवन का उठान स्पष्ट झलकता है, शास्त्रीय संगीत सुगम संगीत की आत्मा है। हम दोनों को एक-दूसरे से पृथक नहीं कर सकते। दोनों के मिलन पर ही संगीत का प्रगटीकरण होता है।"

एस० डी० वर्मन

संगीत निर्देशक के रूप में आपने चित्रपटों में विशेष उच्चस्थान प्राप्त कर लिया है। आपका संगीत एक विशिष्ट शैली लिए हुए होता है। उसमें आत्म-विभोरित करने वाली शक्ति अधिक होती है। शास्त्रीय संगीत के आप बड़े प्रेमी हैं। आपकी धुनें बड़ी मीठी होती हैं।

इस प्रकार चित्रपटी विश्व में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में बड़ा योग दिया है। भारतीय संगीत के इतिहास में उन संगीतज्ञों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। विदेशों में भी भारतीय संगीत चित्र-पटों के द्वारा पहुँचता है। नवयुवकों को संगीत की ओर झुकाने में चित्रपटों ने विशेष योग दिया है। वास्तव में चित्रपट इस दिशा में महान क्रियात्मक कार्य कर सकते हैं बशर्ते कि चित्रपट निर्मातागण भारतीय संगीत के यथार्थ स्तर की उच्चता का ध्यान रक्खे। उन्हें अपने दिमाग से इस बात को निकाल देना चाहिये कि शास्त्रीय संगीत को आम जनता पसन्द नहीं करेगी, यह बात नहीं। आज तो आम जनता विशुद्ध शास्त्रीय संगीत को ही चाहती है।

स्वतन्त्र भारत के स्वर्णिम विहान में संगीत

स्वतंत्र भारत के होते ही भारतीय संगीत ने भी एक नवीन करवट ली—

स्वतन्त्र भारत के होते ही भारतीय संगीत ने भी एक नवीन करवट ली। अब तक भारतीय संगीत रियासती राजाओं के संरक्षण में पनप रहा था, किन्तु रियासतों के विलीनीकरण के उपरान्त राष्ट्रीय सरकार ने भारतीय संगीत को संरक्षण दिया, क्यों कि राष्ट्र के नव निर्माण में जितनी आवश्यकता राजनीति पर ध्यान देने की होती है, उतनी ही कला और संस्कृति के विकास पर भी। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने इस सिद्धान्त का बड़ी तत्परता से पालन किया है। पिछले कई वर्षों में, जब से कि भारत ने स्वतन्त्रता की साँस ली है, कला और संस्कृति की जो प्रगति हुई है और उस प्रगति में राष्ट्रीय सरकार ने जो महत्वपूर्ण योग दिया है वह प्रशंसनीय है। यदि आप इन सात आठ वर्षों की सांस्कृतिक एवं कलात्मक हलचलों पर विहगंग दृष्टि डालें तो आपको पता लग जायगा कि सामान्य जनता, उच्चवर्गीय लोगों एवं राष्ट्र की सरकार ने इनके विकास में महान योग दिया है।

सन् १९५२ ई० में भारत सरकार ने संगीत कला को प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रपति पदक प्रदान करना आरम्भ किया और सन् १९५३ ई० में 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना की गई तथा सन् १९५४ ई० में 'ललित कला अकादमी' की स्थापना हुई। इससे संगीतज्ञों एवं कलाकारों में प्रगति की ओर बढ़ने की लालसा जगी। उनमें अब तक संगीत कला के लिए कोई विशेष सजीव उत्साह नहीं पाया जाता था, वह अब राष्ट्रीय संरक्षण के द्वारा प्रदीप्त हो गया। देश के अन्दर संगीत विकास की लहर दौड़ गई। और भारतीय संगीत की कायापलट होना प्रारम्भ हो गया। उसको स्वस्थ और सुन्दर बनाया जाने लगा।

राष्ट्रीय सरकार ने संगीत कला के प्रोत्साहन के साथ ही साथ अपने देश की लोक-कलाओं को भी प्रोत्साहन दिया। गणतन्त्र दिवस के सुअवसर पर जलूस में और विशेष समारोहों के अवसरों पर "नेशनल स्टेडियम", "राष्ट्रपति भवन" आदि स्थानों पर इन लोक-कलाओं की मनोरम झाँकियों के प्रलुब्धकारी आयोजन किये जाते हैं।

इन मनोरम लोकनृत्यों की झांकियों में ग्रामीण कलाकारों को भी अपनी कला को प्रदर्शित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ—

इन मनोरम लोक कलाओं की झांकियों में ग्रामीण कलाकरों को भी अपनी कला को प्रदर्शित करने का सुअवसर प्राप्त होता है, अब तक उनकी कला प्रसुप्तावस्था में पड़ी हुई थी, वास्तव में इन कलाओं में जन-जीवन की अमूल्य थाती हमें मिलती है। सर्वश्रेष्ठ ग्रामीण कलाकारों को संगीत नाटक अकादमी ने राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्रदान करने की परपाटी प्रारम्भ करदी है, इससे इन ग्रामीण कलाकारों को नवीन उत्साह जाग्रत हुआ है, और वे नवीन जोश के साथ अपनी कला को प्रगतिशील बनाने में जुट गए। अखिल भारतीय आकाशवाणी ने भी इस दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया है। उसने न केवल अपने विभिन्न केन्द्रों द्वारा लोक संगीत और नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत किए, बल्कि अपने कर्मचारियों को गाँव-गाँव भेजकर लोक-संगीत के रेकार्ड तैयार कराए और अपने केन्द्रों से उन्हें प्रचारित किया। इससे भी ग्रामीण कलाकारों के उत्साह की अभिवृद्धि हुई।

संगीत और नृत्य को सर्वप्रिय बनाने के लिए अखिल भारतीय आकाशवाणी और संगीत नाटक अकादमी ने अपने-अपने ढंग से नवीन-नवीन कार्यक्रम आयोजित किए। अखिल भारतीय आकाशवाणी ने सन् १९५२ से राष्ट्रीय संगीत का महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रसारित करना आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप आकाशवाणी के रंगमंच पर कर्नाटकी तथा उत्तर भारतीय संगीत के प्रायः समस्त सर्वश्रेष्ठ कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। इससे संगीतज्ञों में एक नवीन प्रेरणा, एक नवीन उत्साह, और एक नवीन स्फूर्ति का उदय हुआ, उनमें नवीन शक्ति आगे बढ़ने के लिए पैदा हुई। भारतीय संगीत को सर्वसाधारण के लिए आकर्षक बनाने की दिशा में अखिल भारतीय आकशवाणी ने एक अभिनव कदम उठाया। उसने "सुगम-संगीत" का निर्माण किया, जो चित्रपटी-संगीत की लोकप्रियता से स्पर्धा करते हुए भी उसकी बुराइयों से अछूता रहता है। "सुगम संगीत" बड़े उत्साह से जनता ने अपनाया। यह संगीत भी चित्रपटी संगीत के समान जनप्रिय हुआ।

संगीत नाटक अकादमी ने प्रथम राष्ट्रीय संगीत महोत्सव का आयोजन किया—

सन् १९५४ ई० में "संगीत नाटक अकादमी" ने प्रथम राष्ट्रीय संगीत महोत्सव का आयोजन किया और इस अकादमी के तत्वाधान में संगीत और नृत्य पर राष्ट्रीय पुरस्कार देने भी शुरू किए गए, जिन्हें यह पुरस्कार प्रदान किए गए, उनमें कुछ प्रमुख कलाकार यह हैं—उस्ताद रजबअलीखाँ, श्री गोविन्दराव बुरहन पुरकर, श्री शम्भू

महाराज, श्रीमती केसरबाई तथा बाल सरस्वती। इस अवसर पर राष्ट्रपति ने भारतीय संगीत के सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण भाषण दिया, उसका कुछ अंश इस प्रकार है—"इन हजारों वर्षों में मनुष्य अथवा उसके चारों ओर का वातावरण चाहे कितना ही बदल गया हो, किन्तु संगीत और नृत्य के प्रति उसकी धारणाओं में विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। संगीत और नृत्य के प्रति मानव की आसक्ति एक सार्वभौम तथ्य है। हमारे देश में अधिकाँश ललित कलाएँ, विशेषकर संगीत और नृत्य राष्ट्र की आध्यात्मक तथा सांस्कृतिक पूँजी का एक अविभाज्य अंग हैं और सदा से रही हैं।"

कलाओं की उन्नति के लिए भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को राज्य सभा के लिए कलाकारों को नामजद करने का अधिकार दिया गया है। हमारे राष्ट्रपति ने नाट्य कला में श्री पृथ्वीराज कपूर और नृत्य कला में श्रीमती रुक्मिणि देवी को राज्य सभा के लिए नामजद किया है। इसके अतिरिक्त संगीत कला को सम्मानित करने के लिए राष्ट्रपति ने श्री ओंकार नाथ ठाकुर और श्रीमती एस० एम० सुबुलक्ष्मी को राष्ट्रीय उपाधियों से सुशोभित किया।

अपने ही देश में नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वतन्त्र भारत ने बड़ा महत्वपूर्ण कदम उठाया है। उसने कई ऐशियाई तथा यूरोपीय देशों से सांस्कृतिक मैत्री स्थापित करने के लिए अपने सांस्कृतिक शिष्टमन्डल वहाँ भेजे, और उनके सांस्कृतिक शिष्टमन्डलों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। भारत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों, नर्त्तकियों, साहित्यकारों, कवियों आदि चीन, रूस, योगस्लेविया आदि देशों का भ्रमण कर आए हैं, और इन महान कलाकारों ने भारतीय संगीत को इन महान देशों में प्रदर्शित किया। जिससे वे बहुत प्रभावित हुए। एक दूसरे की कलाओं से परिचित हुए।

स्वतन्त्रता के उपरान्त इन कलाओं को प्रोत्साहन तो मिला, किन्तु संगीत कला में गायन, वादन एवं नर्तन में किसी परम्परा विशेष का अनुसरण नहीं किया गया। इसके फलस्वरूप गायन शैली अपने पृथक पृथक ढंग पर चल पड़ी।

ध्रुपद गायकों में अलाप के बाद स्थाई अंतरा, संचारी और आभोग इस प्रकार गाने की परम्परा चली आ रही है। प्राचीन ख्याल गायकों ने विलम्बित एवं द्रुत ख्याल की स्थापना की तथा ध्रुपद गायकी को दो भागों में विभाजित कर दिया। विलम्बित ख्याल में स्थाई और अंतरे का अंग एवं "द्रुत ख्याल" में संचारी तथा आयोग का अंग। आधुनिक ख्याल गायकों ने अंतरा गाना मानों वर्जित कर दिया है तथा ध्रुपद गायकी का रूप ख्याल गायकी के अंग पर ढाले जाने लगा है। कम से कम डागर बन्धुओं के गायन से तो ऐसा मालूम होता है।

जहाँ तक तान प्रणाली का सम्बन्ध है तरुण गायकों ने कलाकार की स्वतन्त्रता का सदउपयोग नहीं किया है। अजीब-अजीब ढंग से तानें लगाई जाती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा जाता कि किस स्वर पर आन्दोलन करना चाहिए, और किस पर नहीं, जिससे राग की शुद्धता स्थिर रह सके। यही नहीं किस स्वर से तान शुरू की जाए, और किस स्वर पर समाप्त की जाए, इसका ध्यान भी नहीं रखा जाता। कलाकार की विशेषता केवल इसमें नहीं है कि वह ताल में सच्चा हो, क्योंकि ताल में सच्चा होना तो आवश्यक ही है और लय का अनुसरण करना कला का एक अंग है, कलाकार की विशेषता इसमें है कि प्रत्येक तान राग के रूप का निरूपण करने की शक्ति रखे। अभिप्राय यह है कि तानवादी और सम्वादी स्वरों के कानून से पृथक न हो तथा उनमें अलंकारिक स्वरों का प्रयोग न किया जाए, क्योंकि अलंकारिक स्वर तो मूर्च्छना, आन्दोलन एवं मीड़ आदि में प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

यह समझना भूल है कि उन्नति के लोभ में कला को अपने अस्तित्व से नीचे गिराया जा सकता है। तान में जहाँ राग रूप हो, वहाँ वह भाव रूप (अथवा साहित्य रूप) भी हो। अपना कौशल प्रस्तुत करने के लिए किसी गायक का करुणा-पूर्ण रागों में भी शृंगारपूर्ण रागों जैसे तान लगाना कला के लिए एक अपवाद है। भारतीय संगीत-पद्धति में राग-रागिनी और नायक-नायिका का भेद इसीलिए किया गया है कि राग के अस्तित्व को स्थिर रखा जासके।

भारतीय गायन प्रणाली में इन बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक बात और है तान में लय रूप भी हो। अभिप्राय यह है कि तान ताल की जातियों को लयकारी रूप में व्यक्त करें। अधिकांश गायकों का ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं है और इसीलिए आज यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से गायन विकास की ओर बढ़ता दिखाई दे रहा है, तथापि वास्तव में वह पतन की ओर ही अग्रसर है।

गायन में साहित्य का समावेश होना भी आवश्यक है—

गायन में साहित्य का समावेश होना भी आवश्यक है, क्योंकि वह सिर्फ गलेबाजी नहीं है। गीत को शुद्ध रूप से अभिव्यक्त करना चाहिए। आज से तीस वर्ष पूर्व उच्चकोटि के गायक पहले गीत के स्थाई एवं अन्तरे को गाते थे, फिर हर कड़ी को राग रूप देते थे। वे जो तानें लेते थे, वे शुद्ध और रसभाव के अनुकूल होती थीं। इसीलिए वे अपनी गायकी को एक राग समूह में सीमित कर देते थे।

कुछ समय से वादकों में भी थाप मारने और स्वरों को झटका देने की प्रवृत्ति इस प्रकार बढ़ती जा रही है कि इससे राग की स्थिरता बिगड़ जाती है। भारतीय

संगीत के पितामह उस्ताद अलाउद्दीनखाँ सरोद बजाते वक्त बहुत से चमत्कार दिखाते हैं, लेकिन उनसे राग की स्थिरता बिगड़ती नहीं। तरुण वादकों को उनके कला-कौशल से अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

उत्तर भारतीय संगीत में "संगत संगीत" को बिल्कुल दबाकर रखा गया है—

एक बात और, उत्तर भारतीय संगीत में "संगत संगीत" को बिल्कुल दबा कर रखा गया है। वह ठीक नहीं है। तबला, पखावज और सारंगी आदि बजाने वालों को गायक के साथ-साथ इतना अवसर मिलना चाहिये कि वे भी अपने कला-नैपुण्य को दिखा सकें। हाँ, वहाँ प्रतिद्वन्द्विता की भावना न होनी चाहिए। आठ वर्षों के निरन्तर प्रोत्साहन से संगीत के जो रूप अब देखने को मिलते हैं, उनको संगठित करने की आवश्यकता है। देश में अनेक गायकियाँ प्रचलित हैं तथा अनेक ऐसे राग हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार से गाए जाते हैं। सब गायकियों में अच्छाइयाँ एवं अभाव हैं। इसलिए देश में एक ऐसी संस्था की स्थापना होनी चाहिये, एक ऐसा शोध विद्यालय निर्मित होना चाहिये, जो अनेक गायकियों को रेकार्ड करें तथा शोधकर्त्ताओं को अध्ययन के लिए दे। इससे गायन में एक राष्ट्रीय नियम अथवा परम्परा की स्थापना हो जायगी। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि रागों का स्वरीकरण किया जाए। आकाशवाणी ने विभिन्न गायकियों का संग्रहालय सा बनाया है, यह सर्वदा उचित होगा कि यही संस्था इस कार्य को भी हाथ में लेकर पूरा करे।

शोध विद्यालय में निम्नलिखित तथ्यों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(१) राग निरूपण का एक निश्चित क्रम निर्धारित किया जाए। (२) राग के स्तर को ऊँचा उठाया जाए। (३) प्रदर्शनकाल को इस प्रकार सीमित किया जाए कि कलाकार उस समय में एक सुसंगठित कार्यक्रम प्रस्तुत कर सके।

इधर संगीत कला को दो महान क्षतियों का सामना करना पड़ा है, उस्ताद फैयाजखाँ की मृत्यु। उस्ताद फैयाजखाँ प्रमुख संगीतज्ञ थे, उन्होंने भारतीय संगीत के क्षेत्र में महान कार्य किया, और अब दत्तात्रेय विष्णु दिगम्बर पुलस्कर का असामयिक परलोक गमन। इन दोनों महान गायकों के रिक्त स्थान की पूर्ति कभी हो सकेगी, ऐसी हमें आशा नहीं।

नृत्य के क्षेत्र में भी देश ने बहुत कुछ प्रगति की है—

नृत्य के क्षेत्र में भी देश ने बहुत कुछ प्रगति की है। स्वतन्त्रता के इस स्वर्णिम विहान में प्राचीन "भरत नाट्यम" का अनुसरण बहुत हुआ है तथा "कथकली नाट्य-नृत्य" को भी उचित प्रोत्साहन मिला है। पूर्वी भारत के मणिपुरी नृत्य को सरकारी

संरक्षण दिया गया है। इम्फाल के मणिपुरी नृत्य विद्यालय के चलाने का भार संगीत नाटक अकादमी ने ले लिया है। किन्तु उत्तर भारतीय नृत्य को अब भी उपयुक्त प्रोत्साहन नहीं मिला है। इसके सर्वश्रेष्ठ नर्त्तक शम्भू महाराज को गत वर्ष अकादमी पुरस्कार तो अवश्य प्रदान किया गया था, लेकिन अभी इस दिशा में बहुत काम करना अवशेष है। अभी सन् १९५६ में राजधानी में गणतन्त्र समारोह के सुअवसर पर जो संगीत का आयोजन हुआ था, इसमें शम्भू महाराज, कुमारी रोशन तथा बिरजू महाराज के महत्वपूर्ण नृत्य हुए थे, किन्तु उनके नृत्यों में क्रम की कमी रही। सन् १९५४ में सुश्री दमयन्ती जोशी (अब दमयन्ती पांडेय) ने प्रथम बार इस क्रम को कुछ अन्शों में प्रस्तुत किया था।

संगीत के अन्तिम रूप नाटक ने भी इस काल में अच्छी प्रगति की है। सन् १९५४ में प्रथम नाटक महोत्सव का आयोजन हुआ था, जिसमें देश भर की अनेक नाटक टोलियों ने भाग लिया था। इसमें मराठी नाटक "भाऊ बन्दकी" को प्रथम पुरस्कार मिला था। इससे पहले पृथ्वीराज कपूर की नाटक कम्पनी ने भी सारे देश का भ्रमण करके नाटकों को लोकप्रिय बनाने की सफल चेष्टा की थी*।" संगीत पाठ्य-क्रम में सम्मिलित हो गया है एवं कुछ विश्वविद्यालयों में बी० ए० परीक्षाओं में संगीत भी एक विषय के रूप में रख दिया गया है।

भारत ने स्वतन्त्र होकर जब से अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित की है, तब से संगीत का प्रचार एवं प्रसार द्रुत गति से देश में बढ़ रहा है, जगह-जगह स्कूल और कालेजों में कुलीन घरानों के युवक-युवती और कुमारियाँ संगीत शिक्षा ग्रहण कर रहीं हैं एवं जनसाधारण में भी संगीत के प्रति आशातीत अभिरुचि उत्पन्न हो रही है। इधर संगीत सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी हैं। संगीत कला के विकास के लिए यह शुभ लक्षण हैं। आशा है निकट भविष्य में ही भारतीय संगीत पुनः उच्चतम शिखर पर उपनीत होकर अपनी अलभ्य विशेषताओं से विश्व का मार्ग दर्शन करेगा।

स्वतन्त्र भारतीय संगीत के मार्गदर्शक—
डाक्टर बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

स्वतंत्र भारतीय संगीत के मार्गदर्शक हैं श्री डा० बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर। इन्होंने विरोधियों का सामना करते हुए संगीत के विकास के लिए महान प्रयत्न किए। ब्रिटिश काल से ही अखिल भारतीय आकाशवाणी पर घासलेटी चित्रपटी-संगीत का

* (उपर्युक्त अंकन श्री अविनाशी का है। देखिये उनका लेख "स्वतन्त्र भारत में कला का नव निर्माण।")

प्रचार हुआ करता था, जिससे देश के नौजवानों का नैतिक स्तर दिन व दिन गिरता जा रहा था। गन्दे गीतों का जो वासना उत्तेजक थे की बाहुल्यता हो रही थी। देश के अन्दर एक अजीब परेशानी महसूस हो रही थी। अनेक लोगों ने इस गन्दे तूफान के विरुद्ध अपनी आवाज भी उठाई, लेकिन वह आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज के समान प्रतिध्वनित होकर समाप्त हो गई। किसी ने भी उसकी तरफ गौर नहीं किया, और इधर समाज दिन व दिन पतन के गर्त में अग्रसर होता जा रहा था, ऐसे डगमगाते समय में भारत सरकार के सूचना मन्त्री डा० केसकर ने साहस के साथ अपना प्रशस्त कदम आगे बढ़ाया। उन्होंने सबसे पहला कार्य यह किया कि अखिल भारतीय आकाशवाणी केन्द्रों से फिल्मी गाने एकदम बन्द करा दिए जो कि देश में गन्दगी का प्रचार कर रहे थे, और उनके स्थान पर शास्त्रीय संगीत का प्रचार कराया। शास्त्रीय संगीत के कलाकारों को आकाशवाणी पर निमन्त्रित किए जाने लगे, और आकाशवाणी द्वारा संगीत समारोह होने लगे। डा० केसकर के इस सुदृढ़ कदम का अनेक फिल्मी निर्माताओं ने विरोध किया, किन्तु आम जनता ने उनके इस कदम की बहुत-बहुत सराहना की। डा० केसकर के ही प्रयत्नों से संगीतज्ञों का राष्ट्रीय सरकार द्वारा सम्मान किया जाने लगा, और विदेशों में उनको भारतीय संगीत के प्रचार के लिए भेजा जाने लगा। वास्तव में उनके प्रयत्न से ही शास्त्रीय संगीत की भारत में पुनः प्रतिष्ठा स्थापित हुई। उसमें उन्होंने पुनर्जीवन डाला। उनकी यह महान सेवाएँ भारतीय संगीत के इतिहास में सदैव अमर रहेंगी। डा० केसकर के भारतीय संगीत के प्रति यह विचार हैं !—"यह खुशी की बात है कि देश के अन्दर संगीत के बारे में दिलचस्पी दिन प्रति दिन बढ़ रही है। संगीत को अपना प्राचीन स्थान शीघ्र ही मिल जायगा ऐसी आशा है। पुराने जमाने में संगीत केवल एक मनोरंजन का साधन ही नहीं माना जाता था, बल्कि उसे लोग उच्च से उच्च विचार और भावना प्रगट करने का साधन मानते थे। हमारे यहाँ तो ईश्वर आराधना के लिए इससे बढ़ कर कोई उपाय नहीं माना जाता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संगीत, जो नाद की भाषा है, मनुष्य की गहरी से गहरी भावनाओं को प्रगट करने के लिए उत्तम माध्यम है।

संगीत की परिस्थिति में अब कई महत्व के परिवर्तन हो रहे हैं, और होंगे। पहले यह राजा-महराजा, सरदारों आदि तक ही सीमित रहता था। साधारण शिक्षित लोगों तक को संगीत सुनने का मौका कम मिलता था। अंग्रेजों के आने के बाद राजा-महाराजाओं ने भारतीय संगीत को छोड़कर क्लबों और घुड़दौड़ को अपनाया और गायकों का मुख्य आश्रय चला गया। संगीत के पतन का यह भी एक कारण था। अब लोकतंत्र के जमाने में संगीत साधारण जन-समुदाय तक

पहुँचना चाहिए, तभी वह टिक सकता है। सभी शिक्षित लोगों को संगीत से प्रेम होना चाहिए।

दूसरा महत्व का परिवर्तन यह है कि १६ वीं १७ वीं १८ वीं तथा १९ वीं शताब्दी में संगीत चूँकि राजाओं के दरबार आदि में ही था। वह एक विशेष प्रकृति का बन गया और उस पर एक विशेष रंग चढ़ गया। लोग यह मानने लगे कि संगीत केवल ऐयाशी की चीज है। लोगों का ख्याल हुआ कि गाने बजाने वाले प्रतिष्ठित नागरिक नहीं होते, बुरे आचरण के लोग होते हैं। अतः मध्यम श्रेणी और विद्वान वर्ग उससे दूर रहने लगा। यही कारण है कि संगीत धीरे धीरे खत्म होगया, क्योंकि जब तक मामूली कुटम्बों में संगीत की उतनी प्रतिष्ठा नहीं होती, जितनी और विद्याओं की होती है, तब तक संगीत को समाज में मुकम्मिल तौर पर स्थान नहीं मिल सकता। यह सच है कि कुछ लोग अब भी समझते है कि संगीत या गाना बजाना ऐयाशी और मजे उड़ाने का तरीका है। पर यह भ्रम और अज्ञान है। संगीत तो एक भाषा है। भाषा में उच्च से. उच्च विचार और भावना आप लिख सकते हैं, और नीच से नीच भी लिख सकते हैं। अगर कोई तुच्छ भावना या ऐयाशी की चीज प्रदर्शित करता है, तो संगीत को दोष देना ठीक नहीं होगा। अगर किसी भाषा में कोई खराब पुस्तक लिखी हो, तो भाषा को बुरा नहीं कहते, किताब को बुरा कहते हैं। संगीत को प्रतिष्ठा पर लाना उसके प्रचार और फैलाव के लिए बहुत जरूरी है। इस दिशा में पं० भातखन्डे और पं० विष्णु दिगम्बर ने बहुत बड़ा काम किया है। अब काफी समझने लगे हैं कि संगीत उतनी ही प्रतिष्टित विद्या है जितनी आन्य विद्याएँ।

हम संगीत सम्मेलन या समारोह करते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है, करने भी चाहिए, और अधिक से अधिक लोगों को सुनने भी चाहिए। लेकिन केवल सम्मेलनों से संगीत प्रचार नहीं होगा, और नहीं चन्द मशहूर कहलाने वाले गायक-वादकों को इकट्ठा कर लेने से संगीत का प्रेम बढ़ेगा। संगीत शिक्षा में बढ़ने वाले नए नए होनहार लोगों को मौका देकर, और उनकी गायन-कुशलता देखकर तारीफ करने से नवीन संगीत प्रेमियों का निर्माण हो सकेगा। साथ ही साथ संगीत के विद्यालय जहाँ सिखाने वाले ठीक ढंग से सीखे हुए हो, अधिक से अधिक संख्या में खुलने चाहिए, तभी हमारे बच्चों का संगीत से परिचय होगा और संगीत प्रेमी बढ़ेंगे।

गीतकारों और रचयिताओं का महत्व

खेद की बात है कि हमारे संगीत में केवल प्रत्यक्ष गायक वादन का प्रधान्य हो गया है। संगीत के अन्य दो महत्वपूर्ण अंग अर्थात् रचयिता और श्रोता का कोई

स्थान नहीं माना जाता। यह संगीत की दुनिया को उल्टे चश्मे से देखना है। संगीत बनाया है बड़े बड़े विद्वान संगीतज्ञों ने जिनको रचयिता कह सकते हैं। आज हमारा संगीत जो कुछ है, उन्हींकी बदौलत है, उन्होंने भिन्न-भिन्न राग बनाए। ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, आदि शैलियाँ पैदा की। गायक तो केवल उसे सीख कर गा देता है। अपने संगीत और पाश्चात्य संगीत में जो अमर नाम हैं वे बड़े बड़े रचयिताओं के ही हैं, गायकों के नहीं। वैक, मोजारी और वैगनर आदि सब रचयिता ही थे। हमारे यहाँ रत्नाकर से लेकर स्वामी हरिदास, तानसेन, सदारंग, अदारंग आदि नाम अमर हो गए हैं। इसलिए नहीं कि यह लाजवाब गवैये थे, बल्कि इसलिए कि इन्होंने संगीत की अदभुत कृतियाँ और राग रचे और संगीत को नवीन रूप और नया जीवन प्रदान किया। हो सकता है कि कहीं-कहीं गायक भी रचयिता हो, लेकिन यह आवश्यक नहीं है। अधिकांश ऐसा नहीं होता, और न हो सकता है। हर पीढ़ी में अच्छे गायक होते हैं और होते रहेंगे, लेकिन बड़े गीतकार या रचयिता कभी कभी पैदा होते हैं।

यह कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ रही है कि हमारे देश में यह भ्रामक कल्पना फैल गई है कि व्यावहारिक गायक-वादन ही संगीत का अधिकारी है और अन्य लोगों को संगीत के विषय में कहने का कुछ अधिकार नहीं, क्योंकि वे संगीत के विषय में कुछ नहीं समझते। यह कल्पना बिल्कुल गलत है। गायक गाने का पारखी कभी नहीं हो सकता, और अपने गाने का तो बिल्कुल ही नहीं हो सकता। चूँकि अपने देश में संगीत की कृतियों की रचना और अध्ययन कुछ समय तक लुप्त होगए थे, इसलिए इस प्रकार की भावना जोर पकड़ गई और इसी कारण संगीत बहुत कुछ लुप्त हो गया। गवैया अपने संगीत का पारखी इसलिए नहीं हो सकता, उसकी दृष्टि में उसका अपना संगीत सबसे अच्छा है, और दूसरे के गाने को इस लिए नहीं परख सकता है कि वह निष्पक्ष दृष्टि से नहीं देख सकता। यह एक व्यवहारिक सत्य है, जिसे आश्चर्य की बात है, लोग हमारे देश में समझने बूझने की चेष्टा नहीं करते। संसार के किसी देश में संगीत को मापने वाले गायक-वादक नहीं होते, बल्कि जानकार गुणी होते हैं, जो इस कार्य को करते हैं। किसी गायक या वादक को लोग संगीत का निर्णायक नहीं बनाते।

संगीत के सच्चे पारखी

संगीत के सच्चे पारखी तो श्रोता हैं, और उन्हीं का मत अन्तिम माना जाना चाहिए। श्रोता से मेरा तात्पर्य है बहु श्रुत श्रोता। अनुभवी तथा अच्छे श्रोता ही गायक या वादक की योग्यता का ठीक मूल्यांकन कर सकते हैं। चूँकि बहुत दिनों

से हमारे यहाँ संगीत लुप्त-सा हो गया था इसलिए परिस्थिति यह हो गई है कि हिन्दुस्तानी संगीत में कोई रूपरेखा या मापदंड नहीं रह गया है और अच्छे श्रोताओं की कमी हो गई है। नतीजा यह है कि हर गायक या वादक की तारीफ के पुल बांधने से संगीत की प्रगति नहीं होती, न उसका दर्जा ऊँचा होता है।

कर्नाटक संगीत में मापदन्ड है। इसीलिए उसकी प्रगति और लोकप्रियता अधिक बढ़ गई है और उसका प्रचार भी अधिक हो गया है। हिन्दुस्तानी संगीत में भी मापदन्ड की आवश्यकता है। शायद इस दिशा में रचयिता को ही कुछ करना होगा।

हमारी संगीत की बैठकों में संगीत ठीक से न होने के कारण दोष आगए हैं, जिससे उस कोटि का संगीत सुनने को नहीं मिलता जैसा दक्षिण में। उदाहरणार्थ गायक और वादक का साथ ले लीजिए। ताल देने वाला गायक का मददगार है, उसका प्रतियोगी नहीं, न उसको यही दिखाना है कि वह उससे ज्यादा अच्छा है। संगत करने वाला बहुत बार इस तथ्य को भूल जाता है। इससे बैठक में मजा बिगड़ जाता है। बैठक अखाड़ा नहीं है, जिसमें गायक और वादक प्रतियोगिता में पड़ जाए। दूसरी बात यह है कि अति द्रुतलय की ओर रुझान हो गया है। इससे आजकल गायकों में संगीत की शुद्धता और आनन्द में कमी आ जाती है, और उसको केवल कसरत का रूप मिल जाता है।"

डाक्टर केसकर के उपर्युक्त विचार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। उनमें विकासशील विचारों का समन्वय है। वास्तव में डा० केसकर स्वतन्त्र भारतीय संगीत के मार्ग दर्शक हैं, और उन्होंने बड़ी तन्मयता से भारतीय संगीत का पुनर्जीवन किया है।

शिशु रंगमहल

स्वतन्त्र भारत में शिशु रंमहल की स्थापना, एक महत्वपूर्ण कदम है। जहाँ देश के नन्हे मुन्ने और तान की गमक पर नृत्य करते हो, परी देश के राजा रानियों की, जानवरों तथा पक्षियों की कहानियाँ अभिनीत करते हों, ऐसे रंगमंच से हमारा अपरिचित रहना उचित नहीं। रंगमंच पर विविध दृश्य प्रदर्शित करने वालों में कलाकार शिशु रंगमहल के सदस्य हैं। यह संस्था भारतीय है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में शिक्षा का प्रसार तो अवश्य हुआ, किन्तु इस बात पर बहुत ही कम ध्यान दिया गया कि बच्चों के लिए पृथक साहित्य और संगीत होना चाहिए और विशेष फिल्में होनी चाहिए। कुछ समय पहले तक बच्चे लैला-मजनू की कहानियों वाले चित्र देखते थे और होश सम्भालने के पूर्व ही उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास गलत दिशा में होने लगता था।

बच्चों की अपनी एक दुनियाँ होती है, अपनी आकाक्षायें होती हैं, अपने स्वप्न होते हैं, जिन्हें वे वयस्कों के सामने प्रगट नहीं कर सकते। शहरों में विशेषकर बच्चों के मनोरंजन के साधन बहुत ही सीमित होते हैं। गाँव के बच्चे खेतों खलिहानों में घूमते हैं, चौपाल पर खेलते हैं, स्वच्छन्दता से वृक्षों पर चढ़ते हैं, रामायण-महाभारत तथा प्राचीन वीरों की कहानियाँ सुनते हैं और स्थानीय लोक संगीत अथवा नृत्य में भाग लेते हैं। शहरों के बच्चों के पास स्कूल से लौटकर केवल छोटे मकानों के छोटे छोटे कमरों में घुसे रहने के सिवा और कोई मनोरंजन नहीं होता। बहुत हुआ तो किसी ने रेडियो सुन लिया। वास्तव में शिशु रंगमहल स्वतन्त्र भारत का एक सुन्दर कदम है। श्री समर चटर्जी तथा श्री एन० एन० बोस ने इसकी स्थापना की। समर चटर्जी स्वयं "गीतिनाट्य" लिखते हैं। जिनमें छन्द लय और संगीत का अद्भुत सम्मिश्रण रहता है। सन् १९५२ में १६ अक्तूबर को शिशु रंगमहल की स्थापना की गई। इसकी नियमावली बनाली गई और इसे सरकारी तौर पर रजिस्टर कर लिया गया। इस संस्था ने नन्हे-नन्हे कलाकार ढूँढ लिए हैं। बच्चों द्वारा नाटक खेले जाने का एक स्तर निर्धारित कर दिया गया है। इस संस्था का मुख्य कार्यालय कलकत्ता में है। वहाँ के स्थानीय स्कूलों के बहुत से शिक्षक भी इसके सदस्य हैं।

संस्था का सर्वप्रथम उद्देश्य बालोपयोगी नाटक ढूँढ़ना। ऐसे नाटक जो बच्चों का मनोरंजन कर सके। जिनमें आदर्श के नाम पर केवल लेक्चरबाजी न हो, बल्कि जो हास परिहास के माध्यम से बच्चों पर सुन्दर प्रभाव डाल सके। इस संस्था ने इतने थोड़े समय में आठ नाटक, दस "बैले" और लगभग एक सौ छोटी संगीतमय कविताओं को स्वरलिपि के साथ स्कूलों में बालकों के गाने के लिए तैयार किया है। गीतों का एक वृहत संकलन प्रकाशित किया है। जिसमें कविताओं को स्वर लिपि के साथ संग्रहीत किया गया है।

नाटक और संगीत में इस संस्था ने बड़ा ही सुन्दर कार्य किया है—

नाटक और संगीत में इस संस्था ने बड़ा ही सुन्दर कार्य किया है। बच्चों की सांस्कृतिक एवं कलात्मक प्रवृत्तियों को पर्याप्त मात्रा में जगाया है। इस संस्था के बाल सदस्य मुख्य रूप से नृत्य गीत और बैले में ही दिलचस्पी लेते हैं। बच्चों को वह संगीत अच्छा लगता है, जिसमें गति तेज हो, धुन बहुल सरल हो और गीत की पंक्तिओं में सुसंगटित छन्द हों। हिन्दी, बंगला, राजस्थानी, भाषा में बहुत से गीत, गीति कथाएँ तथा बैले बच्चों को याद करा दिये जाते हैं। धुने वाले गीत स्कूल-स्कूल में गाये जा रहे हैं। ऐसे गीत जिनके साथ बच्चा अपनी अभिनय कला के प्रदर्शन भी कर सकता हो। लिखे जा रहे हैं। शिशु रंगमहल इस दिशा में बड़ा सुन्दर कार्य

कर रहा है। जिस रूपक में संगीत मुख्य न हो, बच्चों को उसमें रस नहीं मिलता। वास्तव में इस संस्था ने बच्चों के अन्दर संगीत की प्रेरणात्मक पृष्ठ को निर्मित किया है।

शिशु रंगमहल के उत्सव भी बराबर होते रहते हैं। अक्टूबर १९५४ में कलकत्ता शिशु रंगमहल के बाल सदस्य दिल्ली भी आए थे। इसमें लगभग ४० कलाकार थे। रंगमंच को सजाने वाले, संगीतज्ञ, और निर्देशक आदि मिलाकर लगभग १०० व्यक्ति थे। पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्री ने पूरी पार्टी का यात्रा खर्च के लिए ५०० रुपए दिए थे, और प्रधान मंत्री श्रीनेहरूजी शिशु रंगमहल के प्रथम उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

राजधानी में होने वाले उत्सव के फलस्वरूप केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के शिशु रंगमहल के काम के लिए पाँच हजार रुपये दिए। केन्द्रीय सोशल वेलफेयर एडवाइजरी वोर्ड ने ढाई हजार रूपये संगीत वाद्यों को खरीदने के लिए दिए। तभी यह तय किया गया कि शिशु रंगमहल की और शाखायें भी खोली जाए। फलस्वरूप दिल्ली में एक शाखा खोली गई। भारत के प्रधान मंत्री श्रीनेहरू ने ७५०० रुपया दिल्ली और उतना ही कलकत्ता की शाखाओं को दिया। सन् १९५५ में पुन: कलकत्ता की शाखा के कलाकार दिल्ली आए। भारत के प्रधान मन्त्री द्वारा दिल्ली शिशु रंग महल का उदघाटन किया गया। श्री नेहरू ने इस संस्था की ओर विशेष दिलचस्पी दिखाई। प्रत्येक राज्य के बच्चे शिशु रंगमहल को पसन्द करते हैं, जहाँ उन्हें हँसने गाने, नृत्य तथा नाटक करने का स्वतन्त्र अवसर मिलता है।

छै शताब्दियों के "भारतीय संगीत के इतिहास" पर पर्यावलोकन—

इन छै शताब्दियों के हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास पर पर्यावलोकन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार रहे, इन पर आप फिर एक बार विहंगम दृष्टि डाल लीजिए :—

(१) जिन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का हमने अब तक विवेचन किया, उनमें से किसी ने भी शुद्ध सप्तक के रूप में बिलावल का प्रयोग नहीं किया।

(२) संगीत के अधिकांश संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थकारों ने अपने सप्तक में कुल १२ (क्वचित १४) स्वरों का उपयोग रागों के वर्णन में किया है, और वीणा पर केवल १४ पर्दों की स्थापना की है।

(३) प्राचीन ग्रन्थकारों के रागों का एक दूसरे से पृथक्करण साधारणत: उनके आरोह अवरोह और वादी स्वरों के आधार पर होता था।

(४) ऐसा आभास भी प्राप्त होता है कि कम से कम पिछली पाँच शताब्दी तक पूरा संगीत केवल षड्ज ग्राम पर परिवेष्टित रहा ।

(५) संगीत को एक ही ग्राम (षड्ज ग्राम) पर परिवेष्टित करने के परिणामस्वरूप प्राचीन सांगीतिक सप्तक में इतने महत्वपूर्ण परिवर्तनों का श्रीगणेश हुआ कि जातियों से रागों को प्राप्त करने की पद्धति का (जिसका प्रतिपादन पं० शार्ंगदेव और अन्य ग्रन्थकारों ने किया) त्याग कर देना पड़ा । इस परित्याग से कंठ संगीत को वाद्य-संगीत के आधिपत्य से मुक्त करने के क्षेत्र में अन्ततोगत्वा बड़ा अभीष्ट फल प्राप्त हुआ ।

(६) उत्तर और दक्षिण के पण्डित अब तक अपने से भिन्न प्रदेशों में जाकर वहाँ की राग पद्धति का अध्ययन करते रहे हैं ।

(७) देश में मुसलमानों के आगमन के साथ ही उत्तरी भारत के संगीत का प्राचीन संस्कृत शास्त्रों से सम्बन्ध टूटता गया, उसमें व्यवस्थित रूप से विदेशी तत्वों का संकलन होता गया ।

(८) ऐसा प्रतीत होता है कि बीच-बीच में लम्बी अवधियों के बाद प्रचलित अभ्यास के आधार पर संगीत को एक बुद्धि गम्य एवं सहज साध्य पद्धति पर प्रतिष्ठित करने के लिए रागों के संकलन पुनर्व्यवस्था एवं आवश्यक पुष्टि की चेष्टा की गई ।

(९) दक्षिणी पंडितों ने उस समय के शासक राजाओं एवं राजकुमारों की अनुमति लेकर ऐसे व्यवस्था कार्यों में भाग लिया था ।

(१०) पिछली शताब्दी के आरम्भ में इस दिशा में अन्तिम बार बहुत बड़ा प्रयत्न हुआ । गत १०० वर्षों में ऐसा मालूम होता है कि वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत पर कोई व्यवस्थित संस्कृत ग्रन्थ लिखने की कोशिश नहीं की गई । हिन्दुस्तानी संगीत के वर्तमान विद्यार्थियों के सामने निम्न प्रामाणिक संस्कृत ग्रन्थ हैं :—(१) लोचन कवि कृत "राग तरङ्गिणी", (२) पुण्डरीक विट्ठल कृत "सद्राग चन्द्रोदय", (३) पुण्डरीक विट्ठल कृत "राग मंजरी", (४) पुण्डरीक विट्ठल कृत "राग माला", (५) पुण्डरीक विट्ठल कृत "नर्तन निर्णय", (६) पं० भावभट्ट कृत "अनूप रत्नाकर", (७) पं० भावभट्ट कृत "अनूप विलास", (८) पं० भावभट्ट कृत "अनूपांकुश", (९) हृदयनरायन देव कृत "हृदय प्रकाश", (१०) मुहम्मद रजा कृत "नगमाते आसफी", (११) महाराजा प्रतापसिंह कृत "संगीत सार", (१२) कृष्णानन्द व्यास कृत "संगीत कल्पद्रुम" (शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे के आधार पर) ।

अब हम आपके सामने पं० भातखन्डेजी के विचार वर्तमान संगीत पर प्रस्तुत करते हैं, जोकि इतिहास की दृष्टि से बड़े ही महत्वपूर्ण हैं, वे इस प्रकार हैं—"हम देखते हैं कि उत्तर भारत का वर्तमान आदर्श उच्च संगीत वही है, जिसका प्रादुर्भाव

और प्रचलन पेशेवर मुसलमान कलाकारों द्वारा पिछली पांच शताब्दियों में हुआ। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जिनमें से केवल कुछ ही आज उपलब्ध हैं, प्रामाणिक साक्ष्यों के रूप में अब देखे नहीं जाते, क्योंकि कई अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों में वर्तमान क्रियात्मक संगीत का मार्ग बदल चुका है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों के वर्तमान अभ्यास के लिये अनुपयोगी सिद्ध हो जाने के कारण हम स्वभावतः अपने अपढ़ अज्ञान और संकुचित हृदय व्यवसायी कलाकारों की दया पर अवलम्बित रह गये।

हमारे वर्तमान विद्वान इस असन्तोष जनक वस्तुस्थिति की हानियों से परिचित हैं, पर उचित सहायता और सुविधा के अभाव के कारण इस पर अपना अधिकार करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं। हमारे हिन्दुस्तानी संगीत का पुर्ननिर्माण कर उसे एक सुन्दर वैज्ञानिक रूप देने के लिये उत्कृष्ट सामग्री का अभाव नहीं है। उदाहरणार्थ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के निम्नलिखित साधारण तथ्यों के आधार पर किसी भी बुद्धिमान निरीक्षक के लिये एक सुन्दर संगीत पद्धति के उत्कृष्ट शास्त्रीय शिल्यान्यास की अवश्य सुविधा होगी :—

(१) पिछले तीन-चार सौ वर्षों में विभिन्न ग्रन्थ, संगीत को सप्तक के बारह स्वरों के आधार पर व्यवस्थित करने के लिये ही लिखे गये।

(२) क्या प्राचीन, क्या नवीन हमारे सभी संगीत ग्रन्थकर्त्ताओं ने पहले जनक मेल या थाट को लेकर उसके अन्तर्गत रागों के वर्गीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

(३) रागों को औड़व-षाड़व और सम्पूर्ण तीन मुख्य वर्गों में विभाजित करने में सभी पूर्णतः सहमत हैं।

(४) यह एक साधारण नियम है कि राग में कम-से-कम सप्तक के पाँच स्वर होने चाहिए।

(५) किसी भी राग में "म" और "प" एक साथ वर्ज्य नहीं हो सकते।

(६) साधारणतः किसी राग में एक ही स्वर के तीव्र और कोमल दोनों रूप (अत्यन्त अपवादों को छोड़ कर) एक साथ नहीं लगाये जा सकते।

इनसे अधिक तथ्यों की गणना आवश्यक नहीं है। हमारे सौभाग्य से दक्षिण संगीत पद्धति वाले भी लगभग इन्हीं महत्वपूर्ण तथ्यों को मानते हैं, इन कारणों से हमारी पद्धति के लिए एक सम्पूर्ण नवीन शास्त्रीय आधार के खोज की आवश्यकता नहीं रह जाती। हम उत्तर पद्धति के किसी अंश की क्षति किए बिना ही दक्षिण पद्धति के उन मूल सिद्धान्तों को ग्रहण कर सकते हैं, जो हमें उचित जान पड़े, और इस प्रकार हमारे संगीत प्रेमियों के लिए एक सुन्दर भवन का निर्माण कार्य हो

सकता है। दक्षिण ग्रन्कार पं० व्यंकटमखी के मूल्यवान ग्रन्थ का अपूर्व आदर्श हमारे सामने है। मैंने पहले भी कहा है कि दक्षिणी ग्रन्थकारों के आधारित बारह स्वरों से हमारे स्वरों का साम्य है। उनके थाट और राग की रचना शैली भी हमारी शैली के अनुरूप है, इसलिए यदि हम व्यंकटमखी के गणित के अनुसार बतलाए हुए ७२ मेल कर्त्ताओं को उनकी उत्पत्ति पर दिए गए कारणों सहित स्वीकार करले तो कोई हानि न होगी—हम ७२ थाटों में से केवल उतने ही चुन लेंगे, जिनमें हमारे आज के गाये जाने वाले सब रागों का वर्गीकरण सम्भव हो, और उस आधार पर हम सम्पूर्ण पद्धति का विस्तार करेंगे। इस प्रकार आप देख रहे हैं कि हमारे वर्तमान संगीत को पक्की नींव पर प्रतिष्ठित करना, ताकि उसका अध्ययन बिल्कुल सरल हो जाए, पूर्णतया सम्भव है। साथ ही इन सभी विशेषताओं को, जिनके आधार पर दक्षिण पद्धति से हमारा पृथकत्व है, हम कायम रख सकते हैं।"

वास्तव में भातखन्डेजी का सुझाव बड़ा ही महत्वपूर्ण है आज हमें अपने संगीत को राष्ट्रीय संगीत बनाना है, अतएव जो कुछ साम्य तथ्य हों उनका तो सर्व-प्रथम एकीकरण होजाना चाहिए, हम कहाँ तक परस्पर मिल सकते हैं, इसको समझ कर खुले दिल से मिलना चाहिए। ताकि हमारे दोनों संगीत पद्धतियों में अधिक से अधिक साम्यता स्थापित हो सके, जिसकी स्वतन्त्र भारत में बड़ी आवश्यकता है। हमें ऐतिहासिक तथ्यों का महत्व समझना चाहिए। आज राष्ट्र की सबसे बड़ी माँग है कि कला में एकरूपता स्थापित करना।

इधर कुछ वर्षों में संगीत विषयक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनके कुछ के नाम यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनको पढ़कर आधुनिक संगीत तथा प्राचीन संगीत का विशद ज्ञान प्राप्त होगा।

संगीत कौमदी भाग १—३ लेखक विक्रमादित्यसिंह निगम लखनऊ, (२) संगीत शास्त्र दर्शन भाग १ गांधर्व महाविद्यालय मंडल प्रयाग, (३) संगीत शास्त्र भाग २, ३, ४ मैरिस कालिज लखनऊ, (४) राग विज्ञान भाग १—५, लेखक प्रो० बी० एन पटवर्द्धन पूना, (५) व्यासकृति भाग १—४ लेखक प्रो० शंकर गणेश व्यास, (६) पूना के फीरोज फ्रामजी द्वारा लिखित "सीरीज" जिसमें अनेक पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अंग्रेजी पुस्तकें हैं (१) थ्यौरी आफ इन्डियन म्यूजिक, लेखक विशन स्वरूप, (२) "हिन्दुस्तानी म्यूजिक" जी० एन० रानाडे, (३) दी ओरीजिन आफ राग "श्रीपद वंद्योपाध्याय, (४) म्यूजिक आफ इन्डिया एच० ए० पोपले, (५) म्यूजिक आफ हिन्दुस्तान फाक्सस्टै गवेज, (६) इन्डियन म्यूजिक क्लेमेंटस।

भारतीय नृत्यों की ऐतिहासिक परम्परा पर सिंहावलोकन

भारतीय नृत्यों का जन्म वैदिक युग से भी पूर्व सिन्ध घाटी की सभ्यता में हो चुका था—

भारतीय नृत्यों का जन्म वैदिक युग से भी पूर्व सिंध घाटी की सभ्यता में हो चुका था, ऐसा अब ऐतिहासिक रूप से प्रामाणित हो चुका है, क्योंकि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में ईसा से ५०००, ६००० वर्ष पूर्व की नृत्य करती हुई एक नारी मूर्ति पाई गई है। उस मूर्ति को देखने से पता चलता है कि उस वक्त भी कलाकारों को कला की आत्मिक सौन्दर्य तथा आन्तरिक पृष्ठ को मुद्राओं द्वारा उभारने का अपूर्व ज्ञान प्राप्त था। उस नृत्य की मुद्रा से कलाकार की गहराई तथा उसकी भावपृष्ठ समृद्धिशाली आभास होती है, उस भाव मुद्रा में हमें द्रविणों की आध्यात्मिक शक्ति का अद्वितीय सौन्दर्य भी मिलता है, और मिलती है उनकी नृत्य कला के प्रति अटूट साधना। वास्तव में वैदिक युग से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी द्रविण जाति कला और संस्कृति में विश्व में सब से आगे थे। उनकी जिन्दगी में कला और संस्कृति तथा साहित्य का जमाल हमें देखने को मिलता है। उनमें आध्यात्मिक सौन्दर्य, धार्मिक वैभव तथा सामाजिक ऐश्वर्य पूर्ण रूप से रहा, इस तथ्य का प्रगटीकरण उनकी कलाकृतियाँ, जो कि अब पाई गई हैं सजीव प्रमाण प्रस्तुत कर रही हैं। जो नृत्य की मूर्ति मिली है, उसकी साधना-मुद्रा का अवलोकन करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि उस जमाने में नृत्य को कितनी गहरी मान्यता समाज में दी जाती थी कि कलाकार को अवश्य ही अपने जीवन का अधिक से अधिक समय साधना में खर्च करना पड़ता होगा। कितनी साधनामयी वह नृत्य मुद्रा है, उस साधना पर पहुँचने के लिए कलाकार को अवश्य ही चौदह-पन्द्रह घन्टे साधना करनी पड़ी होगी तभी वे ऐसी साधनामय-मुद्रा प्रस्तुत कर पाते होंगे। द्रविण लोगों ने नृत्यों के द्वारा अपने जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का प्रगटीकरण किया है। उनके नृत्य में धार्मिक भावों की सुन्दर कल्पना एवं विकासशील विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। द्रविणों ने यह अच्छी तरह से समझ लिया था कि मानव जीवन का चरम विकास संगीत और नृत्य के द्वारा हो सकता है। इसलिए उन्होंने संगीत और धार्मिक पर्वों पर नृत्य

को ईश्वर आराधना का सम्बल बनाया। वे अपने धार्मिक पर्वो पर नृत्यों का प्रदर्शन किया करते थे, ऐसा भी उल्लेख हमें इतिहास से प्राप्त होता है। बाद में जब आर्य जाति से उनका मुकाबिला हुआ तो उन्होंने कूटनीतिज्ञता से उनको हरा दिया, लेकिन फिर भी आर्य लोग द्रविणों की उच्चकोटि की सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हुए थे, और उन्होंने बाद में उनकी कला, संगीत तथा संस्कृति का बहुत कुछ अंश अपना लिया था। आर्य संस्कृति में जो हमें संगीत और नृत्य का गहरा पुट मिलता है, उसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने इसके अवश्य ही बुनियादी सिद्धान्त द्रविणों से लिये थे।

भारतीय लोगों को ईसा के पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व ही संगीत और नृत्य का ज्ञान था। द्रविणों का नृत्य बड़ा ही उच्चकोटि का था—

सुप्रसिद्ध इतिहासकार फेडिस लिखता है—"भारतीय लोगों को ईसा के पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व ही संगीत और नृत्य का ज्ञान था। द्रविणों का नृत्य बड़ा ही उच्चकोटि का था, उसमें हमें जीवन की एकरूपता, जीवन की व्यापकता, तथा आत्म-सौन्दर्य का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। द्रविणों की नारियाँ नृत्य विशारदा हुआ करती थीं। द्रविण नारी का प्रधान गुण नृत्य में निपुणता माना जाता था। इसीलिए द्रविण नारी का स्वास्थ्य भी बड़ा सुन्दर होता था। उन्होंने नृत्य के वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समझ लिया था, तभी तो हमें उस काल के नृत्य में मानव जीवन की असीम उत्कृष्टता प्राप्त होती है, भावों की स्वर्णिम दुनिया मिलती है, और मिलता है स्वर्णिम कल्पनाओं का रंगीन उड़ान। वास्तव में उनके नृत्य का विकास आश्चर्यजनक था। आज का विश्व अवश्य ही द्रविण सभ्यता, संस्कृति से प्रभावित हुआ है, और संगीत तथा नृत्य के मौलिक तथ्य प्रायः द्रविण-संस्कृति से ही लिए गए हैं। आज के द्रविणों में भी हमें उनके प्राचीनतम रूप की उत्कृष्ट झाँकी मिलती है।"

इससे मालूम पड़ता है कि नृत्य अपनी तरुणावस्था में वैदिक युग के पूर्व ही पहुँच चुका था।

वैदिक युग में भारतीय नृत्यों ने एक नवीन अंगड़ाई ली—

वैदिक युग में भारतीय नृत्यों ने एक नवीन अंगड़ाई ली, उसमें नवीन जज़बात, नवीन भावनाएँ और नवीन रंग भरा जाने लगा। हाँलाकि आर्यों ने नृत्य को अनेक प्रशस्त प्रवृत्तियाँ द्रविणों से ही प्राप्त की, किन्तु फिर भी उन्होंने उन प्रवृत्तियों को अपने चिन्तन एवं मनन के साँचे में ढाल कर एक अभिनव रूप दिया। भारतीय जीवन

में शायद वेदों से अधिक पूज्य एवं सर्वमान्य और कुछ नहीं। उनकी परम सिद्ध एवं प्रतिष्ठा यही है कि मानव ज्ञान की समग्रता विविध वेदांगों के रूप में उन्हीं में सन्निहित है। यह मान्यता केवल अनुमान अथवा कल्पना के द्वारा आरोपित आधारों पर नहीं है, वरन वेदों के एक एक शब्द और संकेत के गम्भीर मनन और चिंतन का फल है कि वेदाध्यायियों को समग्र ज्ञान वेदों में ही दीख पड़ने लगा। वेदों की परम पवित्रता का का यही पुष्ट आधार है। इसी प्रकार भारतीय नृत्य-साहित्य की आदि परम्परा से लेकर उसके परम पुष्ट विकसित काल तक का चिन्तन और मनन यही सिद्ध करता है कि भारतीय नृत्यों को मनोरंजन के छिछले स्तर तक ही नहीं रखा, वरन वे उसे अपने जीवन में इतनी दूर तक उतार ले गए कि बड़े से बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व भी नृत्यों के माध्यम से हल किए जाने लगे, और यह कहना चाहिए कि वैदिक युग में किसी आचरण की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की परख का माध्यम ही नृत्य बन गए थे। उस समय जीवन सरिता की गति एवं उसके मोड़ नृत्य नाट्य से भी बहुत दूर तक शासित होते थे। वैदिक युग में नत्यों की रूपरेखा मानव जीवन के पावन एवं उच्च सिद्धान्तों पर आधारित थी। समाज में नृत्यों की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। सार्वजनिक रूप में नृयों का प्रचलन हो चुका था। आम जनता नृत्यों के उत्सवों में विशेष रूप से भाग लेती थी, हमें उनके संघर्षमय जीवन की पुरलुत्फ कहानी भी उन नृत्यों की पृष्ठ में मिलती है। आर्यों ने नृत्यों को धार्मिक रूप ही नहीं दिया, बल्कि उनको दार्शनिक, आध्यात्मिक, सौन्दर्यात्मक, कथात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक एवं मनोवैज्ञानात्मक रूप भी दिया, और उनमें एक नवीन वैज्ञानिक एवं सामाजिक चेतना भी डाली।

आर्यों ने नृत्य की पृष्ठ को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए कामोत्तेजक भावों का सहारा नहीं लिया—

आर्यो ने नृत्य की पृष्ठ को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए कामोत्तेजक भावों का सहारा नहीं लिया। नृत्य की पृष्ठ को उन्होंने जीवन के साधनामय सिद्धातों एवं आत्मा को विकासपूर्ण करने वाले उपकरणों से अलंकृत किया। उन्होंने नृत्य को योग क्रिया का सरल एवं अलौकिक प्रतिकृति बना दिया। वे नृत्यों को अपनी मानसिक अवस्था को स्वस्थ बनाने में काम में लाते थे। आर्यों का ऐसा विश्वास था कि नृत्य हमारी मानसिक गन्दगी को, मानसिक अन्धकार को निकालने का शक्तिशाली माध्यम है। इसीलिए वे नृत्य के द्वारा अपने मानसिक स्तर को भी ऊँचा उठाया करते थे। उस समय में कई एक ऐसे नत्य प्रचलित थे जोकि मन की शुद्धता करने के प्रयोग में लाए जाते थे। सुप्रसिद्ध विद्वान हक्सेली टोस्टकी ने अपनी पुस्तक "The out line of World History" में लिखा है—"वैदिक युग में भारतीय नृत्यों का रूप हमें बड़ा

ही उच्चतम मिलता है। पुरुष और नारी सभी नृत्य किया करते थे। आर्यों ने नृत्यों के प्रयोग के बारे में बड़े ही सुन्दर नियम बनाये थे। वे नृत्यों के द्वारा आत्मा की शुद्धि भी किया करते थे, वे नृत्यों के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाते थे, और वे इनका प्रयोग मन को एकाग्र बनाने में करते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि चंचल मन को नृत्य के द्वारा एकाग्र किया जा सकता है। वास्तव में वे नृत्य को मानव जीवन में इतनी दूर तक ले गए थे कि जहाँ तक हम आज भी इस प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक युग में नहीं पहुँच पाए हैं। उनकी सूझ बूझ बड़ी दूरगामी एवं श्रेष्ठ थी। उन्होंने नृत्य की आत्मा को विकासशील बनाया। तभी नृत्य का आत्मिक रूप चमक सका।"

वैदिक युग में नृत्य मानव जीवन पर छाया हुआ था। जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं था जहाँ नृत्य ने प्रवेश न किया हो। इस युग में "नाट्य नृत्य', "गीत नृत्य", "रूप नृत्य", "भाव नृत्य", "विकास नृत्य" का जन्म हो चुका था। नर्त्तकियों का बड़ा ही उच्चस्थान था। उनका राजा लोग सम्मान किया करते थे। वैदिक युग के नृत्यों में हमें मानव जीवन की सच्चाई और ईमानदारी मिलती है। वैदिक युग के नृत्यों में कलाकारों का संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं होता था। उन्होंने अपनी कला को संकीर्णता में आबद्ध नहीं किया था, क्योंकि वे समझते थे कि कला के लिए संकीर्णता, चाहे वह किसी भी तरह की हो विष का कार्य करती है। इसीलिए वे सदैव सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठे रहे।

आर्यों ने जितना महत्व पवित्रता को दिया है, उतना और किसी उपकरण के लिए नहीं दिया—

आर्यों ने जितना महत्व पवित्रता को दिया है उतना और किसी उपकरण के लिए नहीं दिया। वे पवित्रता के परे नृत्य और कला का कोई मूल्य ही नहीं समझते थे। पवित्रता को ही वे सौन्दर्य मानते थे, और ऐसे सौन्दर्य को ही नृत्यों की जननी मानते थे। कुरूपता के गर्भ से कोई भी कला आविर्भूत नहीं होती, ऐसा उनका अमर विश्वास था। अतएव वे किसी भी प्रकार की कुरूपता को नृत्य के इर्द-गिर्द नहीं आने देते थे। वैदिक युग के नृत्य का वातावरण जितना पवित्र और सुन्दर रहा, उतना फिर आगे चलकर न रह सका। आर्यों के सम्पूर्ण विधि विधान संगीत के माध्यम से हुआ करते थे। आर्यों ने संगीत को दिव्य लोक पहुँचने का सुन्दर पाथेय माना था। और संगीत में भी नृत्यों पर विशेष जोर दिया गया। आर्य नारी भी नारत्व के विकास के लिए नृत्य का ही प्रश्रय लेती थी। वैदिक युग में अनेक सुन्दर नारियाँ नृत्य विशारद होती थीं। नत्य जानना नारियों का एक विशेष गुण माना गया।

अगर हम नृत्य पर धार्मिक दृष्टिकोण से विचार करे, तो भी हम नृत्य का निम्नकोटि का पहलू न पाएगे। नृत्यकला इस लोक की ही नहीं देवलोक की भी एक प्रधान कला रही है। पुराणों से पता चलता है कि देबराज इन्द्र तथा अन्य देवगण केवल मनोरंजन के लिए ही इसका उपयोग नहीं करते थे, अपितु वे इसका प्रयोग जीवन को सौन्दर्यात्मक बनाने में भी करते थे। इन्द्र नृत्य कला में विशेष रूप से पारंगत थे। देवादिदेव भगवान शंकर भी नृत्यकला के महान आचार्य थे। उनका तान्डव नृत्य आज भी प्रसिद्ध है। भगवान कृष्ण भी नृत्य कला में विशेष पारंगत थे। वंशी वादन में तो उनकी बराबरी कोई कर ही नहीं सकता था। उन्होंने नृत्य को नवीन मार्ग पर अग्रसर कराया। महाभारत में एक स्थान पर लिखा है कि भीष्म पितामह ने युधिष्ठर को नृत्य कला सीखने का आदेश दिया था, और अर्जुन तो तत्कालीन भारत में नृत्य कला के विशेषज्ञ माने ही जाते थे। अज्ञातवास के समय विराट नरेश के अन्तःपुर में उन्होंने नृत्यकला का प्रशिक्षण दिया था। बलरामजी रेवती के साथ तथा अर्जुन सुभद्रा के साथ नृत्य किया करते थे। सावित्री सत्यवान के मनोमुग्धकारी नृत्य को भी सभी जानते हैं। इससे पता चलता है कि महाभारतकाल में नृत्य का विशेष प्रचलन रहा।

महाभारत काल में नृत्यों की नैतिक पृष्ठभूमि लगभग वही रही जोकि वैदिक युग के समय थी। नृत्यों की पवित्रता में कोई ऐसी डगमगाहट न आने पाई थी कि जिससे उसके आन्तरिक सौन्दर्य की ज्योति धूमिल पड़ती हो। लेकिन फिर भी इस काल में नृत्यों के क्षेत्र में अनेक सुधार हुए। कुछ सुधार ऐसे थे जो सामाजिक थे, कुछ आध्यात्मिक थे और कुछ धार्मिक भी थे, किन्तु उनके मौलिक आधारों में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस काल में नृत्यों को प्रेम की लड़ी में गूँथा गया। लेकिन वह प्रेम शारीरिक गन्दगी से ऊपर होता था। इसीलिए नृत्य की पवित्रता पर आँच न आने पाई। प्रेम को महाभारत काल में संकीर्ण दृष्टि में नहीं देखा गया, उसका विशद एवं दिव्य रूप ही समाज के सामने आया, और वही दिव्य रूप नृत्य की पृष्ठ को सुदृढ़ करने का सम्बल बना। विशाल प्रेम की हमें महाभारत काल में एक सुन्दर घटना मिलती है, वह यह कि जब अर्जुन द्रौपदी को घर लाए तो वह उनकी माँ की भूल से पांचों भाइयों की पत्नी बनी, लेकिन अर्जुन ने तनिक भी इसका विरोध नहीं किया, और न इसका विरोध द्रौपदी ने ही किया। नारी जीवन की यह कितनी महानतम घटना है। द्रौपदी ने सहर्ष पाँचों पान्डवों को अपना पति स्वीकार किया, और पाँचों पान्डवों ने द्रौपदी को अपनी पत्नी स्वीकार की। यह है प्रेम की विशालता का अपूर्व परिचय। विश्व के इतिहास में ऐसी पवित्रतम मिसाल नहीं मिल सकती। यही पवित्रतम प्रेम महाभारत-कालीन नृत्यों की सुदृढ़ पृष्ठ बनी। परन्तु महाभारत के

उपरान्त ईश्वी सन् की तीसरी शताब्दी तक आते-आते बीच में कुछ समय के लिए नृत्यों में डगमगाहट तथा लड़खड़ाहट आने लगी थी। इस समय में नृत्यों की पवित्रता पर धूमिलता का घना आवरण पड़ गया था, उसके निर्माण का दृष्टिकोण भी सिकुड़ गया था, और उसके निर्माण तथा विकास में भी वह धारावाहिक गति, वह स्फूर्ति पूर्ण वातावरण तथा वह आत्मिक सौन्दर्य की जवानी के रस भरे पुष्पों की रंगीन बहार भी मुरझाने लगी थी।

नृत्यों के निर्माण की फैलाव-पृष्ठ दिन व दिन संकीर्ण होती जा रही थी—

नृत्यों के निर्माण की फैलाव पृष्ठ दिन व दिन संकीर्ण हीती जा रही थी, प्रेम की दिव्यता में वह पहले जैसी ताजगी, तथा पहले जैसी विशालता न रह गई थी। अनैतिकता का कुहरा नृत्यों की परिध में सिमट गया था। समाज के अन्दर नर्तकियों का सम्मान वैदिक-युग के समान पविश्रतम तथा श्रद्धा का न रह गया था। उस श्रद्धा में बहुत बड़ी कमी आने लगी थी। मनोरंजन का दृष्टिकोण नृत्य की ऊपरी सतह पर आ चुका था, और उसकी रुहानी शक्ति, जोकि उसकी पृष्ठ को मजबूत बनाने वाली थी तथा जो उसमें प्राणवानता का वायुमन्डल निर्मित किया करती थी, और जोकि उसकी अन्तर प्रवृत्तियों को सजग रखती थी, शिथिल पड़ चुकी थी। नृत्यों की सार्वभौमिक एकसूत्रता का सुन्दरतम भाव एक तरह से भुला दिया गया था। नृत्य को कई श्रेणियों में विभिक्त कर दिया था, जिससे उसकी अखन्ड ज्योति में गतिहीनता स्पष्ट झलकने लगी थी। नृत्यों की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि भी कमजोर होती जा रही थी, इसका मुख्य कारण यह था कि कला जीवन के आध्यात्मिक वातावरण से हट गई थी, दोनों के बीच में पृथकता आ गई थी। जिससे नृत्यों को ऊपर उठाने वाली शक्ति का ह्रास हो रहा था। नृत्यों का एक ही पहलू यानी जीवन को सुखमय बनाने का रह गया था। सुख की परिभाषा में विलासमय उपकरणों की ही प्रधानता दी गई थी, इसलिए नृत्यों के इर्द-गिर्द विलासी वातावरण आच्छादित होता जा रहा था।

ईस्वीसन की तीसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में नृत्यों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ—

लेकिन ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में नृत्यों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। यह समय नाग युग का था, इसी नाग युग में संगीत के महान स्रष्टा श्री भरत मुनि ने "नाट्यशास्त्र" का निर्माण किया, जोकि आज भी उपलब्ध है। बीच के समय में नृत्य जो अपनी आत्मिक सुषमा तथा अपनी रुहानी ताकत खो बैठे, उसको उन्होंने पुनः प्राप्त कर लिया। नाग जाति नृत्यों

की बड़ी प्रेमी थी। नाग रमणियाँ नृत्य विशारदा हुआ करती थीं, ठीक वैदिक युग की आर्य नारियों के समान। इस युग में नृत्य और संगीत के बड़े बड़े कलाकार पैदा हुए, जिन्होंने नृत्यों की शिथिलता को दूर किया और उनकी खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। इन्होंने नृत्य की अन्तर शुद्धि की। इन्होंने नृत्य और कला को अनैतिकता की सतह से बहुत ऊपर रक्खा, और देश के अन्दर अनेक रंग शालाएँ स्थापित की गईं, जहाँ इन नृत्यों का प्रदर्शन किया जाता था। "भरत-नाट्य नृत्य" जिसकी पृष्ठ पूर्णरूपेण आध्यात्मिक थी, का निर्माण हुआ। आम जनता ने इस नृत्य को मुक्त हृदय से अपनाया, और भी अनेक प्रकार के नृत्य निर्मित हुए, लेकिन नृत्य के निर्माण-दृष्टि में आध्यात्मिक तथा दार्शनिक और धार्मिक भावनाओं को ही प्रधानता दी जाती थी। कथात्मक तथा वर्णनात्मक नृत्यों का भी निर्माण हुआ "नृत्य नाट्य" आदि भी निर्मित हुए, और ऐसे नृत्य अधिक बने जिनमें मुद्राओं की बाहुल्यता रहती थी। मुद्राओं के द्वारा भावों का प्रदर्शन करना श्रेष्ठ नृत्य माना जाता था। जीवन के गम्भीर से गम्भीर भावों को भी इगतों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते थे। और ऐसे भी नृत्यों का जन्म हुआ जिनमें अभिनय कला को प्रमुखता दी जाती थी। इस युग में अभिनय कला भी प्रौढ़ हो चली थी। देश के अन्दर अनेक सुन्दर अभिनेत्रियाँ तथा अभिनेता मौजूद थे। लेकिन अधिकतर नृत्य करने वाले ही अभिनय कुशल हुआ करते थे। नृत्यों की 'रुहानी-जवानी, जो एक प्रकार से नष्ट-सी होगई थी, वह फिर अपनी पूर्ण तरुणता पर आगई। अनेक नाग कुमारियाँ अपने नृत्य-सौष्ठव का प्रदर्शन सार्वजनिक रूप से किया करती थीं।

नाग राजाओं ने नृत्यों के प्रचार में बड़ा योग दिया—

नाग राजाओं ने नृत्यों के प्रचार में बड़ा योग दिया। कुछ विद्वान नाट्य शास्त्र को पंचम वेद भी मानते हैं। नाट्य शास्त्र संसार को विषय वासनाओं में लीन करने या केवल मनोरंजन के लिए नहीं है, वरन यह चारों पदार्थों, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्रति का साधन माना गया है। माना कि वर्तमान काल में नृत्य कला का उद्देश्य केवल इन्द्रयों की तृप्ति तथा मनोरंजन ही है, लेकिन साहित्य के समस्त रसों के प्रकाशन की शक्ति भी नृत्य में सम्यक् रूप से विद्यमान है, और तो और रसों तथा उनके सूक्ष्म भेदों तक के प्रकाशन की सामर्थ्य नृत्य के भिन्न-भिन्न रूपों द्वारा तथा गतियों द्वारा भली भाँति समाविष्ट इस युग में की गई। इस युग में नृत्य को जीवन की एक आनन्द प्रदायिनी कला ही नहीं माना गया, बल्कि इसके साथ साथ उसको मानवीय आदर्श अनुभव का एक प्रकाशमान सुदृढ़ सम्बल भी माना गया। वास्तव में भारतीय संगीत में मानवीय विकार उत्तेजना या कुत्सित

भावनाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया। इस युग में वैदिक काल के इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से मान लिया गया था कि भारतीय नृत्य कला का सम्बन्ध केवल मानवीय शरीर तथा उसके विचार और विकारों से ही नहीं, वरन आन्तरिक, आध्यात्मिकता, आत्मा और परमात्मा से है। ठीक उसी तरह, जिस तरह मनुष्य के ध्यान मग्न होने के लिए आसनों तथा मुद्राओं का विधान किया गया है। आसनों तथा मुद्राओं के सहारे मनुष्य ध्यान मग्न होकर अन्तरात्मा तक में लीन हो जाता है। नृत्य कला में भी वही विशेषता मान ली गई थी। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में जिन नृत्यों की मुद्राओं का वर्णन है, उनमें स्वर्गीय नृत्यकारों की दैवी क्रियाओं का और उन्हीं क्रियाओं का मानवी विचारों और ध्येयों के साथ उपयोग का सम्मिलन है। तीसरी शताब्दी में नृत्य की दुनिया में अनैतिकता का वातावरण बिल्कुल नहीं रहा था। नर्त्तकी को दैवी शक्ति के रूप में पूजते थे। उसकी अलौकिक बुद्धि की प्रशंसा की जाती थी। इस युग में पुरुष और नारियाँ दोनों ही नाचते और गाते थे।

चौथी शताब्दी गुप्तकालीन युग में नृत्य अपने यौवन की ताजगी, स्फूर्तिता और सुरभि को खूब फैला रहा था—

चौथी शताब्दी गुप्त कालीन युग में नृत्य अपने यौवन की ताजगी, स्फूर्तिता और सुरभि को खूब फैला रहा था। इस युग में नृत्य के ऊपर खूब चिन्तन और मनन किया गया, उसके एक एक शिल्पज्ञ रूप पर विचार करके सुधारा गया। नारी की सुषमा का नृत्य एक देदीप्यमान प्रतीक मान लिया गया। इस युग की जो मूर्तियाँ तथा चित्र पाए जाते हैं, उनसे पता लगता है कि इस युग के कलाकारों ने नृत्य को साधनामय बना दिया था, और वे नृत्य की जिन्दगी में बहुत गहरे उतर चुके थे। नृत्य के एक-एक भाव को इतने सुन्दर, सौष्ठव रूप से अभिव्यक्ति किया गया है कि वह सब देखते ही बनता है। सुप्रसिद्ध कलाकार वर्नल टाइड ने इस युग के नृत्यों के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "यूनीवरसँल डान्स" में लिखा है—"भारतीय नृत्य का जमाल, उसका अद्वितीय यौवन हमें गुप्त कालीन युग में मिलता है। नृत्य का यह नयनाभिराम यौवन विश्व के नृत्यों में देखने को नहीं मिलता। नारियों की एक-एक कोमल भावनाओं को नृत्य के द्वारा इतने आत्मिक ढंग से, इतने सौन्दर्यात्मिक रूप से प्रदर्शित किया गया है, कि हम उसकी गहराइयों में अपने को भूल जाते हैं। वास्तव में गुप्त कालीन युग के नृत्य विश्व में अपनी उच्चतम हस्ती रखते हैं। हमें इन नृत्यों को देखकर एक ऐसी अलौकिक, आत्मिक शान्ति मिलती है जोकि अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। भारतीयों का नृत्य का यह विकास वास्तव में विश्व के लिए आश्चर्यजनक है।"

इस युग में नृत्य के सभी पहलुओं पर विचार किया गया। समाज में संगीतज्ञ और कलाकारों की स्थिति बड़ी सुदृढ़ एवं सम्मान पूर्ण थी। राजा लोग उनका सम्मान करते थे और उनको सुन्दर उपाधियों से विभूषित किया जाता था। नृत्य राज दरबार की शोभा समझे जाते थे, लेकिन इसके साथ साथ आम जनता के जीवन में भी नृत्यों का सम्मानीय स्थान था। शास्त्रीय नृत्यों के साथ-साथ लोक नृत्यों का भी प्रचलन खूब रहा।

नाटकों के द्वारा नृत्यों का विकास इस युग में हुआ, यह इस युग की खासियत रही। नाटक नृत्य प्रधान हुआ करते थे। अभिनय नृत्य का अंग मान लिया गया था। देश के अन्दर अनेक नवीन रंगशालाएँ स्थापित की गई, जहाँ नाटकों का प्रदर्शन किया जाता था और नृत्यों का भी। भाव नृत्य, तथा मुद्रा प्रधान नृत्यों का इस युग में बोलबाला रहा। नृत्य की आध्यात्मिक पृष्ठ को खूब ऊँचा बनाया गया। इस युग की नारियाँ विशेष रूप से नृत्यों में दिलचस्पी लेती थीं। और वे ही नारियाँ नाटकों में भी कार्य किया करती थीं। सुन्दर नृत्य प्रदर्शन करने वालों को राज्य की ओर से तथा सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से पुरस्कार भी दिये जाते थे, और नवोदित कलाकारों को भी नृत्य के क्षेत्र में प्रोत्साहन दिया जाता था।

मानव जीवन की गहराइयाँ हमें अजन्ता की गुफाओं के भित्ति-चित्रों में अंकित मिलती हैं—

मानव जीवन की गम्भीरता, मानव जीवन की विराटता, और मानव जीवन की असीम सुन्दरता तथा मानव जीवन की उत्कृष्टता एवं मानव जीवन की एकाग्रता और मानव जीवन की कला के प्रति एकरसता यदि आपको देखना हो तो आप अजन्ता की गुफाओं में बने भित्ति-चित्रों को देखिये, आपको मालूम हो जायगा कि इस युग के कलाकारों में कितनी गहरी संगीत के प्रति श्रद्धा और भक्ति थी। गुप्तकालीन कला की कुछ विशेषताएँ हैं, जिनके कारण उसने इस युग को अमर बना दिया। स्वाभाविकता, सौन्दर्यात्मकता, सरलता, भाव-स्पष्टता, आध्यात्मिकता, भाव-पवित्रता आदि ने गुप्तकालीन कलाकारों को अमर बना दिया। नृत्य की जितनी सुन्दर मुद्रायें, जितने उच्चकोटि के रूप आपको इन गुफाओं में प्राप्त होंगे, वैसे आप दुनिया में कहीं न पा सकेंगे। इस तथ्य की पुष्टि कई पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है, जिसका कि उल्लेख हम पिछले प्रकरणों में कर चुके हैं और इस प्रकरण में भी किया है। यह युग कलाकारों का युग माना जाता है। जितना परिष्कृत और उज्ज्वल रूप हमें भारतीय नृत्य का इस युग में देखने को मिलता है उतना विश्व के अन्य देशों में नहीं मिल सकेगा। यह सत्य ऐतिहासिक रूप से प्रामाणित हो चुका है।

नृत्य मुगल काल में आते-आते अपनी पर्याप्त मात्रा में काया परिवर्तन कर चुके थे—

फिर इसके बाद नृत्य मुगल काल में आते-आते अपनी पर्याप्त मात्रा में काया परिवर्तित कर चुके थे। मुसलिम संस्कृति का समावेश भी किसी न किसी रूप में उसके कलेवर में हो चुकी थी। नृत्य की वह गुप्त कालीन अथवा वैदिक युग की पवित्रतम तथा सुन्दरतम पृष्ठ एक प्रकार से लोप-सी हो चली थी। नृत्य के प्रकारों में, उसके वाह्य प्रवृत्तियों के विकास पर, और उसका अधिक से अधिक मनोरंजक बनाने में अधिक प्रयास किया गया। लेकिन फिर भी धार्मिक एवं आध्यात्मिक, जो वैदिक काल की पृष्ठ को लिए हुए थे बिल्कुल बन्द नहीं हुए थे। उन नृत्यों का भी अपना एक विशिष्ट स्थान था, लेकिन आम जनता रोमान्टिक तथा सस्ती भावुकता वाले नृत्यों को पसन्द करने लग गई थी। अनेक नृत्य अरेबियन वातावरण को लेकर भी प्रस्तुत किए जाते थे, जिनको जनता ने दिल खोलकर अपनाया। इस युग में जनता के अन्दर नृत्यों के लिए उत्साह भरा चाव पनप रहा था। कथात्मक, वर्णनात्मक और गीत-प्रधान नृत्यों का इस काल में जन्म हुआ।

लेकिन चूँकि एक ऐसा वातावरण भी इस काल में पनप रहा था, जो मानव को भक्ति की ओर निर्देश कर रहा था, और ऐसे वर्ग ने संगीत और नृत्य को ईश्वर उपासना का अपना मुख्य साधन बनाया। "कीर्तन नृत्य" भी इस युग में खूब पनपा। वास्तव में धार्मिक वातावरण ने भारतीय नृत्य को बहुत ऊपर उठाया, किन्तु उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि को उसने दबा दिया था। नृत्य के ऊपर भक्ति रस छा गया था। अनेक सन्त संगीतज्ञों ने नत्य को उज्ज्वल और पवित्र बनाने में योग दिया। पर इसके साथ ही साथ एक दूसरे प्रकार का नृत्य भी निर्मित हो रहा था, जिसमें विलासमय वातावरण की अभिव्यक्ति होती थी, और जिसका मुख्य ध्येय मानव की रंगीन वासना को तृप्ति करना था, और इस प्रकार से देश के अन्दर नृत्यों के क्षेत्र में अनेक धारायें प्रचलित हो रही थीं। कुछ ऐसे भी नृत्य बने, जिनमें सूफीमत का वातावरण था। और कुछ नृत्यों में मुगल बादशाहों की शान-शौकत का इजहार था। सब मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि नृत्यों का इस युग में विकास हुआ, लेकिन उसकी अन्तर पृष्ठ पहले से कुछ संकीर्ण हो गई थी। "कत्थक नृत्य" का भी इस युग में खूब प्रचार हुआ, कृष्ण और राधा की जीवन लीलाओं पर अनेक प्रकार के नृत्य इस युग में निर्मित हुए।

दक्षिण भारत में नृत्य का वातावरण पवित्रता तथा शास्त्रीय स्तर लिए हुए था—

दक्षिण भारत में इसके विपरीत परिस्थिति थी। वहाँ नृत्य का वातावरण पवित्रतम तथा शास्त्रीय वातावरण लिए हुए था। मुसलिम-संस्कृति का समावेश नृत्य

कला की पृष्ठभूमि में न हो पाया था। दक्षिण भारतीय कलाकार जहाँ एक ओर वैदिक संस्कृति की रक्षा किए हुए थे, वहाँ उसके साथ-साथ वे नृत्य की शिल्पज्ञता को भी उत्कृष्ट बनाए हुए थे। धार्मिक भावना का पुट नृत्यों में पूर्णरूपेण था। दक्षिण भारतीय नारियों ने सजीवता ला रक्खी थी। कीर्तन का मुख्य आधार नृत्य ही थे, और मन्दिरों में नृत्य का दौर बहुत अधिक चला करता था। मन्दिर का नृत्य बड़ा ही पवित्र, बड़ा ही दिव्य होता था। उनका वातावरण पूर्ण रूप से कलात्मक अथवा रस पूर्ण रहता था। कृष्ण और राधा के जीवन सम्बन्धी नृत्य ही अधिक प्रदर्शित किए जाते थे। मन्दिरों में देवदासी की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। देवदासी कुमारी रहती थी, उसको विवाह करने की अनुमति नहीं थी। उसका सम्पूर्ण जीवन कला के लिए अर्पण हो जाता था। देवदासियों में सुन्दर और श्रेष्ठ कलाकारिणी होती थीं, और वे बड़ी तन्मयता से नृत्य की साधना में लीन रहती थीं, लेकिन आगे चलकर देवदासियों में जीवन की वह पवित्रता स्थिर न रह सकी, धीरे-धीरे उनके नृत्य की पृष्ठ अनैतिकता पूर्ण होती जा रही थी। फिर वे कला के प्रति निष्ठावान न रह कर बाहरी आडम्बरों में लिप्त होगई। किन्तु फिर भी उत्तर भारतीय नृत्यों से उनकी नृत्य की स्थिति कहीं अधिक सुन्दर और श्रेष्ठ थी। मन्दिर-नृत्य के अतिरिक्त, सामाजिक नृत्यों में तथा अन्य प्रकार के नृत्यों में जीवन का सौष्ठव रूप मिलता था, और मिलता था आत्मिक सौन्दर्य की तरुणता। इस युग में अनेक प्रकार के शास्त्रीय नृत्य निर्मित हुए। "कथकली" नृत्य का प्रचलन भी समाज के अन्दर खूब था। आम जनता इस नृत्य को मुक्त हृदय से पसन्द करती थी। इस नृत्य में मानव जीवन की विराटता, उसकी व्यापकता और मानव जीवन की गम्भीरता का समावेश पूर्ण रूप से था। वास्तव में इस नृत्य में मानव जीवन का यथार्थ सौन्दर्य का प्रगटीकरण हुआ था।

इस नृत्य को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) आंगिक (मुद्रा प्रदर्शन), (२) सात्विक (भाव प्रदर्शन) वाचिक (शब्द प्रदर्शन) और (३) बाह्य प्रदर्शन। बाह्य प्रदर्शन का मुख्य साधन वस्त्र है, इसका विकास नृत्य की पृष्ठ को उभारने के लिए किया जाता है। वाचिक में गद्य-पद्य के दुहराने की क्रिया है। इसका सम्वन्ध गीत और साहित्य से अधिक है। किन्तु मुद्रा और भाव प्रदर्शन स्वयं कला है।

वास्तव में मानव के भाषा द्वारा भाव अभिव्यक्ति करने से पूर्व मुदा-प्रदर्शन ही उसके विचार प्रदर्शन का एकमात्र साधन था। मानव के सभ्यता और संस्कृति के भव्य मार्ग पर अग्रसर होने की प्रथम सीढ़ी मुद्रा (Gesture) ही थी। अब भी जबकि सभ्यता के भाव प्रदर्शन करने के सुन्दर साधन उपलब्ध कर लिए गए हैं,

यह कला मानव जीवन के साथ है। मानव के विचार के साथ मुद्रा-प्रदर्शन का घनिष्ट सम्बन्ध है। भौहों का बांकापन, आँख की चितवन, कपोल की अरुणिमा, गर्दन के घूमने और हाथ के हिलने से हम उन भावों को तुरन्त समझ लेते हैं, जिन्हें शब्द व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। मुद्रा-प्रदर्शन से अभिनय और नृत्य से उसी प्रकार सम्बन्ध है, जिस प्रकार भाषा से साहित्य और स्वर के चढ़ाव-उतार से संगीत का। विभिन्न मुद्राओं द्वारा अभिनय एवं नृत्य के उतने ही सुन्दर भाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जितने कि साहित्य के वर्णन से। अभिनय अपने कवित्वमय संचालन से हमारे मष्तिस्क में उसी प्रकार गुदगुदी आविर्भूत कर देता है, जिस प्रकार संगीत के ताल और लय से।

अभिनय और नृत्य में चोली दामन का साथ है। दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं कर सकते।

''कथकली'' को पूर्णत्व प्रदान करने के लिए शब्द प्रदर्शन को गौण रूप दे दिया गया है, ताकि अभिनय में मनौवैज्ञानिक और शारीरिक उपकरणों को अधिक स्पष्ट रूप से ग्रहण किया जा सके।

इस प्रकार गीत तत्व के साथ ही वाद्य की ऐसी अवस्था होगई है कि उसकी प्रधानता ही लुप्त हो गई है। ''कथकली'' को समझने के लिए उसका तत्वज्ञान आवश्यक हो गया है।

किसी भी कला को समझने के लिए कुछ न कुछ तत्वज्ञान की आवश्यकता है—

किसी भी कला को समझने के लिए कुछ न कुछ तत्वज्ञान की आवश्यकता है। भारतीय नृत्य कथकली के समझने के लिए उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझना नितान्त आवश्यक है। कला का यह तत्व भाग ऐसा है कि हाथ, हथेली और उँगलियों के संकेतों द्वारा सामान्य से सामान्य पदार्थ भी बहुत ही आकर्षक रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

मुद्रा विशारदों के कथनानुसार कर मुद्रा द्वारा प्रदर्शन नेत्र मुखाकृति एवं अन्य शारीरांगों की सहायता से इस रूप में किया जाना चाहिये कि वह अपने भावों को अच्छी तरह स्पष्ट करदे। जहाँ कर जाता हो, वहाँ आँख जाए, जहाँ आँख जाती हो, वही मस्तिष्क पहुँचे और मस्तिष्क में जो वस्तु आविर्भूत हो वह स्वाभाविक और ठीक लक्ष्य पर पहुँचती हो। यही नृत्य अभिनय की सफलता का रहस्य है। मुद्रा प्रदर्शन का विकास ईशोपासना के रूप में वैदिक युग में हुआ था। जो भी हो कथकली की मुद्रा प्रदर्शन नाट्यशात्र से ली गई है। किन्तु संस्कृत पुस्तक 'हस्त लक्षण दीपिका'

जो "कथकली" पर पहली पुस्तक समझी जाती है और शायद करेल प्रान्त में ही प्रचलित भी है, बहुत ही भ्रमात्मक है। उसमें २४ मुद्राओं के नाम वे ही हैं जो "नाट्य-शास्त्र" में पाये जाते हैं। किन्तु उनका प्रदर्शन रूप बिल्कुल ही निराला और उनके विपरीत है। कभी यह भी सन्देह होता है कि "कथकली" की मुद्राएँ द्रवणों अथवा मलयालियों की निधि हो सकती है। इसके सन्देह का कारण एक यह भी है कि ट्रावनकोर के पुरातत्व विभाग की ओर से एक चार्ट (Handed poses in Hindu) हिन्दू कला में कर-मुद्राएँ प्रकाशित हुई हैं, जिसमें कर-मुद्रायें १५० रूप में दिये हैं। जो "नाट्य शास्त्र", "हस्त लक्षण दीपिका", "अभिनय दर्पण" और "शिला पत्यकार" की कर-मुद्राओं के अनुरूप ही हैं।

"अभिनय दर्पण" में, जो नाट्यशास्त्र के बहुत पीछे का जान पड़ता है और दक्षिण भारत के वायुमन्डल का जान पड़ता है, एकाकी कर-मुद्रा को ३२ और संयुक्त कर-मुद्रा के २३ रूप दिये हैं। इसमें "नाट्यशास्त्र" की सभी मुद्राओं के साथ ६-१० नई मुद्राएँ जोड़ दी गई हैं, इससे स्पष्ट होता है कि "अभिनय दर्पण" के युग में मुद्राओं की विशेष उन्नति हुई थी। इन ३२ मुद्राओं में से २६ "कथकली" की ३२ मुद्राओं में सम्मिलित करली हैं और ३ उपयुक्त मुद्रा आविष्कृत की गई है। "हस्त लक्षण दीपिका" में केवल २४ मुद्राएँ दी गई हैं। इसके अतिरिक्त "नाट्यशास्त्र" तथा अन्य पुस्तकों में मुद्रा का नामकरण उन वस्तुओं के आधार पर किया है, जिनको वे व्यक्त करती हैं। किन्तु "हस्तलक्षण दीपिका" में इसका तनिक भी ध्यान नहीं रक्खा है (जैसे कर्तरी-मुखी कैंची की नोंक मुद्रा ४) इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि "हस्त लक्षण दीपिका" कोई प्रामाणिक पुस्तक नहीं है, और इधर-उधर से संकलित करली गई है जिसके कारण वहुत ही जटिल होगई है।

आधुनिक काल में नृत्य का विकास धीमा पड़ गया। यह उन्नीसवीं शताब्दी में आते-आते इसका वातावरण पूर्ण रूप से गन्दा और उच्छृङ्खल बन गया था, और यह कला ऐसे लोगों के हाथों में पहुँच गई थी कि जो समाज में निम्नकोटि के लोग समझे जाते थे। वैश्याओं ने इसको अपना लिया था। नृत्य करने वालों का मान तनिक भी न रह गया था। लेकिन वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ सुधार के इस क्षेत्र में कदम उठने प्रारम्भ हो गए थे, और कुछ शिक्षित समुदाय का ध्यान इस ओर गया, पर इधर चित्रपटों ने भी नृत्य के स्तर को एकदम नीचे गिराने में बड़ा योग दिया। चित्रपटों ने भारतीय नृत्यों की मट्टी पलीत की।

लेकिन अब स्वतन्त्र भारत के स्वर्णिम विहान में पुनः भारतीय नृत्य कला शनैः शनैः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करती जा रही है। राष्ट्रीय सरकार ने

भारतीय संगीत कला नृत्य को विकासशील बनाने में बड़ा योग दे रही है। भारतीय नृत्यों तथा संगीत का भविष्य बड़ा स्वर्णिम है। राष्ट्रीय सरकार ने कला और संस्कृति का यथार्थ मूल्य समझा है।

नवोदित कलाकार (Amateur Artists)

होनहार कलाकारिणी कुमारी सरोज कपूर—

भारतीय संगीत के इतिहास में नवोदित एवं उदीयमान कलाकारिणी कुमारी सरोज के सम्बन्ध में उल्लेख न करना, मानों यह उन सब नवोदित कलाकारों के प्रति जबरदस्त अन्याय होगा, जोकि आज वन-पुष्प के समान उचित पोषण एवं संरक्षण के अभाव में बिना प्रस्फुटित हुए ही मुरझा जाते हैं। उनके अपूर्व सौन्दर्य एवं विकास शील रूप से विश्व परिचित नहीं हो पाता। वास्तव में किसी भी राष्ट्र के स्वर्णिम भविष्य के प्रकाश स्तम्भ यही नवोदित कलाकार ही होते हैं। आज न मालूम अपने देश में कुमारी सरोज की भाँति कितने नवोदित कलाकार हैं, जिनको यदि थोड़ा-सा भी प्रोत्साहन एवं संरक्षण मिले तो वे अपने राष्ट्र के प्रकाश-दीप बन सकते हैं। इसमें किंचितमात्र भी सन्देह नहीं। कुमारी सरोज कपूर का जन्म आगरा के प्रतिष्ठित कपूर परिवार में ४ जनवरी सन् १९३७ को हुआ था। आपके पिता श्री रघुबर दयालजी कपूर बड़े ही संगीत और साहित्य प्रेमी हैं, और आपकी माता श्रीमती कान्ती देवी भी सफल संगीतज्ञा हैं। कुमारी सरोज को अपने पिता से संगीत के क्षेत्र में अग्रणी होने में विशेष प्रेरणात्मक शक्ति मिली। आपका स्वभाव बड़ा ही लज्जाशील एवं मृदुल है। वह एक सफल नर्त्तकी ही नहीं हैं, बल्कि गायन एवं वादन में भी निपुण हैं। आजकल वह सितार की साधना में सलग्न हैं। हारमोनियम और तबला भी खूब बजाती हैं। आपके नृत्यों की सुप्रसिद्ध कलाकार श्री पृथ्वीराज कपूर, उत्तर प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए० जी० खेर एवं राष्ट्र नायक पं० जवाहरलाल नेहरू आदि ने भी बड़ी प्रशंसा की है। संगीत के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए आपको कदम कदम पर पारिवारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आपने बड़ी लग्न एवं दृढ़ता के साथ रूढ़िवाद के घने आवरण को बड़ी प्रगल्भता से हटाकर कला के प्रशस्त विश्व में प्रवेश किया, जो प्रशंसनीय है। कुमारी सरोज की विशेष अभिरुचि यथार्थवादी एवं प्राकृतिक नृत्यों की ओर है। इधर आपने अनेक नवीन नृत्यों का स्वयं निर्माण भी किया है, जैसे "धोबी-धोबन नृत्य", "सागर-सलिल नृत्य", "जीव-आत्मा मृत्यु नृत्य" आदि। इन सब नृत्यों में हमें कुमारी सरोज की अलौकिक प्रतिभा, उनकी प्रशस्त निर्माण शक्ति, उनकी साहित्यिक अभिरुचि की सुन्दर उठान एवं उनकी मौलिक चेतना का पूर्णरूपेण आभास मिलता है। आपका भविष्य बड़ा ही स्वर्णिम है।

भारतीय स्वरांकन प्रणाली का ऐतिहासिक रूप-परिचय

भारत में इस वक्त आठ प्रकार की स्वरांकन प्रणालियाँ प्रचलित हैं—

भारत में इस वक्त आठ प्रकार की स्वरांकन प्रणालियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न है। तीन बंगाल में, चार उत्तरी भारत तथा महाराष्ट्र और एक दक्षिण भारत में प्रचलित है। परन्तु जब तक सम्पूर्ण भारत में भाषा आदि अन्य बातों की एकरूपता न होगी, तब तक यही दयनीय अवस्था भारतीय संगीत में चलती रहेगी। राष्ट्र की एकता, कला की एकता और साहित्य एवं संस्कृति की एकता के लिए भी यह परम आवश्यक है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में एक राष्ट्रभाषा एवं एक राष्ट्रीय स्वरांकन प्रणाली होनी चाहिए। स्वरांकन प्रणाली का इतिहास बड़ा रोचक है। प्राचीन काल में स्वरांकन प्रणाली की प्रथा थी अथवा नहीं इस सम्बन्ध में हमें ऐतिहासिक गवेषणा करने पर भी कुछ भी संकेत नहीं मिलता। लेकिन कई एक विद्वानों का मत है जिसमें ई० मौलिट उल्लेखनीय हैं, जिनका कहना है कि भारत में स्वरांकन प्रणाली का जन्म अवश्य ही गुप्तकाल में होगया होगा। चूँकि वह काल भारतीय संगीत के इतिहात के लिहाज से स्वर्णकाल रहा है। वह संगीत के उत्कर्ष का काल था। और उस काल में संगीत के अनेक विद्वान भी विद्यमान थे। उन्होंने अवश्य ही इस कमी को अनुभव किया होगा। वे अवश्य ही संगीत का प्रचार किसी न किसी संकेतों द्वारा करते होंगे। मिस्टर फेटिस जोन्स अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The world music" में लिखते हैं—"भारत में स्वरांकन प्रणाली ऋग्वेद काल में ही प्रचलित होगई थी। उनके स्वर संकेत बड़े ही वैज्ञानिक होते थे, और ऋग्वेद काल भारतीय संगीत का ऐश्वर्य काल माना जाता है, भारतीयों को स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान ईसा सन से पूर्व ही हो चुका था। ऐसा वैदिक युग के संगीत-बतावरण के अनुशीलन से पता लगता है।"

इन विद्वानों के उदाहरणों से ज्ञात होता है कि भारतीयों को स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान ईस्वी सन् के ३००० हजार वर्ष पूर्व ही हो चुका था, परन्तु हमें इस सम्बन्ध में कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं, पता नहीं पश्चमीय विद्वानों ने किस आधार पर अपने मत को निश्चियात्मक रूप दिया।

भारत को अवश्य ही स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान वैदिक युग में हो गया होगा—

लेकिन भारतीय संगीत के प्राचीन उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य को देखते हुए यह बात हमें बड़ी विचित्र-सी मालूम पड़ती है कि प्राचीन भारत में स्वराकंन प्रणाली का प्रचार न रहा हो। हाँ यह तो हो सकता है कि उनकी स्वरांकन प्रणाली का इतना सुन्दर वैज्ञानिक रूप न रहा हो, जितना कि वर्तमान काल में है, पर कोई न कोई स्वरांकन प्रणाली का रूप अवश्य प्राचीन काल में भारतीयों को ज्ञात रहा होगा। सुप्रसिद्ध विद्वान प्रवाल मिश्रा का कथन है—"भारत को अवश्य ही स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान वैदिक युग में हो गया होगा, क्योंकि बिना स्वारांकन प्रणाली के संगीत का वैज्ञानिक रूप से प्रचार नहीं हो सकता और न उसमें आन्तरिक सुषमा के उभार की सूक्ष्मताओं का सजीव ढंग से दिग्दर्शन ही लोगों को कराया जा सकता है, इसलिए वैदिक काल में स्वरांकन प्रणाली का प्रचलन अवश्य रहा होगा, और उन्होंने अवश्य ही किसी न किसी संगीतिक पद्धति का आश्रय लिया होगा, तभी वह अपने संगीत को आम जनता के अन्दर समृद्धिशाली एवं चिरस्थाई बना सके। हम इस तथ्य को नहीं मान सकते कि ब्रिटिश काल के प्रारम्भ होने के उपरान्त भारत को स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान हुआ। यह हमारी समझ में नहीं आता। यदि ऐतिहासिक खोज की जाए, और मोहन जोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई और की जाय अथवा अन्य कई स्थानों की खुदाई की जाए तो बहुत सम्भव है कि निकट भविष्य में वैदिक काल तथा गुप्तकाल की कोई न कोई स्वरांकन प्रणाली का चिन्ह-लिपि अवश्य मिलेगा।

अतएव हम भी इस तथ्य को मानने को तैयार नहीं कि स्वरांकन प्रणाली का ज्ञान यूरोपियन प्रवेश के बाद हुआ, और उससे पूर्व नहीं था।

ब्रिटिश काल में सर्वप्रथम स्वरांकन प्रणाली का जन्म सन् १८६७ में "गीत सूत्र सार" के लेखक स्वर्गीय कृष्णधन बनर्जी ने बंगाल में किया। इस विख्यात विद्वान को ही सहायक संगीत विधि के प्रचलन एवं आधुनिक स्वरांकन प्रणाली के निर्माण का श्रेय है। इनके उपरान्त "कन्ठ कौमदी" के ग्रन्थकार स्वर्गीय राजा सुरेन्द्र मोहन टेगौर और श्री क्षेत्र मोहन गोस्वामी ने इस दिशा में क्रियात्मक कदम उठाया। सन् १८७० ई० में श्री क्षेत्र मोहन गोस्वामी के शिष्य श्री काली प्रसन्न बनर्जी ने बंगाल में पाश्चात्य स्वारांकन प्रणाली के आधार पर तीन रेखा-प्रणाली का आविस्कार किया। इसके पश्चात उन्होंने ही सन् १८८० ई० में बड़े अकथनीय परिश्रम से एक रेखा प्रणाली का आविस्कार किया, जिसे "दन्ड मात्रिक" भी कहते हैं।

सन् १८८५ में बड़ौदा के स्वर्गीय श्री मौला बक्स ने बंगाल में दण्ड मात्रिक प्रणाली की शिक्षा लेने के पश्चात्, उसी के आधार पर हिन्दी में एक रेखा प्रणाली का प्रचलन किया। सन् १९०० में पाश्चात्य स्वारांकन प्रणाली एवं दण्ड मात्रिक प्रणाली को अधिक सुगम बनाने के लिए विश्व कवि रविन्द्रनाथ टेगौर के जेष्ठ भ्राता श्री ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर ने "आकार मार्क प्रणाली" का आविष्कार करके एक महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९०० के लगभग मद्रास तथा अन्य स्थानों में आधुनिक दक्षिण भारतीय स्वारांकन प्रणाली का आविष्कार हुआ। "गीत मालिका" नामक पुस्तक में उपयोग करने के लिये सन् १९०५ के लगभग स्वर्गीय श्री भातखन्डे ने मराठी स्वरांकन प्रणाली का आविष्कार किया। यह हिन्दी की एक रेखा प्रणाली एवं दक्षिण भारतीय स्वरांकन प्रणाली से मिलती जुलती थी। इसके उपरान्त श्री विष्णु दिगम्बर पुलस्कर ने सन् १९१० ई० के लगभग अपनी तीन रेखा-प्रणाली का जन्म दिया। यह प्रणाली पाश्चात्य स्वरांकन प्रणाली के आधार पर निर्मित की गई थी, जो बंगाल की ३ रेखा प्रणाली से मिलती-जुलती थी। कालान्तर में यह एक रेखा प्रणाली के रूप में परिवर्तित होगई। इसी समय के आस पास स्वर्गीय श्री सादत अलीखाँ साहब की उर्दू की स्वरांकन प्रणाली का आविष्कार हुआ। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रणालियों का जन्म हुआ, लेकिन वे इनके समान अपना मुख्य रूप न चमका सकीं। अनेक विद्वानों ने प्रयोग के रूप में स्वरांकन प्रणाली का जन्म किया। लेकिन उनमें सजीवता एवं एकरुपता के भाव न रहे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विद्वानों के प्रयास भी इन प्रणालियों को विकसित करने में लगे रहे हैं, जिनकी साधनायें यद्यपि विशेष महत्वपूर्ण न होने के कारण उल्लेखनीय नहीं हैं, किन्तु फिर भी उनके प्रयासों को भारतीय संगीत के इतिहास में सदैव याद रक्खा जायगा।

इन प्रणालियों में जहाँ कुछ अपनी विशेषताएँ, अपनी आत्मिक चमक है, वहाँ उसके साथ-साथ कुछ अवगुण भी हैं—

इन प्रणालियों में जहाँ कुछ अपनी विशेषताएँ, अपनी आत्मिक चमक है, वहाँ उसके साथ-साथ कुछ अवगुण भी हैं। सबसे बड़ा अवगुण यह है कि इन प्रणालियों का प्रकाशन क्षेत्रीय भाषाओं में ही हुआ, केवल पाश्चात्य स्वरांकन प्रणाली को ही हम इसका अपवाद कह सकते हैं। यह अवगुण उनके प्रचलन एवं सार्वभौमिकता में सबसे बड़ी अवरुद्धता है। आजकल एक नवीन विशिष्टता लिए हुए डा० विमलराय ने भी अपनी स्वरांकन प्रणाली का जन्म दिया है, जोकि इन सब दोषों से मुक्त है

और सरल भी है। उनकी प्रणाली में हमें वैज्ञानिक रूप मिलता है, और मिलता है सार्वभौमिकता का प्रकाशन। डा० विमलराय बड़े स्वाध्यायी कलाकार हैं। उन्हें ऐतिहासिक गवेषणा करने का प्रेम सदैव से रहा है।

लेकिन यह बात आप हमेशा स्मरण रखिये कि हमारे प्राचीन भारतीय कलाकार स्वरांकन प्रणाली से अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने भी कुछ न कुछ वैज्ञानिक प्रयोग किए होंगे, और उन्होंने कोई न कोई ऐसा सुगम रास्ता अवश्य निकाला होगा, जिससे वे अपने गीतों का प्रचार अधिक से अधिक जन-समाज के अन्दर वादन के द्वारा कर सके। हमें यह शब्द मिगजी के सदैव याद रहेंगे कि "भारतीय संगीतज्ञों के ऐतिहासिक कारनामों की उच्चता एवं समृद्धि पर विश्व का कोई भी कलाकार नहीं पहुँच पाया।" और साथ ही साथ हमें विख्यात कलाकार सर विगफोर्ड के यह सुन्दर शब्द भी स्मरण हो आते हैं, जोकि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The deep study of Indian Art" में पृष्ठ ११० पर लिखे हैं। उन्होंने लिखा है—"भारतीय संगीत में हमें एक ऐसा स्फूर्ति पूर्ण यौवन, आत्मा को शान्ति करने वाली एक ऐसी चमक मिलती है कि जो हमें विश्व के अन्य किसी संगीत में प्राप्त नहीं होती। भारतीय संगीत वैदिककाल से ही अवश्य स्वरांकन प्रणाली से परिचित रहा होगा, क्योंकि वैदिक काल के सौन्दर्यात्मक एवं शक्तिशाली संगीत को देख कर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि वैदिक युग में भारत में स्वरांकन प्रणाली का आविर्भाव होगया होगा।"

विश्व में भारतीय संगीत ही सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीनतम है

भारतीय संगीत की सब से बड़ी विशेषता रही कि वाह्य एवं अन्तर दोनों प्रकार के सौन्दर्य समानान्तर रूप से विकसित होते रहे—

भारतीय संगीत में फिलसफे, भारतीय जीवन, भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की नदियाँ निकलती हैं, जोकि फैलती हुई और गहरी होती हुई, कभी-कभी सैलावों से पृथ्वी को उर्वर करती हुई आगे बढ़ती चली जाती हैं। इन युगों के दौर में उन्होंने अपने कई रास्ते बदले हैं, कभी सिकुड़ कर पतली भी पड़ गई हैं, परन्तु फिर भी उन्होंने अपने खास मौलिक निशान सदैव स्थिर रक्खे हैं। वास्तव में भारतीय संगीत में यदि जिन्दगी की एक सुदृढ़ तहरीक न रही होती, उसमें अगर आत्मिक सौन्दर्य का जमाल न रहा होता और उसमें चरित्र की पावनता के खुशनुमा प्रसून न प्रस्फुटित हुए होते, तो वह विश्व में आज तक श्रेष्ठता के उच्चतम पद पर न पहुँच पाती। भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक विकास, धार्मिक ऐश्वर्य, और जीवन के स्वाभाविक विकास पर आधारित है, इसीलिए उसमें हमें एक ऐसी गति, एक ऐसा प्रवाह, एक ऐसी चमक दीखती है जो अन्य देशों के संगीत में बहुत कम मिलती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यूरोपीय देशों के संगीत का मुख्य आधार दुनयावी क्रम विकास को आगे बढ़ाना रहा, उसमें आत्मिक सौन्दर्य का यौवन कतई देखने को नहीं मिलता। वे संगीत को भोग विलास, मन बहलाव का एक उपकरण समझते हैं, लेकिन इसके विपरीत भारतीय लोग सदैव से अपने संगीत को इस तंग दायरे से पृथक रखते रहे, और उन्होंने संगीत के आन्तरिक सुषमा को बढ़ाया। इसका मतलब यह नहीं कि भारतीयों ने संगीत के बाह्य सौन्दर्य पर गौर नहीं किया, ऐसी बात नहीं है। भारतीय संगीत की यही तो सबसे बड़ी विशेषता रही कि बाह्य एवं अन्तर दोनों प्रकार के सौन्दर्य समानान्तर रूप से विकसित होते रहे। मनोरंजन के क्षेत्र में भी भारतीय संगीत कभी पीछे नहीं रहा, किन्तु वह मनोरंजन ऐसा होता था कि जिससे मानव का नैतिक स्तर न गिरने पाता था, बल्कि उससे उसका नैतिक विकास, सांस्कृतिक विकास और साहित्यिक विकास भी हो जाता था। यह विशेषता हमें अन्य देशों के संगीत में नहीं मिलती।

भारतीय संगीत में एकांगी विकास नहीं मिलता, बल्कि उसमें चतुर्दिक विकास मिलता है—

भारतीय संगीत और संस्कृति का झुकाव आत्मसंयम और आत्मत्याग पर कभी इतना आधारित नहीं रहा कि उसका दुनियावी विकास क्रम का सिलसिला टूट गया हो। उसका एक संतुलित एवं अनुपातिक दृष्टिकोण था। भारतीयों ने दुनियावी दृष्टिकोण को कभी इतना नहीं उभरने दिया कि जिसके फैलाव में, जिसके कि तूफानी दौर में आध्यात्मिक विकास का आदर्श ही दब गया हो। उन्होंने हमेशा संगीत का सम्बन्ध मानव के चरित्र, धर्म, साहित्य, संस्कृति और कला एवं जीवन के समस्त उपकरणों से सम्बन्धित रक्खा। इसीलिए हमें भारतीय संगीत में एकांगी विकास नहीं मिलता बल्कि उसमें हमें चदुर्दिक विकास मिलता है। नेहरूजी ने लिखा है :—भारतीय संस्कृति की बुनियाद, पृष्ठभूमि गैर दुनियावी या इस दुनिया को हेच समझने वाली नहीं थी, उस वक्त भी जब कि फिलसफे की भाषा में, यह इस विषय पर बहस करती थी कि दुनिया माया है, यह ख्याल कतई कोई खयाल नहीं होता था, बल्कि आखिरी असलियत के रिश्ते में इसे ऐसा समझा जाता था। (यह अफलातून की बताई हुई असलियत की परछाई जैसी चीज थी) और यह संस्कृति दुनिया को उसकी मौजूदा सूरत में ग्रहण करती थी और जिन्दगी और उसकी बहुतेरी सुन्दरताओं का लुत्फ लेना चाहती थी।"

लेकिन उनकी दुनयावी जमाल को अपनाने की एक शैली थी, बस यही पश्चमीय तथा अन्य देशों के दुनियावी दृष्टिकोण से हमारा अन्तर है, और यही अन्तर भारतीय संगीत को विकास के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ा देता है। इस दौड़ में यूरोपीय देश उसको पकड़ नहीं पाते।

नेहरूजी ने आगे लिखा है :—"हम पाते हैं कि हिन्दुस्तान में, हर जमाने में जबकि उसकी संस्कृति ने फूल खिलाये हैं, लोगों ने जिन्दगी और प्रकृति में गहरा रस लिया है, जीने की क्रिया में ही उन्होंने आनन्द का अनुभव किया है, साहित्य, संगीत और कला का विकास हुआ है, गाने, नाचने चित्रकला और नाटकों में उनकी दिलचस्पी रही है। इस बात का कयास नहीं किया जा सकता कि ऐसी तहजीब या जिन्दगी का ऐसा नजरिया जिसकी बुनियाद में गैर दुनियादारी हो या जो जिन्दगी को हेच समझता हो, इस तरह के विविध और जोरदार विकास का हामी होगा। दरअसल, इससे जाहिर होना चाहिये कि कोई भी तहजीब, जो बुनियादी तौर पर गैर-दुनियाबी हो हजारों साल तक अपने को स्थिर नहीं रख सकती।"

वास्तव में भारतीय संगीत और कला एवं साहित्य ने मानव को कर्म से विमुख नहीं किया—

वास्तव में भारतीय संगीत और कला एवं साहित्य ने कभी भी मानव को कर्म से विमुख नहीं किया, कभी-भी उसे अपनी जिन्दगी की डाल पर फूल खिलाने से नहीं रोका, लेकिन उसको उसमें इतना नहीं डूब जाने दिया कि वह अपना उज्ज्वल आदर्श ही भूल गया हो। दुनिया से प्रेम करो परन्तु उसमें डूबो नहीं, सौन्दर्य से प्रेम करो, लेकिन उसके महान निर्माता को न भूलो। जिन्दगी के ग़ुलाम मत बनो, हमेशा अपने को जिन्दगी के सतह से ऊपर को उठाये हुये रक्खो। जीवन का आनन्द लेते हुए, जीवन के यथार्थ सौन्दर्य को समझो। बस यही भारतीय संगीत और संस्कृति का अपूर्व दृष्टिकोण है, जिसको लोगों ने बहुत कम समझ पाया है। श्री जवाहरलाल नेहरूजी अपनी पुस्तक "हिन्दुस्तान की कहानी" में लिखते हैं :—जान पड़ता है कि यह गलतफहमी भी इस बजह से पैदा हुई है कि हिन्दुस्तानी विचारधारा हमेशा जिन्दगी के आखिरी मकसद पर जोर देती रही है। इसकी बनावट में जो आधिभौतिक अंश रहा है, उसे यह कभी नहीं भुला सकी है और इसीलिये, जिन्दगी से पूरी तौर पर इकरार करते हुए भी इसने जिन्दगी का शिकार या ग़ुलाम बनने से इन्कार किया है इसने कहा है कि सही कामों में अपनी पूरी ताकत और शक्ति के साथ जरूर लगिए, लेकिन अपने को उससे ऊपर रखिए और अपने कामों के नतीजे के बारे में ज्यादा चिन्ता न कीजिए। इस तरह इसने जिन्दगी और काम में लगे रहते हुए भी एक अलहदगी अख्तियार करना सिखाया है। इसने काम से मुँह मोड़ना नहीं सिखाया। अलहदगी या विरक्त रहने का ख्याल हिन्दुस्तानी विचार और फिलसफे में समाया हुआ है, उसी तरह जैसा कि और बहुत-से दूसरे फिलस्फों में यह मिलता है। यह इस बात के कहने का सिर्फ एक दूसरा तरीका है कि दृश्य और अदृश्य जगत के बीच एक समतौल और तवाज़ुन कायम रखना चाहिये, क्योंकि दृश्य जगत के कामों में, अगर बहुत मोह पैदा हो जाता है तो दूसरी दुनिया भुलादी जाती है या ओझल हो जाती है, तब खुद कामों के पीछे कोई आखिरी मकसद नहीं रह जाता।"

भारतीय संगीत सत्य की खोज का प्रशस्त सम्बल रहा है, और भारतीयों ने सदैव संगीत के द्वारा उस अमर सत्य को पहिचाना है—

भारतीय संगीत सत्य की खोज का प्रशस्त सम्बल रहा है, और भारतीयों ने सदैव संगीत के द्वारा उस अमर सत्य को पहचाना है। इसीलिए संगीत का वातावरण पवित्र रखा गया। शायद इतनी पवित्रता आपको विश्व के किसी भी संगीत में नहीं मिलेगी। इस पवित्रता के कारण भी भारतीय संगीत विश्व के अन्य देशों के संगीत से

ऊपर उठ जाता है। संगीत के निर्माताओं ने संगीत की पृष्ठ को इतना उज्ज्वल, इतना दिव्य और इतना व्यापक बनाया है कि जिसका हमारे पश्चमी विद्वान कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन कुछ विद्वानों का ख्याल है कि भारतीय संगीत की यह उच्चता सीमित थी, उसका दायरा चन्द विद्वान-मण्डली में परिवेष्टित था। उसके परे आम जनता में संगीत का यह दिव्य आलोक, यह रुहानी शक्ति नहीं फैली हुई थी। दरअसल यह विचारधारा गलत है। हम यहाँ श्री नेहरूजी का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, वह इस प्रकार है :—"इसे याद रखना चाहिये कि हिन्दुस्तान में फिलसफा कुछ इने-गिने फिलसफों या विचारकों का मैदान नहीं था। आम लोगों के मजहब का यह एक लाजिमी अंश था, और चाहे जितने घुले हुए रूप में क्यों न हो, यह भिदकर उन तक पहुँचता था और इसने उनमें एक फिलसफियाना नजरिया पैदा कर दिया था, जोकि हिन्दुस्तान में करीब-करीब उतना ही आम था जितना कि यह चीन में है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संगीत की नींव बहुत गहरी थी। आम जनता भी संगीत की सूक्ष्मताओं से परिचित थी। और वे इसमें गहरी दिलचस्पियाँ लेते थे। भारतीय संगीत में हमें एक ऐसी सुन्दरता, एक ऐसी मनमोहकता और एक ऐसी आत्मिक कशिश मिलती है कि जो मानव को जिन्दगी का अपूर्व आनन्द प्रदान करती हुई उसे इस दुनिया से बहुत दूर की दुनिया में ले जाती है, जहाँ उसे दिव्य सौन्दर्य का जमाल प्राप्त होता है, और जहाँ उसे आत्मा के विराट रूप के सुरम्य दर्शन होते हैं।

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का महत्व समग्र रूप से उसकी मौलिकता में है—

प्रोफेसर मेकडानेल अपने "संस्कृत साहित्य के इतिहास" में लिखते हैं—"भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का महत्व समग्र रूप से, उसकी मौलिकता में है। जबकि यूनानियों ने ईसा से पूर्व की चौथी शताब्दी के अन्त में पच्छिमोत्तर में आक्रमण किया, उस समय भारतीय अपनी राष्ट्रीय संस्कृति स्थिर कर चुके थे और इस पर विदेशी प्रभाव नहीं पड़े थे, और बावजूद इसके कि ईरानियों, यूनानियों, सिदियनों और मुसलमानों के आक्रमणों की लहरें एक के बाद एक आती रहीं और यह लोग विजय पाते रहे। भारतीय आर्य जाति की जिन्दगी और साहित्य एवं कला का राष्ट्रीय विकास, अंग्रेजों के अधिकार के वक्त तक बिना रुकावट एवं अटूट क्रम से चलता रहा। इन्डो-यूरोपियन जाति की किसी भी शाखा ने अलग रहते हुये ऐसे विकास का अनुभव नहीं किया, चीन को छोड़कर कोई ऐसा मुल्क नहीं जोकि अपना

भाषा और साहित्य एवं कला अपने धार्मिक विश्वास और कर्मकांड तथा अपने सामाजिक रीति-रिवाजों की तीन हजार वर्षों से अधिक का अटूट विकास प्रस्तुत कर सके ।''

परन्तु इतिहास के इस लम्बे दौर में भारतवर्ष बिल्कुल पृथक-पृथक नहीं रहा, उसका बराबर सम्पर्क अन्य देशों से बना रहा । इतिहास इस बात का प्रमाण देता है कि भारत के सम्बन्ध ईरानियों, यूनानियों, चीनियों और मध्य एशियायियों एवं अन्य देशों से सुन्दर रहे हैं । लेकिन फिर भी इन सम्पर्कों के रहते हुए भी भारत अपनी कला और संस्कृति की अपनी मौलिकता को ऊपर उठाए रहा । उसने कभी किसी भी युगी जलजले में अपने संगीत, कला और साहित्य के गौरव को गिरने नहीं दिया । कोई ऐसी श्रेष्ठ शक्ति अवश्य उसमें कार्य करती रही जिसको उसने सदैव जिन्दा रक्खा । विख्यात विद्वान और प्राच्यविद मैक्समूलर ने कहा है :—''वास्तव में हिन्दू विचार के सबसे हाल के एवं सबसे प्राचीन रूपों में एक अटूट क्रम मिलता है और तीन हजार वर्ष से अधिक तक बना रहा ।'' बहुत जोश के साथ उन्होंने इङ्गलैन्ड के कैंब्रिज विश्वविद्यालय के व्याख्यानमाला में कहा सन् १८८२ में :—

मैक्समूलर की दृष्टि में भारतीय संस्कृति—

"If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that Nature can bestow, I should point to India.

If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them, which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant, I should point to India.

And, if I were asked myself from what literature we here in exclusively on the thoughts of the Greeks and Romans and of the Semetic race, the Jewish, draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect more universal, in fact more truly human, a life not for this life only, but a transfigured and Eternal life, again I should point to India."

अर्थात्—अगर हम सम्पूर्ण विश्व की खोज करे यह पता लगाने के लिए कि सम्पूर्ण विश्व में ससस्त प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न, सौन्दर्य शक्ति और सम्पत्ति से

समलंकृति देश कौनसा है, तो मैं भारतवर्ष की ओर इशारा करूँगा। यदि मुझसे पूछा जाए कि किस देश में मानव मस्तिष्क ने अपनी मुख्यतम शक्तियों को विकसित किया, जीवन के बड़े से बड़े प्रश्नों पर विचार किया और ऐसे समाधान ढूँढ़ निकाले जिनकी ओर प्लेटो एवं काँट के दर्शन का अध्ययन करने वालों का ध्यान भी आकृष्ट होना चाहिए, तो मैं भारतवर्ष की ही ओर संकेत करूँगा।

यदि मैं अपने आप से पूँछू कि किस साहित्य का आश्रय लेकर सेमेटिक, यूनानी, और केवल रोमन विचारधारा में बहते हुए यूरोपीय अपने आध्यात्मिक जीवन को अधिकाधिक विकसित, अत्यन्त विश्वजनीन, उच्चतम मानवीय बना सकेंगे—जो जीवन इहलोक से ही सम्बद्ध न हो अपितु शाश्वत एवं दिव्य हो, तो मैं फिर भारतवर्ष की ही ओर संकेत करूँगा।"

करीब-करीब इसी ख्याल को बदले हुए शब्दों में योरप के विख्यात विद्वान रोम्यां रोला ने दुहराया—"अगर दुनिया की सतह पर कोई एक मुल्क है जहाँ कि जिन्दा लोगों के सभी सपनों को, उस प्राचीन वक्त से जगह मिली है जब से मानव ने अस्तित्व का सपना प्रारम्भ किया, तो वह भारतवर्ष है।"

भारत संगीत और कला की लम्बी दौड़ में कभी पीछे नहीं रहा—

भारत संगीत, कला की दौड़ में कभी पीछे नहीं रहा, वह उठते गिरते निरन्तर बढ़ता रहा, क्योंकि उसने कठिन से कठिन समय में भी जिन्दगी की मधुरता को एक पल के लिए भी नहीं भुलाया था। उसके ऊपर से चाहे कितने ही भंयकर तूफान गुजर गए, किन्तु फिर भी उसने आगे बढ़ना बन्द नहीं किया, क्योंकि वह इस तथ्य को अच्छी तरह से जानता था कि चलना ही जीवन है, और रुकना ही मृत्यु। इसी विशाल एवं सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर भारतीय कला और संगीत की नींव रक्खी हुई है। वास्तव में यही भारतीय संस्कृति की ताजगी चिरस्थिर रहने का गूढ़ रहस्य है। यह भारतीयों की कौमी खासियत है। जिसके सहारे उसमें विकास पूर्ण जीवन पनपता है।

श्री जवाहरलाल नेहरूजी लिखते हैं:—"भारत ने बचपन के भोलेपन और मासूमियत को जाना है, जवानी की उमंगें और मस्तियाँ देखी हैं और बुजर्गी में वह ज्ञान प्राप्त किया है जो कि सुख दुःख के अनुभव से ही आता है, और बार-बार उसने अपने बचपन, अपनी जवानी, और अपनी बुजर्गी को ताजा किया है। मुद्दतों की गफलत और उसकी वसजत ने उसे दवा रक्खा है, पस्ती लाने वाले रीति-रिवाजों और बुरे अमल ने उसमें घर कर लिया है, तुफैली कीड़े उसमें चिपटे हुए उनका खून चूस रहे हैं, लेकिन इन सब के पीछे युगों की ताकत और एक कदीम जाति की भीतरी अक्ल है; क्योंकि हम बहुत पुराने लोग हैं, अनथाही सदियाँ हमारे कानों में धीमे स्वर में

अपनी कहानी कह रही हैं। लेकिन हमने अपनी जवानी को बार-बार ताजा किया है। अगर्चे उन गुजरे हुए युगों की यादें और सपने कायम रहे हैं।

भारतीय संगीत की भरी पूरी जीवनी-शक्ति—

यह कोई गूढ़ सिद्धान्त या गूढ़ विद्या नहीं है—जिसने हिन्दुस्तान को इतने लम्बे युगों तक जिन्दा और कायम रक्खा, जिस चीज ने ऐसा किया है वह है उसकी कोमल एवं मधुर मानवता, उसकी बहुरंगी और रवादारी बरतने वाली संस्कृति और जिन्दगी और उसके भेद भरे तरीकों की गहरी सूझ-बूँझ। उसकी भरी पूरी जीवनी शक्ति की धार, उसकी शानदार कला और साहित्य में युग-युग से बहती आई है। हाँलाकि इसका बहुत थोड़ा हिस्सा हमें आजकल प्राप्त है, और ज्यादा हिस्सा तो छिपा पड़ा है या कुदरत और इन्सान की गारतगरी से जाया हो चुका है। एलिफैन्टा की गुफा के त्रिमूर्ति में हम खुद हिन्दुस्तान की बहुमुखी मूर्ति देख सकते हैं—शक्तिशाली, आँखों में मजबूर कर देने वाली ताकत रखने वाली, गहरे ज्ञान और समझ बूँझ वाली, जो हमारी तरफ देख रही है। अजंता के दीवार के चित्रों में हमें कोमलता और सौन्दर्य और जोवन से प्रेम दिखाई देता है, लेकिन हमेशा, कुछ और गहरी चीज का, ऐसी चीज का जो कि हम से परे हैं, आभास मिलता है।" आगे वह लिखते हैं।

"हिन्दुस्तान में भी गुजरे हुए जमाने की बड़ी सुनहली कल्पना की गई है। यहां जो सभ्यता तैयार हुई, उसकी भी बुनियाद हिफाजत और पायदारी के खयालों पर बनी थी। और इस नुक्ते नजर से यह उन सभी सभ्यताओं से जो कि पच्छिम में उठी कहीं अधिक कामयाब रही।"

इन सब तथ्यों का विश्लेषण करते हुए हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि भारतीय संगीत विश्व के संगीतों से सर्वश्रेष्ठ है, उसमें अपनी अनूठी शक्ति है, उसमें अपनी पायदारी है, उसमें अपनी जिन्दगी के जज्बे हैं, और उसमें अपनी अलौकिक जीवन-शक्ति है। उसकी श्रेष्ठता इसलिए नहीं कि उसके प्रस्तुतीकरण की शैली वैज्ञानिक ढंग से है, बल्कि इसलिए कि उसके तह में आत्मिक सौन्दर्य के जमाल का खुशनुमा पुष्प खिल रहा है, उसमें हमें मानव प्रेम की असीम गहराई मिलती है, और मिलती है उसमें मानव की उमंग भरी व्यापकता। भारतीय संगीत इसी लिहाज से अन्य देशों के संगीत से ऊँचा उठ जाता है, लेकिन हाँ चीन का संगीत भारतीय संगीत की समता में आ सकता है, क्योंकि उसकी भी पृष्ठभूमि करीब-करीब भारतीय संगीत और कला जैसी दार्शनिक रही।

भारतीय संगीत एवं कला जहाँ वह विश्व में श्रेष्ठ रही है, वहाँ उसके साथ वह विश्व में प्राचीनतम भी है—

भारतीय संगीत एवं कला जहाँ वह विश्व में श्रेष्ठ रही है, वहाँ उसके साथ प्राचीनतम भी है। इस तथ्य को अब अनेक विदेशी विद्वानों ने मान लिया है। लेकिन कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जोकि भारत के इस दावे को स्वीकार नहीं करते, पर ऐसे विद्वानों ने भारतीय संगीत की गहरी जड़ों को नहीं देखा है, वे उसके बुनियादों को स्पर्श नहीं कर पाये हैं। वैसे तो वैदिक युग से भी बहुत पूर्व हमारे भारतीय संगीत की लम्बी कहानी जाती है। सिन्ध घाटी की सभ्यता से अब यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया है कि भारतीय संगीत ईसा से कम से कम ६ सात हजार वर्ष पूर्व भी अपनी तरुणाता पर झूम रहा था, जबकि योरपीय सभ्यता का चिराग धूमिल जल रहा था। उस वक्त भी भारतीय पूर्ण सभ्य और सुसंस्कृत थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने अब यह ऐतिहासिक रूप से प्रामाणित कर दिया है कि भारतीय संगीत अपनी शानदार बहार, अपनी गौरवपूर्ण कीर्ति उस समय भी पूर्णरूपेण फैला रहा था, जबकि पश्चिमीय लोग अपने जीवन की डाली पर कला के बहुरंगी पुष्प न खिला पाए थे। खुदाई में अनेक संगीत सम्बन्धी चीजें निकली हैं जोकि ईसा की पाँच छै: हजार वर्ष पूर्व की तो है ही।

अगर हम सिंध काल की सभ्यता को भी छोड़ दे, तो भी भारतीय संगीत विश्व में प्राचीनतम रहेगा, क्योंकि वैदिक युग भी ईसा से ३००० वर्ष पूर्व तो ऐतिहासिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है, हाँलाकि अनेक विद्वान वैदिक युग को भी ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व बतलाते हैं। खैर तीन हजार ही मानिए तो भी भारतीय संगीत की प्राचीनता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वैदिक युग के समय में भी योरपीय जातियों का कोई ठिकाना नहीं था, उस वक्त उन्होंने कोई शक्ल, कोई रूप अख्तियार नहीं कर पाया था।

श्रीकृष्ण पूर्णरूपेण ऐतिहासिक युग पुरुष थे—

कुछ विद्वान महाभारत काल के श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक युग पुरुष नहीं मानते, जोकि संगीत के महान आचार्य एवं निर्माता थे। लेकिन वास्तव में अब यह सिद्ध हो चुका है कि श्रीकृष्ण पूर्णरूपेण ऐतिहासिक युग पुरुष थे। वह ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व पैदा हुए थे इस बात का समर्थन सिल्यूकस (Seleucus) के यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के लेखों से मिलता है। जो ईस्वी सन् से लगभग ४०० वर्ष पूर्व सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में इसी देश में रहता था। मैगस्थनीज कई वर्ष तक भारतवर्ष में रहा और उसने अपने अनुभवों के सम्बन्ध में कई लेख लिखे, जिन्हें

यूनानी इतिहास लेखक एरियन (Arrian) ने सुरक्षित रखकर प्रकाशित किया था। मैगस्थनीज का कहना है:—

"He, the Indian Heracles, excelled all men in strength of body and spirit, he had purged the whole earth and sea of evil and founded many cities, and after his death divine honours were paid. This Heracles is especially worshipped by the Sourasenians an Indian nation in whose land are two great cities. Mathura & Cleisobara and though it flows the navigable river Johares" (Jumana).

अर्थात:—"वह भारतीय हैराक्लीज अर्थात श्रीकृष्ण शारीरिक एवं आत्मिक बल में सबसे बढ़ा चढ़ा था, उसने सारी पृथ्वी और समुद्रों को पाप शून्य कर दिया था और कई नगर उसने बसाये थे। उसके इस संसार से चले जाने के बाद लोग उसे ईश्वर की भाँति पूजने लगे। भारतवर्ष की "शौर सेनी" (यादव) जाति के लोग इस हैराक्लीज की विशेष रूप से पूजा करते हैं। मथुरा और "क्लीसोबरा" नाम की दो बड़ी नगरियों पर इस जाति का आधिपत्य है और इन दोनों के बीच में जोहरीज अर्थात जमुना नदी बहती है।" कुछ लोग क्लीसोवरा को कालिसपुर का अपभ्रंश मानते हैं किन्तु Plingy नामक यूनानी इतिहासकार ने इसे कृष्णपुर (कृष्ण की नगरी) का विकृत रूप बतलाया है, जिसे श्रीकृष्ण ने बसाया था, और जिससे कदाचित द्वारिका का अभिप्राय है।

कप्तान विलफोर्ड (Captain Wilford) ने लिखा है—"The Indian Hercules, according to Cicero, was called Belus He is the same as Bala the brother of Krishana, and both are Conjointly worshipped at Muttra indeed, they are considered as one Avatar or incarnation of Vishnu. Bala is represented a stout man with a club in is hand. He is called also Bala Rama. As Bala springing from Vishnu or Hari, he is certainly Hericula, Hericulas,"

अर्थात् :—किकरो नामक यूनानी इतिहास लेखक के मत में भारतीय हरक्यूलीज का नाम बैलस था। यही श्रीकृष्ण के बड़े भाई बल थे, और इन दोनों भाईयों की मथुरा में साथ ही पूजा की जाती है, यही नहीं वास्तव में इन दोनों को मिलाकर ही भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं। "बल" के विषय में यह लिखा है कि वे अत्यन्त बलिष्ट थे और अपने पास हल मूसल रखते थे। उन्हें बलराम भी कहते हैं। अर्थात हरि के अवतार होने के कारण वे सचमुच हरिकुल अर्थात Hercules थे।"

"Monumental Christianity" नामक पुस्तक में (पृष्ठ १५१-१५२) में लिखा है—"Both Arrian & Strabo assert that the God Krishana was anciently worshipped in Mathura on the river Jumna, where he is worshipped at this day, but the emblems and attributes essential to this deity also transplanted into the mythologies of the west."

अर्थात्—एरियन और स्ट्रैबोइन दोनों विद्वानों का यह मत है कि भगवान श्रीकृष्ण की प्राचीन काल में मथुरा नगरी में पूजा होती थी, जो यमुना नदी के तट पर बसी हुई है, और वहाँ अब भी उनकी पूजा होती है, किन्तु इस देवता के चिह्नों और गुणों का पाश्चात्य जगत की पौराणिक गाथाओं में भी समावेश होगया है।

इन ऐतिहासिक लेखों से यह पता लगता है कि ईसाई पादरियों की यह धारणा कितनी निमूॅल है कि श्रीकृष्ण चरित्र और उनके उपदेशों की ईसा मसीह के जीवन और उपदेशों के आधार पर हुई है। इसके विरूद्ध यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण सैकड़ों वर्ष पूर्व ही इस लोक में जन्मे थे, और सिकन्दर की चढ़ाई के समय उनके उपदेश लिपि बद्ध हो चुके थे।

Sir William Jones सर विलियम जोन्स नामक विद्वान ने जिन्होंने पाश्चात्य विद्वानों में सर्वप्रथम संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया, ने लिखा है—"That the name of Chrishana and the general out line of his history were known in India long anterior to the birth of our Saviour and probably to the time of Homer (900 B. C.) we know very certainly." अर्थात—हमें इस बात का निश्चय है कि हमारे प्रभु (ईसा मसीह) के जन्म से बहुत पहले और कदाचित यूनान के आदि कवि (Homer) जिनका काल ईस्वी सन से ६०० वर्ष पूर्व माना जाता है, से भी पूर्व श्रीकृष्ण का नाम और उनके जीवन का स्थूल वृतान्त भारतीयों को विदित था।

Sir Godfrey Higgins सर गाडफ्रे हिगन्स जो पिछली शताब्दी का सुप्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान और पुरातत्व विशारद था, यथाशक्ति इस विषय का उचित अनुसन्धान एवं गवेषणा करने के बाद इस निश्चय पर पहुँचा था कि पीतल के युग (Bronzen age) के अन्त में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। उसने लिखा है—

"He passed a life of the most extraordinary and incomprehensible devotion. His birth was concealed from the tyrant Kansa, to whom it had been predicted that one born at that time and in that family would

destroy him, ie, his power." अर्थात—श्रीकृष्ण ने अत्यन्त विलक्षण एवं असाधारण भक्तिमय जीवन व्यतीत किया। अत्याचारी कंस से इनका जन्म छिपाकर रक्खा गया था, क्योंकि उसे किसी ने यह बात कह रक्खी थी कि अमुक समय में उस कुल में उत्पन्न होने वाला पुरुष तुम्हारे अर्थात तुम्हारी सत्ता के नाश का कारण होगा।

अपने ग्रन्थ Anacalypsis (जि० १ पृष्ठ १६०) में भी इन्होंने लिखा हैं—"In fact, the sculptures on the walls of the most ancient temples by no one ever doubted to be long anterior to the christian era, as well as written works equally old, prove beyond the possibility of doubt, the superior antiquity of the history of Cristna to that of Jesus."

अर्थात—वास्तव में अत्यन्त प्राचीन देवालयों की जो ईश्वी सन् से बहुत पूर्व-काल के बने हुए हैं, इस बात में अब तक किसी को भी सन्देह नहीं हुआ, दीवारों पर की मूर्तियों तथा उसी समय की हस्तलिखित पुस्तकों के देखने से यह निर्विवाद सिद्ध है कि ईसा मसीह की अपेक्षा श्रीकृष्ण का काल कहीं अधिक प्राचीन है। उसी ग्रन्थ में इस विद्वान ने आगे लिखा है—

"Cristna, his statues, temples, and books etc., respecting him are to be found where a Cristian never came. Is not absurd to suppose that the Brahamins could invent the story of Cristna and make it dovetail into all their other superstitions make him form an integral part of their curious Trinity, the actual Trinity of ancient Persia and of Plato—make him also fit into the theological inferences of the modern christian respecting the meaning of the first chapter of Genesis make history exactly agree with the orthodox massacre of the innocents and finally make all this be received as an ancient doctrine and article of faith by millions of people, who must have known very well that it was all perfectly new to them and that they had never heard of it before." अर्थात—श्रीकृष्ण की प्रतिमाएँ मन्दिर और उनके चरित्र सम्बन्धी पुस्तकें ऐसे स्थानों में भी मिलती हैं, जहाँ किसी ईसाई का कभी प्रवेश तक नहीं हुआ। क्या यह कल्पना बिल्कुल असंगत नहीं है कि ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण की कथा को गढ़ कर अपनी सारी मिथ्या कल्पनाओं में उसको यथा स्थान जोड़ दिया हो, उसे (श्रीकृष्ण) देवत्रयी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में जिसे फ़ारस देश के प्राचीन निवासियों और यूनान के प्रसिद्ध

दार्शनिक प्लैटो (Plato) ने भी माना है स्थान दिया हो, बाइबिल के Genesis (जेनेसिस) नामक प्रथम अध्याय के तात्पर्य के सम्बन्ध में आधुनिक ईसाईयों ने जो आध्यात्मिक विषयक अनुमान किए हैं, उनमें भी ठीक बैठा दिया हो, निरपराध लोगों की हत्या की (जिसका उल्लेख बाइबिल में मिलता है) प्राचीन घटना का बिल्कुल सामंजस्य कर दिया हो और यह सब करने के बाद करोड़ों मनुष्यों के हृदय में भी यह कथा प्राचीन सिद्धान्त के रूप में बैठा दी हो, जबकि वे लोग इस बात को भली भाँति जानते रहें होंगे कि यह कथा बिल्कुल नवीन है और उन्होंने इसे पहले कभी नहीं सुना था।

एलेफैन्टा की प्रतिमा से भी यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुए थे, इतना ही नहीं इससे उनके अलौकिक जन्म, अत्याचारी कंस के भय से उनके गोकुल चले जाने, उस दुष्ट राजा के कारण श्रीकृष्ण के छोटे-छोटे भाइयों की हत्या तथा उस महान उद्धारक के दिव्य जीवन की अन्य मुख्य घटनाओं के इतिहास की प्राचीनता भी प्रामाणित होती है।

श्रीकृष्ण का जन्म ईस्वी सन् से लगभग ३०९१ वर्ष पूर्व होना चाहिए, किन्तु बाबू बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय जैसे आधुनिक हिन्दू विद्वानों ने श्रीकृष्ण तथा कुरुक्षेत्र युद्ध का ऐतिहासिक काल ईस्वी सन् से १४३० वर्ष पूर्व निश्चित किया है।

महर्षि पाणिनि के व्याकरण सूत्रों में भी युधिष्ठर अर्जुन और वासुदेव (वासुदेव के पुत्र) का जो श्रीकृष्ण का ही नाम है, उल्लेख मिलता है, और पाणिनि काल ईस्वी सन् से ११०० वर्ष पूर्व माना गया है।

इसके अतिरिक्त महर्षि पतंजलि कृत व्याकरण महाभाष्य में जो ईस्वी सन् से कम से कम २०० वर्ष पूर्व लिखा गया था, हमें इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण मिलता है कि उनके जीवन काल में श्रीकृष्ण और कंस की कथा प्रचलित एवं प्रसिद्ध थी और उस समय वे ईश्वर रूप में पूजे जाते थे।

बम्बई के प्रसिद्ध इतिहास लेखक एवं पुरातत्व विशारद प्रो० भन्डारकर ने महाभाष्य में से श्रीकृष्ण के विषय में निम्नलिखित तथ्य खोज निकाले हैं:—

(१) महर्षि पतंजलि के समय में कंस बध और राजा बलि के दमन की कथाएँ प्रचलित एवं प्रसिद्ध थी। (२) कंस-बध की कथा में वासुदेव श्रीकृष्ण के द्वारा उसके मारे जाने का उल्लेख है। (३) श्रीकृष्ण के द्वारा कंस के बध की घटना पतंजलि के समय में अत्यन्त प्राचीन मानी जाती थी।

भिटारी स्तूप के शिलालेख में एक प्रमाण मिलता है, जो कदाचित ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी में लिखा गया था और जिसकी प्रतिलिपि अनुवाद डा० डब्लू एच मिल (Dr. W. H Mill) ने किया है। वह इस प्रकार है:—

"May he who is like Krishana still obeying his mother Devaki after his foes are vanquished, he of golden rays with mercy protect this my design." जर्मनी के प्रसिद्ध पुरातत्व विशारद लेशन महाशय ने इसका संशोधन इस प्रकार किया है :—

"Like the Conqueror of his enemies Krishana encircled with golden rays, who honours Devaki, may maintain his purpose".

अर्थात अपने शत्रुओं के विजेता स्वर्ण सदृश्य तेज वाले श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार देवकी का आदर किया था, वे भी अपने प्रयोजन को सिद्ध करे।"

इन सब उद्धरणों से यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो जाता है कि भारतीय संगीत के महान आचार्य एवं प्रणेता श्रीकृष्ण ने ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही संगीत का उच्चतम रूप भारत में स्थापित कर दिया था। अब इस तथ्य पर तनिक भी सन्देह करने की गुन्जाइश नहीं रही, और फिर विख्यात विद्वान हिलबोर्न ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—"Indian Art & Culture" में पृष्ठ १०४ पर लिखा है—"श्रीकृष्ण ऐतिहासिक युग पुरुष थे। उन्होंने भारतीय संगीत के विकास में महान योग दिया, उस वक्त जबकि हम योरप वाले संगीत के वाह्य ढाँचे से भी परिचित नहीं थे। वास्तव में भारतीयों का यह तथ्य हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय संगीत ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीनतम है।"

इन सब ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि विश्व में भारत का संगीत ही प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ है। कुछ देशों में भारत से संगीत सीधा गया, किन्तु कुछ देशों में अन्य देशों के माध्यम से गया। कहने का तात्पर्य यही है कि भारत ने संगीत, कला और संस्कृति का अपना नवीन प्रकाश ईश्वी सन् से हजारों साल पूर्व ही फैलाया। आज हमें मूर्तियों के रूप में, चित्रों के रूप में, हस्तलिखित ताम्र पत्रों के रूप में, शिल्प लेखों के रूप में, अनेक स्रोतों से यह जबरदस्त प्रमाण मिलता है कि भारतीय संगीत ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीनतम है।

उन अंग्रेज विद्वानों ने, जिन्होंने उदार हृदय से, विशाल दृष्टिकोण से भारतीय संगीत और कला को समझा, उनमें से प्रमुख हैं मिस्टर लारेंस विनियन एवं ई० बी० हैवल। भारतीय संगीत की तलहटी में प्रविष्ट होने की, उसकी सूक्ष्मताओं को निकट से अध्ययन करने की विशेष रूप से हैवल को उत्साह है। उनका कथन है कि—"हमें किसी देश की राष्ट्रीय कला को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें उस कौम के विचार,

आदर्श एवं स्वभाव का गहरा अनुशीलन करना पड़ेगा। हम वास्तव में तभी राष्ट्रीय संगीत से अवगत हो सकते हैं, जबकि हम उस राष्ट्र के आदर्शों की तह में प्रविष्ट होने का उपक्रम करें। प्रत्येक संगीत और कला के पीछे कोई न कोई कौमी जज़बात, राष्ट्रीय भावना, धार्मिक नैतिकता प्रस्फुटित होती है। एक विदेशी, शासन करने वाली कौम, इन पवित्रतम आदर्शों को न जानकर, इनसे गुमराह होकर, उनकी व्यर्थ की निकृष्टता का परिचय देकर अपने को हीन प्रामाणित करती है। अपनी उच्चस्थित को गिराती है। प्राचीन भारतीय संगीत चन्द विद्वानों के समृद्धि के लिए नहीं रही है, बल्कि उसका आदर्श रहा है हिन्दू धर्म और हिन्दू दार्शनिक पृष्ठ के दिव्य भावों को सर्वसाधारण तक पहुँचाना। इस उच्च आदर्श को परिपूर्ण करने में प्राचीन भारतीय संगीत और कला सफल रही, इसका अनुमान इस तथ्य से हो सकता है कि भारतीय ग्रामीण, जोकि पश्चिमी लोगों की दृष्टि में अशिक्षित, अपढ़ हैं, फिर भी अपने वर्ग के लोगों में विश्व के किसी भी जगह के लोगों के मुकाबले में अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत हैं।"

अब हम भारतीय संगीत के इतिहास की समाप्ति विख्यात विद्वान सिल्वान लेबी के सुन्दर शब्दों में करते हैं। उन्होंने हमारी प्राचीन उपलब्धियों एवं कारनामों के बारे में कितना सुन्दर लिखा है—"ईरान से चीनी समुन्दर तक, साइबेरिया के बर्फीली प्रदेशों से जावा और बोर्नियों के टापुओं तक, ओशीनिया से सोकोटरा तक हिन्दुस्तान ने अपने यकीनों, अपनी कहानियों और अपनी तहजीब को फैलाया है। उसने मानव जाति के चौथाई हिस्से पर, लम्बे सदियों के दौर में अपनी अमिट छाप डाली है। उसे इस बात का हक है कि अज्ञान के कारण उसे दुनिया के इतिहास में जो पद मिलने से रह गया है, उसे प्राप्त करे और मानव आत्मा की प्रतीक बड़ी कौमों के बीच अपना उचित स्थान ले।"

(हिन्दुस्तान की खोज से उद्धृत)

वास्तव में प्राचीन भारतीय संगीत ने विश्व को नवीन प्रकाश, नवीन कल्पना, नवीन उमंग, और नवीन सौन्दर्य प्रदान किया, जिसकी अपूर्वता को आज के पश्चिमी विद्वान एवं कलाकार भी मान गए हैं और उन्होंने मुक्त-हृदय से भारतीय संगीत के ऐश्वर्य को स्वीकार किया।

आधुनिक काल पर सिंहावलोकन

ख्याल गायकी के सर्वोत्तम संगीतज्ञ श्री दिलीपचन्द्र वेदी—

मैंने अनेक संगीत के दिग्गज विद्वानों से भेंट की, और उनके विभिन्न दृष्टि-कोणों को निकट से समझने का प्रयास किया, जोकि अपने अन्दर एक विशेष महत्व रखते हैं। जैसे कि श्रीदिलीपचन्द्र वेदी से पंजाब एवं महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के कलाकारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। उनके सुन्दर एवं प्रशस्त विचारों को हमने पूर्व प्रकरण में भी दिया है। श्री वेदीजी आज के युग के महान् संगीतज्ञ हैं, इसीलिए उनको सन् १९३४ के दिसम्बर महीने में बनारस में जो शास्त्रार्थ पं० ओंकारनाथ ठाकुर एवं श्री रातंजनकरजी में हुआ था, उसके निर्णायक सभापति आपको ही सर्वसम्मति से बनाया गया था। और आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का उस वक्त परिचय दिया। वास्तव में वेदी जी पं० भास्कर रावजी तथा उस्ताद फैयाज खाँ के सर्वोत्तम शिष्यों में से हैं। बनारस के छठे अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन (सन् १९३४) में श्री वेदीजी को ख्याल गायकी में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। स्वर्गीय निसुरुद्दीन खाँ साहब (रहीमउद्दीन साहब के बड़े भाई) ने भी वेदीजी को भी ख्याल गायकी में सर्वश्रेष्ठ माना। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य संगीत सम्मेलनों में भी ख्याल गायन में वेदीजी को सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ स्वीकार किया गया।

सन् १९३८ में कलकत्ता में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन कमेटी ने आपको ठुमरी गायक मानकर "किंग वाजिद अली शाह पदक" प्रदान किया। सन् १९३२ में बंगलौर में कर्नाटक के संगीत विद्वानों की ओर से आपको मानपत्र भेंट किया गया, जिसमें कि उन्होंने वेदीजी को अद्वितीय हिन्दुस्तानी गायन तथा हिन्दुस्तानी गाने को कर्नाटक में लोकप्रिय बनाने वालों में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया।

नवीन रागों के आविष्कारिक—

आपने नवीन गीत रचना ही नहीं की अपितु नवीन रागों का आविष्कार भी किया अर्थात ७२ मेल रागों की सीमा एवं बन्धन को लाँघकर राग व रस की दिव्य सौन्दर्यात्मक सृष्टि के सुरम्य पथ का दिग्दर्शन किया, जोकि भारतीय संगीत का मुख्य ध्येय है। उत्तर तथा कर्नाटक के अनेक निष्पक्ष कला मर्मज्ञों का कथन है कि लगभग ३०० वर्षों में किसी भी कलाकार ने ऐसे सुन्दर रागों का आविष्कार नहीं

किया। "वेदी की ललित" राग उत्तर भारत तथा कर्नाटक में सभी जगह लोक-प्रिय हुआ।

कला के सच्चे तपस्वी—

वास्तव में श्री वेदीजी सही माने में कला के प्रति वफादार हैं। उन्होंने तन, मन और धन सभी तरह से कला की सेवा की है। उन्होंने अपनी लाखों रुपए की पैतृक सम्पत्ति की परवाह न करते हुए पंजाब से १२०० मील दूर रहकर वर्षों संगीत शिक्षण लिया, अनेक भाषाओं के संगीत ग्रन्थों का गम्भीर अध्यन किया। आपको भारत के कोने-कोने में जाकर अपना संगीत सुनाने और दूसरों का सुनने का शौक प्राप्त हुआ। आप बड़े सच्चे लग्न के कलाकार हैं। कला के क्षेत्र में इतना अधिक व्यस्त रहने पर भी, वह कलाकारों को ऊँचा उठाने तथा समाज में उनको उपयुक्त स्थान दिलाने में लगभग सन् १६२२ से प्रयत्नशील हैं। इस निमित्त सन् १६२६ में लाहौर में उन्होंने "गायक महामन्डल" की स्थापना करके अखिल भारतीय गायन सम्मेलन का सफल आयोजन भी किया। आप लग्न के इतने पक्के हैं कि आपके सम्मुख कोई विरोधी टिक नहीं सकता, और वास्तव में आप कला के सच्चे तपस्वी हैं, तभी तो आप कला के उत्कर्ष के लिए बड़े से बड़े प्रलोभन को भी ठुकरा देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

आपका जन्म आनन्दपुर (पंजाब) के वेदी घराने में हुआ। यह घराना गुरू नानक देवजी का है, और इस घराने का कुछ सम्बन्ध महाराज कुश से है। आपने आठ वर्ष की अवस्था से संगीत सीखना शुरू किया, और अब आपकी अवस्था ५५ वर्ष की है। आपको सात भाषाओं का ज्ञान है। संगीत के साथ साथ आपको साहित्य के अध्ययन का भी प्रेम है। आपका कथन है कि संगीतज्ञ को साहित्य का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। साहित्य और संगीत का घनिष्ट सम्बन्ध है। आपकी अलभ्य रचनायें भी इस बात का प्रमाण है कि गायन द्वारा साहित्य के भावों को कैसे अभिव्यक्ति किया जा सकता है।

आपने अनेक सुयोग्य शिष्य भी तैयार किए हैं, जिनमें भारत प्रसिद्ध वायलिन वादक, गायक तथा संगीत निर्देशक पं० हुसनलाल, श्रीमती माणिक वर्मा, कर्नाटक की सुप्रसिद्ध कलाकारिणी श्रीमती ललिता रामानुजम। श्री गौतम, पंजाब के भगवान दास सेनी, दिल्ली के श्री विनोद कुमार संगीतालंकार प्रमुख हैं।

वास्तव में वेदीजी बड़े ही प्रेमी, निष्पक्ष और निर्भीक कलाकार हैं। आपके अन्दर हमें सुन्दर मानवता के दर्शन होते हैं, जोकि बहुत कम कलाकारों में पाई जाती है। दरअसल इस अपूर्व गुण ने वेदीजी के कलात्मक व्यक्तित्व में चार चाँद लगा दिए हैं।

अपने समय के सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायक स्वर्गीय पं० भास्कर राव बाखले—

श्री भास्कर राव बाखले को भारत के प्रवीण गायक, वादकों ने अपने समय का सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायक माना। इनके ख्याल गायन के चारों अंग पूर्णतया सजग थे। आपका जन्म रियासत बड़ौदा में हुआ, बचपन से आप संगीत साधना में संलग्न हो गए थे। पहले नाटक कम्पनी में गायक अभिनेता के रूप में रहे। फिर इसके पश्चात् बड़ौदा दरबार के गायक फैज मुहम्मद खाँ (जो कि ग्वालियर के हद्दूखाँ के पिता के शिष्य थे) की सेवा में आए। इन्होंने अपनी अप्रतिभ गायकी का प्रशिक्षण देने के उपरान्त अपने भतीजे, सुप्रसिद्ध ख्याल गायक मिया नत्थनखाँ (आगरे वाले) के सुपुर्द किया। इसके बाद आपको भारत विख्यात बीनकार बन्देअली खाँ तथा गायनाचार्य अलादिया खाँ साहब से भी बहुत कुछ प्राप्त हुआ, और उनकी गायकी सर्वाङ्गपूर्ण हो गई। वह जब गाते थे, तो श्रोतागण आत्मविभोरित होकर गदगद हो जाते थे। ऐसा था उनका चमत्कार पूर्ण गाना। उन्होंने महाराष्ट्र में रंगमंचीय संगीत को शास्त्रीय संगीत का रूप दिया। उनके शिष्य श्री गोविन्द राव टेम्बे एवं मास्टर कृष्ण रावजी ने भी इस गौरवशाली परम्परा को और आगे बढ़ाया। आज महाराष्ट्र के संगीत विकास का पूर्ण श्रेय श्री भास्कर राव तथा उनके अनेक योग्य शिष्यों को है। इसके अतिरिक्त उनके योग्य शिष्यों में श्री दिलीपचन्द्र वेदी का नाम आज भारत विख्यात है।

मुगल काल में तानसेन तथा अनेक महान गायकों के धर्म परिवर्तन से वैदिक धर्मावलम्बी कलाकारों में जो निराशा एवं मायूसी आगई थी, उसको २०० वर्ष बाद श्री भास्कर रावजी ने आशा एवं आत्मविश्वास में परिवर्तित कर दिया था। पटियाला के सुप्रसिद्ध ख्याल गायक अलीबक्स, तलवन्डी के सुप्रसिद्ध ख्याल गायक मौलाबक्स, अलवर के मिया अलावन्दे खाँ, विख्यात सितार वादक बरकतउल्ला खाँ, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर तथा अन्य अनेक प्रवीण संगीत कलाकारों तथा विद्वानों ने भास्कर रावजी को अपने समय का सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायक माना। सन् १६२२ ई० में ५५ वर्ष की अवस्था में आपका परलोक गमन हो गया।

भास्कर रावजी का जीवन बड़ा ही सादा एवं सरल तथा विरक्त था। महाराजा बड़ौदा, महाराजा पटियाला तथा अन्य अनेक नरेशों के बारबार आग्रह करने पर भी उन्होंने उनके दरबार का गायक बनना स्वीकार नहीं किया। वह अपने को जनता का गायक कहते थे। वास्तव में वह युग प्रवर्त्तक संगीतज्ञ थे।

उस्ताद फैयाज खाँ साहब—

आगरा घराने के महान कलाकारों में फैयाज खाँ साहब भी विशेष स्थान रखते हैं। आप अलाप, ध्रुपद धमार, ख्याल तथा ठुमरी सभी गायकियों में प्रवीण

थे। इनको भी चौमुख गायक कहा जाता है। शास्त्रीय गायन को लोकप्रिय बनाने में आपने भी बड़ा कार्य किया। आपकी गायकी की सराहना संगीत विद्वान भातखन्डेजी करते थे। तभी तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री रातंजनकर को खाँ साहब की सेवा में भेजा। खाँ साहब बड़ौदा दरबार के सर्वश्रेष्ठ गायक थे। भारत की अनेक कानफ्रेन्सों की ओर से आपको "संगीत चूड़ामणी", "संगीत रत्नाकर", "आफताबे मौसीकी इत्यादि उपाधियाँ प्रदान की गई। इतना सम्मान प्राप्त करने पर भी आप बहुत नम्र तथा सरल स्वभाव के थे। आपको भगवान श्रीकृष्ण की लीला-चरित्रों से बड़ा प्रेम था। उनका वर्णन इन्होंने अपनी रचनाओं में भी किया, जैसे कि राग सुघराई की रचना "नैनन सो देखी एक झलक मोहन की", राग आनन्द केदार की "अजहु न आये श्याम" इत्यादि। आपने योग्य शिष्य तैयार किए, जिनमें प्रमुख हैं, श्री दिलीपचन्द्र वेदी, श्री रातंजनकर, श्री अतहहुसेन खाँ, श्री शराफत हुसेन, श्री लताफत हुसेन तथा श्री अजमत हुसेन खाँ। आपका नाम भी भारतीय संगीत के इतिहास में सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

ठुमरी गायन के प्रवर्त्तक संगीतज्ञ, भैया गनपतराव—

भैयाजी स्वर्गीय महाराजा ग्वालियर माधवराव सिन्दे के भाई थे। आपके पिता महाराजा जियाजीराव के दरबार में अनेक सुप्रसिद्ध गायक गुणी मौजूद रहते थे। भैयाजी को बचपन से ही गाने का शौक था। पहले आपने बन्देअली खाँ साहब से सितार वादन सीखा। इसके उपरान्त लखनऊ के टप्पा गायक सादिकअली खाँ से टप्पा और ठुमरी गायन सीखा। आप बड़े भावुक एवं दयालु थे। वह अन्तःकरण से संगीतज्ञ थे। आप कुछ प्रेमी स्वभाव के थे। कुछ लोग उन्हें "रंगीन मिजाज" भी कहते हैं।

आपने पुराने ठुमरी गायन के ढंग में एक विशेष परिवर्तन यह किया कि ठुमरी को द्रुतगति में न गाकर उसको विलम्बित में भी गाना शुरू किया। अर्थात उसमें गम्भीरता उत्पन्न की। नृत्यकार (कत्थक) अपनी मुख्य मुद्राओं से अपने भावों को अभिव्यक्ति करता है, लेकिन भैयाजी गायन द्वारा शृंगार सृष्टि का निर्माण करते थे, जिसमें संयोग और वियोग के हृदयस्पर्शी भावों का समावेश रहता था। शास्त्रीय संगीत के आप कट्टर समर्थक थे। आपका ठुमरी गायन सुनकर नेत्रों से आँसू बहने लगते थे, इतना स्वाभाविक होता था आपका ठुमरी गायन। परन्तु फिर भी आपके बड़े भैया बलवन्तराव आपसे प्रसन्न नहीं थे। इस कारण भैयाजी ने अपने जन्म-स्थान ग्वालियर को सदैव के लिये छोड़ दिया। भैयाजी को नवाब रामपुर, महाराजा दतिया, तथा महाराजा धौलपुर ने अपने यहाँ फूलों की तरह रक्खा। कलकत्ता के करोड़पति सेठ दुलीचन्द्र भैयाजी के शिष्य हो गये, उन्होंने

भैयासाहब के लिए अपनी तिजोरी खोलदी। भैयाजी के कारण सेठ दुलीचन्द्र के बगीचे में बारह महीने संगीत-सम्मेलन-सा वातावरण उपस्थित रहता था। अनेक कलाकार भैयाजी के शिष्य होकर उनसे ठुमरी सीखने लगे। उनके शिष्यों में प्रमुख यह हैं—मौजुद्दीनखाँ, सोनीबाबू, मीरसाहब, मिर्जासाहब, गौहरजान, जुहराबाई, बाबू श्यामलाल (मथुरा वाले) भैयाजी के ठुमरी गायन का असर पं० भास्कर राव, उस्ताद फैयाजखाँ जैसे सर्वमान्य गायकों पर भी था। आपके सामने शास्त्रीय गायन के कट्टर समर्थक भी नतमस्तक हो जाते थे। भैयाजी ने इस मिथ्या धारणा को कि "ठुमरी शुद्ध गीत है" सदैव को निर्मूल कर दिया। वास्तव में आपने अपने ठुमरी गायन की छाप शास्त्रीय संगीत के कलाकारों पर भी लगादी, अर्थात उन लोगों ने भी ठुमरी गायन को हृदय से अपना लिया। आज जिसको पूर्व अङ्ग की ठुमरी कहा जाता है, उसको जीवन एवं अस्तित्व प्रदान करने वाले भैयाजी ही थे। अवध एवं ब्रज के ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों तथा संगीत-प्रेमियों के लिए भैया गनपतराव प्रातः स्मरणीय हैं। विदेशी हारमोनियम को सितार वादक भैयाजी ने इस खूबी से बजाया कि बड़े-बड़े गायक तथा तन्तकार भी मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा करने लगे। भैयाजी का स्वर्गवास दतिया में सन् १९१९ में हुआ, ऐसा कहा जाता है। आपने स्वयं भी रचनाएँ की, जैसे कि पीलू की—"डगमग डोलेरी मोरी नैया कन्हैया बिन", "सैंया उतरेंगे पार नदिया धीरे बहो" और खमाज की, "सुघर पिया प्यारे सो नैना लगे"। इनका उपनाम 'सुघर पिया" था। जिस प्रकार बंगाल के कीर्तन गान हिन्दुस्तानी ध्रुपद गान के आधार पर बनाए गए, इसी प्रकार हिन्दुस्तानी ठुमरी का प्रभाव बंगला लोक गीत में है।

बीसवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध गायक, गायिकायें—

बाबली बाई

आगरे के सुप्रसिद्ध ख्याल गायक मियाँ नत्थनखाँ की आप शिष्या थीं तथा महाराजा भावनगर की दरबारी कलाकारिणी थी। आप सदैव संगीत साधना में संलग्न रही, यहाँ तक कि सोते वक्त भी अपनी चारपाई पर तम्बूरा रख लेती थीं। आप अपने समय की बहुत प्रसिद्ध ख्याल गायिका थी।

जुहराबाई आगरे वाली

जुहराबाई सुप्रसिद्ध सारंगी निवाज अहमदखाँ की सुयोग्य शिष्या थी। अहमदखाँजी ने अतरौली के सुप्रसिद्ध गायक तथा रचयिता मिया महबूबखाँ साहब से सीखा। महबूबखाँ, उस्ताद फैयाजखाँ साहब के ससुर थे। जुहराबाई ने पहले ध्रुपद धमार इसके पश्चात कलकत्ता में रहकर भैयाजी गनपतराव से ठुमरी गायन

सीखा, अर्थात आप भी चौमुखिया गायिका थीं। आपकी गायिकी में बहुत आकर्षण था। भारतवर्ष में आपकी गायिकी की धाक थी। आज भी आपके ग्रामोफोन रिकार्ड कहीं-कहीं सुनाई देते हैं, जिनसे कि उनकी अप्रतिभ गायकी का परिचय मिलता है। सुना जाता है आपका देहान्त पटना में सन् १६१४ में हुआ।

श्रीमती ताराबाई शिरोड़कर

आपका जन्म गोवा में हुआ। आपने ख्याल गायन का शिक्षण पं० भास्करराव बाखलेजी से लिया। जुहराबाई के बाद आप ही ऐसी गायिका थी जिनकी प्रशंसा बड़े-बड़े कलाकार भी करते हैं। पहले आप इन्दौर दरबार की गायिका रहीं, उसके पश्चात् बम्बई में आकर विवाह-बन्धन में आबद्ध हो गई, और फिर आप गायन के क्षेत्र से परांगमुख होगई, क्योंकि आपके पति संगीत से विमुख थे। अन्तिम दिनों में अनेक संगीत-प्रेमियों के आग्रह पर श्रीमती ताराबाई ने ऑल इण्डिया रेडियो के बम्बई केन्द्र से गाना स्वीकार कर लिया, परन्तु आपका दो साल बाद सन् १६४८ में स्वर्गवास हो गया।

मास्टर कृष्णराव फुलम्ब्रीकर

आप स्वर्गीय पं० भास्कररावजी के सुप्रसिद्ध शिष्यों में से हैं। आप एक सफल गायक तथा अभिनेता एवं रचयिता हैं। आप पूना के रहने वाले हैं। आपका गाना महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय है और अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों के गानों में आपकी गायिकी की झलक दीखती है। आपने महाराष्ट्र की गौरवमयी गान्धर्व संगीत नाटक-मण्डली के लगभग १८ नाटकों के पदों के लिए स्वर रचनाएँ की, जोकि अत्यन्त लोकप्रिय हुई। प्रभात फिल्म कम्पनी के अनेक चित्रपटों में आपने सफल संगीत निर्देशन किया है। पंजाब तथा सिन्ध में भी आपको ख्याति एवं सम्मान प्राप्त हुआ। आप बड़े हँसमुख, प्रसन्न चित्त तथा प्रतिभाशाली हैं।

बाल गान्धर्व

महाराष्ट्रीय रंगमच के गौरव श्री नारायणराव राजहंस उर्फ 'बाल गान्धर्व' भी श्री भास्कररावजी के शिष्य हैं। आपके बाल गान्धर्वजो के नाम को कौन नहीं जानता। आपके मधुर गायन का अनुकरण महाराष्ट्र के संगीत प्रेमी तथा संगीतज्ञों ने विशाल हृदय से किया। प्रभात फिल्म कम्पनी की "महात्मा" चित्रपट के हीरो आप ही थे। आपके गायन की छाप रंगमंचीय संसार पर लग चुकी है। महाराष्ट्र के हर घर में शास्त्रीय गायन को लोकप्रिय बनाने वालों में आपका भी एक विशेष स्थान है। आपको सन् १६५६ में राष्ट्रपति पुरुस्कार दिया गया था। इनका स्वभाव बड़ा ही सरल, नम्र है। आप बड़े ही प्रेमी हैं। आपने जितना उपार्जन किया वह सब दूसरों को खुले दिल से दान कर दिया। वास्तव में आप सही माने में कलाकार हैं।

श्रीमती ललिता रामानुजम

आप कर्नाटक तथा हिन्दुस्तानी संगीत में निपुण हैं, इसके अतिरिक्त आपको योरोपियन संगीत का भी ज्ञान है। ललिता की माता श्रीमती श्यामला भी कुशल वीणा वादक हैं। श्री ललिता ने हिन्दुस्तानी संगीत का शिक्षण श्री रामाराव देसाई तथा शंकरराव सोधे से लिया। इसके पश्चात् आपने श्री दिलीपचन्द्र वेदी से ख्याल तथा ठुमरी गायन का शिक्षण लिया। उनमें श्री वेदीजी की गायकी की स्पष्ट झलक है। यह तथ्य ललिता जी के गाने से स्पष्ट हो जाता है। आप कुशल कलाकारिणी के अतिरिक्त पत्रकारिता में भी प्रवीण हैं।

गोस्वामी पन्नालाल

नाद विनोद ग्रन्थ के आप ही रचयिता थे, और आप भारत के विख्यात सितार वादकों में से थे। आप दिल्ली के रहने वाले थे। नादविनोद ग्रन्थ हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम सितार वादन पर सफल प्रयास है।

गोस्वामी श्रीलाल

दिल्ली के गोस्वामी श्रीलाल अपनी वंश परम्परा स्वामी हरिदासजी के वैष्णव सम्प्रदाय से जोड़ते थे। आपकी रचनाएँ बहुत लोकप्रिय हुईं, अर्थात आप मेधावी कवि तथा स्वरकार थे। अब भी आपकी रचनाएँ दिल्ली, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के घर-घर में गाई जाती हैं। दिल्ली के श्री ग्रुट्टू तथा गोपालजी आपके प्रमुख शिष्यों में से थे। दिल्ली के बाबू महाराज किशन भी आपके शिष्यों में से थे।

श्रीमती वसुन्धरा देवी

आप सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री वैजयन्तीमाला की माँ हैं। आप सफल अभिनेत्री होने के अतिरिक्त सफल गायिका भी हैं। आप में यह विशेषता है कि आप कर्नाटकी तथा हिन्दुस्तानी संगीत दोनों प्रकार का भली भाँति गा सकती हैं। हिन्दुस्तानी संगीत का शिक्षण आपने बम्बई में रह कर विख्यात संगीतज्ञ श्री नारायण राव व्यास से लिया है। इसके अतिरिक्त आपने श्री दिलीपचन्द्र वेदी से भी लाभ उठाया है। आप दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध कलाकारिणी हैं, और योरप में भी आपने अपनी सुन्दर कला का प्रदर्शन किया।

वीना बक्सी श्री शेषण्णा

मैसूर दरबार के सुप्रसिद्ध वीणा वादक श्री शेषण्णा कर्नाटकी संगीत के अद्वितीय कलाकार माने गए हैं। आपके शिष्यों की बहुत बड़ी संख्या है, जिनमें वीना बक्सी सुमण, श्री वेंकिट गिरी अप्पा, श्री वासुदेवाचार्य तथा बंगलौर की श्रीमती टी० टी० शर्मा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वीना धनम

आप भारत विख्यात बाल सरस्वती की नानी थी। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों में निपुण थी। आपको कर्नाटकी संगीत पर अथोरिटी माना गया है। आप हिन्दुस्तानी गायन वादन की भी हृदय से प्रशंसक थी। आपका देहान्त मदरास में हुआ।

श्रीपरूर सुन्दरम अय्यर

आप मदरास के रहने वाले हैं। कर्नाटकी तथा हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार का संगीत भली भाँति बजाते हैं। आपने अपने पुत्र गोपाल कृष्ण को भी दोनों प्रकार के संगीत का शिक्षण दिया। आप बड़े निष्पक्ष तथा स्पष्ट वक्ता हैं। आपने सन् १९३२ में मदरास के दैनिक आन्ध्र पत्रिका में लिखा था कि—"कर्नाटक के संगीत विद्वानों को कूप मन्डूक नहीं बनना चाहिए, और श्री दिलीप चन्द्र वेदी के हृदय स्पर्शी कला एवं विचारों से बहुत कुछ लाभान्वित होना चाहिए।" अपने एक पैम्फलैट में आपने यह भी लिखा था कि कलात्मक दृष्टिकोण से हिन्दुस्तानी संगीत ही भारत का सर्वश्रेष्ठ संगीत है। कर्नाटक के विद्वानों को अपनी संकुचित मनोवृति को त्याग करके हिन्दुस्तानी संगीत अपना लेना चाहिए।

सी० आर० श्रीनिवास आयंगर

आप कर्नाटकी संगीत के प्रकान्ड पंडित थे। इसके अतिरिक्त आपको हिन्दुस्तानी तथा योरपियन संगीत पर भी पर्याप्त अधिकार था। आपने अनेक अमूल्य पुस्तकें तामिल भाषा तथा अंग्रेजी में लिखी। दैनिक हिन्दू मदरास के आप संगीत विभाग के सम्पादक थे। आपने अपने २१ फरवरी सन् १९३२ के एक लेख में लिखा था कि—"हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटकी संगीत का जब हम तुलनात्मक विवेचन करते हैं तो हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि दक्षिण को अभी उत्तर से बहुत कुछ सीखना है।"

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० नारायण राव व्यास

आपकी संगीत साधना अपूर्व है। आप बड़े ही मिलन सार हैं। कला के क्षेत्र में आप बड़ी लग्न और उत्साह से कार्य करते चले आरहे हैं, उसी का यह सुपरिणाम है कि आज आपकी कला में एक ऐसी चमक, एक ऐसा आकर्षण आविर्भूत होगया है कि जो वरबस श्रोताओं को आत्मविभोरित बना देती है, और उनके सामने संगीत की आत्मा सजीव हो उठती है। वास्तव में आप भारतीय संगीत के विकास में महान् योग दे रहे हैं, जिसका भारतीय संगीत के इतिहास में अपना एक विशेष मूल्य है।

पं० शंकर राव व्यास

व्यासजी कोल्हापुर के निवासी थे। १३ नवम्बर सन् १८९८ ई० को आपका जन्म हुआ था। आठ वर्ष की उम्र से ही आपकी अभिरुचि संगीत की ओर बढ़ने लगी थी। आपने श्री विष्णुदिगम्बरपलुस्कर के "गान्धर्व महाविद्यालय" में प्रवेश किया। कुशाग्र बुद्धि एवं अटूट परिश्रमी होने के कारण अल्पकाल में ही आपने श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के हृदय में उच्चस्थान प्राप्त कर लिया। यहाँ से अवकाश प्राप्त करके आपने अहमदाबाद में "गुजरात संगीत महाविद्यालय" की स्थापना की। स्वर्गीय बापू की राष्ट्रीयशाला के संगीत विभाग का कार्य भार भी आपने सभाला। बम्बई में व्यासजी ने अपने भ्राता श्री नारायण राव व्यास तथा अपने शिष्य श्री राजोपाध्ये के सहयोग से "व्यास संगीत विद्यालय" की स्थापना की।

आप एक सुन्दर रचनाकार भी थे। "मुरली की धुन" व्यास कृति आपकी अपूर्व प्रतिभा के ज्वलंत उदाहरण हैं। वृन्दवादन में भी आपकी नवीन कल्पनाएँ सराहनीय हैं। "पूर्णिमा", "भरत-मिलाप", "रामराज्य", "विक्रमादित्य" आदि फिल्मों के संगीत में शुद्ध राग दारी प्रयोग का आपने सफल प्रयत्न किया था।

वास्तव में आप भारत विख्यात गुणी कलाकार थे। आप आजीवन संस्कारी शिक्षक एवं संगीत की नूतन प्रणाली के सृजनकर्त्ता थे। आपकी मृत्यु १७ दिसम्बर सन् १९५६ ई० को होगई। मृत्यु के समय आपकी आयु ५९ वर्ष की थी। भारतीय संगीत के इतिहास में आपका नाम चिर स्मरणीय रहेगा।

शंकर राव पंडित

शंकर राव पंडित का जन्म वैशाख शुद्ध नवमी सम्वत् १९२० वि० को हुआ था, उनके पिता का नाम विष्णु पंडित था। आपको संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा हस्सूखाँ, हद्दूखाँ और नत्थूखाँ से प्राप्त हुई। यह तीनों बंधु नत्थन पीरबख्श घराने के अनुयायी और अपने गुरू की प्रणाली के सच्चे प्रतिनिधि थे। श्री शंकर राव पंडित का कंठ-स्वर ईश्वर प्रदत्त था, संगीत के प्रति इनकी रुचि जन्मजात थी।

नत्थू खाँ के सुपुत्र निसार हुसेन खाँ उच्चकोटि के गायक थे। उनके पास संगीत का अमूल्य भन्डार था, और वे अपने समय के श्रेष्ठ ख्याल गायक थे। श्री शंकर राव पंडित इन्हीं के शिष्य बन गए, और उन्होंने गुरु के चरणों में बैठ कर अत्यन्त मनोयोग पूर्वक संगीत साधना प्रारम्भ कर दी। अपने सुन्दर ध्येय की प्राप्ति के लिए आपने महान् त्याग किया, जो प्रशंसनीय है।

लगभग ३० वर्ष की अवस्था में पं० शंकर रावजी का विवाह हुआ, और सन् १८९८ में उनके एक पुत्र हुआ, यही पुत्र, आज ग्वालियर घराने के

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ रत्नालंकार पंडित कृष्णरावजी हैं। पंडित कृष्णरावजी स्वयं संगीत के प्रकाण्ड विद्वान हैं। श्री शंकररावजी अपनी अद्वितीय प्रतिभा के बल पर भारत विख्यात होगए और उनके पास अनेक विद्यार्थी संगीत-शिक्षा प्राप्त करने लगे, उनमें गरणपतराव गुरो, रामकृष्ण तैलंग, काशीनाथ राव मुले और राजा भैया पूछ वाले विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आप विद्यार्थियों को बड़े प्रेमपूर्वक एवं निश्चल भाव से पढ़ाते थे। आपने अनेक संगीत संस्थाओं को प्रेरणा प्रदान की, और अनेक संगीत सम्मेलनों में भाग लिया। जनता ने उनका खुले हृदय से स्वागत किया। उन्होंने अनेक बार दरबार गायक का पद ठुकराया।

आपके सुयोग्य पुत्र पं० कृष्णरावजी ने सन् १९४४ में आपके नाम पर "शंकर गान्धर्व विद्यालय" की स्थापना की, जिसकी शाखाएँ आज बहुत से नगरों में हैं। हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली के प्रचार और प्रसार में "शंकर गान्धर्व विद्यालय" का अपूर्व योग दान है।

शंकररावजी ने सीधा सादा जीवन व्यतीत किया, उन्होंने कला के सामने धन की चिन्ता कभी नहीं की। वास्तव में शंकररावजी ने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण संगीत की साधना में, संगीत की उन्नति में और संगीत के प्रचार में लगा दिया था। उनके विचार उदार एव प्रशस्त थे। वे जन्मजात संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपने अथक परिश्रम, धैर्य और सच्ची साधना से इस विद्या को मुस्लिम उस्तादों के एकाधिकार से मुक्त कर भारतीय संगीत की एक बहुत बड़ी सेवा की जिसके लिये वह हमेशा स्मरण किये जाते रहेंगे। सन् १९१७ में उनकी मृत्यु हो गई।

टैगोर संगीत

मुझे अनेक ऐसे विद्वानों के विचार जानने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ जोकि टैगोर संगीत के अस्तित्व को मान्यता नहीं देते, जिनमें महाराष्ट्र के भारत विख्यात कलाकार स्वर्गीय गोविन्दराव टेम्बे, पं० भातखन्डेजी, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पं० ओंकारनाथ ठाकुर तथा पंजाब के भारत विख्यात गायक तथा संगीत विद्वान श्री दिलीपचन्द्र वेदी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन संगीत विद्वानों का कथन है कि डाक्टर रवीद्रनाथ टैगोर ने टैगोर संगीत के अस्तित्व का दावा कभी नहीं किया। रविबाबू को संगीत से विशेष प्रेम था, उन्होंने हिन्दुस्तानी ठुमरी, लोक गीत तथा शास्त्रीय संगीत की सरल ध्वनों (Music Compositions) पर बंग भाषा में नवीन रचनाएँ की, जैसे कि (हिन्दुस्तानी गीत) "सुन्दरी लबो री पर मन्दिरे मम के" रचा गया। संगीत की आत्मा स्वर, ध्वनि है, शब्द नहीं। टैगोर संगीत के स्वर, ध्वनि तथा लय व ताल हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र से बाहर नहीं। अतः उसे

भिन्न नाम से देना राष्ट्रीय संगीत के एक्य पर एक प्रकार से प्रहार ही कहा जायगा। एक तरफ आकाशवाणी हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटकी संगीत को निकट लाने की कोशिश कर रहा है, तो दूसरी ओर टैगोर भक्तों को पुरानी हिन्दुस्तानी ध्वनों पर नवीन गीतों को टैगोर संगीत घोषित करने की स्वीकृत दिये जा रहा है। एक महान कवि अथवा महान् साहित्यिक के महान् होने के लिये उसका गायक होना परम आवश्यक नहीं। यदि भारतीय संगीत पर व्यक्तिगत अथवा प्रान्तीय छाप लगनी शुरू हो गई तो राष्ट्रीय संगीत किसे कहा जायगा ?

पंजाब का संगीत

अब हम पंजाब के संगीत के सम्बन्ध में श्री दिलीपचन्द्र वेदी के सुन्दर विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, क्योंकि उनका ऐतिहासिक मूल्य है। उनका यह लेख—"Punjab Music—Its Nature and Growth" संगीत सेमीनार में पढ़ा गया। उन्होंने अपने लेख में यही प्रामाणित किया है कि पंजाब का संगीत वैदिक युग से सम्बन्धित है। हिन्दुस्तानी संगीत ही पंजाब का संगीत है। अब आप उनके ही शब्दों में पढिये :—

An important way of understanding what a thing is consists in studying how it has come to be what it is. I propose to examine Punjab music from this developmental point of view. The mere study of the prevailing forms, such as Kafi song and folk songs, cannot give us a true understanding of this music.

The music of Punjab, even like its culture and languages, can, be traced back to the Vedic times. In respect of culture and languages, this link can be easily established. Punjab language has developed out of Prakrit and Sanskrit. The excavations of Harappa and Mohan-Joedaro have brought to light man idols holding veena in their hands, and the veena is, as we know, the most important musical instrument of Vedic Sangeet. Panini, in the famous Sanskrit grammarian, was born at a place in 'Gandhaar Desh' which included the region known a undivided Punjab; and so were the ancestors of Kalidasa, and Sharngdeva, the author of Sangeet Ratnakar. Again, the well known ancient university of Taxila, which imparted regular instructions in fine arts too, was in Gandhaar.

I may attempt to estabaish the link of Punjab music with the Sangeet of old Vedic times. The evidence here will be partly theoretical and partly historical or factual. First, to theoretical evidence, that is, to certain possibilities, or even necessities, of thought which point to the truth in question. Some European writers and their Indian followers maintain, or rather imagine, that, due to foreign invasions and consequent upheavals, Vedic Sangeet disappeared completely from the North, and sought refuge in, and was preserved by, the South. I have no right to say any-

thing about the truthfulness of this claim made with regard to the South, for, I am not an authority on Karnatik music. But I can certainly advance fairly tenable arguments to prove that Vedic music and its fundamental aesthetic concepts have not disappeared from the North.

Can we say that a lessening of its outer manifestation or pursuit is necessarily the ebbing of the inner spirit of an art-form ? A categorical affirmative answer cannot be given, at least not in the realm of our music. It is a distinctive characteristic of our music, as philosophically understood, that it permits only so much externalisation or objectification as is necessary for concentration and contemplation.

We sing because the svara breathed out is something before the mind, as it were ; serves as an object of attention and makes concentration on an idea, feeling or thought possible. The ideal reality is the thing attended to ; the physical svara is only the auxiliary with which this attention becomes possible. Now, if it is to serve as an effective medium of concentration on some ideal truth, the svara should be rendered in the right manner. If the note is rendered jerkily, it will disturb, rather than help, concentration ; even as a man cannot both run jerkily and contemplate at the same time. The steadily rendered alone ean appear self-luminous, an attribute thought essential for a svara by Vedic Sangeet. Even the present day music of the Punjab recognizes this essential attribute of a svara.

Again, if a note is shown as spread out in space—as it actually is, in notation—how can it truly express the nature of the ideal reality which music seeks to delineate ?

The essential glory of music is, as Goethe said, its ability to transcend space ; and the first effect of notation is to represent the notes as spatial. The svaras, in notation, are mere physical points to be traversed and manipulated in all sorts of ways, but not as ideal realities which could be revered, unfolded, and made to emit a glow, smell or sparkle. Notation is an unconscious attemptto debase the aesthetic into the merely physical. Again, notation gives us as individual, isolated svaras which can never capture the flow or the continuity which, according to Confucious, is the essence of music.

The devotees of Vedic music know this well. They preferred singing to notation, and contemplation of music to actual singing. Singing written music checks this process of introversion, hampers concentration, and makes the ideal of God-realisation for ever unattainable. The seer-singers of the North may well have been prevented from open singing by political tyranny, but music surely continued to haunt their imagination and suffuse their being. If the Vedic mantras could continue undimmed, why could not our conception of music too, in spite of social and political difficulties ? Some thinkers deny all relation between present day and

Vedic Sangeet on the ground that whereas the former employs seven svaras, the latter used only three. To my mind, this is a questionable contention. In "Rigveda pratishakhya Uddhatt Krit Ehashya" we find the clear assertion.

"Kete Yamanama ? Sapta svara yamaste"

Again in Braham grantha we find :

"Sapdha wai vagavadat".

Again corresponding to the five facets of Saamgaan-Himkaar, Prastava, Udgeeth, Pratihaar, and Nidhan we have the five main aspects of the Dhrupad styles of singing—Alaap, Sthayee, antaraa, Sanchaari and Aabhog.

In the Gandhaar and Paanchal regions, Saamgaan was quite popular, essentially in the form of Raanaynee and Kauthumi styles. Saamgaan is Chhandgaan. It has five facets ; such formal graces as meend, ghaseet and brief, decorative tufts of svaras ; some specific parts for repetitive delineation ; and also something similar to bol taans. Instrumental music, as conceived by Saamgaan, recognizes kinds of orchestral playing ; such formal graces as ulat, sulat, meend and ghaseet, and some bols resembling dadir da, rha and the blending of seven svaras. The rendering is expected to begin with Om Him Hum and the arrangement of the seven svaras appears as aaroha and avaroha. In the opinion of Pandit Haridatt Shastri of Punjab, a famous Saamvedi gaayak of all India repute, all saamgaan would take place through six raga-categories which resemble Sindhi Bhairavi, Khammach, Kalyaan, Todi Bhairavi blend, Kaafi, Bilaawal, and pancham less Bhairavi of two madhyams. Pandit Haridatt could also illustrates these categories vocally. The vocalist would be made to undergo detailed training in Svarasaadhna, and breath regulation, and acquire a thorough knowledge of the good and bad features that a recital can possibly have.

The next stage in the evolution of our music was marked by the emergence of "Gandharvagaan" or Jaatigaan 18 jaatis, of which quite a few resemble the ragas of today which also respect the Laksanas of the Jaatis. Sanskrit Dhrupadas were in vogue before the Hindi ones. Bharata's Naya Shastra contains references to many kinds of dhruva geets, one of which is called 'Chatushapada' having four sub-divisions. As is well known, the average Hindustani Dhrupad also has four sections. Before Hindi dhrupads, the asthapadis of Jaydev too were also very popular. These Asthapadis used to be sung in ragas Gurjari, Raamkali, Kedaar, Kaanhra, etc. etc.

The Hindi 'padas' of Swami Ramanand, Kabir, Ravidas, Trilochan, Namadev, Dhanna Bhakta etc., were popular before Hindi dhrupadas. *There is one such 'pad' of Kabir's guru Swamiji.*

Thereafter, in Punjab, the 'baani' of Guru Nanakdevji and Sheikh Farid began to be sung by the masses. Bhai Mardana

used to be regarded as a great scholar in those days would sing at the Rabab. When Guru Nanak toured Asia, Bhai Mardana was with him. It was through music that the great Guru spread the message of universal brotherhood and non-violence in Afghanistan, Iran, Iraq, Mecca, Medina and Baghdad etc. Deeply impressed by the Harikeertan of the saint, the first Moghul King Babar remarked in Tozak e-Babari that the highest music is that of Northern India. In the days of Guru Arjundeva, the fifth successor of Guru Nanak, the spread of classical music through Hari Kirtan gained further impetus. He collected the padas' of the apostles of non-violence belonging to different sects and brought out a 'pavittra granth', instructing his pupils to do keertan every morning and evening. The 'padas' of this holy granth are sung in 31 popular ragas of which Aasaa, Tkhaari, Maanjh, Baraarhi and Soohi are rarely heard else-where. On their way to Kashmir, King Akbar and Tansen had also once attended a Hari Keertan of the Guru. It was during those days that Nayak Baiju (pupil of Swami Haridas), and Pandits Diwakar and Somnath returned to Punjab and gave a great fillip to Hindustani dhrupad gaayaki. In the days of Guru Arjundev Bhai Satta and Balwand grandsons of Bhai Mardana, composed music for many 'Padas' in the Dhrupad style, which became very popular. Dhammar, Pattal, Dhouru and Chaturang—these are only different forms of the Dhrupad gayaki. All the four 'Banis' of this Gayaki Dagur, Nauhar, Gobarhar and Khandhar—were prevalent in the Punjab of those days when Talwandi, Hariyana, Shamchaurasi and Amritsar were the main centres of music, followed by Jandiyala and Kapurthala. The place where Baiju Nayak died was named Baijuwada and a village was named Hariyana after Swami Haridasji. Dhrupad then became as popular in Punjab as thumri is today. Here is a Dhrupad in raag malhaar which has been very popular in Punjab for the last 400 years, that is, since the days of Guru Arjundevji.

"Paras pars dars kat sajni".

Here is another parallel one, a composition of Guru Gobind Singh ji in Raag Malhaar. 'Tal Bhare Jal Puran So Aru Sindhu Mili Sarita Sabjayi". Four hundred years back, a popular 'Pat-Tal' song used to be sung in Raag Vasant—"Mouli Dharti Moule Akash". The 'pat-tal' is so called because it builds upon varying talas. Dhrupad in Raag Hindol "Hay toohi adayant gupta prakat" and Dhrupad in Kalyan "Toohi bhaj bhaj re mana Krishna Vasudeva"; also Tansen's Dhrupads in Bhairava Bihagra and another in Lakshmi tala; and Baiju Nayak's 'dhrupads' in Bheem palasi, Khatt, Kanarah, Malkoush were also very famous. The Dhrupads were sung even in such popular Ragas as Bhairavi, Peelu, Khamaj, Barwa etc. In the 19th and beginning of 20th century Punjab was humming with the excellence of such Dhru-pads-singers as Bhai Chand Rababi, Bhai Gurmukh Singh, Bhai Uttam Singh, Pt. Vaishnav das, Bhai Vadhava, Maula Dad, Moula

Bukhash, Sayeen Alyas, Karim Bukhash, Mohammed Hussain and others. Dhrupad style of singing was so popular in the Punjab those days that people belonging to humblest walk of life could be found singing Dhrupad compositions while engaged in their daily activities.

Punjab has been the victim of repeated invasions, tyranny and loot. People were even compelled to convert their religion. But it is difficult to cite even a single instance of punishment having been meted out by the invaders to anyone because of his musical activities. On the other hand, many invaders continued to own and assimilate the music of Hindustan. Even such a ruthless ruler as Alauddin Khilji was enamoured of our music. And as for Babar, he has regarded Hindustani music as the best in the world. The musical gem of Akbar's court was none else than the famous exponent of the Hindustani style—Tansen. As a musician he commanded the greatest respect in the court which possessed as many as 36 musicians drawn for almost every country of Asia. In the days of Ashoka even Iran was a part of India, and in the days of Samudra Gupta Vikaramaditya the Caliph of Baghdad invited and honoured musicians of the Gandhaa-Desha. The "Tritantri-Veena" played by our musicians was later on called "so-tar". i.e.. possessed of three strings, by the Turks. What is called 'Tabla' now a days is referred to in Bharat Natya Shastra of about 2,500 years ago. The right one is called 'Dardur' and the left one 'Udharvak'. In the royal library of Istanbul, there is a book named : "Sejarulukal". Its foreword says that there was a poet-singer named Jarham-bin-toyi who lived 165 years before Prophet Mohammed ; and that this poet, in one of his compositions, speaks of King Vikramaditya as a great exponent of 'seh-taar' or tritantri veena. Thoughtful and impartial historians maintain that Indian music reached Europe through Iran, Iraq, Arab and Greece. Our twelve 'swaras' are not very different from European notes. Our six ancient fundamental musical scales and the six scales of the Greeks were identical. The seven main 'muquaams' of Arab resemble our ragas. All this perhaps points to the truth that our music is the most ancient in the world. Just as in the period of British rule European music had no special effect on our music—except, of course, giving currency to the idea of notation—even so, the Mughal rule did not inflict any aesthetic disfigurement on Indian music, the only major change being that the place of Sanskrit was taken by Brijbhasha. The favoured music of the rulers, however, did influence our folk music, for the exponents of the latter tried mainly to win the favour of the rulers.

I may now attempt a brief survey of the Khayal singing and singers of Punjab. It was Banne Khan Sahib, an able pupil of Haddu Khan Sahib, who first introduced Khayal in Punjab, in 19th century. Banne Khan was the court musician of Ranvir Singh, ruler of Jammu and Kashmir. They say he was possessed of a

very impressive voice. Then, Ali Baksh and Fateh Ali of Patiala made khayal-singing very popular in Punjab; those stalwarts commanded countrywide reputation – Ali Baksh because of his remarkable proficiency at executing drut taans and Fateh Ali because of his appealing raag-unfoldment. Their gaayaki put greater emphasis on variety and fluency than on barhat. It was largely owing to the influence of these two great vocalists that the Patiala gharaana came into being in Punjab. They produced many 'shagirds' of whom the more famous ones have been: Mian Jan Khan, Meherbaan Amritsari, Kale Khan Kasur Wale, Bhai Moti and Bhai Aroorha. Ali Baksh and Fateh Ali were the glorious pupils of Mian Kalu of Punjab and Mian Tanras Khan of Delhi, the famous khayaliyas of all-India repute.

In the close of 19th century, upto which time Punjab was dominated by Gwalior and Delhi gaayakis, this province was visited by Pandit Vishnudigambar Paluskar whose singing represented the Gwalior style. His advent created popular enthusiasm and liking for classical music. He established a music school too at Lahore. The next important stage in the musical evolution of Punjab was marked by the visit of Pt. Bhaskar Rao Bakhle, the Baroda vocalist of all India fame, whose style has left a profound impresson the khayal gayaki of Punjab. Pundit ji was acknowledged as best khayal singer by such great vocalists as the initiator of Patiala gharanaa, Mian Ali Bux Sahib; Mian Maula Bux, the foremost Dhrupad singer of the Talwandi School and Mian Gaman Khan, the well known vocalist of the Gwalior school. Bhaskar Rao's gaayaki was a beautiful blend of the main excellences of the gaayakis of four well known gharanaas. Whereas ninety percent of khayaalias in West Punjab follow Patiala Gharrana, the same proportion of Khayal singers in East Panjab either follow, or are the pupils nf the Bhaskar Rao gharanaa. It was Bhaskar Rao who popularized classical singing in the Maharashtra stage. The famous Ustad Fayaaz Khan of Agra also exercised perceptible influence on the khayal gaayaki of Punjab. The famous vocalists of Pakistan, Bhai Lal and Asad Ali Khan, are the pupils of Bhaskar Rao and Fayaaz Khan respectively.

In Punjab the same Khayal: 'Saiyoni main ratri dhari' of Gaur Sarang is sung in the three different gayaakis of Patiala, Bhaskar Rao and Gwalior gharanaas. Many a Punjabi vocalist also composed now khayaals in their own language.

Khayaal gaayaki is a further and a more likeable development of Dhrupad singing. In present day khayaal singing we find a blend of all the four main aspects of Dhrupad singing. Two hundred years earlier the great Sadarang composed khayaals essentially on the basis of dhrupads. In some such pieces, only the words differ, the svara-sequences being the same. At places, such small formal graces were employed as murki, khatka and zamzama etc.

A reference may also be made to the Tappa style of singing as it prevailed and developed in Punjab, though it is to be regretted that this form has almost become extinct in Punjab today. The language of these Tappa songs is pure Punjabi. The following may be cited as examples.

In Tappa singing the words are rendered through drut taans which are so difficult that every khayaal singer cannot execute them.

Thumri : Thumri also is and has been very popular in the Punjab, and has been enriched by the creative genius of the later. It is a blend of the Punjab and Poorab styles which is ideal of almost every Thumri singer of today. This style of thumri singing needs plenty of tirobhava occasionally with vivaadi notes, so that it is only a very intelligent and mature singers who can sing in this style effectively.

Light and Folk Songs : It is a characteristic of Punjabi music in particular, and of Hindustani music in general, that they reveal an intimate inter-connection between folk and classical singing. There are many Punjabi folk songs the svara-sequences of which resemble classical songs very closely. Here is a dhrupad : 'Lambodar Giriraj Namaskar Kar Jor'. And, composed exactly on this pattern, here is a folk song :

The forms of light singing known as multaani and Sindhi are also very populer in Punjab : they show the pathos of love-lorn imagination making winsome inroads upon the realm of light music creativity. The whole of India is today enamoured of these lighter art-forms. Nothing in the country is similar to them, except perhaps the 'maand' songs of Rajasthan Again, the 'pahaari songs of Punjab have an appeal which is all their own. On seeing common men and women sporting with these songs in green, hilly regions, one is reminded of the 'Saman' of the Vedic period, a reference to which is to be found in 'Music History of Vedic Period' by Charles Vigs. The notational layout of these songs is, as a rule, brief and simple. In almost every language, stage and film songs have drawn upon the Punjabi and Sindhi' 'Kaafi', 'Pahaari' and folk songs. Some of the well-known film music composers who hail from the Punjab are : Master Jhande Khan, Nawab Khan, Amarnath and others. Their svara-sequences were not opposed to the Rag-kshetra' and 'samyaditva' principles of Indian ragas. However, a number of our film composers do not adhere to this fundamental rule and the result has been the invasion of jazz upon our film music. Indian music emphasizes the 'svara' aspect ; but in Jazz this important element is being subordinated to rhythm. This calls for a protest from all music lovers.

The Ragas Gandhari, Dev Gandhaar, Sindura, Kaafi Barwa, Pahari, Multani and the Punjabi thekas Tri-taal, Jhumra, Giddha, Mirza, Pushto, Frodust and others, bear ample testimony to the

fact that Punjab has been, since the Vedic times, an important centre of music. Punjab does not claim its music to be Punjabi music', but 'Hindustani music' It is a matter of very great pleasure that the scholars of Hindustani and Karnatak music are coming closer together because, taken together, they form the totality of Indian music. Sound and rhythm, which form the soul of music, do not know any provincial barriers. Any parochial or provincial tendencies are, therefore, to be highly condemned. "Music begins where words end" wrote the poet Tagore.

हमें भारतीय संगीत का अध्ययन संकीर्ण दृष्टिकोण से नहीं करना चाहिए, समस्त वर्गीकरणों से ऊपर उठकर उसके मौलिक सौन्दर्य का स्वाभाविक आनन्द, उसके आत्मिक विकास का द्विव्य रूप, एवं उसके कलात्मक सूक्ष्मताओं पर पड़े हुएगर्दो-ग़ुबार को हटा कर उसके यथार्थ, अलौकिक और अपरिमित शक्ति का अनुशीलन करना चाहिये। भारतीय संगीत अत्यन्त दिव्य और पवित्र साधना है, हमें इसकी गहराइयों के असीम दिव्य सौन्दर्य को समझना है और जब तक कि हम उसके ऐतिहासिक रूप को अच्छी तरह से समझ न पायेंगे, तब तक हम भारतीय संगीत के मौलिक रूप की यथार्थता से कोसो दूर रहेंगे, किसी भी स्थान के संगीत को, प्रान्तीयता की जटिल बन्दिशों में इतना आबद्ध न करिये कि उसके सांस्कृतिक रूप की एकता ही नष्ट होजाए, उसकी मौलिक पृष्ठभूमि ही समाप्त होजाए। हमें समस्त भारत के सांस्कृतिक वातावरण को लेकर प्रत्येक प्रान्त के संगीत का मूल्यांकन करना है, अगर हम ऐसा न करेंगे, तो हम भारतीय संगीत के दिव्य सौन्दर्य के यथार्थ रूप को कभी न समझ पायेंगे।